मलिक मुहम्मद



जायसी

और उनका काव्य

मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य

(सागर विश्वविद्यालय की पी० एच डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

डॉ० शिवसहाय पाठक
बी० ए०, (आनर्स), एम० ए० पी एच० डी०, साहित्याचार्य साहित्यरत्न



ग्रन्थम
रामबाग कानपुर

ग्रन्थम, कानपुर

मूल्य अठारह रुपए

प्रकाशक
ग्रन्थम रामबाग, कानपुर

प्रकाशन तिथि
नवम्बर, १९६४

मुद्रक
विवेक प्रिंटर्स,
ब्रह्मनगर, कानपुर

प्रारम्भिक वक्तव्य

सागर विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के अन्तर्गत पी-एच०डी० का शोध-कार्य पिछले बारह वर्षों से नियमित रूप से चल रहा है और इस समय तक प्रायः पाँच दजन शोध कर्ता उपाधियाँ प्राप्त कर चुके हैं। आरम्भ में कतिपय विशिष्ट कवियों और साहित्य पुरस्कर्ताओं पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने का क्रम चला था। इस विषय में एक प्रमुख कठिनाई प्रामाणिक जीवनी के अभाव की उपस्थित हुई। स्वतः जीवनी लेखन का कार्य अब तक हिन्दी में गम्भीरतापूर्वक नहीं अपनाया गया जिसका मुख्य कारण उपजीव्य सामग्री की विरलता ही कहा जायगा। यद्यपि हमारा शोध-कार्य कवि-कृतित्व पर ही केन्द्रित रहकर सम्पन्न हो सकता था परन्तु प्रामाणिक जीवनियों के अभाव में वह यथेष्ट फलप्रद नहीं हो सकता था। अतएव हमें आंशिक रूप से अपनी शोध दिशा बदलनी पड़ी। कुछ प्रबन्ध युगीन भूमिकाओं पर भी लिखे गये हैं जिनमें युग विशेष के साहित्य स्रष्टाओं की कृतियों का विवेचन किया गया है और उनके साहित्यिक और कलात्मक प्रदेय प्रकाश में लाए गए हैं। यद्यपि यह काम हिन्दी के आरम्भिक साहित्यिक आकलन के लिए आवश्यक और उपयोगी रहा है पर इतने से ही संतोष करना हमारे लिए उचित और सम्भव न था। तब हमने आधुनिक युग के विविध साहित्यिक आन्दोलनों और उनसे निःसृत कला शैलियों में से प्रत्येक को इकाई मानकर शोध-कार्य का तृतीय अध्याय आरम्भ किया। इस संदर्भ में स्वच्छन्दतावादी साहित्यिक विकास पर प्रायः आध दजन शोध विषय लिए गये जिनमें से अधिकांश कार्य सम्पन्न हो गया है और कुछ शेष है। स्वच्छन्दतावादी काव्य कथा साहित्य, नाट्यकृतियाँ समीक्षा तथा स्वच्छन्दतावाद के सैद्धान्तिक आधारों पर हमारे विभाग द्वारा अनेक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किये गये हैं और अब भी उनके कुछ पक्षों पर कार्य किया जा रहा है। विशुद्ध वैचारिक, सैद्धांतिक और कला शास्त्रीय तथ्यों के अनुशीलन के लिए भी हमारी शोध-योजना में स्थान रहा है और कुछ विशिष्ट शोध-कर्ता इस कार्य में भी संलग्न हैं। भारतीय साहित्य शास्त्र और कला विवेचन के सिद्धान्तों पर स्वतन्त्र रूप से अलग अलग शोध-कृतियाँ प्रस्तुत करने की दिशा में भी हम अग्रसर हो रहे हैं क्योंकि हम जानते हैं कि भारतीय कला या साहित्यशास्त्र का अनुशीलन अब भी परम्परागत प्रणालियों से ही हो रहा है। इसमें नवीन चिंतन और आधुनिक वैज्ञानिक उद्भावनाओं का सम्यक योग नहीं हो पाया है। हमारी पारिभाषिक शब्दावली

इस क्षेत्र में अद्यतन नहीं है। प्राचीन साहित्य चिन्तन को नया स्वरूप और नयी शब्दावली देने की आवश्यकता है। इन सबके अतिरिक्त कतिपय साम्प्रतिक साहित्यिक समस्याओं और प्रश्नों पर भी संतुलित विचारणा की आवश्यकता है जिन पर पी एच०डी० के शोध काय लाभप्रद हो सकते हैं। उनकी ओर भी हमारी दृष्टि गई है और कुछ काय आरम्भ किया गया है।

सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में डी० लिट० के शोध सम्बन्धी विषय भी निर्धारित किए गए हैं। इनमें स्वभावतः अधिक व्यापकता और अधिक प्रशस्त विवेचन और आकलन की आवश्यकता प्रतीत हुई है। डी०लिट सम्बन्धी यह शोधकार्य कुछ ही समय में एक स्पष्ट रूपरेखा ग्रहण करेगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि स्फुट और सहसा प्रत्यागत विषयों पर आनुषंगिक काय करने की अपेक्षा विशिष्ट योजना के अनुसार सुसम्बद्ध और समग्र भूमिकाओं पर शोध काय करने में हमारी अधिक रुचि है और इस रुचि को साकार रूप देने और फलप्रद बनाने में हम पिछले कुछ समय से संलग्न हैं।

डा० शिवसहाय पाठक का प्रस्तुत प्रबंध सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य के समग्र विवेचन से संबंधित है। यद्यपि इसमें अधिकांश सामग्री जायसी के काव्यपक्ष को आधार बनाकर चली है परन्तु शोधकर्ता ने जायसी के व्यक्तित्व परंपरा मसनवी शैली तथा कवि की भारतीय भूमिका और परिवेश का भी विस्तृत विचार किया है। जायसी की काव्य भाषा उनके रहस्यवाद तथा उनकी प्रेमसाधना पर भी स्वतंत्र अध्याय दिए गए हैं। प्रेमाख्यान काव्य की समस्त परम्परा का उल्लेख भी किया गया है। इस प्रकार शोध प्रबंध में जायसी के काव्य को केन्द्र में रख कर उसके पार्श्ववर्ती पक्षों का भी अच्छा अनुशीलन किया जा सका है।

लेखक की विशेषता यह है कि उसने जायसी और सूफी काव्य पर लिखे गये समस्त विद्वानों के विचारों का संग्रह और आकलन किया है तथा उन पर विचार करने के पश्चात अपने निर्देश दिये हैं। इस पद्धति का प्रयोग उसके शोध प्रबन्ध को विशिष्ट बनाने में सहायक हुआ है। इस एक ग्रंथ के अवलोकन से जायसी काव्य के अध्येताओं को पूर्ववर्ती समस्त विवेचकों की विवेचना का सार ज्ञात हो सकेगा। इस प्रबन्ध के लेखन में शोधकर्ता ने स्पष्टता और निर्भीकता से भी काम लिया है और पूर्ववर्ती विचारकों पर अपनी खरी सम्मतियाँ भी दी हैं। यह आवश्यक नहीं है कि उसके सभी निर्णय या निर्देश स्वीकार किये जायें परन्तु जो कुछ भी उसने लिखा है उसमें मताग्रह की अपेक्षा तटस्थ विचारणा का प्राधान्य है।

शोधकर्ता को अपने शोधकाल में ही जायसी की कुछ अप्रकाशित कृतियाँ प्राप्त हुई थी, जिनका स्वतन्त्र रूप से सपादन भी उसने किया है। इन नवीन कृतियों के मिल जाने से उसके शोध प्रबंध में कई अस्फुट धारणाओं की पुष्टि और स्पष्टीकरण भी हो सका है। विशेषकर जायसी की भाषा-सबंधी विशेषताओं पर इस प्रबंध से अच्छा प्रकाश पड़ा है।

जहा तक कवि के काव्य के कलापक्ष का सबंध है वस्तु सगठन चरित्र योजना, वस्तुवर्णन भावो और रसो की योजना आदि विषयो पर लेखक ने सतुलित दृष्टि से विचार किया है। प्रस्तुत पुस्तक लेखक के शोध प्रबंध का किंचित सशोधित स्वरूप है। इसे हम जायसी-काव्य समीक्षा का सर्वांगीण और अद्यतन स्वरूप कह सकते हैं। इस दृष्टि से पुस्तक विद्वानो और विद्यार्थियो द्वारा स्वीकृत और समादृत होगी इसी आशा और विश्वास के साथ यह प्रकाशित की जा रही है। इसके प्रकाशन में मुझे विशेष सतोष और प्रसन्नता है।

—नन्ददुलारे वाजपेयी

पूज्य गुरुवर आचार्य पं० नन्ददुलारे वाजपेयी

पथ लाइ जेहिं दीन्ह गिआनू।'

को

प्रणतिपूर्वक

निवेदन

प्रस्तुत प्रबन्ध मे मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य के अन्यतम महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी और उनके काव्य का सागोपाग अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

हिन्दी साहित्य म जायसी का सर्वप्रथम प्रकाश म लाने का श्रेय सर जार्ज ग्रियसन और प० सुधाकर द्विवेदी को है। ग्रियसन ने द्विवेदी जी की सहायता से पदमावत का सपादन किया था। द्विवेदी जी की टीका रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बगाल से प्रकाशित हुई थी। उनके असामयिक निधन के कारण यह काय पूरा न हो सका। १९२४ ई० म प० रामचद्र शुक्ल ने पदमावत और अखरावट का सपादन किया। इस ग्रथ की भूमिका म उन्होने विद्वतापूण शैली म जायसी के वास्तविक मूल्याकन का प्रयत्न किया। १९३५ ई० म शुक्लजी ने जायसी ग्रथावली के अन्तगत आखिरी कलाम नामक ग्रथ को भी प्रकाशित किया। १९५१ ई० म डा० माताप्रसाद गुप्त ने जायसी-ग्रथावली के अन्तगत 'महरी बाईसी' नामक ग्रथ को भी प्रकाशित किया। जायसी और पदमावत विषयक और भी ग्रथ समय समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। शुक्लजी के पश्चात् जायसी के वास्तविक मूल्याकन का प्रयत्न कम हुआ है। इस काय म जो व्यक्ति प्रवृत्त हुए हैं उनकी कृतियो म प्राय शुक्लजी का ही अनुकरण द्रष्टव्य है। उनकी मौलिकता इस बात म अवश्य है कि वे शुक्लजी के ही मतो को घटा बढाकर और काट छाँटकर गहीत करते हैं।

शुक्लजी ने भी जायसी के जीवन व्यक्तित्व, गुरु-परम्परा, पदमावत का ऐतिहासिक आधार, पदमावत की लिपि पदमावत का रचना-काल प्रभृति विषयो पर सामग्री के अभाव मे बहुत कम विचार किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी के कृतित्व और व्यक्तित्व का अभी तक सम्यक अध्ययन अनुशीलन नही हो सका था। प्रस्तुत प्रबन्ध म इस अभाव की पूर्ति का विनम्र प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के विशिष्ट प्रयत्न सक्षेप म निम्नलिखित हैं –

प्रस्तावना' के अन्तगत जायसी विषयक अद्यावधि शोधो और अध्ययनो का आलोचनात्मक परिचय दिया गया है। जायसी व्यक्तित्व जीवनी और गुरु परम्परा के अन्तगत प्राचीन-नवीन उपलब्ध कृतियों के प्रकाश म एतद्विषयक शोधपूर्ण नए तथ्य और विचार प्रस्तुत किए गये हैं। अभी तक यह माना जाता रहा है कि जायसी के दो गुरु थे किन्तु प्रामाणिक सामग्री के आधार पर यहा स्पष्ट कर दिया गया है कि वस्तुत जायसी के एक ही गुरु थ-महदी शेख बरहान।

जायसी के काव्य की सामान्य रूपरेखा के अन्तगत जायसी की स्फुट कृतियो का आलोचनात्मक शोधात्मक परिचय दिया गया है। हिन्दी साहित्य म

सर्वप्रथम 'चित्ररेखा मसला (मसलानामा) और कहरानामा नामक ग्रन्थों का विवेचन इसी प्रबन्ध के अन्तर्गत किया गया है। जायसी की लिखी गई लगभग दो दर्जन कृतियाँ हैं। फारसी लिपि के कारण ये लुप्तप्राय हैं। शोध के आलोक में ये कृतियाँ मिलती जा रही हैं और मेरा विश्वास है कि शीघ्र ही जायसी की सम्पूर्ण रचनायें प्रकाश में आ जायेंगी। चित्ररेखा हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी से प्रकाशित हो चुकी है। मसलानामा की भी चार प्रतियाँ उपलब्ध हो चुकी हैं और इस परिशिष्ट में संकलित कर दिया गया है। चित्ररेखा एक प्रेम कथा है और 'मसला' लोकोक्तियों का संकलन।

द्वितीय खण्ड में पदमावत का विस्तृत अनुशीलन करने का प्रयत्न किया गया है। इसके अन्तर्गत पाँच अध्याय हैं। कथावस्तु, मूल स्रोत तथा अन्य उपकरण शीर्षक अध्याय में एतद्विषयक सर्वांगीण अध्ययन, प्रामाणिक एवं शोधपूर्ण नये तथ्य और विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

इस प्रबन्ध में पदमावत की लगभग तीन दर्जन हस्तलिखित प्रतियों का विवरण दिया गया है। लिपि के सम्बन्ध में विचार करते हुए स्पष्ट किया गया है कि पदमावत फारसी लिपि में ही लिखा गया था। पदमावत के रचनाकाल की समस्या पर भी विचार किया गया है और मेरा मत है कि इसकी रचना ९४७ हि० (१५४० ई०) में हुई थी।

अभी तक पदमावत में ऐतिहासिकता की खोज की जाती रही है और इसकी उत्तरार्द्ध कथा को ऐतिहासिक कहा जाता रहा है। इस प्रबन्ध में ऐतिहासिकता का सांगोपांग विवेचन करते हुए स्पष्ट कर दिया गया है कि इसमें रत्नसेन, चित्तौर, अलाउद्दीन, दिल्ली प्रभृति कतिपय नाम ही नाममात्र के लिए ऐतिहासिक हैं, वस्तुतः उस समय पद्मिनी नाम की कोई रानी ही नहीं थी। पदमावती रानी की कहानी भारतीय लोक और साहित्य की बड़ी प्राचीन कथा है। इन सबमें जायसी की तूलिका के कल्पना, जिज्ञासा और सम्भावनाओं का ही प्राधान्य है। कथावस्तु को निश्चित दिशा, गति, आधार और मोड़ देने के लिए पदमावत में अनेक कथानक रूढ़ियों की योजना की गई है। इस प्रबन्ध में कथानक रूढ़ियों का सविस्तार विवेचन किया गया है।

प्रबन्ध काव्य के रूप में पदमावत एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। इसमें भारतीय प्रबन्ध काव्य-चरितकाव्य की शैली और फारसी की मसनवी शैली का सुन्दर समन्वय द्रष्टव्य है। चरित्र चित्रण, प्रकृति चित्रण और शैलीगत विवेचन के अन्तर्गत पदमावत के काव्य सौष्ठव के सम्बन्ध में नवीन तथ्य एवं विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पदमावत की सांकेतिकता, मसनवी शैली, रूपवर्णन और अप्रस्तुत विधान आदि का विशद विवेचन भी किया गया है और शोधपूर्ण नए तथ्य भी उपस्थित किये गये हैं।

तृतीय खण्ड के अन्तर्गत 'जायसी का रहस्यवाद' 'जायसी की काव्यभाषा' के अतिरिक्त सूफीमत का विशद एवं शोधपूर्ण विवेचन करते हुए जायसी की प्रेम-साधना का परिचय दिया गया है। प्रेमाख्यानक परम्परा और जायसी के अन्तर्गत शुद्ध भारतीय और सूफी प्रेमाख्यानों के उद्भव एवं विकास का शोधपूर्ण परिचय दिया गया है। साथ ही सूफियों की देन और जायसी के महत्त्व का मूल्यांकन भी किया गया है।

जायसी ने एक विराट समन्वय की चेष्टा की है। यह समन्वय है सूफी प्रेम पथ और भारतीय योगपथ का, अध्यात्म और काव्य का, हिन्दू संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति का, इतिहास की संभावनाओं और कल्पना विलासों का, भारतीय और फारसी शैलियों का, लोक-तत्वों और काव्यतत्वों का, परम्परावाद और स्वच्छन्दतावाद का। इस विराट समन्वय की चेष्टा ने जायसी को भारतीय साहित्य के शीर्षस्थ कवियों में प्रमुख स्थान दिया है। वस्तुतः मध्ययुगीन हिन्दी कविता में महात्मा तुलसीदास और जायसी ही सर्वश्रेष्ठ प्रबन्धकार हैं।

मेरी प्रस्तुत साधना गुरुवर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के चरण-कमलों में सम्पन्न हुई है। उन्होंने अत्यन्त प्रेम, उत्साह और वत्सलता के साथ इस प्रबन्ध के लिये विषय दिया, निर्देश किया और अत्यन्त व्यस्त रहने पर भी इस विस्तृत प्रबन्ध का एक एक अध्याय देखा, सुना और सुधारा है। यह उन्हीं के आशीष और सुयोग्य निर्देशन का परिणाम है कि 'चित्ररेखा', 'कहरानामा', और 'मसला' (या मसलानामा) नामक जायसी की विलुप्त कृतियाँ प्रकाश में आ सकी हैं। उन्हीं का आश्रय पाकर मैं इस कार्य में प्रवृत्त हुआ—वस्तुतः इस प्रबन्ध की अच्छाइयों का सम्पूर्ण श्रेय पूज्य आचार्य जी का है। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने की धृष्टता कैसे करूँ ? प्रस्तुत कृति के साथ उनके चरण-कमलों में करबद्ध श्रद्धावनत हूँ, वस्तुतः उनके 'अनंत उपकार और अनुग्रह' से उऋण होना असम्भव है।

आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, स्व० पं० नाथूराम प्रेमी, प्रो० शशिशेखर नथानी, भाई चन्द्रबलीसिंह, प्रो० रामलखन शुक्ल, डा० राकेश गुप्त, आदि विद्वानों से मुझे प्रेरणाएं-सहायताएं मिली हैं। मैं इनके प्रति विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

बम्बई विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री माशेलकर जी ने पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाओं तथा अलभ्य हस्तलिखित प्रतियों में मेरी सहायता की है, मैं उनका आभारी हूँ।

प्रस्तुत प्रबन्ध लिखने में जिन पुस्तकालयों से, जिन भाण्डारों से, जिन हस्तलिखित प्रतियों से तथा जिन विद्वानों ने और जिनकी कृतियों से मुझे किंचित भी सहायता मिली है उन्हें मेरा धन्यवाद। जिनके मतों का मैंने खण्डन-मण्डन किया है उन सबके प्रति मेरी श्रद्धा है। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि भाई डा० प्रेमशंकर

जी के स्नेह के प्रति किन शब्दों में आभार व्यक्त करूँ? उनकी बहुमूल्य सहायता के लिये औपचारिक धन्यवाद का कोई महत्व नहीं है।

अन्त में, मैं गुरुवर आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी के चरणों की वन्दना करता हूँ। मूलतः उन्होंने ही मुझे १९५३-५४ ई० में जायसी के अध्ययन की ओर प्रवृत्त किया था। उनका आशीष साहाय्य मुझे सदा मिलता रहा है।

यदि प्रेम पीर के अमर गायक जायसी और उनके काव्य का यह अध्ययन *हिन्दी के साहित्य देवता द्वारा स्वीकृत हुआ तो यह मेरा सौभाग्य होगा—*

'फूल सोइ जो महेसहिं चढ़।'

विनम्र,

दीपावली २०२१ — शिवसहाय पाठक

विषय निर्देशिका

किया गया प्रकृति चित्रण (४) उपदेश और नीति के माध्यम के रूप मे प्रकृति चित्रण (५) मानवीय हर्ष विषाद की अभिव्यजना के रूप मे किया गया प्रकृति-चित्रण (६) उद्दीपन रूप एव विप्रलभ शृगार, षट ऋतुवर्णन, बारहमासा और उसका सौंदर्य, बारहमासे का रेखांकन, वशिष्ट्य, जग जलवूडि जहा लगि ताकी का औचित्य।

८—शैलीगत विवेचन २५४–३४०

पदमावत की साकेतिकता रूप, सौंदर्य वर्णन एव अप्रस्तुत विधान रूप-सौंदर्य वर्णन–(१) रूप का मुख्य प्रतीक पारस और उसकी व्याख्या (२) रूप की सार्वभौमिकता (सर्वव्यापी प्रभाव एव लोकोत्तर कल्पना) (३) रूप-वर्णन की अत्युक्तियां और उनका औचित्य (४) अप्रस्तुत विधान (उपमान रूप) नखशिख वर्णन और तन्निहित अप्रस्तुत सौंदर्य (५) यौवन भार भरिता पदमावती का नखशिख (६) रूप सौंदय के उपमान–केश, मस्तक, ललाट, भौंह नेत्र, वरुनी, नासिका, अधर, दात, रसना, कपोल, तिल, श्रवण, मुख, ग्रीवा भुजा हथली, स्तनद्वय, पेट, रोमावलि, कटि, नाभि, पीठ, उरु चरण (७) उपमान रूपों का सौंदय एव सर्वेक्षण (८) अन्य विषयो के वर्णनो से सम्बन्धित उपमानो का सौंदय (६) प्रकृति क्षेत्र से गहीत उपमानो का सौदय, (१०) लोकजीवन से गहीत उपमानो का सौंदय (११) वस्तु वर्णन एव कार्यों के उपमानो का सौदय।

रस

भावाभिव्यजना शृगार सयोग विप्रलभ करुण, वात्सल्य अन्य रस भाव, विशेष।

अलकार

पदमावत म अलकार विधान–(१) शब्दालकार (२) अर्थालकार-उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक अतिशयोक्ति अत्युक्ति, तदगुण, व्यतिरेक प्रतीप सदेहालकार दृष्टात अर्थान्तरन्यास निदर्शना विरोध, प्रत्यनीक, भ्रम विभावना, परिकराकुर विनोक्ति लोकोक्ति दीपक, उत्तर अनन्वय परिणाम श्लेष मुद्रा विषादन और रसाभिभाव सकर अप्रस्तुत प्रशसा ससष्टि सकर विशेष।

छन्द विधान

दोहा चौपाई, दोहा चौपाई की परम्परा और जायसी चौपाई और अरिल्ल छन्द दोहे की व्युत्पत्ति और पदमावत मसनवी शली परिभाषा रूप, मसनवी के चार अग और पदमावत निष्कर्ष।

९—जायसी का रहस्यवाद ३४१–३६८

रहस्यवाद अद्वैतवाद अद्वैतभावना पर आश्रित रहस्यवाद, क्योंकि

का वशिष्टय देन, तुलसीदास की जायसी की देन, जायसी और कबीरदास, जायसी और मीराबाई, सृष्टि जीव, हिन्दी प्रमाख्यानक काव्य की नित्य आलोचना और उसका उत्तर नारी, सूफी प्रेमाख्यानो का महत्व एव उनका हिन्दी साहित्य मे स्थान निष्कर्ष ।

परिशिष्ट ५२०–५४९

(क) मसला (ममलानामा) कहरानामा–(ख) कतिपय सूक्तिया लोकोक्तिया मुहावरे (सूची)–(ग) अलाउद्दीन सम्बन्धी प्रबन्ध और फुटकर काव्यों की सूची (घ) सहायक ग्रन्थ सूची–हिन्दी ग्रन्थ सस्कृत प्राकृत अपभ्रश ग्रन्थ–उर्दू-फारसी-अंग्रेजी (ङ) हस्तलिखित प्रतिया (च) पत्र पत्रिकाए–खोज–विवरण ।

———

१

प्रस्तावना

जायसी विषयक अध्ययन : अनुसन्धान

जायसी हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवियों में हैं। हिन्दी भाषा के प्रबन्ध काव्यों में पद्मावत शब्द, अर्थ और अलङ्कृति तीनों दृष्टियों से अनूठा काव्य है। इस कृति में श्रेष्ठतम प्रबन्धकाव्यों के गुण एकत्र प्राप्त हैं। मार्मिक स्थलों की बहुलता, उदात्त लौकिक और ऐतिहासिक कथावस्तु, भाषा की अत्यन्त विलक्षण शक्ति, जीवन के गम्भीर सर्वाङ्गीण अनुभव, मनोज्ञ दार्शनिक चिन्तन आदि इसकी अनेक विशेषताएं हैं। सचमुच पद्मावत हिन्दी साहित्य का एक जगमगाता हुआ हीरा है। इसके बहुविध पहलू और घाटों पर ज्यों-ज्यों साहित्य मनीषियों की ध्यान रश्मियाँ केन्द्रित होंगी, त्यों-त्यों इस लक्षण-सम्पन्न काव्य रत्न का स्वरूप और भी उज्ज्वल दिखाई देगा। अवधी भाषा के इस उत्तम काव्य में मानव जीवन के चिरन्तन सत्य प्रेम-तत्त्व की उत्कृष्ट कल्पना है। पद्मावत की प्रेमात्मक निर्मल ज्योति जितनी भास्वर है, उसमें कितना आकर्षण है, इसे शब्दों में प्रकट करना कठिन है। महाकवि ने एक ओर अनुत्तम रूप ज्योति का निर्माण किया है और दूसरी ओर उस ज्योति को मानव के भाग्य में लिखी हुई अनिवार्य करुणा की सौभाग्य विलोपी छाया के सम्मुख ला रखा है, किन्तु इस निर्मम कसौटी पर कस जाने से वह आभा और अधिक प्रकाशित हो उठी। कवि के शब्दों में इस प्रेम कथा का मर्म है—'मानी प्रीति नैन जल भेई।' (६५२।२) रत्नसेन और पद्मावती दोनों के जीवन का अन्तर्यामी सूत्र है—प्रेम में जीवन का पूर्ण विकास और मेरे जान में उसकी समाप्ति। प्रेम-तत्त्व की दृष्टि से पद्मावत का जितना अध्ययन किया जाय कम है। संसार के उत्कृष्ट महाकाव्यों में इसकी गिनती होने योग्य है। इसे अभी तक जो पद मिला है भविष्य में उसके और उच्चतर होने की सम्भावना है।

इस ग्रन्थ रत्न को हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ प्रबन्ध काव्यों में महत्वपूर्ण स्थान देने के विषय में दो मत नहीं हो सकते। हिन्दी साहित्य की प्रेमकाव्य परंपरा के अन्तर्गत लिखे गए प्रबन्ध काव्यों में यह ग्रन्थ सर्वोत्तम है। पद्मावत की रचना के

लगभग ३५ वर्ष पश्चात अवधी भाषा की दूसरी सर्वश्रेष्ठ कृति का प्रणयन हुआ। यह गोस्वामी तुलसीदास का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचरितमानस' है। अवधी के ये दोनो ग्रन्थ रत्न दो भिन्न चिन्ता धाराओ के प्रतिनिधि काव्य ग्रन्थ हैं। रामचरितमानस मे 'नानापुराणनिगमागम सम्मत' निर्गुण निराकार ब्रह्म को सगुण साकार रूप मे उपस्थित किया गया है। पद्मावत मे लोक और साहित्य समादृत पद्मावती की कथा द्वारा अलौकिक ईश्वरीय प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति करते हुए निर्गुण निराकार प्रेम प्रभु की आरती उतारी गई है। पद्मावत मे सूफी और भारतीय सिद्धान्तो के समन्वय का सहारा लेकर प्रेम पीर की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति की गई है तो 'रामचरितमानस' मे भारतीय सगुण भक्ति की धारा शत सहस्र शाखाओ मे फूटकर प्रस्रवित हुई है और मर्यादा, लोकमंगल एवं आदर्श की अमर गाथा का आकर बन गई है। इन्ही मतभूत सैद्धान्तिक अन्तरो के कारण दोनो रचनाए दो भिन्न प्रकार की रचनाकोटि मे आती हैं। रामचरितमानस शास्त्रोन्मुख(क्लसिकल)अधिक है। प्रबन्ध सघटन रचना कौशल, भाषा, छन्द शैली इत्यादि सभी दृष्टिकोणो से तुलसीदास ने भारतीय काव्य पद्धति का अनुसरण किया है। इसके ठीक विपरीत पद्मावत लोकोन्मुख है। जायसी ने अपनी समर्थ तूलिका और लोक जीवन के प्रगाढ अनुभव से पद्मावत की काव्यभूमि पर लोक और काव्य के अनर्घ उपादानो और प्रसाधनो के द्वारा उत्कृष्ट और गाढ अभिव्यंजना का विधान किया है। क्या भाषा और क्या भाव क्या रचना शिल्प और क्या छन्द क्या कथा वस्तु का सघटन और क्या रूप सौन्दर्य वर्णन इत्यादि सभी दृष्टिकोणो से जायसी ने लौकिक और शास्त्रीय पद्धतियो का सुन्दर समन्वय किया है परिणामस्वरूप पद्मावत मे सहज ही एक अनूठा सौंदर्य आ गया है।

पद्मावत के अतिरिक्त जायसी के और भी अनेक ग्रन्थ हैं इनमे अखरावट आखिरी कलाम, कहरानामा चित्ररेखा और 'मसलानामा' अभी तक उपलब्ध हो सके हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध मे इन सब उपलब्ध ग्रन्थो के सर्वाङ्गीण विवेचन का प्रयत्न किया गया है।

मध्ययुग मे जायसी की कृतियो का बडा व्यापक प्रचार था। अराकान के मगन ठाकुर के राजकवि अलाओल ने बगाल मे इसका अनुवाद किया था। फारसी मे बज्मी आदि के अनेक अनुवाद ग्रन्थ मिलते हैं। पद्मावत तथा जायसी की अन्य कृतियो की प्रतियो के आधिक्य से भी यह बात स्पष्ट है। यद्यपि मध्ययुग मे जायसी की प्रसिद्धि व्यापक थी तथापि बीसवी शताब्दी के पहले हिन्दी मे जायसी को पुराने लोगो ने स्थान नही दिया। बीसवी शताब्दी के प्रथम चरण तक भी इनके मूल्याकन का प्रयत्न नही हुआ। इस उपेक्षा का प्रधान कारण धार्मिक पूर्वाग्रह रहा है। पद्मावत की भाषा का (ठेठ अवधी का) पुरानापन गूढता एवं शुद्ध सस्करण का अभाव भी जायसी की उपेक्षा के गौण कारण हो सकते हैं। और यही कारण है कि उनका

अध्ययन न हो सका था। बीसवीं शताब्दी में जायसी को हिंदी साहित्य के समक्ष उपस्थित करने का प्रथम श्रेय सर जार्ज ग्रियर्सन एवं पंडित सुधाकर द्विवेदी को है। उन्होंने पदमावत को प्रकाशित संपादित किया था। इसके पश्चात् जायसी की कीर्ति को हिन्दी संसार में फैलाने और उनका वास्तविक मूल्यांकन करने का श्रेय पण्डित रामचन्द्र शुक्ल को है।

जायसी पर अब तक हुए अनुसंधान अध्ययन का परिचय

फ्रेन्च विद्वान गार्सा दतासी[1] ने अपने ग्रन्थ 'इस्त्वार द ला लितरत्यूर ऐंदुई ऐ ऐन्दूस्तानी' के दूसरे भाग में जायसी के विषय में एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ में जायसी के विषय में परिचयात्मक और शोधात्मक उल्लेख किए गए हैं। इसमें जायसी की कई संग्रहालयों में (और व्यक्तियों के पास) मिलने वाली हस्तलिखित प्रतियों का भी विवरण दिया गया है।

"जायसी जिन्हें जायसीदास भी कहा जाता है जो उनके हिन्दू से इस्लाम धर्मानुयायी बनने की ओर संकेत करता प्रतीत होता है। इसी लेखक की परमार्थ जपजी, सोरठ और पद्मावत नामक पुस्तकें भी हैं। उन्होंने १५४०-४१ ई० में 'पदमावती' काव्य की रचना की।'[2]

शिवसिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज'[3] (१८७७ ई०) में जायसी का उपस्थिति-काल दिया हुआ है कि जायसी १६८० वि० में विद्यमान थे किन्तु जायसी की मृत्यु १५९९ वि० में हो चुकी थी अतः यह कथन विश्वासयोग्य नहीं है।

सर जार्ज ग्रियर्सन[4] ने 'द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान' (१८८९ ई०) में पद्मावत को हिन्दी साहित्य का सबसे अधिक अध्ययन के योग्य ग्रन्थ

१—गार्सा दतासी : इस्त्वार द ला लितरत्यूर ऐंदुई ऐ ऐन्दूस्तानी। (इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण दो भागों में क्रमशः १८३९ और १८४७ ई० में पेरिस से प्रकाशित हुआ था। द्वितीय परिवर्धित संस्करण तीन भागों में पेरिस से ही १८७०-७१ ई० में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ के हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित अंशों का हिंदी अनुवाद डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने किया है (हिन्दुस्तानी एकेडमी से प्रकाशित 'हिन्दुई साहित्य का इतिहास' १९५३) इसमें हिंदी के अनेक ग्रंथों के नाम विवरण आदि जो तासी ने दिए थे छोड़ दिए गए हैं जैसे अखरावट की प्रति का विशेष उल्लेख भी छूट गया है।

२—वही पृ० ८३-८६।

३—शिवसिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज, स० १९४० (एशियाटिक सोसायटी, बंगाल)।

४—सर जार्ज ग्रियर्सन : द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान १८८९ ई०। (हिंदी अनुवाद : किशोरीलाल गुप्त—हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास (१९५७)

बतलाया है । उनका कथन है कि जायसी ने शेरशाह के समय १५४० ई० म पदमावत लिखा था । जायसी ने कहानी का कुछ भाग उदयन की पदमावती और रत्नावली से भी लिया है ।[१]

१९१३ ई० म मिश्रबधुओ का प्रसिद्ध इतिहास ग्रथ मिश्रबधु विनोद[२] प्रकाशित हुआ । मिश्रबधुओ ने अपने नवरत्न म जायसी को स्थान नही दिया । उन्होंने अपने विनोद[१] म जायसी का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है । उन्होने जायसी के पदमावत को इतिहास कहना ठीक माना है । सिवा एक दो छोटी छोटी बातो के अतिरिक्त पदमावती की अन्य सभी घटनाए इतिहास से मिलती हैं । इनकी कविता से तत्कालीन रहन-सहन का पता चलता है । इनकी कविता म उद्दण्डता का अभाव नही है । इन्होने कभी हिन्दू धम पर श्रद्धा नही दिखलाई । मिश्रबधुओ के विवरण से स्पष्ट है कि जायसी विषयक उनका ज्ञान अत्यत सीमित था ।

महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशकर हीराचद्र ओझा[३] ने उदयपुर राज्य का इतिहास के प्रथम भाग म पदमावत की कथा और उसके ऐतिहासिक पक्ष पर विचार किया है । ओझाजी ने प्रथम बार साहसपूवक प्रतिपादित किया है कि पदमावत ऐतिहासिक उपन्यासो की सी कविताबद्ध कथा है जिसका कलेवर इन ऐतिहासिक तथ्यो के आधार पर रचा गया है कि रत्नसेन चित्तौड का राजा, पद्मिनी उसकी रानी और अलाउद्दीन दिल्ली का सुल्तान था जिसने उससे लडकर चितौड का किला जीता था । उसम अनेक इतिहास विरुद्ध बातें भी हैं । सिंहलद्वीप म गन्धवसेन नाम का कोई राजा नही हुआ । उस समय तक कुम्भलनेर आबाद तक नही हुआ था ।

१९२४ई० म प०रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सपादित होकर जायसी ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित हुई इसम जायसीकृत पदमावत और अखरावट दो ग्रन्थ थे । वस्तुत जायसी विषयक आज तक की समालोचनाओ म सर्वाधिक महत्वपूण काय आचाय शुक्ल जी का ही है । १९३५ ई मे जायसी ग्रन्थावली का परिवर्द्धित और सशोधित द्वितीय सस्करण प्रकाशित हुआ । इसम जायसी की एक और नवीन प्राप्त पुस्तक आखिरी कलाम को भी सपादित करके प्रकाशित किया गया है । उनकी २१० पृष्ठो की विशद भूमिका के विषय मे प० हजारीप्रसाद द्विवदी के शब्दो को हम दुहरा सकते हैं– पदमावत की प्रस्तावना म आपने जसी काव्य ममज्ञता दिखाई है वसी हिन्दी तो क्या अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओ म भी कम ही मिलेगी । यह प्रस्तावना अपने आप म एक अत्यधिक महत्वपूण साहित्यिक कृति

१—सर जाज ग्रियसन द माडन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान १८८९ ई०।
२—मिश्रबधुविनोद हिन्दी ग्रन्थ प्रसारक मण्डली खडवा और प्रयाग ।
३—म०म० गौरीशकर हीराचन्द ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास ।

है । [1] जायसी के अध्ययन की गहराई के दृष्टिकोण से शुक्ल जी की 'भूमिका' आज तक हुए जायसी-विषयक अध्ययनों में मूर्धन्य है। शुक्ल जी कृत 'पदमावत' की प्रेम-पद्धति, वियोग-पक्ष संभोग-शृंगार वस्तु-वर्णन भाव-व्यंजना अलंकार, स्वभाव-चित्रण और जायसी की भाषा आदि की महत्ता आज भी ज्यों की त्यों है। आज तक के जायसी के आलोचक और हिंदी के इतिहासकार शुक्ल जी के ही वाक्यों को हेर-फेर कर के प्रस्तुत कर देने में अपनी इतिकर्तव्यता समझते हैं। यह अत्यन्त सुस्पष्ट तथ्य है कि शुक्ल जी के पश्चात उपर्युक्त विषयों पर विद्वानों ने जो कुछ भी लिखा है वह या तो शुक्ल जी के मतों का पिष्टपेषण है या मात्र अनावश्यक विस्तार।

यह अवश्य सत्य है कि विशिष्ट सामग्री के अभाव में प्रेमगाथा की परंपरा जायसी का जीवनवृत्त, पदमावत का ऐतिहासिक आधार, जायसी का रहस्यवाद आदि विषयक शुक्लजी के मत पूर्ण नहीं कहे जा सकते। शुक्लजी के परवर्ती विद्वानों ने इसी ओर प्रवृत्त करने का साहस भी किया है। १९२५ ई० में बाबू सत्यजीवन वर्मा का 'आख्यानक काव्य' [2] शीर्षक एक ६० पृष्ठों का लेख प्रकाशित हुआ। इस लेख में उन्होंने उस समय तक के प्राप्त हुए बीस प्रेमाख्यानक काव्यों का उल्लेख करते हुए जायसी, कुतबन और मंझन का परिचय भी दिया था।

डा० श्यामसुन्दरदास जी ने १९३० ई० में हिंदी भाषा और साहित्य नामक ग्रंथ प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने 'प्रेममार्गी भक्तिशाखा' शीर्षक के अन्तर्गत जायसी और उनके तीन ग्रंथों का लगभग एक पृष्ठ में परिचय दिया है। [3] ऐतिहासिक दृष्टि से यह परिचय महत्वपूर्ण है।

पं० चंद्रबली पाण्डेय ने १९३० ई० में सरस्वती में अखरावट का रचना काल शीर्षक निबन्ध प्रकाशित कराया था। [4] उन्होंने विद्वतापूर्ण तर्कों और अन्तसाक्ष्यों के आधार पर अखरावट के निर्माणकाल की विवेचना की है। सं० १९८८ (१९३१ ई०) में 'ना० प्र० पत्रिका' में पं० चंद्रबली पाण्डेय का 'पदमावत की लिपि और रचना काल' [5] शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ। पांडेयजी का प्रस्ताव है कि 'रचनाकाल विषयक मतभेद दो और चार का ही है। कवि ने पदमावत फ़ारसी लिपि में ही लिखा था। हमारी समझ में उसका आरम्भ ९२७ हिजरी में हो गया था। पदमावत का रचनाकाल ९२७ हि० से ९४७ हि० तक ठहरता है।' [6] वे १५४०

१- पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० ६५-६६।
२- नागरी प्रचारिणी पत्रिका काशी भाग ६।
३- डा० श्यामसुन्दरदास हिन्दी भाषा और साहित्य पृ०२८४ (द्वि०सं० १९९४)।
४- सरस्वती, प्रयाग १९३० ई०।
५- ना०प्र० पत्रिका काशी भाग १२,सं० १९८८ (अंक३), पृ० १०१-१४५।
६- वही पृ० १४१-४२।

ई० तक पदमावत की रचना करते रहे और ग्रंथ के समाप्त हो जाने पर शेरशाह की उचित शाहेवक्त पाकर उसकी वन्ना भी उसम जोड दी । हमको अपने कथन पर इतना विश्वास है कि हम इससे अधिक वनाना उचित नही समझते।[1] प० चद्र बली पाडेय कृत इस निबंध म विषयांतर भी है जो शोध निबंध का एक अवगुण है और लेखक के तर्को म कही कही औद्धत्य और आधारहीनता भी दीख पडती है साथ ही उसके निष्कर्ष हम भ्रामक प्रतीत हो सकते हैं पर इसम कही भी गभीरता का अभाव नही है । [2]स० १९९० वि० (१९३३ ई०) म प० चद्रबली पाडेय का 'जायसी का जीवनवत्त'[3] नामक एक लेख प्रकाशित हुआ । ना० प्र० पत्रिका म जायसी विषयक प्रकाशित होनेवाले अन्य लेखो म म० म० गौरीशकर हीराचन्द ओझा कृत 'पद्मावत का सिंहल द्वीप' शीर्षक लेख उल्लेखनीय है । ओझा जी का मत है कि रत्नसेन इतने कम समय तक राजगद्दी पर रहा कि वह सिंहल (लका) नही जा सकता था । पदमावत का सिंहल द्वीप समुद्र स्थित लका न होकर चित्तौड से चालीस मील पूव मे स्थित सिंगोली नामक प्राचीन स्थान है । कवि सिंगोली का सिंहल लिखा गया है । ओझा जी न सिंहल का सिंगोली तो सिद्ध कर दिया पर माग के वन-कान्तार कलिंग, सातसागर आदि के विषय म कोई भी तक वितक नही प्रस्तुत किया ।[4]

डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने १९३३ ई० मे 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ'[5] म एक लेख दिया था । इसम उन्होंने पदमावत की कथा और जायसी के अध्ययन पर विचार किया था ।

डा० सूयकान्त शास्त्री द्वारा सम्पादित 'पदुमावति'[6] म टेकचद ने 'जायसी और उनके पदमावत का एक सक्षिप्त परिचय दिया है। चार पष्ठो के 'फोरवड' म उन्होने पदमावत की कहानी रचना-काल (१५४०ई०) और जायसी की कुछ विशेषताओ का परिचयात्मक विवरण देते हुए विद्वान सम्पादक सूयकान्त शास्त्री के प्रस्तुत बड दाशनिक मूल्य वाले सम्पादन काय की प्रशसा की है। हिन्दू धम और लोकतत्वो का उनका सुदर ज्ञान था। हिन्दू सस्कृति और धम के ज्ञान क लिए हिन्दू पडितो स वर्षो तक सस्कृत पढ थ । उनका

१- वही पृ० १४५ ।

२- ना० प्र० पत्रिका, काशी वष ६४ स० २ १६ पृ० १९१ ।

३- वही, भाग १४ वष स० १९९ ।

४- वही, भाग १३ वष स० १९८९ ।

५-'पदमावत की कहानी और जायसी का अध्यात्मवाद' पीताम्बरदत्त बडथ्वाल द्विवेदी अभिनदन ग्रथ ना० प्र० सभा काशी स०१९९ ।

६-पदुमावति सूयकान्त शास्त्री प्राक्कथनलेखक आनरबुल जस्टिस टकचन्द प्रथम भाग, स० १ २५ पजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर १९३४ ई० ।

काव्य शास्त्र और छन्दशास्त्र पर पूरा अधिकार था।[१]

'पद्मावति' की दस पृष्ठों की भूमिका (प्रीफेस) में श्री सूर्यकान्त शास्त्री ने जायसी और पदमावत पर एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। इसमें पद्मावत की संक्षिप्त कथा, जायसी की रहस्यवादिता, लौकिक और अलौकिक प्रेम का समन्वय, प्रेम का उन्नत रूप, जीवन-दर्शन, पद्मावत अन्योक्ति है आदि बातों का उल्लेख किया गया है। इस संबंध के व्यक्तित्व के विषय में हमें संक्षेप कुछ बातें ज्ञात हैं। मोहम्मद उनका नाम था, मलिक कौटुम्बिक उपाधि थी। वे जायस के रहने वाले थे। वे ८३० हि० में 'कचाना मुहल्ला' में पैदा हुए थे। ११६ वर्ष तक जीवित रहे। उनकी चौदह रचनायें कही जाती हैं—पोस्तीनामा, कहारनामा, मारातनामा, मसलावट, चम्पावती, अखरावट, पद्मावति और आखिरी कलाम।[२] पदमावत की भाषा ठेठ अवधी है। यह ग्रंथ पर्शियन लिपि में लिखा गया था। देवनागरी के अनुलिपि कर्ताओं ने प्रतिलिपि करते हुए अनेक भूलें की हैं।[३]

१९३४ ई० में ही 'जायसी और प्रेम तत्व'[४] विषय पर पं० परशुराम चतुर्वेदी ने एक विद्वत्तापूर्ण निबंध लिखा था। डा० रामकुमार वर्मा[५] ने १९३७ ई० में पदमावत पर एक आलोचनात्मक लेख लिख कर उसके संक्षिप्त मूल्यांकन का प्रयत्न किया था। डा० वर्मा ने १९३८ ई० में अपने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'[६] में प्रेमकाव्य और जायसी के विषय में विस्तारपूर्वक लिखा है। जायसी का जीवन, काव्य रचना, अध्यात्मवाद, हिन्दू संस्कृति आदि विषयों का उन्होंने विस्तारपूर्ण विवेचन किया है। सयद आले मोहम्मद मेहर जायसी ने १९४० ई० में मलिक मुहम्मद जायसी का जीवन चरित विषय पर एक सुन्दर और खोजपूर्ण निबन्ध प्रस्तुत किया था।[७] पं० गणेशप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी में प्रेमगाथा साहित्य और मलिक मुहम्मद जायसी'[८] नामक एक लेख लिखा था। बाद में परिवर्तन के साथ निबन्ध 'हिन्दी के कवि और काव्य' भाग ३ में प्रकाशित किया गया है। १९४१

१—वही, फोरवर्ड पृ० २।
२—वही, पृ० ४।
३—वही पृ० ६।
४—हिन्दुस्तानी भाग ४ अंक ३, जुलाई १९३४ ई०।
५—सम्मेलन पत्रिका, पौष माघ, १९९४ वि०।
६ डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (सं० ७५० १७५०)
७—ना० प्रा० पत्रिका वर्ष ४५ सं० १९९७।
८—ना० प्र० पत्रिका में प्रकाशित हिन्दी में प्रेमगाथा साहित्य और मलिक मोहम्मद जायसी।

ई०मे सयद कल्व मुस्तफा जायसी[1] ने मलिक मुहम्मद जायसी नामक एक पुस्तक उदू म लिखी है। इन्होने लिखा है कि 'पदमावत फारसी लिपि मे लिखा गया था। जायसी का जन्म ९०० हि० १४९५ ई म जायस म हुआ था। ये सच्चे मुसलमान थे। महान सूफी सन्त थे। इनका सिहल जम्बई के पास अरब सागर म था। पद्मावती की कहानी म पदमावती की कथा काल्पनिक है। इनमे रत्न सेन भी काल्पनिक है। गोरा बादल दो व्यक्ति नहीं थ—यह एक व्यक्ति था। पदमावत मे वर्णित प्रेम म भारतीय और फारसी दोना के प्रेम-तत्वो का मिश्रण है। सन १९४४ ई० म ए० जी० शिरफ ने सर[2] जाज ग्रियसन कृत पदमावती के अनुवाद को पूरा करके बगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित करवाया। १८९६ ई० म ग्रियसन और महामहोपाध्याय प० सुधाकर द्विवदी न पदमावती का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। पदुमावती की भमिका म सव प्रथम ग्रियसन ने जायसी के महत्व की ओर विद्वानो का ध्यान आकष्ट किया था। १९११ म पदमावती का (१ से २५ खण्ड तक) पाठ और भाष्य विस्तत आलोचनात्मक टिप्पणियो के साथ प्रकाशित हुआ था। प० सुधाकर द्विवदी का स्वगवास हो जाने के कारण काय आगे न बढ सका। १९३८ ई० म शिरफ ने ग्रियसन की अनुमति से इस अधूर काय को हाथ म लिया। उन्होने इस काम को १९४० ई० म पूण किया।[3] शिरफ ने इस ग्रन्थ की भूमिका म जायसी का सक्षिप्त परिचय दिया है। शिरफ के 'पदमावती का पाठ प्राय ग्रियसन और शुक्ल जी द्वारा स्वीकृत पाठ ही है। मूलत यह एक अनुवाद ग्रन्थ है। यह अनवाद आज भी महत्त्वपूण है। शिरफ की टिप्पणियाँ तो जायसी के अध्ययन के लिय सदा पथ निर्देशन का काम करगी।

डा० कमल कुलश्रेष्ठ ने १९४७ म मलिक मुहम्मद जायसी भाग १ नामक पुस्तक प्रकाशित की। (आज तक इस भाग १ का पूरक भाग २ नहा ही प्रकाशित हुआ)। १९५३ ई म डा० कमल कुलश्रेष्ठ का हिन्दी प्रमाख्यानक काव्य[5] प्रकाशित हुआ। डा० श्रेष्ठ के इस ग्रन्थ के विषय म श्री गोपालराय[6] का मत उल्लेखनीय है— डाक्टरेट के लिए प्रस्तुत किए गए शोध ग्रथो म जिस त्वरा से काम लिया जाता है और उसके जो दुष्परिणाम होते हैं यह ग्रंथ उसका सजीव

१—सयद कल्बे मुस्तफा जायसी मलिक मुहम्मद जायसी १९४१ ई०।
२— ए० जी० शिरफ पदमावती।
३— ए० जी० शिरफ पदमावती अंग्रेजी अनुवाद—भमिका।
४— डा० कमल कुलश्रेष्ठ म० मु० जायसी भाग १ १९४७।
५— डा० कमल कुलश्रेष्ठ हिन्दी प्रमाख्यानक काव्य चौधरी मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड, अजमेर, १९५३।
६— गोपाल राय ना० प्र० पत्रिका, वष ६४, स० २०१६ पृ० १९६–९७–९८।

उदाहरण है। इस पुस्तक में दोषों की मात्रा इतनी अधिक है कि उनको समुचित रूप से दिखाने के लिए एक स्वतंत्र निबंध की आवश्यकता होगी। समूचा ग्रंथ भ्रान्त आधारों, दुर्बल तर्कों और अशुद्ध निष्कर्षों से पूर्ण है। गम्भीर अध्ययन का अभाव पग पग पर दृष्टिगोचर होता है। किसी तरह पृष्ठ पूरा करने का प्रयास इतना स्पष्ट है कि लेखक पर दया आती है। — 'फारसी मसनवी का विकास और उसका हिन्दी प्रमाख्यानक काव्य पर प्रभाव' वाला परिच्छेद भी नितान्त हल्के हैं। पदमावत की रचना तिथि के सम्बन्ध में लेखक का मत और भी हास्यास्पद है। आखिरी कलाम का अब तक की अंतिम रचना मानना निराधार और भ्रमपूर्ण है। लेखक के प्रायः सभी निष्कर्ष दोषपूर्ण हैं। डा० श्रेष्ठ के निष्कर्षों के दोषपूर्ण होने का कारण यह है कि उन्होंने केवल सात ग्रन्थों के आधार पर अपना शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया है और उन्होंने सूफी और सूफीतर प्रेमकाव्यों का वर्गीकरण करके उन पर अलग-अलग विचार भी नहीं किया है। इस ग्रन्थ का बहुत बड़ा दोष संश्लेषण का अभाव है। प्रेमकाव्य के किसी पक्ष का स्पष्ट विवेचन इस ग्रन्थ में नहीं हो सका है। भाषा सम्बन्धी अशुद्धियाँ भी प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रचुर मात्रा में दिखाई देती हैं।[1] हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य के विषय में श्री गोपाल राय का यह कथन ठीक ही है।

१९४९ ई० में डा० लक्ष्मीधर का 'पद्मावती दी लिंग्विस्टिक स्टडी आफ दी सिक्स्टीन्थ सेंचुरी हिन्दी [अवधी]'[2] नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। लेखक ने प्रारम्भ में २९ पृष्ठों में पदमावत की भाषा पर व्याकरणिक दृष्टिकोण से विचार किया है। दूसरे भाग में पदमावत के १०६ छन्दों का पाठ-सम्पादन है और तीसरे भाग में सम्पादित पाठ का अंग्रेजी अर्थ दिया गया है। चौथे भाग में पद्मावत की शब्द-सूची दी गई है [इस ग्रंथ की आलोचना आगे दी गई है]। पं० परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'सूफी काव्य संग्रह'[3] [१९५० ई०] नामक ग्रंथ में हिन्दी के सूफी कवियों का [जायसी का भी] संक्षिप्त पर शोधपूर्ण परिचय प्रस्तुत किया गया है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने १९५१ ई० में 'जायसी ग्रन्थावली'[4] का सम्पादन किया है [इसकी चर्चा आगे की गई है]। १९५२ में चार्ल्स नेपियर का 'नई जायसी ग्रन्थावली तथा पदमावत की लिपि और रचनाकाल'[5] शीर्षक निबन्ध

१— ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ६४ सं० २०१६, पृ० १९६–९७ ९८।

२— डा० लक्ष्मीधर पद्मावती दी लिंग्विस्टिक स्टडी आफ दी सिक्स्टीन्थ सेंचुरी हिन्दी [अवधी], ल्यूजक एण्ड कम्पनी लन्दन से प्रकाशित।

३— परशुराम चतुर्वेदी सूफी काव्य संग्रह साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १९५०।

४— डा० माताप्रसाद गुप्त, जायसी ग्रन्थावली, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९५१ ई०।

५— ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५७, सं० २००९, पृ० ३१–४२।

प्रकाशित हुआ। इस निबन्ध में लेखक ने प्रमाणित किया है कि पद्मावत मूलतः फारसी लिपि में लिखा गया था।[1] इस निबन्ध में लेखक ने डा० गुप्त की 'जायसी ग्रन्थावली' का विशद गुण दोष विवेचन भी किया है।

१९५५ ई० में डा० विमलकुमार जैन का प्रबन्ध 'सूफीमत और हिन्दी साहित्य' हिन्दी अनुसंधान परिषद, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसी विषय पर बहुत पहले ही पं० चन्द्रबली पाण्डेय ने [१९४८ ई०] 'तसव्वुफ अथवा सूफीमत' नामक ग्रन्थ लिखा था। १९५६ ई० में श्री रामपूजन तिवारी कृत 'सूफीमत साधना और साहित्य' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इन तीनों ग्रन्थों का मूल प्रतिपाद्य सूफीमत का उद्भव और विकास ही है। १९५५ ई० में श्री हरिकान्त श्रीवास्तव का 'भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य' नामक शोधप्रबन्ध प्रकाशित हुआ। इस प्रबन्ध में हिन्दू कवियों द्वारा लिखित प्रेमकाव्यों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। १९५६ ई० में डा० सरला शुक्ल का प्रबन्ध 'जायसी के परवर्ती कवि और काव्य' लखनऊ विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ। इसमें जायसी के पश्चात के सूफी प्रेमाख्यानों का विवेचन किया गया है। १९५६ ई० में प्रस्तुत लेखक द्वारा लिखित 'पद्मावत का काव्य सौन्दर्य' प्रकाशित हुआ।[1] इसमें पद्मावत के काव्यगत सौन्दर्य को नये सिरे से देखने का प्रयास है और मेरे विचार में यह प्रयास बहुत अच्छा हुआ है।[2] १९५७ ई० में डा० जयदेव का शोध प्रबन्ध 'सूफी महाकवि जायसी' नाम से प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ का रचनाकाल १९४९ ई० है और इसका प्रकाशन १९५७ ई० में हुआ है। इस ग्रन्थ में १९४९ ई० के पश्चात शोध में प्राप्त किसी भी सामग्री का उपयोग नहीं किया गया है।[1] इस अध्ययन में ऐसी कोई भी बात नहीं दीख पड़ती जिसके बल पर इस ग्रन्थ को अनुसंधान ग्रन्थ कहा जाय। इसमें न तो लेखक ने किसी नवीन तथ्य का उद्घाटन किया है और न उसे ज्ञात तथ्यों की मौलिक व्याख्या और उनके बीच नवीन सम्बन्ध स्थापन में ही सफलता मिल सकी है। यह बात निस्संकोच कही जा सकती है कि प्रस्तुत ग्रन्थ से जायसी विषयक हमारी जानकारी में कोई वृद्धि नहीं हुई। सारा ग्रन्थ अनावश्यक विस्तार, उथले विचारों और दुर्बल तर्कों से भरा हुआ है। मौलिकता का इसमें सर्वथा अभाव है। शुक्ल जी के ही कथनों को प्रायः हेरफेर के साथ दुहरा भर दिया गया है। जायसी के जीवन-वृत्त विषयक किसी नवीन तथ्य का उद्घाटन नहीं हुआ है उसके तर्क भी सुनिश्चित नहीं हैं। इसके दूसरे अध्याय में जायसी के जीवन वृत्त से सम्बद्ध हमारी जानकारी में कोई वृद्धि नहीं होती। अनावश्यक विस्तार करके पुस्तक का कलेवर बढ़ाया गया है। अनावश्यक विस्तार, पिष्टपेषण और छिछलेपन का इससे बढ़कर कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिल सकता।

१—ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५७ संख्या २००६, पृ० ३४१।

२—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी 'पद्मावत का काव्य-सौन्दर्य'—शुभकामना से उद्धृत।

चरित्र चित्रण में लेखक ने अपनी दयनीय विवेकशून्यता का परिचय दिया है। इस ग्रंथ के सभी अंश जिनके सम्बन्ध में मौलिकता का दावा किया गया है, भ्रामक और आधारहीन हैं। लेखक मंझन को जायसी का पूर्ववर्ती कवि मानता है जो गलत है।[1] किसी भी दशा में इसे शोधग्रंथ कहना तो उचित नहीं। प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन से हिन्दी आलोचना साहित्य के विकास में लेशमात्र भी योग नहीं मिला है।'[1] श्रीगोपालराय का उपर्युक्त कथन यथार्थ है। यदि श्री जयदेव जी थोड़ा श्रम और अध्ययन किये होते तो संभवतः उनकी कृति मूल्यवान होती पर अध्ययन और श्रम के अभाव में "शुक्ल जी के मतों का पिष्टपेषण और शुक्ल जी की ही निन्दा करके और कहीं-कहीं शुक्ल जी के प्रमाणिक मत का खंडन कर उन्होंने भारी भूल की है।

आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने कई ग्रंथों में जायसी विषयक विवेचन एवं अध्ययन के लिए नई दिशाओं का निर्देशन भी किया है। उन्होंने हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हिन्दी साहित्य, नाथ-सम्प्रदाय, मध्यकालीन धर्म साधना प्रभृति ग्रंथों में जायसी और उनके अध्ययन के नवीन आयामों का उद्घाटन किया है। उनके मतानुसार 'पदमावत' में ऐतिहासिकता के लिए मूड़ मारना बेकार है। उसका सम्पूर्ण सौंदर्य काव्य का है। उसमें भारतीय काव्यों की कथानक रूढ़ियों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। पदमावत की कथा भारत की प्राचीन कथाओं में है।'

हिन्दी साहित्य के कतिपय अन्य इतिहास-ग्रंथों में भी जायसी विषयक चर्चाएं की गई हैं किन्तु प्रायः शुक्ल जी का [जायसी-ग्रंथावली की] भूमिका का ही सार रूप सर्वत्र देखने को मिलता है।

कुछ लोगों ने जायसी पर अलग से भी ग्रंथ लिखे हैं, डा० रामरतन भटनागर का 'जायसी', डा० सुधीन्द्र का 'कविवर जायसी और उनका पदमावत', श्री इन्द्रचन्द्र नारङ्गकृत 'पदमावत का ऐतिहासिक आधार' और 'पदमावत सार', प्रो० दान बहादुर पाठक कृत 'जायसी की काव्य-साधना,' श्री यज्ञदत्त शर्माकृत 'जायसी साहित्य और सिद्धान्त', श्री पुरुषोत्तमचन्द्र वाजपेयीकृत 'कबीर और जायसी का मूल्यांकन' आदि ग्रंथ हिन्दी के बी० ए० एम० ए० के विद्यार्थियों के लिए लिखे गये हैं। इन ग्रंथों में श्री नारंग जी कृत 'पदमावत सार' की भूमिका और 'पदमावत का ऐतिहासिक आधार' शोध एवं चिन्तनपूर्ण ग्रंथ हैं। पटना विश्वविद्यालय के प्रो० सैयद हसन अस्करी के कई लेख 'सूफीमत, हिन्दी साहित्य और जायसी' से सम्बद्ध प्रकाशित हुए हैं। 'कान्ट्रीब्यूशन आफ दी सूफीज़ टुवार्ड्स दी नार्थ टू हिन्दी लिटरेचर' [१९५३ ई०] ए यूली डिस्कवर्ड वाल्यूम आफ अवधी वर्क्स एक्सक्लूडिंग 'पदमावत'

१—गोपालराय, ना० प्र० पत्रिका २०१६ अंक ३-४ पृ० २०९-१२।
२—करेंट स्टडीज, पटना कालेज पटना, १९५३, अंक २।

एण्ड अखरावट आफ मलिक मुहम्मद जायसी[1] रेयर फ्रेगमेंटस आफ चन्द्रायन एण्ड मृगावती[2] [१९५५ ई०] आदि लेख हिन्दी शोध के क्षेत्र में महत्वपूर्ण हैं। प्रो० अस्करी ने चन्दायन के रचनाकाल का प्रामाणिक विवरण दिया है, मनेर शरीफ खानकाह से पदमावत, अखरावट, महरीनामा अरिल्ल वियोगसार प्रभृति ग्रंथों को खोज निकाला है और सूफी सम्प्रदायों और कतिपय सूफी सन्तों का प्रामाणिक इतिवृत्त प्रस्तुत किया है। उनके मतानुसार पदमावत का रचनाकाल ९४७ हि० है। सन १९५६ ई० में उन्होंने पटना विश्वविद्यालय पत्रिका वर्ष १० में एक निबन्ध 'दि बिहार शरीफ मनस्क्रिप्ट आफ पदमावत' प्रकाशित कराया। इस लेख में उन्होंने ग्रियसन, शुक्ल और माताप्रसाद गुप्त आदि द्वारा सम्पादित पदमावत के विभिन्न संस्करणों तथा मनेरशरीफ की हस्तलिखित प्रति से बिहार शरीफ से प्राप्त 'पदमावत की हस्तलिखित प्रति के पाठान्तरों का सविस्तार विवेचन किया है।

पं० मुन्शीराम शर्मा कृत पदमावत [पूर्वार्द्ध, सटीक[3]] में शुक्लजी के ही पाठ को प्रधानता दी गई है। यह एक सुन्दर और उपयोगी टीका है कहीं-कहीं तो शर्मा जी ने अत्यन्त सुन्दर अर्थ किए हैं जैसे किछु कहि चला तबल देइ डगा।[4] का अत्यन्त उपयुक्त अर्थ।[5] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने पद्मावत मूल और सजीवनी व्याख्या[6] में अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण ढंग से पदमावत के अर्थानुसंधान का प्रयत्न किया है। इस सजीवन भाष्य द्वारा कोई भी हिन्दी जानकार पदमावत के सौंदर्य का रसास्वादन कर सकता है। इसके प्रारम्भ में डा० अग्रवाल ने ५५ पष्ठों के विशद प्राक्कथन में पदमावत का पाठ 'रचनाकाल, गुरुपरम्परा अध्यात्म पक्ष आदि पर गम्भीरता पूर्वक और विद्वतापूर्ण ढंग से विचार किया है। श्री गोपालराय कृत 'हिन्दी प्रमाख्यानक काव्य में आलोचना तथा अनुसंधान और जायसी से सम्बद्ध तिथियों का पुनः परीक्षण' शीर्षक लेख[7] अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिन्दी अनुशीलन के धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक में प्रकाशित 'जायसी तिथिक्रम और गुरुपरम्परा [लेखक पं० रामखेलावन

१—ज० बी० आर० एस० वर्ष ३९ अंक १ २ (मार्च जून)।
२—करेंट स्टडीज पटना कालेज पटना १९५५, पृ० ३३।
३—पं० मुन्शीराम शर्मा पदमावत, संशोधित संस्करण १९५८ ई०।
४—वही, प्राक्कथन (च)।
५—वही (टीका भाग) पृ० ११ (दोहा २३ का अर्थ)।
६—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पदमावत (मूल और सजीवनी व्याख्या) १९५५ ई०, चिरगांव झांसी से प्रकाशित।
७—ना० प्र० पत्रिका २०१६, अंक ३ ४ वर्ष ६४।
८—हिन्दी अनुशीलन, जुलाई सितम्बर १९५८ वर्ष ११, अंक ३।

पाण्डेय]और जायसी की विरहानुभूति का आध्यात्मिक पक्ष'[डा० मु शीराम शर्मा] भी जायसी स सम्बद्ध अध्ययनो म अद्यावधि शृखला के रूप मे समादृत हैं। १६५८ १६५६ ई० म प्रस्तुत लेखक ने चित्ररेखा को प्रकाशित किया। उसकी भूमिका म मसलानामा या 'मसला की प्राप्त प्रति का भी उल्लेख किया गया है। ('चित्ररेखा के लिए देखिये–'एक बोल आचाय प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चित्ररेखा)।

अब तक जायसी के ग्रथो (मुख्यत पदमावत) के कई सस्करण सपादन हुये हैं–

(१) नवलकिशोर प्रस लखनऊ से प्रकाशित, १८८१ ई० (सम्पादक अज्ञात)।

(२) रामजसन मिश्र द्वारा सम्पादित, चन्द्रप्रभा प्रस, काशी से प्रकाशित, १८८४ ई०।

(३) बगवासी फम द्वारा १८६६ ई० म प्रकाशित।

(४) मौलवी अली हसन द्वारा सम्पादित, मु शी नवलकिशोर द्वारा प्रकाशित।

(५) शैख अहमद अली द्वारा सम्पादित शख मुहम्मद अजीमुल्लाह द्वारा कानपुर से प्रकाशित।

(विशष–मौलवी अली हसन और शख अहमद अली द्वारा सम्पादित पदमावत के पाठ अत्यन्त उपयोगी हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त[१] ने भी अपने पदमावत के सस्करण मे इन प्रतियो का उपयोग किया है। इन दोनो प्रतियो के पाठ शुक्ल जी और ग्रियसन के पाठ का पोषक समथन करते हैं)।

(६) दी पदुमावति आफ मलिक मुहम्मद जायसी, १६११ १२ ई० जी० ए० ग्रियसन और महामहोपाध्याय प० सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित १ से २५ खण्डो तक रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बगाल, कलकत्ता से प्रकाशित। इन दोनो विद्वान सपादको ने ग्यारह[२] हस्तलिखित प्रतियो (त० १, ३ द्वि० २ ३ द्वि० ४ ५ प्र० १, तीन कथी लिपि की तथा एक उदयपुर की नागरी लिपि की प्रतियाँ) की सहायता से पाठ निर्धारण का प्रयत्न किया था।[३]

(७) जायसी ग्रथावली–(१६२४ ई० प्रथम सस्करण, १६३५ द्वि० स०) नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित, प० रामचन्द्र शुक्ल

१–डा० माता प्रसाद गुप्त, जायसी ग्रथावली भूमिका, पृ० १०६।

२–वही, पृ० १०६।

३–सूयकान्त शास्त्री पदुमावती, प्रीफेस, प० ६ (ग्रियसन और द्विवेदी ने सात हस्तलिखित प्रतियां चार फारसी, दो देवनागरी, एक कथी की सहायता से पाठ निर्धारण किया था)।

द्वारा सम्पादित, इसके प्रथम संस्करण में पदमावत और अखरावट दो ही ग्रंथ थे। द्वितीय संस्करण में आखिरी कलाम को भी संपादित करके प्रकाशित किया गया।

(८) पदमावत पूर्वार्द्ध १८२५ ई० लाला भगवानदीन द्वारा सम्पादित १ से ३३ खण्ड तक हिंदी साहित्य-सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित।

(९) संक्षिप्त पदमावत—१९२६ ई० श्री श्यामसुन्दर दास और सत्यजीवन वर्मा द्वारा सम्पादित इण्डियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित।

(१०) पदुमावति १९३४ ई०, १ से २५ खण्ड तक पंजाब यूनिवर्सिटी लाहौर द्वारा प्रकाशित और सूर्यकान्त शास्त्री द्वारा सम्पादित।

(११) पं० भगवती प्रसाद द्वारा संपादित नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा प्रकाशित।

(१२) 'पदुमावती' दी लिंग्विस्टिक स्टडी आफ दी सिक्सटींथ सेन्चुरी हिन्दी (अवधी) डा० लक्ष्मीधर (द्वारा सम्पादित केवल १०६ छंदों का पाठ सम्पादन)। और ल्यूजाक एण्ड कम्पनी लन्दन से १९४९ ई० में प्रकाशित।

(१३) जायसी ग्रंथावली (डा० माताप्रसाद गुप्त हिन्दुस्तानी एकेडमी १९५१ ई०।

(१४) जायसीकृत 'पद्मावत संजीवनी व्याख्यायुक्त' संपादक डा० वासुदेव शरण अग्रवाल १९५५।

(१५) चित्ररेखा—१९५८–५९ ई० पं० शिवसहायक पाठक द्वारा सम्पादित हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी से प्रकाशित।

डा० ग्रियर्सन और सुधाकर का संस्करण—सर जार्ज ग्रियर्सन ने पदमावत का सम्पादन और पाठ निर्धारण करते समय दस प्रतियों का उपयोग किया था। सात प्रतियों (जिनका उल्लेख पहिले हो चुका है) के अतिरिक्त तीन कथी लिपि की तथा एक उदयपुर राज्य वाली नागरी लिपि की प्रतियाँ उनके समक्ष थीं। तीनों कथी प्रतियों के पाठ एक जैसे थे अतः कथी की तीन प्रतियों में से केवल एक के पाठांतर उन्होंने अपने संस्करण में लिए हैं। उदयपुर की नागरी प्रति के पाठांतर उन्होंने दिए हैं। प्रतियों का बहुमत और द्वितीय प्रति ३ के पाठ को उन्होंने सामान्यतः ग्रहण किया है।[1]

पं० रामचन्द्र शुक्ल का संस्करण—शुक्ल जी के समक्ष पद्मावत के चार संस्करण प्रस्तुत थे—१ नवलकिशोर प्रेस का। २ पं० रामजसन मिश्र का ३

१—डा० माताप्रसाद गुप्त जायसी ग्रंथावली पृ० १०६।

कानपुर के किसी प्रेस का और ४ म० म० प० सुधाकर द्विवेदी और ग्रियर्सन का[१] इनके अतिरिक्त शुक्ल जी के पास कैथी लिपि में लिखी एक हस्तलिखित प्रति भी थी, जिससे पाठ के निश्चय करने में कुछ सहायता मिली है।[२]"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

(१) शुक्ल जी के समक्ष प्रत्यक्षतः अप्रत्यक्षतः कुल मिलाकर लगभग १६ प्रतियां थी —(क) नवलकिशोर प्रेस की प्रति (ख) रामजसन मिश्र का संस्करण (ग) कानपुर के किसी प्रेस का संस्करण, (घ) ११ प्रतियों के आधार पर पाठ निर्धारित और प्रकाशित ग्रियर्सन और सुधाकर द्विवेदी वाला संस्करण जिसमें संपादकों ने विभिन्न प्रतियों के पाठांतर भी दिए हैं (ङ) एक हस्तलिखित कैथी अक्षरों वाली प्रति अर्थात शुक्ल जी के समक्ष ग्रियर्सन आदि के संस्करण की हस्तलिखित प्रतियों का रूप भी विद्यमान था। डा० माताप्रसाद गुप्त का आक्षेप है कि "हस्तलिखित प्रति के नाम पर केवल एक प्रति का उपयोग उन्होंने किया था। प्रतिलिपि परम्परा, प्रक्षेप परम्परा, पाठांतर परम्परा आदि के आधार पर ग्रंथ के पाठ निर्धारण की बात ही शुक्लजी के संस्करण के विषय में नहीं सोचनी चाहिए क्योंकि प्रति के नाम पर केवल एक हस्तलिखित प्रति का उन्होंने उपयोग किया। ग्रियर्सन की भांति ही शुक्ल जी का ध्यान भी इस बात की ओर नहीं गया कि वास्तव में पदमावत की आदि प्रति उर्दू नहीं नागरी लिपि में थी इसलिए वे भी उसी प्रकार मार्ग के बीच में रह गए जैसे ग्रियर्सन। जायसी की भाषा और छन्दयोजना के स्वरूपों का भी ठीक ठीक परिज्ञान उनके संस्करण में नहीं दिखाई पड़ता है।[३] जिनका (ग्रियर्सन और कानपुर वाले संस्करण का) इतना ऋण शुक्ल जी पर है, उनकी जिन शब्दों में खबर शुक्ल जी ने ली है, वह शुक्ल जी जैसे समालोचक के लिए ही संभव था"।

यह कथन उपयुक्त नहीं है कि शुक्ल जी के सामने केवल एक हस्तलिखित प्रति थी। डा० ग्रियर्सन और प० सुधाकर द्विवेदी की ग्यारह हस्तलिखित प्रतियों की चर्चा स्वयं डा० गुप्त ने की है[४] यह भी स्पष्ट है कि ग्रियर्सन ने अपने संस्करण में प्रतियों के पाठांतर भी दिए हैं और इस प्रकार शुक्ल जी के समक्ष ये पाठांतर और निर्धा

१—पदुमावती, सर जार्ज ग्रियर्सन और सुधाकर द्विवेदी।

२—रामचन्द्र शुक्ल—वक्तव्य प्र० सं० पृ० ५।

३—माताप्रसाद गुप्त—ज० ग्र०, भूमिका पृ० ११५।

४—डा० माताप्रसाद गुप्त जायसी ग्रंथावली, भूमिका पृ० ११४।

रित पाठ भी विद्यमान थे।

शुक्ल जी ने ग्रियसन और सुधाकर जी की 'लम्बी चौडी टीका–टिप्पणी' की आलोचना की है। शब्दार्थ टीका और टिप्पणियों की अशुद्धता और भ्रमपूर्णता का उन्होंने अवश्य उल्लेख किया है। शब्दों की गलत व्युत्पत्ति[1] पर वे अवश्य झुझलाए हुए थे–जो एक आचार्य के लिए स्वाभाविक भी था। ग्रियसन वाले संस्करण के पाठ निर्धारण से शुक्ल जी सहमत थे– कहीं कहीं अर्थ ठीक बठाने के लिए पाठ भी विकृत कर दिया गया है।[2] कुछ ऐसे स्थल अवश्य थे, जिनका उल्लेख शुक्ल जी ने किया है।

जहा तक पाठ–निर्धारण का प्रश्न है शुक्ल जी ने लिखा है कथी प्रति से पाठ–निर्धारण मे कुछ सहायता मिली। पाठ अवधी व्याकरण और उच्चारण तथा भाषा–विकास के अनुसार रखा गया है। कभी–कभी किसी चौपाई का पाठ और अर्थ निश्चित करने में कई दिनो का समय लग गया है। काव्य भाषा के प्राचीन स्वरूप पर भी पूरा ध्यान रखना पडा है।[3] इसलिए यह कथन कि शुक्ल जी के संस्करण मे पाठ–निर्धारण की बात ही न सोचनी चाहिए' समीचीन नहीं प्रतीत होता। यह अवश्य है कि शुक्लजी के समक्ष इतनी हस्तलिखित प्रतियाँ नहीं थी और कहीं–कहीं डा० गुप्त के पाठ अच्छे हैं पर सब स्थानों पर ऐसी बात नहीं है। आदि प्रति नागरी अक्षरो मे थी या फारसी लिपि म या कथी लिपि म यह एक जटिल प्रश्न है। जब तक कोई अत्यन्त सुदृढ प्रमाण न हो या जब तक आदि प्रति न मिल तब तक तीन नागरी प्रतियो के आधार पर (और वे भी क्रमश स० १८१८ नागरी लिपि, स० १८४२ कथी अक्षरों म लिखी हुई तीसरी का लिपिकाल नहीं दिया गया है, यह नागरी अक्षरो म है स० १८१८ वि के पश्चात की प्रतिलिपि की हुई है) बिना पर्याप्त कारण के आदि प्रति को नागरी अक्षरो म लिखी हुई कहना और शुक्ल–ग्रियसन को मार्ग म ही भटकते रह गए कहना ठीक नहीं जचता। जहाँ तक जायसी की भाषा और छन्द–योजना के स्वरूपो के ठीक–ठीक परिज्ञान और शुक्ल जी के संस्करण म उनके अभाव का आक्षेप है यह भी ठीक नहीं है क्योंकि डा० गुप्त ने आदि प्रति की भाषा–छन्द–योजना[4] पर जो कुछ लिखा है वह शुक्ल और गुप्त दोनो के संस्करणो म एक जसा है। शुक्ल जी अवधी भाषा और छन्द–योजना के ममज्ञ थे—इसम दो मत नहीं हैं।

इस विषय म आचार्य प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का मत विशेष रूप से उल्ले

१—प० रामचन्द्र शुक्ल जा० ग्र० प्र० स०, वक्तव्य, पृ० १ से ८ तक।
२—वही पृ० ३।
३—वही, पृ० ५, ७ ८।
४—द्रष्टव्य, इसी प्रबन्ध म पद्मावत की लिपि शीर्षक।
५—डा० माताप्रसाद गुप्त, जा० ग्र०, भूमिका पृ० २९–६४।

रणीय है— "आचार्य शुक्ल ने पद्मावत का जो पाठ दिया है वह वैज्ञानिक कसौटी पर बहुत खरा न उतरे, पर मेरी धारणा है कि डा० गुप्त के पाठ की अपेक्षा उनके पाठ अधिक सुसंगत हैं। कहीं-कहीं गुप्त के पाठ भी अच्छे हैं। रह गई मूल के निकट होने की बात। छान-बीन करने से मेरी अब भी निश्चित धारणा यही है कि अवधी के स्वरूप के निकट शुक्लजी के पाठ अधिक हैं। अवधी का मन्तव्य जायसी के मूल पाठ का मन्तव्य भी हो सकता है।"[1]

डा० सूर्यकान्त शास्त्री द्वारा संपादित पद्मावति शास्त्रीजी ने 'प्रीफेस' के अन्तर्गत लिखा है कि इस संस्करण का पाठ सावधानी के साथ ग्रियर्सन के संस्करण पर आधारित है। उन्होंने ग्रियर्सन के पाठ को प्रामाणिक माना है क्योंकि वह पंजाब यूनिवर्सिटी लाहौर के पुस्तकालय में सुरक्षित एक हस्तलिखित प्रति के पाठ से मिलता है। उन्होंने पद्मावति के अन्त में एक महत्वपूर्ण इंडेक्स (शब्द-सूची) भी दी है।

पं० भगवतीप्रसाद पाण्डेय का पदमावत—पाण्डेय जी ने 'दो बातें' में चार (नवल किशोर प्रेस का, कानपुर का, ग्रियर्सन का और शुक्लजी का) संस्करणों का उल्लेख किया है। पं० रामचन्द्र शुक्ल के संस्करण के विषय में उनका मत उल्लेखनीय है— इसमें कोई शक नहीं कि पण्डितजी (पं० रामचन्द्र शुक्ल) मौसूफ ने तसनीफ़ात जायसी की तालीफ फरमा कर जो एहसान अदबी दुनिया पर फरमाया है उसकी तारीफ करना आफताब को चिराग दिखाना है।' पांडे जी के संस्करण का मूल आधार शुक्लजी का संस्करण है।

पं० लक्ष्मीधर का संस्करण—पं० लक्ष्मीधर ने कुल ६ हस्तलिखित प्रतियों का एवं शुक्लजी के संस्करण का उपयोग किया है। इस संस्करण के लिए उन्होंने इण्डिया आफिस लन्दन के बाहर का ही नहीं, इण्डिया आफिस लन्दन की भी कुल प्रतियों को देखने की आवश्यकता नहीं समझी। आश्चर्य यह है कि इसी को समालोचनात्मक सम्पादन कहा गया है और इसी पर सम्पादक को लन्दन यूनिवर्सिटी की पी एच०डी० की उपाधि मिली है।[2] लेखक को इस ग्रन्थ पर १९४० ई० में लन्दन विश्वविद्यालय से पी एच०डी० की उपाधि मिली थी। उसमें २९ पृष्ठों में जायसी की भाषा के व्याकरणिक रूपों का परिचय दिया है। पाँच छः हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर पदमावत के १०६ छन्दों का सम्पादन किया है। इन छन्दों के अर्थ भी दिए गए हैं। चौथे खण्ड में १३२ पृष्ठों में लेखक ने ग्लोसरी (शब्द सूची) दी है। यह परिश्रमपूर्वक प्रस्तुत किया गया महत्वपूर्ण कार्य है। स्पष्ट है कि लक्ष्मीधर जी ने अपने विषय का सम्यक प्रतिपादन और अनुशीलन किया है।

१—आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ७। १२। ६० ई० का पत्र, पृ० १।
२—डा० माताप्रसाद गुप्त जा० ग्रन्थावली भूमिका, पृ० ११७ १८

जायसी ग्रन्थावली डा० माताप्रसाद गुप्त हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग, १९५१ ई०—डा० गुप्त के संस्करण में जायसीकृत चार ग्रन्थ संपादित हैं—पदमावत अखरावट आखिरी कलाम और महरी बाईसी। इस सम्बन्ध में डा० गुप्त ने लिखा है कि 'इस ग्रन्थावली के अखरावट का पाठ अन्य प्रतियों के अभाव में पं० रामचन्द्र शुक्ल के संस्करण के अनुसार रखा गया है पश्चात गोपालसिंह जी से एक प्रति मिली किन्तु छपाई आरम्भ हो जाने के कारण उसका इससे अधिक उपयोग नहीं किया जा सका कि ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट जोड़कर इस प्रति का पाठान्तर मात्र दे दिया जाय।'[1] किन्तु शुक्लजी के अखरावट और डा० गुप्त के अखरावट (जो मूलतः शुक्लजी का ही है) के पाठों का मिलान करने पर स्पष्ट हो जाता है कि डा० गुप्त ने अनेक स्थलों पर अपनी ओर से परिवर्तन कर दिये हैं। उन्होंने ऐसा क्यों किया है कारण अज्ञात है। कम से कम डा० गुप्त नागरीप्रचारिणी सभा काशी की अखरावट वाली प्रति का तो उपयोग कर ही सकते थे। इसी प्रकार उन्होंने आखिरी कलाम का भी पाठ शुक्लजी का ही रखा है।[2] (पर अनेक परिवर्तनों के साथ)। इस ग्रन्थावली में सर्वप्रथम महरी बाईसी नामक जायसी की एक अप्रकाशित रचना का प्रकाशन किया गया है। स्पष्ट नामोल्लेख के अभाव में संपादक ने महरी बाईसी नाम दे दिया है और लिखा है इस कृति में कुल बाईस गीत हैं।[3] इस ग्रन्थ की प्रस्तुत विद्यार्थी के पास तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतियाँ हैं। एक अन्य प्रति आनन्द भवन पुस्तकालय बिसवा, सीतापुर में है।[4] गुप्तजी द्वारा प्रकाशित महरी बाईसी के पाठ असन्तोषजनक हैं।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि डा० गुप्त ने इस संस्करण को तैयार करने में बहुत ही परिश्रम किया है। पदमावत के मूल पाठ पर जमी हुई काई को पाठ संशोधन की वैज्ञानिक युक्ति से हटाकर श्री गुप्त ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। जब भी कोई विद्वान पदमावत या अन्य किसी ग्रन्थ के पाठ निर्णय का कार्य हाथ में लेगा उसे इसी युक्ति का आश्रय लेना पड़ेगा। गुप्तजी ने सोलह प्रतियों के आधार पर पाठ संशोधन का कार्य किया था जिनमें से पाँच प्रतियाँ बहुत ही अच्छी थीं। उनमें से चार प्रतियाँ लन्दन के कामनवल्थ रिलेशन्स आफिस में हैं। पाँचवीं प्रति श्री गोपालचन्द्र जी के पास थी।[5] हो सकता है कि भविष्य में और भी अच्छी प्रतियों के प्राप्त होने पर कहीं-कहीं पाठों

१—डा० माताप्रसाद गुप्त जा० ग्र० वक्तव्य पृ० ३।

२—वही, पृ० १०४। ३—वही पृ० १ ४।

४—ना० प्र० सभा, त्रयोदश त्रवार्षिक विवरण (सन १९२६ से २७ तक) पृ० ४३१

५—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पदमावत, प्राक्कथन पृ० ९–१०।

में सुधार की आवश्यकता जान पड़े।"[1]

इतना लिखने के बावजूद डा० अग्रवाल जी ने गुप्त जी के अनेक पाठों के स्थान पर दूसरे पाठ दिए हैं (जैसे डाह के स्थान पर दुवाति[2] इसी प्रकार के बहुत से पाठ हैं) और इंगित किया है कि—'पदमावत के मूल पाठ और अर्थ के विषय में श्री माताप्रसादजी और मेरे इस प्रयत्न के बाद भी खोज के लिए अभी अवकाश बना हुआ है।"[3] इस बात के स्पष्टीकरण के लिए अग्रवालजी ने कई उदाहरण भी दिए हैं। अन्त में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि "जायसी के पाठ-संशोधन और अर्थ विचार के सम्बन्ध में जो कार्य अब तक हुआ है उसे अभी और बढ़ाने की आवश्यकता है। इसी प्रकार जायसी की भाषा के व्याकरण का गहराई से निर्णय आवश्यक होगा, जो पाठ निर्णय में सहायक हो सकेगा।[4] स्पष्ट है कि विद्वान लेखक की दृष्टि में डा० गुप्त के पाठ-संशोधन-कार्य को अभी और आगे बढ़ाने तथा जायसी के मूल पाठों तक पहुँचने का पूर्ण अवकाश है। गुप्तजी ने बिना कारण दिये लिख दिया है कि इन तीनों कृतियों (अखरावट, आखिरी कलाम और महरी बाईसी) की प्रामाणिकता के बारे में मुझे सन्देह है।"[5] इन कृतियों में से अखरावट और आखिरी कलाम में जायसी का अपने जन्म जीवन आदि के विषय में उल्लेख, जायसी की भाषा, जायसी की छाप और जायसी के ही प्रत्यक्ष शब्द आदि से स्पष्ट है कि ये कृतियाँ जायसी की ही हैं—इसमें दो मत नहीं। परम्परा और प्रामाणिकता भी यही है।

डा० माताप्रसाद गुप्त के पाठों के विषय में चालर्स नेपियर[6] का आक्षेप है कि वह सब पाठ नागरी अक्षरों में लिखता है, फलस्वरूप उन शब्दों के रूप फारसी अक्षरों में लिखे गये शब्दों से भिन्न हो गये हैं और पाठकों को मूल सामग्री नहीं मिलती। रचना का अध्यायों में विभाजन नहीं हुआ है। ऐसा विभाजन उपयुक्त भी था, चाहे जायसी ने न भी किया हो। गुप्तजी का कोई छंद किसी दूसरे संस्करण में पाना कठिन है, विशेषकर जब वे कोई अनुक्रमणिका या समन्वय-सूची नहीं देते। गुप्तजी पदमावत के पहले संस्करणों का वर्णन करते हैं पर लाला भगवानदीन के अध्याय ३३ तक के संस्करण की कोई चर्चा यहाँ नहीं है। डा० ग्रियर्सन और शुक्ल ऐसे महानुभावों के श्रम की विनयपूर्वक चर्चा असंगत न होती। मुद्रण की भूलों की यथेष्ट लम्बी सूची दी गई है किन्तु खेद है कि फिर भी कई भूलें रह गई हैं,

---

१—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पदमावत, प्राक्कथन, पृ० २५।
२—वही, पृ० २६।
३—वही, पृ० २७।
४—वही पृ० २८।
५—वही पृ० १०४।
६—ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५७, सं० २००६, पृ० ३३२।

वसे जो उस सूची म नही हैं जैसे पृ० ४३० स्वामिहि के स्थान स्यामिहि ।[१]

' लिपि के विषय मे डा० गुप्त का पहला उद्देश्य इस बात को प्रमाणित करना है कि नागरी और कैथी प्रतियाँ सबकी सब फारसी प्रतियो की प्रतिलिपिया हैं। इसके बाद उनका प्रस्ताव है कि सब वतमान प्रतिया फारसी तथा नागरी भी नागरी की एक मूल प्रति की प्रतिलिपिया है। परतु वे प्रस्ताव करके बात को छोड जाते हैं।[२]

डा० गुप्त के पाठ भी कही कहीं अच्छे हैं। अवधी के निकट शुक्ल जी के पाठ अधिक है अवधी का नकटय जायसी के पाठ का भी नकटय हो सकता है।[३]

।। डा० गुप्त ने इस सस्करण म वज्ञानिक प्रणाली से पाठ-निर्धारित किया है। उनके पास प्राचीनतम प्रति ११०७ हिजरी की थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि यह प्रति पदमावत की रचना के १६० वष बाद की है। निश्चित है कि इस प्रति म भी मूल प्रति का रूप अनेक स्थलो पर विकृत कर दिया गया है। अब प्रश्न यह है कि पदमावत के सपादन म वज्ञानिक प्रणाली का क्या महत्व है? इसका उत्तर है कि केवल वज्ञानिक प्रणाली ही सब कुछ नही है भाषा और साहित्य की प्रणालियाँ अधिक महत्वपूण है। जब तक कोई सपादक मूल ग्रथ के विषय का ममज्ञ न हो तब तक वज्ञानिक प्रणाली के पाठशोध के जड तत्व के साथ चेतन प्रक्रिया का योग नही होता। वज्ञानिक छलनी से छान लेने पर ही कोई पाठ मूल के निकट हो जाय ऐसा नही होता। गुप्तजी ने चेतन प्रक्रिया से कम काम लिया है। इसलिये उनके सस्करण म अनेक भद्दी भूलें हो गई है। इन समस्त भूलो और त्रुटियो के होने पर भी डा० गुप्त की जायसी ग्रथावली का स्वागत प्राचीन हिन्दी के सब प्रेमी करेंगे। सपादक अपने श्रम के लिये धयवाद का पात्र है।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि यद्यपि जायसी के जीवन और कृतित्व पर पर्याप्त काय हुआ है तथापि कुछ ही काय ऐसे हैं जिन्हें प्रमाण्य और उपादेय माना जा सकता है। इस क्षेत्र म सर जाज ग्रियसन प० सुधाकर द्विवेदी प० रामचद्र शुक्ल डा० माताप्रसाद गुप्त डा० वासुदेवशरण अग्रवाल और डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के ग्रथ जायसी के खोजियो के लिये पथ निर्देशन का काम करते हैं। इन विद्वानो की कृतियो का स्थायी महत्व है। इनमे अनेक महत्वपूण सूत्र ऐसे हैं जिनके आधार पर खोज की जा सकती है।

१—ना० प्र० पत्रिका वष ६७ पृ० ३३२–३३।
२—वही पृ० ३३६।
३—आचाय प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (का पत्र ७।१२।६०)।

२

मलिक मुहम्मद जायसी . जीवन–व्यक्तित्व एवं गुरु–परम्परा

नाम, जीवन, व्यक्तित्व

मलिक मुहम्मद जायसी मलिक वंश से थे। मिस्र में मलिक सेनापति और प्रधान मंत्री को कहते थे। खिलजी राज्यकाल में अलाउद्दीन ने बहुत से मंत्रियों को अपने चचा को मारने के लिए नियत किया था। इससे इस काल में यह शब्द प्रचलित हो गया। ईरान में मलिक जमींदार को कहते हैं। मलिकजी के पूर्वज निगलाम देश ईरान से आये थे और वहीं से इनके पूर्वजों की पदवी मलिक थी। 'हजिनतुल असफिया' के लेखक ने मलिकजी के मुहक्किक तहिंदी की उपाधि से विभूषित किया है। मलिक जी के वंशज भी अशरफी खानदान के चेले थे और मलिक कहलाते थे। तारीख फीरोज शाही में है कि बारह हजार के रिसालदार को मलिक कहते थे। मलिकजी के हकीकी वारिस मलिक थे। इसलिए खानदान भर मलिक कहलाता था। मलिक जी स्वयं पंद बीघ मौरूसी जमीन पर अपना निर्वाह करते थे।[1]

मूलतः मलिक अरबी भाषा का शब्द है। अरबी में इसके अर्थ स्वामी, राजा, सरदार आदि होते हैं। मलिक' (म० ल० क०) धातु से उत्पन्न बताया जाता है। इसमें बने अनेक शब्द हैं, जैसे— मलक = फरिश्ता मुल्क = देश, मिल्क = सम्पत्ति, मलिक = बादशाह सुल्तान। फारसी भाषा में मलिक का अर्थ है अमीर और बड़ा व्यापारी।[2]

१–सयद आले मुहम्मद मेहर जायसी बी० ए० मलिक मुहम्मद जायसी का जीवन चरित नागरीप्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४५ अंक १ बनारस १९९७ पृ० ४८–४९।
२–नूरुल्लुगात, भाग ४ पृ० ४९७।

विद्वानों का विचार है कि जायसी का पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी था। मलिक इनका पूर्वजों से चला आया 'सरनामा' (सरनेम) है। इससे प्रकट है इनके पूर्वज अरब थे। इनके पिता माता के विषय में कहा जाता है कि वे जायस के कचाने[1] मुहल्ले में रहते थे। इनके पिता का नाम मलिक शेख ममरेज था। इन्हें लोग मलिक राजे अशरफ भी कहा करते थे। इनकी मां मानिकपुर के शेख अलहदाद की पुत्री थी। इनकी माता[2] का नाम ज्ञात नहीं है। मलिक इनके वंश की उपाधि-परम्परा है और 'जायस' नामक स्थान से सम्बद्ध होने के कारण इन्हें जायसी कहा जाता है। इस प्रकार इनका पूरा नाम है मलिक मुहम्मद जायसी।

जायसी को कुरूप और काना भी कहा जाता है। कुछ लोगों का विचार है कि वे जन्म से ही ऐसे थे पर अधिकांश विद्वानों का विचार है शीतला या अर्द्धांग रोग के कारण उनका शरीर विकृत हो गया था। जनश्रुति है कि बालक मुहम्मद पर शीतला का भयंकर प्रकोप हुआ। माता पिता को निराशा हुई। मां ने पाक साफ दिल से शाहमदार की मनौती की। पीर की दुआ बालक बच गया, किन्तु इस बीमारी के कारण उनकी एक आंख जाती रही। उसी ओर का बायां कान भी जाता रहा। अपने काने होने का उल्लेख उन्होंने स्वयं ही किया है—

एक नयन कवि मुहम्मद गुनी। सोइ विमोहा जेइ कवि सुनी॥[3]
चांद जइस जग विधि औतारा। दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा।
जग सूझा एकइ नैनाहां। उआ सूक अस नखतन्ह मांहा॥
जौं नहिं अंबहिं डाभ न होई। तौ नहिं सुगंध बसाइ न सोई॥
कीन्ह समुद्र पानि जौं खारा। तौ अति भएउ असूझ अपारा।
जौं सुमेरु तिरसूल बिनासा। भा कंचनगिरि लाग अकासा।
जौं लहि घरी कलंक न परा। कांच होइ नहिं कंचन करा।
एक नैन जस दरपन औ तेहि निरमल भाउ।
सब रुपवंत पाय गहि मुख जोवहिं कै चाउ॥

— — —

मुहम्मद कवि जो प्रेम भा ना तन रकत न मांसु।
जेइं मुख देखा तेइं हंसा सुना तो आये आंसु॥[5]

१—ना० प्र० पत्रिका भाग २१ पृ ४६।
२—म० मु० जायसी सयद कल्बे मुस्तफा पृ० २०।
३—जा० ग्र० मा० प्र० गुप्त, पृ० १३३।
४—जा० ग्र० मा० प्र० गुप्त पृ० १३३–३४।
५—वही, पृ० १३५।

जायसी वाममार्ग को स्वीकार नहीं करते और यही मूलभूत कारण है कि उन्होंने बाईं दिशा ही त्याग दी। जब से उनका प्रियतम उनके अनुकूल हुआ, तब से उन्होंने एक श्रवण – एक दृष्टि वाली वृत्ति अपना ली अर्थात उन्होंने एक का ही देखना शुरू किया और एक का ही सुनना भी शुरू किया –

'मुहम्मद बाईं दिसि तजी एक सरवन एक आखि।
जब ते दाहिन होई मिला, बोलु पपीहा पाखि॥'[1]

एक नम कवि मुहम्मद गुनी – – –। इत्यादि से स्पष्ट है कि – 'एक आखवाले मुहम्मद का काव्य जिसने सुना, वही मोहित हो गया। उन्होंने मानो अपने इस एकांगी रूप की समीक्षा की – अवश्य ही विधाता ने एक कान और एक आख हरण करके मुझ कुरूप बना दिया, किन्तु विधाता जिसे कलक देता है उसे कोई न कोई महान वस्तु भी देता है। उसने चाद को कलक दिया है, किन्तु इस कलक के साथ उसे उज्ज्वल भी बनाया है। मुझे कुरूप बनाया और साथ ही काव्य गुण भी तो प्रदान किया। इस एक आख से मुझ सारा ससार दिखाई देता है। इस एक आखवाले का तेज नक्षत्रो म शुक्र के सदश भास्वर है। आम की जिस सुगन्धि से सारा आम्र कानन महमह हो उठता है उसके पहले आम म नुकीली डाभ का जन्म आवश्यक माना जाता है। मीठे पानी के सरोवर तो छोटे होते हैं किन्तु विधाता ने समुद्र मे खारा जल भर दिया है इसी से तो उसका अन्त नही दिखाई देता, अर्थात खारे जल के कारण विधाता ने उसे अनत–असीम बना दिया है। सुमेरु गिरि पर त्रिशूल (वज्र) का प्रहार हुआ, इसी से तो वह सोने का पहाड बन कर आकाश से सलग्न हो गया। यह तो प्रकृति का नियम है कि दोष के साथ गुण और गुण के साथ दोष मिला ही रहता है। जब तक रासायनिक प्रक्रिया मे घरिया मे कलक नहीं पडता जब तक काच शुद्ध कावन की कला को नही प्राप्त करता। विधाता ने विकृत शरीर बनाकर मेरे ऊपर बडी कृपा की है क्योकि इसी एक नेत्र से मैने सारा ससार देखा है। यह दपण जसा है इसका भाव बडा ही निमल है। बडे बडे रूपवन्त इस एक आख वाले के चरणो को स्पर्श करते हैं और उमगित होकर अत्यन्त मुग्ध भाव से मुख की ओर निहारा करते हैं।'

जेइ मुख देखा तेइ हसा सुना तो आए आसु। जो जायसी की कुरूपता को देखकर हँसे थे व ही उनके काव्य को सुनकर आसू भर लाते हैं। शोध म नवो पलब्ध काव्य 'चित्ररेखा' म भी जायसी ने अपने शुक्राचार्यत्व की बात कही है

मुहम्मद सायर दीन दुनि मुख अ म्रित बनान।
बदन जइस जग चन्द सूपरन सूक जइस ननान॥'[2]

स्पष्ट है कि जायसी का बदन पूनम के चाद जसा था (भले ही उनमे थोडा

१–वही पृ० २–चित्ररेखा स० शिवसहाय पाठक पृ० ७७।

कलंक रहा हो) और व शुक्राचार्य की तरह एकपक्षवाले थे — शुक्राचार्य की तरह इसलिए कि विद्वानों में शुक्राचार्य अग्रतम है और अग्रतारा की अपेक्षा उनकी भास्वरता भी अधिक है। सयद कल्बे मुस्तफा के अनुसार जायसी लूले और कुबडे भी थे — मनिक लले लगडे कुजापुश्त भी थे।[1] किन्तु अभी तक प्राप्त हुए प्रमाणो और जायसी के चित्र से यह बात प्रमाणित नहीं होती। उनके पिता का स्वर्गवास पहले ही हो चुका था।[2] कुछ दिनों के पश्चात माता का भी स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार बाल्यावस्था में ही वे अनाथ हो गये। फिर ये फकीरों और साधुओं के साथ रहने लगे थे।[3] किसी किसी जनश्रुति में उनके ववाहिक जीवन और सात पुत्रों का भी उल्लेख है।[4]

जायसी बाल्यावस्था में ही अनाथ हो गये और साधु फकीरों के साथ दर दर भटकते फिरे। कुछ दिनों तक अपने ननिहाल में मानिकपुर अपने नाना अनह दान के साथ रहे। एक तो अनाथ दीन हीन अवस्था दूसरे साधु फकीरों का सग तीसरे उनकी तीव्र बुद्धि और सर्वोपरि सहजात ईश्वरीय प्रेम — सब ने मिलकर उन्हें अन्तर्मुखी और चिंतनशील बना दिया। सारांश यह कि परम सत्ता की ओर आकृष्ट करने वाली परिस्थिति मिलने पर उन्होंने अपनी सारी शक्ति उस ओर लगा दी। सयोगवश उन्हें सुयोग्य गुरु भी मिल गये।

जायसी मृत्यु के समय अत्यन्त वृद्ध और सन्तानहीन थे।[5] उनके सतान थी या नहीं इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। कहा जाता है कि उनके सात पुत्र थे। खाना खाते समय मकान की छत गिर जाने से दबकर वे सब एक साथ ही मर गए।[6] इस दुर्घटना से जायसी और भी विरक्त हो गये। इसी विरक्ति पीर और प्रेम पीर ने धीरे धीरे जायसी को अपने समय का एक सिद्ध-प्रसिद्ध फकीर बना दिया।

जायसी की प्रसिद्ध जनश्रुति है कि जायसी एक बार शेरशाह के दरबार में गये थे। शेरशाह उनके भद्दे चेहरे को देखकर हँस पड़ा। सुल्तान का हँसना दरबारियों के अट्टहास्य का साधन था। सारा दरबार ठहाकों में गूँज उठा किन्तु जायसी ने अत्यन्त सयत विनम्र स्वर में पूछा— मोहि का हँससि कि कोहरहि? अर्थात तू मुझपर हँसा या उस कुम्हार (गढनेवाले — ईश्वर) पर? इस पर

१—म० मु० जायसी सयद कल्बे मुस्तफा पृ० २१
२—ना० प्र० पत्रिका, भाग २१।　　　３—वही पृ ४३।
४—वही पृ० ८०।
५—पदमावत मा० प्र० प० ५५५-५६ चित्ररेखा प ७५।
६—ना० प्र० पत्रिका भाग २१।

शेरशाह अत्यन्त लज्जित हुआ। उसने जायसी के चरणो मे सिर गिराकर क्षमा की प्रार्थना की। कुछ लोगो का विचार है कि व शेरशाह के दरबार म नहीं गए थ शेरशाह ही उनकी ख्याति सुनकर उनके पास आया था। सम्भवत इसी घटना को थोड़े परिवर्तन के साथ मीर हसन देहलवी ने अपनी मसनवी रिमुज़ुल आरिज (रमुजे उल-आरफीन) मे लिखा है—

१ "थे मलिक नाम मुहम्मद जायसी।
वह कि पद्मावत जिन्होंने है लिखी॥
मर्दे आरिफ थे वह और साहब कमाल।
उनका अकबर ने किया दरयाफ्त हाल॥
होके मुश्ताक बुलवाया सिताब।
ताकि हो सोहबत मे उनकी फतयाब॥
साफ बातिन थे वह और मस्त-अलमस्त।
लेकिन दुनिया तो है जाहिर परस्त॥
थे बहुत बदशक्ल और वह बदनमी।
देखते ही उनको अकबर हस पड़ा॥
जो हसा वह तो उनको देखकर।
यो कहा अकबर को होकर चश्मेतर॥
हस पड़े माटी पर ए तुम शहरयार।
या कि मेरे पर हसे व अख्तियार॥
कुछ गुनह मेरा नही ए बादशाह।
मुख बामन तू हुआ औ मैं सियाह॥
असल मे माटी तो है सब एक जात।
अख्तियार उसका है जो है उसके हाथ॥
सुनते ही यह हर्फ रोया दादगर।
गिर पड़ा उनके कदम पर आनकर॥
मलगरज उनको व एजाजे तमाम।
उनके घर भिजवा दिया फिर वस्सलाम॥
साहब तासीर हैं जो ऐ हसन।
दिल प करता है असर उनका सुखन॥"[१]

अट्ठारहवी शती के इस शायर का कथन है कि जायसी बादशाह अकबर के दरबार म गए थ। कुछ लोगो का अनुमान है कि यह राजा मुगल सम्राट अकबर

१—ना० प्र० पत्रिका, भाग २१, पृ० ४४४५।

नहीं हो सकते, क्योंकि जायसी अकबर के जन्म के समय ही १५४२ ई० में संसार से चल बसे थे। शायद यह अवध का कोई छोटा सा राजा था जिसका नाम अकबर रहा होगा।[1]

मीरहसन देलहवी ने सुनी सुनाई बातों के आधार पर जायसी के दरबार में जानेवाली बात का सम्बन्ध अकबर बादशाह से जोड़ दिया है। चाहे यह दिल्ली का बादशाह अकबर हो, चाहे अवध का कोई छोटा राजा अकबर और चाहे शेरशाह पर इतना अवश्य स्पष्ट है कि जायसी का बाह्य रूप आकर्षक न था। पदमावत के प्रारम्भ में ही कतिपय पंक्तियां इसी कथा के मूल की ओर संकेत करती हुई जान पड़ती हैं। उदाहरणार्थ –

दीन्ह असीस मुहम्मद करहु जुगहिं जुग राज।
पातसाहि तुम जगत के जग तुम्हार मुहताज ॥[2]
बरनौ सूर पुहुमिपति राजा। पुहुमि न भार सहइ सो साजा ॥[3]
जौ गज नए न काऊ चलत होहिं सनचूर।
जबहिं चढइ पुहुमीपति सेरसाहि जगसूर ॥
सब पिरथिमी असीसइ जोरि जोरि कै हाथ।
गाग जउँन जौ लहि जल तौ लहि अम्मर माथ ॥[4]
पुनि रूपवंत बखानौ काहा। जावत जगत सबइ मुख चाहा ॥
सौंह दिस्टि कइ हेरि न जाई। जेइ देखा सो रहा सिर नाई ॥[5]
सेरसाह सरि पूजि न कोऊ।
अइस दानि जग उपना सेरसाहि सुलतान।
ना अस भयउ न होइहि ना कोइ देइ अस दान ॥

इन पंक्तियों में जायसी ने शेरशाह की प्रशंसा करते हुये लिखा है कि मुहम्मद ने उसे आशीर्वाद दिया तुम युग-युग तक राज करो। तुम जग के बादशाह हो जग तुम्हारा मुहताज है। जब तक गंगा यमुना में जल है तब तक तुम्हारा मस्तक अमर रहे। इससे स्पष्ट लगता है कि जायसी शेरशाह के दरबार में गए

१–सूफी महाकवि जायसी डा० जयदेव पृ० ५४।
२–जा० ग्र० (हिं० ए०) (१३।दो १) पृ १२८।
३–वही १४।१ पृ १२६। ४–वही दो० १४।
५–जा० ग्र (हिं० ए०) दो० १५ पृ० १३०।
६–वही दो० १६।५ ६ ७–वही दो० १७।३ पृ० १३१।
८–वही, दो० १७।

थे। उन्होंने हाथ उठाकर आशीर्वाद भी दिया था।

महात्मा तुलसीदास की ही भाँति इनकी भी बाल्यावस्था अनाथावस्था रही। इन्हीं कारणों से इनकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हो गयी। इनके हृदय की नम्रता अपार थी। वे अपने विषय में गर्वोक्ति नहीं लिखते। वे स्पष्ट कहते हैं–

हौं सब कविन केर पछिलगा। किछु कहि चला तबल देइ डगा॥[1]

उनका कहना है कि 'मैं सभी कवियों के पीछे चलने वाला हूँ। नक्कारे की ध्वनि हो जाने पर मैं भी आगे वालों के साथ पैर उठाकर कुछ कहता चल पड़ा हूँ।'

सचमुच उनके समस्त काव्य में एक उक्ति भी निज के विषय में गर्व की नहीं है।

जायसी इस्लाम धर्म और पैगम्बर पर पूरी आस्था रखते थे। उन्होंने ईश्वर तक पहुँचने के अनेक मार्गों को तत्वतः स्वीकार किया है, इन असंख्य मार्गों में वे मुहम्मद साहब के मार्ग को सुगम और सरल कहते थे।

विधिना के मारग हैं तेते। सरग नखत, तन रोवाँ जेते॥
तिन्ह मह पंथ कहौं भल भाई। जेहि दूनौ जग छाज बड़ाई॥
सो बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है निरमल कबिलास बसेरा॥[2]

जायसी बड़े भावुक भगवद्भक्त थे और अपने समय में बड़े ही सिद्ध और पहुँचे हुए फकीर माने जाते थे। वे विधि पर आस्था रखने वाले थे। सच्चे भक्त का प्रधान गुण दैन्य उनमें पूरा पूरा था। उनकी वह उदारता थी जिससे कट्टरपन को भी चोट नहीं पहुँच सकती थी। प्रत्येक प्रकार का मन्तव्य स्वीकार करने की उनमें क्षमता थी। वीरता, धीरता, ऐश्वर्य, रूप, गुण, शील सबके उत्कर्ष पर मुग्ध होने वाला हृदय उन्हें प्राप्त था। तभी 'पदमावत' ऐसा चरित्र-काव्य लिखने की उत्कंठा उन्हें हुई। वे जो कुछ जानते थे उसे नम्रतापूर्वक पण्डितों का प्रसाद मानते थे।

वे बड़े ही सच्चरित्र, कर्तव्यनिष्ठ और गुरुभक्त थे। ईश्वर के प्रति उनकी आस्था अपार थी। उनका विश्वास था कि परम ज्योति-स्वरूप उस जगत के करतार

१–डा० मुंशीराम शर्मा ने एक बार इस विनम्रोक्ति के विषय में मेरा ध्यान आकृष्ट किया था। उन्होंने कहा था कि मैंने इसका अर्थ सहज रूप में किया है। उनके अर्थ से जायसी की नम्रता और अधिक स्पष्ट हो जाती है। 'मैं पण्डितों से अपनी त्रुटियाँ सँवारने तथा उन्हें सजाकर ठीक करने के लिए विनती करता हूँ। जैसे तबल की सम के पीछे डगा का ठेका चलता है वैसे ही मैं पण्डितों का अनुचर हूँ। अतः जो कुछ मैं कहता हूँ वह उन्हीं से सीखा हुआ है, उन्हीं की कृपा से मैं कुछ कहने में समर्थ हुआ हूँ।' पद्मावत डा० मुंशीराम शर्मा पृ० ११

२–जा० ग्र० मा० गु० आखिरी कलाम २५।२–५, ६६३–६४।

के नियंत्रण मे ही समस्त सृष्टि वर्तमान है—गतिमान है। वे महान मन थे। सहजता सहृदता, सारग्राहिता अनुभव गम्भीरता लोक और काव्य का महन अध्ययन आडम्बरहीनता, सयम और पवित्र भक्ति उनके चरित्र के विशेष आकर्षण हैं।

जन्म स्थान -

जायसी ने पदमावत की रचना जायस नामक स्थान में की—

जाएस नगर धरम अस्थानू। तहवा यह कवि कीन्ह बखानू ॥[1]

जायसी के जन्म स्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है कि जायस ही उनका जन्म स्थान था या वे वहीं अन्यत्र से आकर वहां रहने लगे थे। जायसी ने अन्यत्र भी लिखा है—

जायस नगर मोर अस्थानू। नगर क नाव आदि उदयानू ॥

तहाँ देवस दस पहुने आएउ। भा वराग बहुत सुख पायउ ॥[2]

प० रामचन्द्र शुक्ल[3] का अनुमान है कि पद्मावत की कथा को लेकर थोड़े से पद्य जायसी ने रचे थे। उसके पीछे व जायस छोड़ कर रहने लगे तब उन्होंने इस ग्रन्थ को उठाया और पूरा किया। शुक्ल जी को इस बात का संकेत तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू। से मिला था। डा० माता प्रसाद गुप्त[4] और वासुदेव शरण अग्रवाल[5] ने तहवा यह कवि कीन्ह बखानू। पाठ को शुद्ध माना है। प० सुधाकर द्विवेदी[6] और डा० ग्रियसन ने यह अनुमान किया था कि मलिक मुहम्मद किसी और जगह से आकर जायस में बसे थे। पर यह ठीक नहीं। जायस वाले ऐसा नहीं कहते। उनके कथनानुसार मलिक मुहम्मद जायस ही के रहने वाले थे।

प० सूर्यकान्त शास्त्री[8] ने भी लिखा है कि इनका जन्म जायस शहर के कचाना मुहल्ला में हुआ था। डा० मुन्शीराम शर्मा का मत है कि जायस का पूर्व नाम उद्यान था। यहाँ पर वे थोड़े दिनों के लिये पाहुन के रूप में आए थे—बाद में वरागी हो गए थे।[9] अतः जायस उनका धर्म स्थान है। कहा जाता है कि

१—पदमावत (हिं० ए० २३।१) पृ० १३४।
२—आखिरी कलाम १०।१—२।
३—जा० ग्र० (भूमिका) पं० राम चन्द्र शुक्ल पृ० ६।
४—जा० ग्र० डा० मा० प्र० गुप्त (२३।१) पृ० १३४।
५—पदमावत डा० वासुदेव शरण अग्रवाल (२३।१) पृ० २२।
६—पदमावत डा० ग्रियसन और पण्डित सुधाकर द्विवेदी (१९११)। ७—वही
८—पदुमावति प्रो० सूर्यकान्त शास्त्री प्रोफेस पृ० ५।
९—पदमावत डा० मुन्शी राम शर्मा प्राक्कथन 'उ

मलिक मुहम्मद गाजीपुर के एक दरिद्र मुसलमान के पुत्र थे। कई विद्वानों ने जायसी के विषय में कहा है कि ये गाजीपुर में पैदा हुए थे[1]। मानिकपुर (जिला प्रतापगढ़) में अपने ननिहाल में जाकर कुछ दिनों तक रहे थे[2]।

इस प्रसंग में डा० वासुदेव शरण अग्रवाल[3] का मत विशेष रूप से उल्लेख्य है।

जायसी ने लिखा है– जायस नगर में मेरा स्थान है। मैं वहाँ दस दिन के लिए पाहुने के रूप में आया था, पर वहीं मुझे वैराग्य हो गया और सुख मिला। दिन दस का अर्थ पदमावत में थोड़े समय के लिये है। (६६१।१) पाहुने आयउँ' का संकेत कुछ विद्वानों ने ऐसा माना है कि कवि ने जायस में जन्म लिया था। किन्तु इन शब्दों का सीधा अर्थ भी लिया जा सकता है कि सचमुच मलिक मुहम्मद जायसी किसी दूसरी जगह से जायस में कुछ दिनों के लिए पाहुने के रूप में आये थे किन्तु वहाँ आकर उनके जीवन में एक ऐसी घटना घटी जिसने जीवन के प्रवाह को ही बदल डाला और उन्हें अनुभव के एक नए लोक में पहुँचा दिया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी का जन्म जायस में नहीं हुआ था बल्कि यह उनका धर्म स्थान था और वहाँ कहीं से आकर वे रहने लगे थे।

गार्हस्थ्य वैराग्य

जायसी एक किसान गृहस्थ के रूप में जायस में रहते थे। वे आरम्भ से बड़े ईश्वर भक्त और साधु प्रकृति के थे। उनका नियम था कि जब वे अपने खेतों में होते तब अपना खाना वहीं मंगा लिया करते थे। खाना वे अकेले कभी न खाते थे, जो आसपास दिखाई पड़ता उसके साथ बैठकर खाते थे। एक दिन उन्हें इधर उधर कोई नहीं दिखाई पड़ा। बहुत देर तक आसरा देखते देखते अन्त में एक कोढ़ी दिखाई पड़ा। जायसी ने बड़े आग्रह से उसे खाने को अपने पास बिठाया और एक ही बरतन में उसके साथ भोजन करने लगे। उसके शरीर से कोढ़ चू रहा था। कुछ थोड़ा सा मवाद भोजन में भी चू पड़ा। जायसी ने उस अंश को खाने के लिए उठाया पर उस कोढ़ी ने हाथ थाम लिया और कहा—'इसे मैं खाऊँगा, आप साफ हिस्सा खाइए।' पर जायसी झट से उसे खा गए। इसके पीछे वह कोढ़ी अदृश्य हो गया। इस घटना के उपरान्त उनकी मनोवृत्ति ईश्वर की ओर और भी अधिक बलवती हो गई। उक्त घटना की ओर संकेत लोग अखरावट के इस दोहे में बताते हैं—

१–ना० प्र० पत्रिका १४ ३६१।

२–वही भाग २१ पृ० ४३।

३–डा० वासुदेव शरण अग्रवाल पदमावत, प्रा० पृ०३५।

बुंदहि समुद समान यह अचरज कासों कहौं।
जो हेरा सो हेरान, मुहमद आपुहि आपु महँ।[1]

"कहते हैं कि जायसी के सात पुत्र थे, पर व मकान के नीचे दब कर या ऐसी किसी और दुघटना से मर गए। तब वे जायसी ससार से और भी विरक्त हो गए और कुछ दिनो मे घर बार छोड कर इधर उधर फकीर होकर घूमने लगे।[2]

जायसी के विराग का जो भी कारण रहा हो पर इतना निश्चित है कि जायसी मे उनके[3] जीवन म एक ऐसी घटना घटी जिसने उन्हे प्रेमानुभव के एक नवीन लोक म पहुचा दिया उनके हृदय मे वराग्य का एक प्रबल स्रोत फूट निकला। हृदय किसी अपूव ज्योति से उदभासित हो उठा। उसी का रूप नयनो म समा गया। सवत्र उसी सौन्दय और प्रम सत्ता के दर्शन होने लगे। ससार के मानदड बदल गए। विषयो से मन हट गया। हृदय म एक ही आकुलता छा गई कि किस प्रकार उस परम ज्योति या रूप की साक्षात प्राप्ति हो। जायसी ने अपनी उस वराग्य अवस्था का सच्चा वणन किया है।

तहा देवस दस पहुने आएउ। भा वराग बहुत सुख पाएउ।
सुख भा सोच एक दुख माना। ओहि बिनु जिवन मरन क जाना॥
नन रूप सो गएउ समाई। रहा पूरि भरि हिरदै छाई॥
जहव देखौं तहव साईं। और न आव दिस्टि तर कोई॥
आपुन देखि देखि मन राखौं। दूसर नाहिं सो कासौं भाखौं॥
सब जगत दरपन कर लेखा। आपुन दरसन आपुहिं देखा॥

स्पष्ट है कि वराग्य की तीव्र धारा के स्पर्श से एक बार ही उनका मन आनन्दप्लावित हो गया। प्रियतम का जो रूप नयना मे समा गया था वही भीतर और बाहर का आनन्द था और वही मिलन की वेदना का कारण बना। रत्नसेन का वराग्य मानों कवि का अपना ही अनुभव है जिसमे ससार का मोह छूट जाता है और परमात्म ज्योति रूपी प्रमिका से मिलने के लिए हृदय मे आकुलता भर जाती है।[5]

सचमुच वराग्य के अनन्तर जायसी को महान आत्मिक सुख हुआ होगा। उन्होने परमात्म-तत्व के दशन अवश्य किए थे। उसे उन्हाने विश्व क कण-कण म

१—जा० ग्र० प० रामचन्द्र शुक्ल भूमिका पृ० ७।
२—वही।
३—पदमावत डा० वासुदेवशरण अग्रवाल प्राक्कथन, प० ३५।
४—जा०ग्र० डा० माताप्रसाद गुप्त (आखिरी कलाम १ । २–७) प० ६६०।
५—पदमावत डा० वासुदेवशरण अग्रवाल प्राक्कथन प० ३५–३६।

देखा और अनुभव किया था।

मित्र

जायसी ने बड़े ही उल्लसित कंठ से अपने चार मित्रों का उल्लेख किया है—मलिक यूसुफ, सालार कादिम, सलोने मियां और बड़े शेख।

पद्मावत के प्रारम्भ में ही जायसी ने अपने इन चारों मित्रों की प्रशस्ति की है—

'चारि मीत कवि मुहमद पाए। जोरि मिताई सरि पहुँचाए॥
यूसुफ मलिक पंडित औ ज्ञानी। पहिलै भेद बात उन्ह जानी॥
पुनि सलार कादिम मतिमाहाँ। खाँड़ दान उभै निति बाहाँ॥
मियां सलोने सिंघ अपारू। वीर खेत रन खरग जुझारू॥
सेख बड़े बड़ सिद्ध बखाने। कइ अदेस सिद्धन बड़ माने॥
चारिउ चतुर दसौ गुन पढ़े। औ संग जोग गोसाईं गढ़े॥
बिरिख जो आछहिं चंदन पासा। चंदन होहिं बेधि तेहि बासा॥
मुहमद चारिउ मीत मिलि, भए जो एकइ चित्त।
एहि जग साथ निबाहा ओहि जग बिछुरन कित्त॥'[1]

नागरीप्रचारिणी पत्रिका के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि यूसुफ मलिक पट्टी कंधाना के रहने वाले थे। अब उनके वंश में कोई नहीं है। सालार कादिम सालार पट्टी के रहने वाले थे और वे शाहजहां के वक्त तक जीवित रहे। वे पुत्रहीन थे। उनकी लड़की के वंशज आज भी कंधाना कला मुहल्ले में बसे हुए हैं। ये अत्यन्त बुद्धिमान तलवार के धनी जमादार और दानी भी थे। सलोने मियां नाम के तीन व्यक्ति जायसी के समय में जायस में थे। जनश्रुति है कि जायसी से इन तीनों का स्नेह सम्बन्ध था, तीनों सज्जनता वीरता और धन वैभव से सम्पन्न थे। बड़े शेख नाम के पांच व्यक्ति कहे जाते हैं।[2] जिस बड़े शेख से जायसी की मैत्री थी वे बड़े सिद्ध पुरुष थे।

मृत्यु

सयद कल्बे मुस्तफा ने[3] लिखा है कि जब मुरीदी करते बहुत दिन बीत गए, तो जायसी और उनके साथी हजरत निजामुद्दीन के दिल की उत्कट अभिलाषा

१–जा० ग्र० डॉ० माताप्रसाद गुप्त (पद्मावत २२।१) पृ० १३८।
२–ना०प्र० पत्रिका भाग २१, पृ० ५३–५६।
३–म०मु० जायसी सयद कल्बे मुस्तफा पृ० ३८।

हुई कि हम भी अपनी गद्दी स्थापित करके शिष्य बनाए । इस इच्छा को इन लोगो ने गुरु के चरणो म उपस्थित होकर कहा । इनके गुरु ने आज्ञा दी कि अमेठी चले जाओ, यह सुनकर दोनो शिष्य मौन हो गए । प्रश्न था कि एक ही स्थान पर दो गुरु किस प्रकार रहेगे ? गुरु की आज्ञा म मीन-मेख निकालना अनुचित है अत जायसी ने विवेक से काम लिया । गुरु के उस आवास मे दो द्वार थे एक पूव की ओर और दूसरा पश्चिम की ओर । उन्होंने पश्चिम वाले द्वार से कल्गी मिया को भेजा और वे लखनऊ वाली अमेठी की ओर गए । आज भी उस अमेठी को लोग लखनऊ मिया की अमेठी कहते हैं । जायसी पूर्वी द्वार से गए अमेठी की ओर गए । गढ अमेठी के पास के जगल मे उन्होंने अपना स्थान बनाया ।

दूसरी जनश्रुति है कि जायसी अपने समय के एक महान फकीर माने जाते थे । चारो ओर उनकी ख्याति प्रख्याति थी । उनके शिष्य उनके मान सम्मान को और वर्द्धित-संवर्द्धित कर रहे थे । ये शिष्य पदमावत के अशो को गा-गाकर भिक्षा मागा करते थे । एक दिन जायसी के एक शिष्य ने अमेठी नरेश रामसिंह को नाग मती का 'बारहमासा' सुनाया–

कवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गयेउ सुखाइ ।
सूखि बेलि पुनि पलुहै जो पिउ साथ आइ ॥ आदि

उस भीख मागने वाले से राजा ने पूछा कि यह किस कवि की रचना है तो उसने जायसी का नाम बताया । रामसिंह बड सम्मान के साथ जायसी को अमेठी गढ म लिया आये[1] । अपने जीवन के अन्तिम समय तक व अमेठी मे ही रहे । अमेठी के राजा रामसिंह उन पर बडी श्रद्धा रखते थे ।[2]

(१) सयद कल्बे मुस्तफा ने एक बहेलिया के द्वारा जायसी के मारे जाने की घटना का अत्यन्त मनोरजक वणन किया है । इस घटना का उल्लेख प रामचन्द्र शुक्ल ने भी किया है ।[3]

अमेठी नरेश जब जायसी की सवा म उपस्थित होते थे तो उनका एक तुफगची (बहेलिया) भी उनके साथ जाता था । जायसी बहेलिया का विशेष सत्कार करते थे । लोगो के कारण पूछने पर उन्होंने कहा कि यह मेरा कातिल है । यह सुनकर सभी लोग आश्चय चकित हो गय । बहेलिये ने निवदन किया कि इस पाप कम के पहले ही मुझ कत्ल कर दिया जाए । राजा रामसिंह ने भी यह उचित समझा परन्तु जायसी ने अत्यन्त आग्रहपूवक अपने कातिल को कत्ल होने से बचा लिया । राजा ने उस दिन से उस बहेलिए को बन्दूक तलवार आदि न रखने की

१–जा०ग्र० (भूमिका) प० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ११ ।
२–वही पृ०८ । ३–वही पृ० ८–११ ।

आज्ञा दी, किन्तु विधाता का लेख कौन मिटा सकता है? एक अँधेरी रात में जब वह बहेलिया अमेठी गढ़ से अपने घर जाने लगा तो उसने दरोगा से कहा—समय तय हो गया है और मेरी राह जंगल में होकर है इसलिए रात भर के लिए एक बन्दूक दे दो प्रातःकाल मैं ही लौटा दूँगा। दारोगा ने भी इस पर कोई आपत्ति न की और एक बन्दूक उस बहेलिया को दे दी। जब बहेलिया जंगल में होकर जाने लगा तो उसे शेर के गुर्राने का सा शब्द सुनाई पड़ा। शेर को पास जानकर उसने शब्द पर गोली छोड़ दी। गोली के साथ गर्जन का शब्द भी बन्द हो गया। बहेलिए ने शेर का मरा जानकर घर की राह ली। उसी समय अमेठी नरेश ने स्वप्न देखा कि कोई कह रहा है कि आप सो रहे हैं और आपके बहेलिए ने मलिक साहब को मार डाला। राजा घबड़ा उठा। वह दौड़ा दौड़ा जायसी के आश्रम के पास गया। उसने देखा—मलिक साहब को गोली लगी है और उनका शरीर निर्जीव हो चुका है। इस दुर्घटना के कारण सारे राज्य में शोक छा गया। बाद में गढ़ के समीप ही उन्हें दफना दिया गया और उनकी समाधि बनवा दी गई।[1]

जायस में यह कहानी आज भी थोड़े से हेरफेर के साथ सुनी जा सकती है।[2]

इस कथा से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि जायसी का अमेठी से बड़ा गहरा सम्बन्ध था। अमेठी के राजा की उनके ऊपर बड़ी श्रद्धा थी। ये अमेठी के पास के ही जंगल में रहते थे और किसी दुर्घटना के शिकार हुए।[3]

मलिक जी की कब्र मगरा के वन में रामनगर (रियासत अमेठी जिला सुलतानपुर अवध) के उत्तर की ओर एक फर्लांग पर है। इसका पक्की चहार दीवारी अभी मौजूद है। इस पर अब तक चिराग जलाए जाते हैं। राजा ने एक कुरान पढ़ने वाला भी नियुक्त किया था, जिसका सिलसिला १३१३ हि० (१९१५ ई०) में बन्द हो गया।[4]

जायसी की कब्र अमेठी नरेश के वर्तमान कोट से पौन मील की दूरी पर है। यह वर्तमान कोट जायसी की मृत्यु के काफी बाद में बना हुआ है। अमेठी के राजाओं का पुराना कोट जायसी की कब्र से डेढ़ कोस की दूरी पर था। पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि यह प्रवाद कि अमेठी के राजा को जायसी की दुआ से पुत्र उत्पन्न हुआ और उन्होंने अपने कोट के पास उनकी कब्र बनवाई निराधार है।[5]

१—चित्ररेखा सं० शिवसहाय पाठक भूमिका पृ० २९—३०।
२—वही पृ० ३०। ३—वही
४—ना० प्र० पत्रिका वर्ष ४५ अंक १ वैशाख १९९७ पृ० ५९।
५—जायसी ग्रंथावली पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ८।

कोट के समीप का अर्थ कोट के निकट या अत्यन्त निकट ही नहीं होता—कोट से कुछ दूर भी होता है—अनतिदूर भी होता है। जायसी की कब्र देखने पर लगता है कि कब्र से कुछ ही दूरी पर अमेठी का कोट रहा होगा। जायसी की कब्र से पुराने कोट की ओर चलते समय लगता है कि थोडी ही दूरी के बाद कोट के ढूहे शुरू हो जाते है और ढूहा का परम्परा कुछ दूर तक चली गई है और यदि 'वैज्ञानिक चश्मे' को उतार कर भारतीय परम्परा और सिद्धत्व की दृष्टि से विचार करें तो जायसी की दुआ से अमेठी नरेश को पुत्र प्राप्त होने वाली बात भी ठीक मानी जा सकती है।

निष्कपत कहा जा सकता है कि जायसी की मृत्यु अमेठी के समीपवर्ती जंगल में किसी दुर्घटनावश ६४६ हिजरी में हुई।

मलिक मुहम्मद जायसी अन्तःसाक्ष्यों एवं बहिःसाक्ष्यों के आधार पर जायसी का जीवन

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने जन्म के सम्बन्ध में लिखा है —

भा औतार मोर नौ सदी। तीस वरिस ऊपर कबि बदी।
आवत उघत चार बड ठाना। भा भूकंप जगत अकुलाना॥[1]

पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि इन पंक्तियों का ठीक तात्पर्य नहीं खुलता। नवसदी ही पाठ मानें तो जन्मकाल ६०० हिजरी (सन १४६२ के लगभग) ठहरता है। दूसरी पंक्ति का अर्थ यही निकलेगा कि जन्म से ३० वर्ष पीछे जायसी अच्छी कविता करने लगे।[2]

पं० चन्द्रबली पाण्डेय[3] जायसी की उपर्युक्त पंक्तियों का अर्थ नवीं सदी हिजरी में ३० वर्ष बीतने पर अर्थात ८३० हिजरी मानते हुए जायसी की जन्म तिथि ८३० हिजरी (१४२७ ई०) सिद्ध करते हैं।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ ने लिखा है– जायसी का जन्म ६०६ हिजरी में हुआ था। जायसी ने यह बात स्पष्ट बतला दी है। वे कहते हैं —

नौ सै बरस छतिस जब भए। तब एहि कथा के आखर कहे।

अर्थात ६३६ हिजरी में उन्होंने आखिरी कलाम की रचना की। 'भा अवतार कवि बदी।' अर्थात तीस वर्ष की आयु में उन्होंने यह रचना की और वे नवसदी में पैदा हुए थे। ६३६ हिजरी में से तीस वर्ष निकाल देने पर ६०६ हिजरी

१–जायसी ग्रंथावली डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० ६८८।४–१–२
२–जायसी ग्रंथावली पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ५।
३–नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १४ सं० १६६० पृ० ३६७।

आता है। ६११ हिजरी में एक बहुत कड़ा भूकम्प आया था और सूर्यग्रहण भी ६०८ हिजरी में पड़ा था। जायसी इन घटनाओं को वयस्क होने पर कह सकते थे कि वे उनके जन्म के समय में हुई थी। नव सनी का अर्थ था तो कवि को ठीक ठीक न मालूम था या नई सनी से ही उसका तात्पर्य था। नव शब्द का प्रयोग 'नये' के अर्थ में कवि ने अनेक स्थलों पर किया है। ९०६ हिजरी के लिये कवि यह कह सकता था कि उसका जन्म एक नई सदी में हुआ था और यह भी हो सकता है कि कवि नव सदी का अर्थ ९०० के बाद का समय समझता हो। 'आखिरी कलाम' के साम्य से यह ९०६ हिजरी जन्म सन इतना स्पष्ट निकलता है कि सहसा उस पर बिना किसी अति प्रबल प्रमाण के अविश्वास नहीं किया जा सकता।[1]

सयद कल्बे मुस्तफा ने लिखा है—'कस्बा जायस में मुहम्मद जहीरुद्दीन बाबर शाह के अहद में सन ९०० हिजरी (१४९५ ई०) में पैदा हुए।[2]

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने जायसी की 'भा अवतार मोर नव सनी' आदि पंक्तियों को उद्धृत करते हुए लिखा है नवी सनी हिजरी (१३९८-१४९४ ई०) के बीच में किसी समय जायसी का जन्म हुआ। नव सदी से यह अर्थ लेना कि ठीक ९०० हिजरी में जायसी का जन्म हुआ था कवि के जीवन की अन्य तिथियों से संगत नहीं ठहरता। पदमावत की रचना सन १५२७ से १५४० ई० के बीच में किसी समय हुई। उस समय व अत्यन्त वृद्ध हो गए थे। अतएव १४९४ ई० को उनका जन्म संवत मानना कठिन है।[3] डा० जयदेव की जायसी की जन्म तिथि से सम्बद्ध मान्यता है कि जायसी का जन्म ९०० हिजरी (सन १४९४ ई०) में हुआ था जिसका वर्णन उन्होंने अपने काव्य आखिरी कलाम में किया है—भा अवतार मोर नव सनी।[4]

जायसी के जन्म सन से सम्बद्ध विवेचना की तालिका इस प्रकार है —

८३० हिजरी	नवी सदी हिजरी में तीस वर्ष बीतने पर—१४७७ ई०	पं० चन्द्रबली पाण्डेय[5]
९०० हिजरी	१४९२ ई० के लगभग	पं० रामचन्द्र शुक्ल
९०० हिजरी	१४९५ ई०	डा० जयदेव

१—म० मु० जायसी डा० कमलकुल श्रेष्ठ, पृ० १६।
२—म० मु० जायसी सयद कल्बे मुस्तफा।
३—पदमावत, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राक्कथन, पृ० ३२।
४—सूफी महाकवि जायसी डा० जयदेव, पृ० ३१।
५—नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग १४, पृ० ३९७।

६०६ हिजरा	डा० कमलकुल श्रेष्ठ
६०० हिजरी १४६५ ई०	सयद कल्बे मुस्तफा
नवीं सदी हिजरी १३६८–१४६४ ई के बीच किसी समय	डा वासुदेवशरण अग्रवाल
६०६ हिजरी १४६६ ई	डा० विमलकुमार जैन[1]
८३० हिजरी (मृत्यु ६४६ हि)	प० सूयकान्त शास्त्री[2]

आखिरी कलाम म जायसी ने अपने सम्बन्ध म स्वय लिखा है—

भा औतार मोर नौ सदी। तीस बरिख ऊपर कवि बदी ॥
आवत उधत चार बड ठाना। भा भूकम्प जगत अकुलाना ॥
धरती दीन्ह चक्र बिधि भाई। फिर अकास रहट क नाई ॥
गिरि पहार मदिनि तस हाना। जस चाला चलनी भल चाना ॥
मिरित लोक जेहि रचा हिंडोना। सरग पताल पवन घट (खट?) डोना ॥
गिरि पहार परवत ढहि गये। सात समुद्र कहुच (कीच?) मिल भये ॥
धरती फ़ात फाटि भहरानी। पुनि भइ मया जौ सिस्टि हठानी (दिठानी) ॥
जो अस खभहि पाइक सहस जीव (जीभ?) गहिराइ।
सो अस कीन्ह मुहम्मद तो अस बपुरे काइ ॥[3]

वस्तुत जायसी की इन्ही पक्तियो के आधार पर नौ सदी से ६० हिजरी अर्थात १४६२ ई० या १४६४ ई को जायसी की जन्म तिथि मानने म कवि के जीवन की अन्य तिथियो से सगति नही बठती।

डा कमलकुल श्रेष्ठ का यह कथन कि नौ सदी का अर्थ या तो कवि को ठीक ठीक नही मालूम था या नई सदी से ही उसका तात्पय था स्वय म अशक्त है। एक तो जायसी जसे समथ भाषाविद और महाकवि के लिये इस प्रकार के कथन समीचीन नही हैं और दूसरे नौ सदी नई सदी अथ लगाने की बात भी समझ मे नही आती क्योंकि उन्होंने जायसी का जन्म काल ६०६ हिजरी माना है। ऐसा मानने पर तो नई सदी के अनुसार नव (६) सदी नही बल्कि दस सदी होना चाहिए। उनके ६०६ हि० की सगति है कि जायसी ने पदमावत की रचना २१ वप की आयु म की या प्रारम्भ की किन्तु यह बात सभव नही प्रतीत होती।

१–सूफीमत और हिन्दी साहित्य डा० विमलकुमार जैन पृ० ११६।
२– ही वाज बान इन ८३० (एच०) इन द कचन मुहल्ला आफ द टाउन (जायस) पदुमावति प्रो० सूयकान्त शास्त्री प्रीफेस पृ० ५।
३–जा० ग्र० डा० माताप्रसाद गुप्त प० ६८८।४

'पदमावत हिन्दी के सर्वोत्तम प्रबंध काव्यों में है।[1] और इस श्रेष्ठ काव्य की रचना इक्कीस वर्षीय युवक के द्वारा संभव नहीं है। पदमावत में ही कुछ पंक्तियाँ ऐसी हैं जिनके साक्ष्य पर पदमावत की रचना के समय जायसी वृद्ध हो चले थे या वृद्ध थे।

मुहमद बिरिध बएस जब भई। जोबन हुत सो अवस्था गई॥
बल जो गएउ कै खीन सरीरू। दिस्टि गई नैनन्ह दै नीरू॥
दसन गए कै तुचा कपोला। बैन गए अनरुचि दै बोला॥
बुधि गई हिरदै बौराई। गरब गएउ तरहुँत सिर नाई॥
सरवन गए ऊँच दै सुना। कारी गएउ सीस भा धुना॥
भँवर गएउ केसन्ह दै भुवा। जोबन गएउ जियत जनु मुवा॥
तब लगि जीवन जोबन साथा। पुनि सो मीचु पराए हाथा॥
बिरिध जो सीस डोलाव, सीस धुनै तेहि रीस।
बूढ़े आढ़े होहु तुम्ह, केइ यह दीन्ह असीस॥[2]

स्पष्ट है कि पद्मावत की रचना के समय वे अत्यंत वृद्ध हो गए थे।[3] यह एक प्रकार से अन्तर्विरोध है और इसी कारण ९०० हिजरी या ९०६ हिजरी को जायसी का जन्म तिथि मानना युक्ति संगत नहीं जँचता।

इस प्रसंग में एक बात और द्रष्टव्य है कि जायसी की मृत्यु तिथि के विषय में भी अनेक मत दिए गए हैं —

कई विद्वान जायसी की मृत्यु तिथि १६५९ ई० मानते हैं। श्री गुलाम सरवर लाहौरी इनकी मृत्यु तिथि १६३९ ई० मानते हैं।[5] श्री काजी नसरुद्दीन हुसैन जायसी ने जिन्हें अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सनद मिली थी, अपनी याददाश्त में इनका मृत्युकाल ५ रजब ९४९ हिजरी (१५४२ ई०) दिया है।[6]

यह काल कहाँ तक ठीक है नहीं कहा जा सकता। इसे ठीक मानने पर जायसी दीर्घायु व्यक्ति नहीं ठहरते। उनका परलोकवास ४९ वर्ष से भी कम की अवस्था में सिद्ध होता है पर जायसी ने पदमावत के उपसंहार में वृद्धावस्था का जो वर्णन किया है वह स्वतः अनुभूत-सा जान पड़ता है।[7]

१—जा० ग्र० पं० रामचन्द्र शुक्ल वक्तव्य, पृ० १।
२—पदमावत डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल पृ० ७१४–७१५।
३—वही, प्राक्कथन पृ० ३२।
४—ना० प्र० पत्रिका भाग २१ पृ० ५८।
५—खजीनतुल असफिया सरवर, पृ० ४७३।
६—जा० ग्र० पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ८। ७—वही पृ० ८।

प० चन्द्रबली पाडय[1] का मत है कि काजी नसरुद्दीन हुसन जायसी ने जो मृत्यु तिथि (५ रजब ९४९ हिजरी, सन १५४२ ई०) दी है वह ठीक और प्रामाणिक है।

यहा पर विशेष द्रष्टव्य है कि जायसी ने पदमावत की सजना १५४० ई० के आसपास की थी। अत १६३९ ई० या १६५९ ई० को जायसी का मत्युकाल मानना समीचीन नही है। पूर्वाक्ति पक्तियो म लिखा जा चुका है कि पदमावत की रचना के समय कवि अत्यत वद्ध हो चला था। और अत्यत वद्ध होने के पश्चात वह ९९ वप या ११९ वप तक और जीवित रहा —यह बात गल के नीचे नही उतरती।

सयद कल्बे मुस्तफा साहब ने लिखा है कि जिस वप व दरबार मे बुलाए गए थ उसी वप उनकी मृत्यु हुई।[2]

मुस्तफा साहब ने गुनाग सरवर लाहौरी और अब्दुल कादिर के साक्ष्य पर जायसी की मृत्यु तिथि सन १०४९ हिजरी को ही स्वीकार किया है। मुस्तफा साहब की दी हुई तिथि को भी स्वीकार करन म अनेक आपत्तिया हैं। उनके मत के अनुसार जायसी का जीवनकाल १४९ वप का ठहरता है। यदि यह असभव नही तो असाधारण बात अवश्य है किन्तु अत या बहि किसी साक्ष्य स आजतक यह बात ज्ञात नही हुई कि व लगभग डढ सौ वप के होकर मरे और यदि १०४९ हिजरी तक वतमान थे और ९४७ हिजरी (१५४० ई० के आसपास) पदमावत की रचना कर चुके थे तो शेष १०० वप से अधिक लबे अवकाश म अखरावट के अतिरिक्त अन्य पुस्तक का न लिखना उन जसे क्रियाशील सूफी के लिए असभव ही प्रतीत होता है। इस विवचन के पश्चात यह निश्चय ठीक प्रतीत होता है कि मलिक मुहम्मद जायसी ९४८ हिजरी म राज्य की ओर से अमठी म आमत्रित किए गए और ९४९ हिजरी म उनका शरीरात हो गया।

पुन यदि ९०० हिजरी या ९०६ हिजरी (क्रमश प० रामचन्द्र शुक्ल और श्री कमलकुल श्रेष्ठ के मतानुसार) को जयसी की जन्म तिथि माने तो मानना पडगा कि उनकी मृत्यु ४३ या ४९ वप की आयु म हुई। इस मत के विरोध म (पदमावत के उपसहार मे वर्णित वृद्धावस्था के वणन के अतिरिक्त) एक और प्रबल तक है। पद्मावत के स्तुति-खण्ड में कवि ने शाहे-तख्त शेरशाह को आशीर्वाद देने का उल्लेख किया है—

१—ना० प्र० पत्रिका भाग १४ प० ४१७।

२—म० मु० जायसी सयद कल्ब मुस्तफा पृ० ७५।

दीन्ह असीस मुहम्मद करहु जुगहि जुग राज ।
पातसाहि तुम जगत के जग तुम्हार मुहताज ॥[1]

दिल्ली की गद्दी पर बैठने के समय शेरशाह की अवस्था ५३–५८ वर्ष की हो चुकी थी। शेरशाह बादशाह का आशीर्वाद देनेवाला कवि अवश्य वृद्ध रहा होगा। अतः पदमावत के अंतिम छन्द में कवि का स्वतः अनुभूत वृद्धावस्था का वर्णन मानना ही ठीक है। पदमावत लिखते समय जायसी वृद्ध हो चुके होंगे। उन्हें अपने जन्म संवत का स्वयं ठीक पता न रहा होगा इसलिए उन्होंने 'भा औतार मोर नौं सदी' लिखा होगा। उनका जन्म नौवीं शताब्दी हिजरी में अर्थात् १३६८ और १४९४ ई० के बीच कभी हुआ।[2] इसलिए ९०० हिजरी या ९०६ हिजरी को जायसी का जन्मकाल नहीं माना जा सकता।

सन् १९५०–५१ ई० में प्रोफेसर सैयद हसन अस्करी को मनेर शरीफ से कई ग्रन्थों के साथ पदमावत और अखरावट की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई। ये प्रतियाँ शाहजहाँ-कालीन बताई गई है। 'अखरावट' की प्रति की पुष्पिका में जमादि-उल-अव्वल, ९११ हिजरी का उल्लेख है। "तमाम सुद पोथी अखरौती वजुबाने मलिक मुहम्द जायसी किताबे हिंदवी किताबुल मिनक व कातिबे हुरूफ फकीर हकीर मोहम्मद शाकीर साकिन टप्पा मदानू उर्फ बकानू व्यास अमला परगना निजामाबाद व सरकारे जौनपुर सूबे इलाहाबाद बवक्ते जोहर जुमा जकी शहरे मुल्वाद सन ९११। दर मौजे खास दीया मुकाम कनौरा अमला परगना मेहू खसरा मस्तूर अस्त तहरीर याफ्त जियन गुफ्तार नविश्तन ब्जहार नीस्त।" डा० रामसेनावन पांडेय[3] का कथन है कि इलाहाबाद की प्रतिष्ठा ९८१ हि० में होती है। अतः यह प्रति ९८१ हि० के पूर्व की नहीं हो सकती। उन्होंने इसके लिए और भी तर्क दिए है। यह सन मूलतः मूल प्रति या उसकी किसी प्रतिलिपि का है जिसे लिपिकार ने ज्यों का त्यों स्वीकार करके उतार दिया है। अतः यह प्रति ९११ हि० की है प्रतिलिपि काल की है यह मान्य है। प्रो० अस्करी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल[4] और श्री गोपाल राय[5] इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि 'संभवतः जिस मूल प्रति से यह प्रति लिखी गई थी उसकी पुष्पिका में यह तिथि लिखी हुई थी जिसे प्रतिलिपिकार ने ज्यों का त्यों उतार दिया

१–जा० ग्र० डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० १२८।१३
२–पदमावत–सार इन्द्रचन्द्र नारंग पृ० ३।
३–हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक पृ० ३५९।
४–जे० जनल आफ दी बिहार–रिसर्च सोसाइटी भाग ३९, पृ० १९।
५–पदमावत डा० वासुदेवशरण अग्रवाल प्राक्कथन पृ० ३२।
६–ना० प्र० पत्रिका, अंक ३–४ सं० २०१६।

है। इन विद्वानो का विचार है कि मनेर शरीफ की इस प्रति के साक्ष्य पर अखरावट का रचनाकाल ९११ हिजरी माना जा सकता है। अखरावट जायसी की प्रारम्भिक रचना है जिस भूकप का जीवत चित्र जायसी ने आखिरी कलाम म न्यिा है और जिसे डा० कमलकुल श्रेष्ठ[१] प० परशुराम चतुर्वेदी[२] आदि विद्वानो ने जायसी के जन्म के समय घटित मान लिया है—उससे भी स्पष्टत सिद्ध हो जाता है कि जायसी कृत अखरावट का रचनाकाल ९११ हिजरी है।

'भा भूकप जगत अकुलाना। वाले भूकप को इन विद्वानो ने जायसी के जन्म के समय म घटित कहा है। तारीखे–दाऊदी (अब्दुल्लाह) मखजन–अफगिना (नियमतुल्लाह) और मुन्तखबुत्तवारीख[३] (बदायूनी) के अनुसार ९१–११ हि० म उत्तर भारत म एक भयानक भूकप हुआ था और कदाचित इससे इतनी हानि पहुची थी कि इतिहासकारो ने भी जो इस प्रकार की घटनाओ पर विशेष ध्यान नही देते इसका वणन किया है।

९११ हिजरी (सन १५०५) म एक भयकर भूकप आगरे म आया था।[४] बाबरनामा[५] और अल्बदायूनी के मुन्तखबुत्तवारीख से भी स्पष्ट है कि ९११ हिजरी म एक भूकप आया था। यदि अखरावट के भूकम्प वणन को ध्यानपूवक पढा जाय तो ऐसा प्रतीत होता है जसे जायसी ने इसे स्वय देखा हो। भूचाल का विस्तृत वणन इस बात का सकेत है कि जायसी ने उसे देखा और उसकी विकरालता का अनुभव किया था।[६] जायसी के जन्म के समय भूकम्प हुआ था या नही किन्तु यह स्पष्ट है कि अखरावट म जिस भूकम्प का उल्लेख है उसम और ९१० हिजरी के आसपास आए हुए भूकम्प के उल्लेख म साम्य है। इसम यह बात प्रमाणित होती है कि

१–म० मु० जायसी डा कमलकुल श्रेष्ठ प० ७।

२–सूफी का य सग्रह प परशुराम चतुर्वेदी प० १ ४।

३–जनल आफ दी बिहार रिसच सोसाइटी भाग ३९ प १९।

४–३ सफर सन ९११ (६ जुलाई १५०५ ई) को भूकप आया था, आइने अकबरी प० ४२१।

५– दूसरे वष १५०६ ई० म आगरा म एक भयकर भूकप आया था। इससे धरती काप उठी थी और अनेकानेक सुन्दर इमारतें और मकान धराशायी हो गए थे। डा० ईश्वरी प्रसाद ए शाट हिस्ट्री आफ मुस्लिम रूल इन इंडिया प० २३२।

६–बाबर ने लिखा है– तीसरी सफर को तनीस धक्के लगे और प्राय एक मास तक दो तीन धक्के लगते रहे। इलियट भाग ४ प० २१८।

७–मुन्तखबुत्तवारीख (अल्वदायूनी) अग्रजी अनुवाद रकिंग कृत भाग १ पृ० ४२१।

८–हिन्दी अनुशीलन गोपाल राय प० ९।

अखरावट ९११ हिजरी में लिखा गया। अतः जायसी का जन्मकाल ९०० या ९०६ हिजरी मानना असंगत हो जाता है क्योंकि ५ या ११ वर्ष की अवस्था में अखरावट जैसे सिद्धान्त प्रधान ग्रंथ की रचना संभव नहीं है।"[1]

पूर्वोक्त पंक्तियों में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रो० अस्करी, इन्द्रचन्द्र नारंग आदि के मतों का उल्लेख किया गया है कि ये विद्वान नौ सदी का अर्थ, ८०१ हिजरी से ९०० हिजरी तक का समय लेते हैं अर्थात इसी सदी (सौ वर्ष) के बीच किसी समय जायसी का 'अवतार' हुआ था।

पं० चन्द्रबली पाण्डेय[2] ने नागरीप्रचारिणी पत्रिका में एक लेख लिखकर इसी दृष्टिकोण के अनुसार अपने मत की पुष्टि की थी। वे मानते हैं कि जायसी की जन्मतिथि नवीं सदी में तीस वर्ष बीतने पर मानी जानी चाहिए अर्थात ८३० हि० को जायसी का जन्मकाल मान लिया जाय तो उनकी उम्र ११६ वर्षों की ठहरती है। जायसी जैसे महान संत के लिए यह अवस्था असम्भव नहीं है।

उक्त मत को मान लेने में एक भारी आपत्ति है। पद्मावत का रचनाकाल १५४० ई० निःसन्दिग्ध है। यदि पं० चन्द्रबली पाण्डेय के मतानुसार ८३० हिजरी को जायसी का जन्मकाल स्वीकार करें तो इसका अर्थ हुआ कि पद्मावत की रचना (९४७ हि०) के समय उनकी अवस्था ११७ वर्षों की थी अर्थात जायसी ने ११७ वर्ष की अवस्था में इस ग्रंथ की रचना प्रारम्भ की। जायसी ने पद्मावत में जिस स्वानुभूत वृद्धावस्था का वर्णन किया है वह सम्भवतः इसी अवस्था की वृद्धावस्था है (?) स्पष्ट ही यह मत समीचीन नहीं प्रतीत होता। मनेर शरीफवाली प्रति के साक्ष्य पर किन्हीं का विचार है कि अखरावट का रचनाकाल ९११ हिजरी है। ९११ हि० में से तीस हिजरी वर्ष घटाने पर ८८१ हिजरी आता है और अखरावट में कवि कहता है —

भा औतार मोर नौ सदी। तीस बरिस ऊपर कवि बदी॥

तो स्पष्ट हो जाता है कि ८८१ हि० के लगभग ही जायसी का अवतार हुआ था। इस गणना के अनुसार मृत्यु के समय जायसी की अवस्था लगभग ६८-७० वर्ष की थी। इस प्रकार ८८१ हि० (सन १४७६ ई०) को जायसी की जन्म तिथि मान लेने पर उनके जीवन की अन्य तिथियों की संगति आसानी से बैठ जाती है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि जायसी का जन्म ८८१ हिजरी (१४७६ ई०) में और मृत्यु लगभग ७० वर्ष की अवस्था में ४ रजब ९४९ हिजरी (१५४२ ई०) हुई थी।

१—वही। २—ना० प्र० पत्रिका, भाग १४, पृ० ४१७।

जायसी गुरु-परम्परा

मलिक मुहम्मद जायसी निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा मे थे। इस परम्परा की दो शाखाए हुई—एक मानिकपुर-कालपी की और दूसरी जायसी की। जायसी ने पहली शाखा के पीरों की परम्परा का उल्लेख करते हुए उनका स्तवन किया है। सूफी लोग निजामुद्दीन औलिया की मानिकपुर कालपी वाली परम्परा इस प्रकार बतलाते हैं

शेख निजामुद्दीन औलिया (मृत्यु सन १३२५ ई०, ७२५ हि०)
|
शेख सिराजुद्दीन
|
शेख अलाउल हक
|—————————————— जायस ——
|

शेख कुतुब आलम (पडोई के सन १४१५)
|
शेख हुसमुद्दीन (मानिकपुर)
|
सयद राजे हामिदशाह
|
शेख दानियाल
|
शेख मुहम्मद
|
शेख अलहदाद
|
शेख बुरहान (कालपी)[1]
|
शेख महदी
|
मलिक मुहम्मद जायसी

(जायस शाखा)

सैयद अशरफ जहांगीर
|
शेख हाजी
|
शेख मुहम्मद या मुबारक | शेख कमाल

१—चित्ररेखा स० शिवसहाय पाठक पृ० ७४।१

'पदमावत और अखरावट दोनों में जायसी ने मानिकपुर-कालपी वाली गुरु परम्परा का उल्लेख विस्तार से किया है, इससे डा० ग्रियर्सन ने शेख मोहिदी को ही उनका दीक्षा-गुरु माना है।

रामचन्द्र शुक्ल[1] ने अनुमान लगाते हुए कहा था– गुरुवन्दना से इस बात का ठीक-ठीक निश्चय नहीं होता कि वे मानिकपुर के मुहीउद्दीन के मुरीद थे अथवा जायस के सयद अशरफ के। 'पद्मावत में दोनों पीरों का उल्लेख इस प्रकार है—

सयद अशरफ पीर पियारा। जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा॥
गुरु मोहिदी सेवक मैं सेवा। चले उताइल जेहिकर खेवा॥

निजामुद्दीन औलिया की पूर्ववर्ती गुरु-परम्परा इस प्रकार है–

मुहम्मद
।
अली
।
इमाम हसन बसरी
।
अब्दुल वाहिद
।
ख्वाजा फुजल बिन अयाज
।
सुल्तान इब्राहीम बिन अधम बल्खी
।
ख्वाजा हाफिज अलमरशी
।
ख्वाजा हुबैर अल् बसरी
।
ख्वाजा अनुव (अबू ?) ममशद
।
ख्वाजा बुअस इशाक शामा
।
ख्वाजा अबू अहमद अब्दाल चिश्ती
।
ख्वाजा मुहम्मद जाहिद मनसूल चिश्ती
।
ख्वाजा यूसुफ नासिरुद्दीन चिश्ती
।
ख्वाजा कुतुबुद्दीन मौदूद चिश्ती
।

१–जा० ग्र० रामचन्द्र शुक्ल भूमिका पृ० ६।

ख्वाजी ट्राज शरीफ जिन्दनी
।
ख्वाजा उसमान हरवनी
।
ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
।
ख्वाजा कुतुबुद्दीन
।
शेख फरीदुद्दीन शक्करगंज
।
हजरत निजामुद्दीन औलिया

आखिरी कलाम में केवल सयद अशरफ जहांगीर का ही उल्लेख है। पीर शब्द का प्रयोग भी सयद अशरफ के नाम के पहले किया है और अपने को उनके घर का बन्दा कहा है इससे हमारा (प० रामचन्द्र शुक्ल का) अनुमान है कि उनके दीक्षा गुरु तो थे सयद अशरफ पर पीछे से उन्होंने मुहीउद्दीन की सेवा करके उनसे बहुत कुछ ज्ञानोपदेश और शिक्षा प्राप्त की। जायस वाले तो सयद अशरफ के पोते मुबारक शाह बोदले को उनका गुरु बताते हैं पर यह ठीक नहीं जचता।[1]

शुक्ल जी ने जायसवाली गुरु परम्परा में केवल चार नाम दिये हैं। जायस वाली परम्परा इस प्रकार है—

सयद अशरफ जहांगीर
।
शाह अब्दुरज्जाक
।
शाह सयद अहमद
।
शाह अब्दुरज्जाक
।
शाह सयद हाजी
।
शाह जलाल (प्रथम)
।
शाह सयद कमाल   शाह मुबारक बोदले

१—जा० ग्र० प० रामचन्द्र शुक्ल भूमिका प० ६—१०।

यहा पर विशेना का ध्यान एक अत्यत महत्वपूर्ण तथ्य की ओर आकृष्ट करना अपेक्षित है। शुक्लजी ने जायसी ग्रथावली की भूमिका में उपयुक्त बातें लिख दी तब से लेकर आजतक इस विषय के (प्राय सभी) शोधकों ने शुक्लजी के ही वाक्यो का घुमाफिरा करके शोध के नाम पर प्रस्तुत किया है। क्या सचमुच सयद अशरफ और मुहीउद्दीन दोनो जायसी के गुरु थे ? क्या मुबारक शाह बोदले भी जायसी के गुरु थे ? जायसी ने गुरु-विषयक क्या क्या बातें लिखी हैं ?

ऐतिहासिक प्रमाणो से सिद्ध हो चुका है कि सयद अशरफ एक महान् सूफी सत थे और उनकी मृत्यु ८०८ हिजरी म हुई थी।[1] जायसी का उनकी मृत्यु के काफी बाद म अवतार' हुआ था। जायसी ने उन्हे पूज्य पीर माना है। उन्होंने पदमावत म ही अपनी गुरु-परम्परा और अपने गुरु की बात स्पष्ट रूप से लिख दी है—

सयद असरफ पीर पियारा। तिन्ह मोहि पथ दीन्ह उजियारा।
जहागीर ओइ चिस्ती निहकलक जस चाद।
ओइ मखदूम जगत के हौं उन्हके घर बाद॥

वे सयद अशरफ जहागीर चिश्ती वश के थे और चाद जैसे निष्कलक थे। वे जगत के मखदूम (स्वामी) थे और मैं उनके घर का सेवक हू।

इससे स्पष्ट है कि जायसी स्वय को उनके घर का सेवक के रूप म मानते थे। वे आगे और लिखते हैं —

'उन्ह घर रतन एक निरमरा। हाजी सेख सभागइ भरा॥
तिन्ह घर दुइ दीपक उजियारे। पथ देइ कह दइअ सवारे॥
सेख मुबारक पूनिउ करा। सेख कमाल जगत निरमरा॥'[2]
मुहम्मद तहा निचित पथ जेहि सग मुरसिद पीर।
जेहि रे नाव करिआ औ खेवक बेग पाव सो तीर॥'[3]

उस समय अशरफ जहागीर के घर म एक निर्मल रत्न हाजी शेख' हुआ जो सौभाग्य सम्पन्न था। उनके घर म मार्ग दिखलाने के लिए दो उज्ज्वल दीपक सवारे। एक शेख मुबारक जो पूनम की कला के समान था और दूसरा शेख कमाल जो ससार भर म निर्मल था। मलिक मुहम्मद का कथन है कि विश्व म जिसके सग म मुर्शिद (गुरु) और पीर (सत) हो, वह मार्ग म निश्चिन्त रहता है। जिसकी नाव म पत वरिया और खिवया दोनो हो वह शीघ्र तीर पर पहुच जाता है।

१—अखबार उल अख्यार के अनुसार इनकी मृत्यु ८४० हि० म हुई।
द० हिंदी अनुशीलन धीरेन्द्र वर्मा विशेषाक, पृ० ३६८।
२—जा० ग्र० डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० १३२
३—जायसी ग्रथावली डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० १३२, दो० १९

इतना लिखने के पश्चात उन्होंने गुरु लिखा –

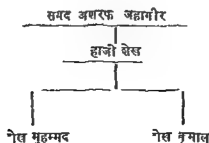
गुरु मोहदी सेवक मैं सेवा। चल उताइन जिन्ह कर सेवा ॥
अगुआ भएउ सेख बुरहानू। पथ लाइ जेंहि दीन्ह गियानू ॥
अलहदाद भल तिन्हकर गुरू। दीन दुनिअ रोसन सुरखुरू ॥
सयद अहमद के ओइ चेला। सिद्ध पुरुष संग जेंहि खेला ॥
दानिआल गुरु पथ लखाऐ। हजरत ख्वाज खिजिर तिन्ह पाए ॥
भए परसन ओहि हजरत ख्वाजे। लइ मेरए जहं सयद राजे ॥
उन्ह सौं मैं पाई जब करनी। उघरी जीभ प्रेम कबि बरनी ॥
आइ सो गुरु हौं चेला निति बिनवौं भा चेर।
उन्ह हुति देखइ पावौ दरस गोसाई केर ॥

गुरु 'मोहदी' खेनेवाले है। मैं उनका सेवक (शिष्य) हूं। उनका डांड शीघ्रता से चलता है। शेख बुरहान अगुआ (मार्ग दर्शक) हैं। उन्होंने मार्ग पर लाकर ज्ञान दिया। बुरहान के गुरु अलहदाद थे जो दीन दुनिया में सुविदित तेजस्वी थे। वे सयद मुहम्मद के शिष्य थे जिनकी संगति में पहुंचे हुए लोग रहते थे। उन्हें गुरु दानियाल ने मार्ग दिखाया था। हजरत ख्वाजा खिज से कहीं उनकी भेंट हो गई थी। व हजरत ख्वाजा उनपर प्रसन्न हो गये और जहां सयद राजे थे वहां ले जाकर मिला दिया। उन गुरु मुहीउद्दीन से जब मैंने कर्म की योग्यता पाई तो मेरी जीभ खुल गई (वाणी फूट निकली) और वह प्रेम काव्य का वर्णन करने लगी।

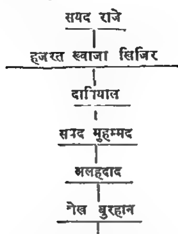
'ये हमारे गुरु हैं मैं उनका चेला हूं मैं नित्य उनका सेवक बनकर उनकी वंदना करता हूं। उनकी ही कृपा से मैं भगवान के दर्शन पा सकूंगा।

पद्मावत के अनुसार जायसी द्वारा दी गई पीर परम्परा और गुरु परम्परा इस प्रकार है –

(१) पीर–परम्परा



(२) गुरु—परम्परा



अखरावट में वर्णित परम्परायें भी लगभग इसी प्रकार की है। अन्तर यह है कि प्रथम परम्परा में निजामुद्दीन चिश्ती और अशरफ जहांगीर को ही स्मरण किया है और गुरु महदी वाली दूसरी परम्परा हजरत ख्वाजा खिजिर तक ही है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी के दो तीन गुरु नहीं थे एक ही गुरु थे – गुरु मोहदी। यह कहना उन्होने एक गुरु से दीक्षा ली और तत्पश्चात दूसरे 'दूसरे 'गुरु से भी दीक्षा लेकर लाभ उठाया – निराधार है। जायसी ने अन्यत्र भी स्पष्ट लिखा है –

महदी गुरु शेख बुरहानू। कालपि नगर तेहिक अस्थानू।
सो मोरा गुरु हौं तिन्ह चेला। धावा पाप पानि सिर मेला ॥[१]

अतः स्पष्ट है कि इनके गुरु प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मोहदी थे।[२]

गुरु-परम्परा (निष्कर्ष)

भारतवर्ष में सूफी धर्म का प्रवेश ईसा की बारहवीं शताब्दी में हुआ।[३] यह मूलतः चार सम्प्रदायों के रूप में आया जो समय समय पर देश में प्रचारित हुए। उनके नाम और समय निम्नलिखित हैं –

(१) चिश्ती सम्प्रदाय – सन बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध।
(२) सुहरावर्दी सम्प्रदाय – सन तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध।

१–चित्ररेखा सं० शिवसहाय पाठक, पृ० ७४।
२–हिन्दी साहित्य डा० श्यामसुन्दरदास पृ० २६४।
३–हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ३०४।

(३) कादरी सम्प्रदाय – सन पन्द्रहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध।
(४) नक्शबन्दी सम्प्रदाय – सन सोलहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध।

आइने अकबरी में अबुल फजल[1] ने अपने समय में चौदह सूफी सम्प्रदायो का उल्लेख किया है – चिश्ती सुहरावर्दी हबीबी तूफूरी करखीं सक्ती, जुनेदी काजरूनी तूसी फिरदौसी, जदी इयादी अधमी और हुबेरी। इनकी भी अनेक शाखायें फली। भारतीय सूफी सम्प्रदायो मे चिश्ती सम्प्रदाय को बडी ख्याति मिली है। 'इसके पश्चात कादरी सुहरावर्दी सत्तारी और नक्शबन्दी सम्प्रदाय भी अत्यन्त प्रसिद्ध सम्प्रदाय रहे हैं।'[2]

चिश्तिया[1] सम्प्रदाय के मूल सस्थापक अदब अब्दुल्ला चिश्ती बारहवी शती के अन्त मे भारत आए और अजमेर मे रहने लगे। इन्ही की शिष्य परम्परा मे निजामुद्दीन औलिया हुए। निजामुद्दीन की शिष्य परम्परा मे शेख अलाउल हक हुए। उन्ही से अलाई चिश्तिया की एक शाखा मानिकपुर मे स्थापित हुई। इसके आरम्भ कर्ता शेख हिसामुद्दीन थे जिनकी मृत्यु १४४९ ई० (८५३ हिजरी) मे हुई। उनके शिष्य सयद राजे हामिदशाह अपने पीर की आज्ञा से जौनपुर मे आ बसे थे किन्तु फिर मानिकपुर लौट गये। वही १४९५ ई० (९०१ हि) मे उनका देहान्त हुआ। इनके शिष्य शेख दानियाल हुए जो खिज्री खिरका से प्रसिद्ध थे। कहा जाता है कि हजरत ख्वाजा खिज्र से उनकी भेंट हो गई थी जिनसे उन्हे ज्ञान प्राप्त हुआ। दानियाल सुलतान हुसन शर्की (८६२-८४ हि०) के राज्यकाल मे जौनपुर मे बसे थे। उनके अनेक शिष्यो मे एक सयद मुहम्मद हुए जिन्होने महदी होने का दावा किया और वे अपने शिष्यो मे महदी नाम से ही विख्यात हो गए। बदायूनी ने भी जौनपुर के सैयद मोहम्मद महदी का सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है इनकी मृत्यु १५०४ ई० मे हुई। इनके शिष्य शेख अलहदाद हुए और अलहदाद के शेख बुरहान उद्दीन अन्सारी हुए जिन्हे जायसी ने शेख बुरहानू कहा है। शुक्लजी ने बुरहान के शिष्य रूप मे शेख मोहिदी या मही‌उद्दीन का उल्लेख किया है। श्री हसन असकरी ने सिद्ध किया है कि माहदी या मुहीउद्दीन कोई अलग व्यक्ति न थे बल्कि सैयद मोहम्मद की ही सज्ञा महदी थी[3]।

अखरावट और मनेर शरीफ की प्रतियो का पाठ महदी ही है–

गुरु महदी सेवक मै सेवा। २०।१
चले उताइल महदी सेवा अखरावट २७।५

१–ऐन इन्ट्रोडक्शन टू दी हिस्ट्री आफ सूफीज्म आर्थर ज० आरबेरी (इन्ट्रोडक्शन) पृ० ८-८।

२–आउटलाइन्स आफ इस्लामिक कल्चर वाल्यूम २ ए० एम० ए० शुस्तरी पृ० ५४६

३–पद्मावत डा० वासुदेवशरण अग्रवाल प्राक्कथन पृ० ३७।

चित्ररेखा में भी जायसी ने महदी या महदी गुरु का उल्लेख किया है—

महदी गुरू शेख बुरहान । चित्ररेखा प० ७४।१

'पा पाएउ महदी गुरु मीठा । मिला पथमह दरसन दीठा ॥ (छ० २७)

चित्ररेखा की नवोपलब्धि से जायसी-विषयक नवीन तथ्यों की उपलब्धि होता है। 'जायसी के गुरु कौन थे ?' इस विषय को लेकर हिन्दी के अनेक विद्वानों ने बड़ी दूर की कौड़ी लाने के प्रयत्न किये हैं। चित्ररेखा से यह नि सदिग्ध रूप से सिद्ध हो जाता है कि जायसी के वास्तविक गुरु नि सदिग्ध रूप से कालपी वाले मुहीउद्दीन-महदी थे।[1]

महदी गुरू सख बुरहानू । कालपि नगर तेहिक अस्थानू ॥
मक्कइ चौपहि कहि जस लागा । जिन्ह व हुए पाप तिन्ह भागा ॥
सो मोरा गुरू तिन्ह हौं चेला । धोवा पाप पानि सिर मेला ॥
पेम पियाला पथ लखावा । आपु चाखि मोहिं बूद चखावा ॥[2]

हम चित्ररेखा के प्रस्तुत उद्धरण से अत्यन्त स्पष्ट रूप से जायसी के गुरु के सम्बन्ध में प्रचलित विवाद का पूर्ण समाधान मिल जाता है।

'यह अवश्य सत्य है कि जायसी ने सयद अशरफ जहाँगीर की पीर परम्परा का भी उल्लेख किया है। यह फजाबाद जिले म कछौछा के चिश्ती सम्प्रदाय के सूफी महात्मा थे। य आठवी शती हिजरी के अन्त और नवमी शती के आरम्भ म जायसी स बहुत पहिले हुए थे।[3] जायसी उनके घराने के बड़े श्रद्धालु भक्त थे।

जायसी के ग्रन्थों से स्पष्ट है कि उनके हृदय म सयद अशरफ जहाँगीर के प्रति अपार श्रद्धा थी। पदमावत[4] अखरावट[5] आखिरी कलाम[6] और चित्ररेखा[7] चारों ग्रथो म उन्होंने उनका उल्लेख किया है।

ए जी० ग्रिरेफ न अशरफ जहाँगीर चिश्ती को शेख निजामुद्दीन औलिया

१–चित्ररेखा एक बोल आचार्य प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ० १०।

२–चित्ररेखा स० शिवसहाय पाठक पृ० ७४।

३– सैयद अशरफ की मृत्यु के विषय म दो सन दिये गय हैं। एक ८४० हि० अखबार उल अख्यार। राजपूताना गजेटियर के अनुसार उनकी मृत्यु ८०८ हि० म हुई।

४–सैयद असरफ पीर पियारा। पदमावत स्तुति खड १।१८।

५– उधरित असरफ औ जहगीरू। अखरावट दो० २६।

६–आखिरी कलाम ६।१०२ ७–चित्ररेखा।

८–पदमावत का अंग्रेजी अनुवाद ए० जी० ग्रिरेफ पृ० १७।

की चौथी पीढ़ी में और शेख अलाउल हक का शिष्य कहा है। राजपूताना गजेटियर के अनुसार सयद अशरफ की मृत्यु कछोछा नामक स्थान पर हुई थी जहाँ उनकी समाधि है। कहा जाता है कि उन्होंने जौनपुर को ही अपना स्थान बनाया था।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ ने एक और भ्रम की उदभावना की है। उनका कथन है कि जायसी के गुरु शेख मुबारक थे। उन्होंने प्रमाण दिया है कि अन्त साक्ष्य में हों उन्हें परवर्दि कहा गया है। शेख मुबारक के पश्चात शेख कमाल का उल्लेख है। इस प्रकार यदि ऐसा ही अर्थ लेना हो तो शेख कमाल जायसी के गुरु हुए मुबारक नहीं।

कहा जा चुका है कि सैयद अशरफ जायसी के प्यारे पीर थे। जायसी ने गुरु को सेवक और पीर को पतवरिया या करिया कहा है। अपने गुरु के विषय में उन्होंने लिखा है—

पा पाएउ महदी गुरु मीठा। मिला पंथ मह दरसन दीठा॥ अखरावट।
गुरु मोहदी सेवक मैं सेवा। चलै उताइल जिह कर खेवा॥
अगुआ भएउ सेख बुरहानू। पंथ लाइ जेहि दीन्ह गियानू॥

पद्मावत १।२०

अखरावट वाले पाठ का सीधा अर्थ है कि गुरु महदी अर्थात ईश्वर का सन्देश-वाहक है और उस सेवक जीवन-नैया के खेने वाले का मैं सेवक हूँ। उस सेवक का नाम शेख बुरहान है और मैंने कालपी को गुरुस्थान बनाया है (अर्थात कालपी नगर मेरा गुरु स्थान है)। डा० रामखेलावन जी का कथन है कि यहाँ गुरु को महदी कहा गया है और इसमें न तो मोहिउद्दीन चिश्ती के संकेत है और न पीर सैयद मुहम्मद से तात्पर्य। जायसी के अगुआ अर्थात पथ प्रदर्शक है शेख बुरहान।[1] अखरावट और चित्ररेखा में यह कथन स्पष्ट है—

नाव पियार सेख बुरहानू। नगर कालपी हुत गुरु थानू॥ अखरावट।
महदी गुरु सेख बुरहानू। कालपि नगर तेहिक अस्थानू॥ चित्ररेखा।

बदाऊनी के अनुसार बुरहान कारी के मियाँ अलहदाद के सम्पर्क में रहे जो मीर सैयद मुहम्मद जौनपुरी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी थे। प्रो० अस्करी को फुलवारी शरीफ के खानकाह में अरिल्ल छंद में कुछ रचनायें मिली हैं। बदाऊनी को इनकी रचनाओं में ईश्वर प्रेम उपदेशात्मक, वैराग्य सूफीमत प्रतिपादन और ईश्वर प्राप्ति के लिए आत्मा की व्याकुलता का वर्णन मिला था।[2] सन ९६७ हिजरी में बदाऊनी ने इनका साक्षात्कार किया था और उसके साक्ष्यानुसार उनकी

१–डा० रामखेलावन पाण्डेय हिन्दी अनुशीलन पृ० ३७२।
२–बदाऊनी, भाग ३ पृ० १७, हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक पृ०३७२।

मृत्यु सन ६७० हि० म (१५६२-६३ ई०,म) प्राय सौ वर्षों की आयु म हुई।[1] इस प्रकार उनका जन्म ८७० हिजरी के आसपास ठहरता है। उन्होंने कालपी मे अपना निवास स्थान बनवाया था। मृत्यु के अनन्तर वही इन्हें समाधि दे दी गई। आइने-अकबरी मे भी इन्हें कालपी निवासी कहा गया है।[2] तबकाते अकबरी मे इन्हें काली वाल कहा गया है जो लिपिकार का प्रमाद है। इनका पूरा-नाम था शेख इब्राहीम दरवेश बुरहान। डा० रामखेलावन पाडेय ने ग्रैंड काड लाइन पर 'सैयदराजे' नामक स्टेशन के समीपवर्ती ग्राम मे किसी सैयद रजा की छोटी सी दरगाह का उल्लेख ,किया है। उनका कथन है कि सैयद रजा या राजू से जायसी सम्बद्ध थ। टाक्टर साहब को कोई ऐसी जनश्रुति भी उस ग्राम मे मिली है उनका कथन है कि जायसी का जन्मस्थान जायस नहा है। सासाराम म उनका जन्म हुआ था और व शेरशाह के बाल सहचर थ। इनका वास्तविक,नाम था मिया मुहम्मद। पीछे चलकर शेख की उपाधि से विभूषित हुए। हाजी शेख के एक शिष्य का नाम था शेख मिया मुहम्मद। वह हुसेनशाह जौनपुरी का प्रियपात्र था, शेख हाजी की इस व्यक्ति पर पुत्रवत ममता थी। शेख हाजी की मृत्यु ९७६ हिजरी म हुई। बदाऊनी और मिया मुहम्मद का साक्षात्कार बारी म ९७४ हिजरी मे हुआ था। बदाऊनी ने शेख मुहम्मद की कवित्व शक्ति, प्रतिभा और धार्मिक प्रवृत्ति का सविस्तार उल्लेख किया है। शेख हाजी के परिवार म इनके विवाह होने की सभावना है और तहा दिवस दस पहुने आएउ म इसक सकेत देखे जा सकते है। शेख मुबारक के पाठान्तर रूप मे मुहम्मद भी मिला है। इस प्रकार शेख मुहम्मद और मलिक मुहम्मद म अभिन्नता मिलती है। जायसी की मृत्यु ९४८ हिजरी म नहीं हुई। सन ९७४ हिजरी तक उनका जीवित रहना सभव है। जायसी ने दीर्घायु प्राप्त की थी और अत्यन्त वृद्धावस्था म उनकी मृत्यु हुई।[3]

शेख मुहम्मद और मलिक मुहम्मद जायसी की अभिन्नता यदि ठीक होती तो बहुत ही उत्तम होता, पर यह बादरायण सम्बन्ध ठीक नहीं है। पहली बात तो यह कि पाडेय जी के हाथ शब्दों म बदाऊनी के रहत स लख प्रामाणिक नहीं है दूसर जायसी ने ९४० हि० म पदमावत लिखकर ख्याति प्राप्त की थी। यदि अब्दलदायूनी ९७४ हि० म शेखमिया मुहम्मद से मिला था और वह भा 'बारी' म तो उसने पदमावत, अखरावट, आखिरी कलाम आदि ग्रंथा का नाम क्यों नहीं लिखा? यदि मिया मुहम्मद ही मलिक मुहम्मद जायसी होते तो अब्दलदायूनी अवश्य ही उनक 'पद्मावत' का उल्लेख करता, शेरशाह द्वारा प्राप्त उनकी प्रतिष्ठा का भी उल्लेख करता। वास्तविकता यह है कि य कोई दूसर शेख मिया है जायसी नहा। वे शेर

१—हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषाक २—वही,
३—वही, पृ० ३७७ ४—वही, पृ० ३७७ ७८ -

शाह के 'बाल सहचर' थे यह बात भी ठीक नहीं प्रतीत होती जो कवि शेरशाह को बुजुर्ग की तरह आशीर्वाद दे (दीन्ह असीस मुहम्मद करहु जुगहि जुग राज बाद शाह तुम जगत के जग तुम्हार मुहताज) सकता हो जो शेरशाह की प्रशंसा के पुल बाँध सकता हो और यदि वह उसका बाल सहचर होता तो इस बात का उल्लेख कवि ने अवश्यमेव किया होता। जहाँ तक शेख हाजी के परिवार में जायसी के विवाह होने की बात है उसका कोई भी प्रमाण नहीं है। वे सासाराम मे ही जायस मे दस दिन के लिए पाहुन बनकर आए यह बात भी निराधार है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बिना सुदृढ़ प्रमाणों के शेख मियां और मलिक मियां की अभिन्नता ठीक नहीं है। जायसी सासाराम से आए थे और शेरशाह के बाल्य-सहचर थे वाली बातें प्रमाणों और आधारों के अभाव में स्वीकार्य नहीं हैं। जायसी की शादी की शेख हाजी के परिवार मे संभावना वाली बात भी संभावना ही है। और जब अलबदायूनी से मिलने वाले शेख मियां और मलिक मुहम्मद दो व्यक्ति थे दोनों मे अभिन्नता नहीं है तो ९७४ हि० मे जायसी के वर्तमान होने की बात भी आधारहीन हो जाती है।[1]

इस प्रकार डा० रामखेलावन पाण्डेय जी के मत तर्कहीन संभावनाओं पर आधारित होने के कारण स्वीकार्य नहीं है।

१–हिन्दी अनुशीलन धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक पृ० ३७३।

३

जायसी के काव्य की सामान्य रूपरेखा

गार्सां द तासी[1] पं० रामचन्द्र शुक्ल[2] पं० चन्द्रबली पाण्डेय,[3] सयद आले मोहम्मद,[4] सयद कल्बे मुस्तफा[5] प्रो० हसन अस्करी[6] प्रभृति विद्वानों की शोधों अन्यान्य शोधकों खोज रिपोर्टों[8] एवं सूचनाओं के साक्ष्य पर हमें जायसी की निम्नलिखित कृतियों के नाम मिलते हैं–

१–पदमावत	२–अखरावट
३–मखरावत	४–चपावत
५–इतरावत	६–मटकावत
७–चित्रावत	८–सुर्वानामा
९–मोराईनामा	१०–मुकहरानामा
११–मुखरानामा	१२–पोस्तीनामा
१३–होलीनामा	१४–आखिरी कलाम[9]

१–इस्त्वार दी ल लितेरात्यूर ऐंदूई ए ऐंदुस्तानी–गार्सां द तासी, भाग २ पृ० ९८ १८७०।

२–जायसी ग्रंथावली, ना० प्र० सभा द्वि० सं० १९३५।

३–ना० प्र० पत्रिका (पं० चन्द्रबली पाण्डेय का लेख) भाग १४।

४–ना० प्र० पत्रिका (श्री सयद आले मोहम्मद), वर्ष ४५, १९९७ पृ० ५७।

५–मलिक मुहम्मद जायसी सयद कल्बे मुस्तफा, पृ० ८३ और १६४–६५–६६।

६–जर्नल आफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी, भाग ३९, पृ० १२।

७–ना० प्र० (सभा) पत्रिका, भाग १४, पृ० ४१८।

८–ना० प्र० सभा खोज रिपोर्ट १९४७।

९–ग्रंथ संख्या १ पदमावत से लेकर संख्या १४ आखिरी कलाम तक चौदह ग्रंथों के नाम श्री सयद आले मोहम्मद ने गिनाए हैं। उनके अनुसार जायसीकृत यही १४ ग्रंथ हैं। देखिए ना० प्र० प०, वर्ष १९९७, पृ० ५७।

शाह के बाल सहचर थ यह बात भी ठीक नही प्रतीत होती जो कवि शेरशाह को बुजुग की तरह आशीर्वाद दे (दीन्ह असीस मुहम्मद करहु जुगहि जुग राज बादशाह तुम जगत के जग तुम्हार मुहताज) सकता हो जो शेरशाह की प्रशसा के पुल बांध सकता हो और यदि वह उसका बाल सहचर होता तो इस बात का उल्लेख कवि ने अवश्यमेव किया होता। जहाँ तक शेख हाजी के परिवार मे जायसी के विवाह होने की बात है उसका कोई भी प्रमाण नही है। वे सासाराम से ही जायस मे दस दिन के लिए पाहुन बनकर आए यह बात भी निराधार है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बिना सुदृढ प्रमाणा के शेख मिया और मलिक मिया की अभिन्नता ठीक नही है। जायसी सासाराम से आए थे और शेरशाह के बाल्य-सहचर थे वाली बातें प्रमाणो और आधारा के अभाव में स्वीकाय नही हैं। जायसी की शादी की शेख हाजी के परिवार म सभावना वाली बात भी सभावना ही है। और जब अलबदायूनी स मिलने वाले शेख मिया और मलिक मुहम्मद दो व्यक्ति थे दोनो म अभिन्नता नही है, तो ९७४ हि मे जायसी के वतमान होने की बात भी आधारहीन हो जाती है।[1]

इस प्रकार डा० रामखेलावन पाडय जी के मत तर्कहीन सभावनाओ पर आधारित होने के कारण स्वीकाय नही है।

१–हिन्दी अनुशीलन धीरेन्द्र वर्मा विशेषाक प० ३७३।

३

जायसी के काव्य की सामान्य रूपरेखा

गार्सां द तासी,[1] पं० रामचन्द्र शुक्ल[2] पं० चन्द्रबली पाण्डेय,[3] सैयद आले मोहम्मद,[4] सैयद कल्बे मुस्तफा[5] प्रो० हसन अस्करी[6] प्रभृति विद्वानों की शोधों अन्यान्य शोधकों,[7] खोज रिपोर्टों[8] एवं सूचनाओं के साक्ष्य पर हम जायसी की निम्नलिखित कृतियों के नाम मिलते हैं—

१—पदमावत
२—अखरावट
३—सखरावत
४—चंपावत
५—इतरावत
६—मटकावत
७—चित्रावत
८—खुर्वानामा
९—मोराईनामा
१०—मुकहरानामा
११—मुखरानामा
१२—पोस्तीनामा
१३—होलीनामा
१४—आखिरी कलाम[9]

१—इस्त्वार दी ल लितोरत्यूर ऐंदूई ए ऐंदुस्तानी—गार्साद तासी, भाग २ पृ० ९८, १८७० ।

२—जायसी ग्रंथावली, ना० प्र० सभा द्वि० सं० १९३५ ।

३—ना० प्र० पत्रिका (पं० चन्द्रबली पाण्डेय का लेख) भाग १४ ।

४—ना० प्र० पत्रिका (श्री सैयद आले मोहम्मद), वर्ष ४५, १९९७, पृ० ५७ ।

५—मलिक मुहम्मद जायसी सैयद कल्बे मुस्तफा, पृ० ८३ और १६४—६५—६६ ।

६—जर्नल आफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी भाग ३९, पृ० १२ ।

७—ना० प्र० (सभा) पत्रिका, भाग १४, पृ० ४१८ ।

८—ना० प्र० सभा खोज रिपोर्ट १९४७ ।

९—ग्रंथ संख्या १ 'पदमावत' से लेकर संख्या १४ आखिरी कलाम तक चौदह ग्रंथों के नाम श्री सैयद आले मोहम्मद ने गिनाए हैं । उनके अनुसार 'जायसीकृत यही १४ ग्रंथ हैं । देखिए, ना० प्र० प०, वर्ष १९९७, पृ० ५७ ।

१५–धनावत¹
१६–सोरठ¹
१७–जपजी¹
१८–मनावत¹
१९–मखरावटनामा¹
२०–कहारनामा¹
२१–स्फुट कवितायें
२२–लहतावत²
२३–सकरानामा¹
२४–मसला¹ या मसलानामा

पद्मावत के आज अनेक प्रकाशित संस्करण उपलब्ध हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल की जायसी ग्रन्थावली (१९३५ ई०) के अन्तर्गत पदमावत अखरावट और आखिरी कलाम मुद्रित हुए हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त को जायसी का नया ग्रन्थ मिला था जिसे बाईस छंदों में होने के कारण महरी बाईसी नाम से उन्होंने अपने (ना० प्र० के) संस्करण में प्रकाशित किया है। वस्तुतः इस ग्रन्थ का नाम कहरानामा या कहरनामा है जैसा कि इसकी कई हस्तलिखित प्रतियों से अब ज्ञात हो गया है। रामपुर राजकीय पुस्तकालय की पदमावत की प्रति के अन्त में कहारानामा की भी अति सुलिखित प्रति उपलब्ध हुई है। १९५९ ई० में प्रस्तुत विद्यार्थी ने दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर चित्ररेखा का सम्पादन प्रकाशन किया था। प्रस्तुत विद्यार्थी को मसला की भी एक खण्डित प्रति मिली है। प्रस्तुत प्रबन्ध के परिशिष्ट में मसला को टंकित रूप में दिया गया है। कहरानामा या कहारनामा ही आले महम्मद की सूची का मुकहरानामा और मखरानामा ज्ञात होता है। पोस्तीनामा के विषय में जनश्रुति है कि जायसी के गुरु स्वयं अमल करते थे। जायसी ने उन्हें ही दृष्टि में रखकर यह ग्रन्थ लिखा था। इसमें उन्होंने अफीमचियों पर व्यंग किया था। जब जायसी ने इसे अपने गुरु को सुनाया तो वे क्रोधित हो गए। उन्होंने शाप दिया कि तुम्हारे सातों बच्चे छत गिरने से मर जायेंगे। पश्चात पीर ने इतना और कहा कि लड़के तो नहीं बच सकते, पर

१–इस्तवार दी ल लितेरात्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी गार्सां द तासी पृ० ६८।
२–वही पृ० ६८।
३–वही पृ० ६९।
४–जा० ग्र० ना० प्र० सभा पं० रामचन्द्र शुक्ल भूमिका पृ० १९।
५–ना० प्र० प० भाग १४ पृ० ४१८।
६–वही पृ० ४१८।
७–द्रष्टव्य मलिक मुहम्मद जायसी सयद कल्बे मुस्तफा पृ० १६४।
८–जर्नल आफ बिहार रिसर्च सोसाइटी भाग ३९ पृ० १२।
९–वही।
१०–ना० प्र० सभा खोज रिपोर्ट १९४७ तथा ना० प्र० सभा हस्तलिपि ग्रन्थों की सूची में म० मु० जायसी कृत अखरावट और मसला पृ० २५–२६ (हस्तलिखित प्रति)

तुम्हारा नाम तुम्हारे १४ ग्रन्थों से चलेगा।[1] अत में एसा ही हुआ। ये चौन्ह ग्रन्थ ऊपर दी हुई सूची के प्रथम चौन्ह ग्रन्थ है। पोस्तीनामा का कुछ पक्तियाँ मिलती है जैसे—

'जब पुस्ती मां लाग पात। पुस्ती बूदे नौ-नौ हात॥
जब पुस्ती मा लाग फून। तब पुस्ता मटकाव कून॥'[2]

प० रामचन्द्र शुक्ल[3] ने जायस में प्राप्त जनश्रुति के आधार पर लिखा है कि जायसी ने 'ननावत' नाम की एक प्रेम कहानी भी लिखी थी। सम्भव है 'ननावत' में रानी ननावती की प्रेम कहानी लिखी गई है।

जायसी के पदमावत से दोहा १८३–१८६ तक का वर्णन अलग कर दिया जाय, तो वह 'होलीनामा' के ढग की कृति हो जाती है। गार्सा द तासी ने लिखा है कि सोरठ और जपजी की प्रतियाँ बगाल का रायल एशियाटिक सोसाइटी में हैं और 'धनावत' की प्रति डा० स्प्रेंगर के पास है। जायसी की रचनाओं के विषय में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल[5] का कथन उल्लेखनीय है। सम्भव है आगे की खोज में इन ग्रन्थों पर कुछ प्रकाश पड़े। वस्तुत उस युग की यह पद्धति थी कि महाकवि मुख्य ग्रन्थ के अतिरिक्त लोक में प्रचलित विविध काव्य रूपों पर भी प्राय कुछ लिखा करते थे। कबीर का कहरानामा और बसन्त एव चाचर पर फुटकर कविता बीजक में सगृहीत हैं। तुलसी के ग्रन्थ रामायण नहछू और मगल काव्य साहित्य के लोक रूपों की पूर्ति के रूप में लिखे गये थे। मुसलमानी धर्म के विविध अगों पर काव्य लिखने की परम्परा जायसी से शुरू होकर बाद तक चलती रही। आखिरी कलाम में जायसी ने कयामत के दिन का चित्र स्वधर्मानुयायियों के लिए प्रस्तुत किया था। रीवा के जहूर अलीशाह ने तवल्लुदनामा नामक अवधी काव्य में मुहम्मद साहब का जीवन चरित्र लिखा। अब्दुल समद के किसी भागलपुरी शिष्य ने स० १८१० में मेराजनामा नामक अवधी काव्य में स्वर्ग का पूरा वर्णन किया है। किन्तु काव्य गुणों की दृष्टि से इन रचनाओं का विशेष महत्व नहीं है।

अखरावट

अभी तक मुख्य रूप से 'अखरावट' के दो सम्पादित रूप हिन्दी जगत के समक्ष आए हैं—

१—ना० प्र० पत्रिका, भाग २१ वर्ष ४८ पृ० ४७।
२—म० मु० जायसी सयद कल्ब मस्तफा, पृ० १६४।
३—जा० ग्र० ना० प्र० सभा, भूमिका पृ० १०।
४—इस्तवार दी ला लितरातूर ऐंदुई ऐं एंदुस्तानी गार्सा द तासी, पृ० ६८–६६।
५—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पदमावत, प्राक्कथन पृ० ३२।

(१) जायसी ग्रंथावली के अंतर्गत संपादित (पं रामचन्द्र शुक्ल द्वारा) अखरावट सं० १९८१ वि।

(२) जायसी ग्रंथावली के अन्तर्गत सम्पादित प्रकाशित (डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा) सं २००८ वि।

इन दोनों संपादकों के विषय में डा० माताप्रसाद गुप्त[1] ने लिखा है— इस ग्रंथावली में सम्मिलित अखरावट का पाठ अन्य प्रतियों के अभाव में पहिले पं० रामचन्द्र शुक्ल के संस्करण के अनुसार रखा गया था किन्तु संयोग से अखरावट की छपाई प्रारम्भ हो जाने पर उसकी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति प्रान्तीय सेक्रेटरियट के अनुवाद विभाग के विशेष कार्याधिकारी श्री गोपालचन्द्र सिंह जी से मिल गई। इस प्रति का पाठ शुक्लजी द्वारा दिये गये पाठ की अपेक्षा अधिक संतोषजनक प्रतीत हुआ। किंतु छपाई आरम्भ हो जाने के कारण उसका इससे अधिक उपयोग नहीं किया जा सका कि ग्रंथ के अंत में परिशिष्ट जोड़कर इस प्रति का पाठांतर मात्र दे दिया जाय।

शुक्लजी ने यह नहीं लिखा है कि किस मूल प्रति के आधार पर उन्होंने अखरावट का संपादन किया। डा० माताप्रसाद गुप्त ने भी शुक्ल जी द्वारा दिये गये पाठ को ही अपने संपादन में स्थान दिया है। उन्होंने श्री गोपाल चन्द्र सिंह द्वारा प्रदत्त अखरावट की एक प्राचीन प्रति के पाठांतर भी आठ पृष्ठों में दिये हैं।

प्रो० श्री हसन अस्करी[2] के प्रयत्न से बिहार में मनेर शरीफ के खानकाह पुस्तकालय की फारसी लिपि में लिखित अखरावट की एक प्रति मिली है। उनके मत से यह प्रति सत्रहवीं शती में शाहजहां के समय में लिखी गई थी।

१९५६ ई० में प्रस्तुत विद्यार्थी को नागरीप्रचारिणी सभा काशी में 'अखरावट' की एक प्रति नागरी लिपि में लिखी हुई मिली। यह प्रति प्राचीन है और किसी शीतलदास जी द्वारा नागरी लिपि में लिखित है। अखरावट का नाम उन्होंने 'अखरावती' दिया है और इसकी पुष्पिका में लिखा है— लिपा है सीतल दास महम्मद कृत अखरावती ग्रंथ केर एह नाम।'[3]

१—जायसी ग्रंथावली डा० माताप्रसाद गुप्त वक्तव्य पृ० १।

२—द्रष्टव्य—जर्नल आफ बिहार रिसर्च सोसाइटी भाग ३९ १९५३ (प्रो० अस्करी ए न्युली डिसक्वर्ड वाल्यूम आफ अवधी वर्क्स इनक्लूडिंग पदमावत एण्ड अखरावट आफ म० मु० जायसी)।

३—ना०प्र० सभा काशी हस्तलेख-विभाग अखरावट और मसला की प्रति, पृ० २५।

जायस क्षेत्र के समरौता जू० हाई स्कूल के प्रधान अध्यापक श्री त्रिभुवन प्रसाद त्रिपाठी के पास एक हस्तलिखित जायसी ग्रन्थावली है। इसमें नागराक्षरों में लिखित अखरावट की भी एक प्रति है। जायस के ही मौलवी वसी नकवी के पास भी एक जा० ग्र० है। इसमें भी अखरावट की नागराक्षरों में लिखित एक प्रति है।

डा० कमल कुल श्रेष्ठ की निराधार कल्पना

अखरावट जायसी का एक सिद्धान्त प्रधान ग्रन्थ है। प० रामचन्द्र शुक्ल और डा० माताप्रसाद गुप्त के सम्पादनों के अनुसार इस काव्य में कुल ५४ दोहे ५४ सोरठे और ३७१ अर्द्धालियां हैं। इसमें दोहा चौपाई और सोरठा छन्दों का प्रयोग हुआ है। एक दोहा पुनः एक सोरठा और पुनः ७ अर्द्धालियों के क्रम का निर्वाह आदि से लेकर अन्त तक किया गया है। विषय की दृष्टि से इस काव्य को अध्ययन की सुविधा के लिए दो भागों में बांटा जा सकता है–(१) पूर्वार्द्ध प्रारम्भ से लेकर अनिमाघरन (अ) के पश्चात और (२) उत्तरार्द्ध–गुरु चेला संवाद–जो ४४वें सोरठे के पश्चात प्रारम्भ होता है और अंत तक चलता है। गुरु चेला संवाद के विषय में डा० कमलकुल श्रेष्ठ[1] का अनुमान है कि संभव है कि यह जायसी की कहीं पर अलग स्फुट रचना किसी को मिली हो उसने बाद में इसे पदमावत या आखिरी कलाम में न जम सकने के कारण इसमें जोड़ दिया हो। 'कई अन्य लोग'[2] भी इस मत का समर्थन करते हैं। परन्तु अभी तक अखरावट की जो भी हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हुई हैं उनसे स्पष्ट है कि यह बात निराधार एवं कोरी कल्पना मात्र है।

अखरावट का रचनाकाल

जायसी ने इस ग्रन्थ में रचना से सम्बद्ध तिथि निर्देश नहीं किया है। सय्यद कल्बे मुस्तफा का कथन है कि यह जायसी की अन्तिम रचना है–अल्फाज का इन्तखाब जुबान की सानिगी बंदिश की चुस्ती पता देती है कि यह नज्म शायर जायसी के दौर आखिर का नतीजा है। इसके यह करायन हैं कि अखरावट पद्मावत के बाद तसनीफ हुई है।[3] कुछ लोग इन्हीं के मत का समर्थन करते हुए तर्क उपस्थित करते हैं कि इस काव्य में छन्दगत दोष न्यूनतम हैं। दोहे चौपाइयों में माधुर्य भी अधिक है और भाषा भी अधिक सुस्थिर और व्यवस्थित है। कवि ने

१–म०मु० जायसी डा० कमल कुल श्रेष्ठ पृ ४९।
२–सूफी महाकवि जायसी डा० जयदेव पृ० १३८।
३–मलिक मुहम्मद जायसी सय्यद कल्बे मुस्तफा पृ० १६०।

एक नवीन छन्द सोरठा का भी सफल प्रयोग किया है। कुछ सोरठों के चारो चरणों की तुकों में साम्य है जिससे यह छन्द विशेष श्रुतिमधुर बन गए हैं। 'प्राय यह भी देखा जाता है कि कवि अपनी वयक्तिक भावनाओं का स्पष्टीकरण अन्त में ही करते हैं यद्यपि उनका यत्र-तत्र समावेश तो उनकी समस्त रचनाओं में व्याप्त रहता है। इसी प्रकार की रचना अखरावट है। जनश्रुति के आधार पर शैली की प्रौढता एव विशदता के समर्थन से तथा आध्यात्मिकता के विशेष झुकाव के कारण हम[1] (डा० जयदेव) इस काव्य को पदमावत के बाद की ही रचना मानते हैं। ए० जी० शिरेफ[2] ने लिखा है कि अखरावट की रचना अमेठी के राजा के कहने पर हुई थी। राजा का जायसी से परिचय पदमावत के द्वारा हुआ था। अत अखरावट पदमावत के बाद की ही रचना ठहरती है।'

ध्यानपूर्वक विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि अखरावट की रचना तिथि से सम्बद्ध ऊपर दी हुई समस्त बातें पुष्ट प्रमाणों से रहित एव अनुमानमात्र है। जनश्रुति का कोई प्रमाण नही मिलता। शैली की प्रौढता एव विशदता की दृष्टि से पद्मावत को अखरावट से हीन कोटि का मानना समीचीन नहीं है। 'वयक्तिक भावनाओं का स्पष्टीकरण कवि अन्त में ही नहीं अपितु कभी भी कर सकते हैं। इस सिलसिले में अखरावट की निम्नलिखित चौपाई भी उद्धृत की जाती है– कहा मुहम्मद पेम कहानी। सुनि सो ज्ञानी भए धियानी॥ [3]और अर्थ लगाया गया है कि वह कौन सी कहानी है जिसको सुन कर ज्ञानी लोग भी परम प्रिय के प्रेम में ध्यानावस्थित हो जाते हैं। निश्चय ही जायसी की वह प्रेम कहानी पदमावत है। इस प्रकार अखरावट पदमावत के पीछे की रचना है। [4]'जायसी की प्रस्तुत चौपाई के प्रेम कहानी का पदमावत से सबन्ध जोड़ना बादरायण सम्बन्ध से भी महान आकाश कुसुमत्व की बात है। वस्तुत कहा मुहम्मद पेम कहानी का सम्बन्ध और अर्थ इन्ही पंक्तियों के पूर्व और पश्चात मिल जाता है। यह प्रेम कहानी तो वही पर दी गई है–

तसमा दुइ एक साथ मुहम्मद एको जानिए॥
कहा मुहम्मद पेम कहानी। सुनि सो ज्ञानी भए धियानी॥
चेला समुझि गुरू सो पूछा। देखहु निरखि भरा औ छूछा॥
कसे आपु खोव सो मेटे। कसे आप हेराइ सो भेटे॥

१–सूफी महाकवि जायसी डा० जयदेव १३५–१३६।
२–पदुमावती भूमिका पृ० ५।
३– जा०ग्र० ना० प्र० सभा।
४–सूफी महाकवि जायसी, डा० जयदेव पृ० १३६।

जो लहि आपु न जीयत मरई। हस दूरि सौं बात न करई॥
सो तो आपु हरान है तन मन जीवन खोइ।
चेला पूछ गुरू कह तेहि बस अगरे होइ॥"
नव रस गुरु पह भीज गुरु परसाद सो पिउ मिल ॥४६॥

वस्तुत 'कहा मुहम्मद पेम कहानी' की बात वहो पर और स्पष्ट कर दी गई है—

कहा न अहै अकथ भा रहई। बिना विचार समुझि का परई॥
सो हू सो हू बसि जो करई। जो बूझ सो धीरज धरई॥
कहै प्रेम क बरनि कहानी। जो बूझ को सिद्ध गियानी॥[1]

स्पष्ट है कि 'कहा मुहम्मद पेम कहानी' का अथ सोह बानी कहानी से है, जीव और ब्रह्म के प्रेम विरह की कहानी से है जिसे ऊपर उद्धत पक्तियो म जायसी ने स्पष्ट रूप स लिख दिया है।

प्रा० सैयद हसन अस्करी[2] को मनेर शरीफ से कई ग्रथो के साथ पदमावत और अखरावट की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई है। इन प्रतियो के विषय मे लिखते हुए उन्होने अखरावट के रचनाकाल का भी उल्लेख किया है। अखरावट की हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका म जुम्मा ८ जुल्काद ९११ हिजरी का उल्लेख है। विद्वानों का विचार है कि सम्भवत जिस मूल प्रति से इस प्रति की नकल की गई थी, उसकी पुष्पिका म यह तिथि लिखी हुई थी और जिसे प्रतिलिपिकार ने ज्यों का त्यों उतार दिया है। इसस अखरावट का रचनाकाल ९११ हिजरी या इसके आसपास प्रमाणित होता है।[3] अखरावट जायसी की प्रारम्भिक या प्रथम रचना है। "जिस भूकम्प का उल्लेख जायसी ने आखिरी कलाम म किया है और जिसे अनेक विद्वानों ने जायसी के जन्म-समय घटित मान लिया है। उसस ऐसा प्रतीत होता है कि जिस समय जायसी का कवि-जीवन प्रारम्भ हुआ था उसी समय वह भूचाल आया होगा। अखरावट की पुष्पिका मे लिखित ९११ हि० और ९१०-११ म घटित भूकम्प क उल्लेख मे अदभुत साम्य है और यह आकस्मिक नही प्रतीत होता। जायसी के इस वणन स यह बात प्रमाणित होती है कि अखरावट ९११ हिजरी म लिखा गया।

१—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, अखरावट प० ३३८, ५३।५ ६ ७।
२—जे० बी० आर० एस०, भाग ३९। ३—वही।
४—क—जायसी की जन्म तिथि, अध्याय १।
ख—मुतखबुत्तवारीख (अल्बदायूनी) रैंकिंग कृत अनुवाद भा० १ पृ० ४२१ (३ सफर ९११ हिजरी को भूकम्प हुआ था)।
ग—बाबरनामा—इलियट भा० ४, पृ० २१८।

कथावस्तु

अखरावट का प्रारम्भ जायसी ने सृष्टि की आदि शून्यावस्था से किया है जब न गगन था और न धरती न सूर्य था और न चन्द्र। ऐसे अन्धकूप में करतार ने सर्वप्रथम मुहम्मद पैगम्बर की ज्योति उत्पन्न की।[1] उसी आदि गोसाई ने ही समस्त संसार की सृष्टि लीलार्थ की है।[2] इस लीला ज्ञान की कथा को कवि ने 'ककहरा' रूप में कहा है। कवि ने अपनी अपार नम्रता भी प्रदर्शित की है– पंडित पढ़ अखरावटी, टूटा जोरेहु देखि।। जब सर्वत्र शून्य शून्य था नाम, स्थान सुर शब्द पाप पुण्यादि कुछ नहीं था ईश्वर की कलाएं उसमें ही लीन थीं सृष्टि रूप में उनका विस्तार नहीं हुआ था–एक अल्लाह तत्व स्वयं में समाया हुआ था–इस संसार रूपी वृक्ष का वक्ष के समान स्थिर बीज मात्र था परन्तु उस बीज का न रंग था और न रूप।[3] तब ईश्वर में मुहम्मद साहब की प्रीति के कारण सृष्टि की सर्जना की। स्वर्ग पिता हुआ धरती माता हुई। आरम्भ में ही दो विभाग (द्वन्द्व) हुए और सृष्टि का क्रम आगे बढ़ चला। पुनः उसने इबलीस (शैतान) को बनाया। एक आत्मतत्व या परमात्म तत्व अठारह सहस्र योनियों में प्रकट हुआ। पहिले ही उसने चार फिरिश्ते रचे। इन चारों ने चार तत्वों को ईश्वर की आज्ञानुसार मिलाकर शरीर बनाया। उसमें पंच भूतात्मक इन्द्रियां रख दीं। उस शरीर में नव द्वार बनाया और दशम द्वार को मूंद कर कपाट दे दिया। अभी तक आदम और करतार में अभिन्नता थी जैसे माता के गर्भ में बच्चा रहता है किन्तु उसे जग में मृत्यु ने ला दिया। इसी से तो प्रियतम से बिछुड़ते ही इस संसार में आते ही बच्चा रोने लगता है। स्वर्ग में ही आदम की उत्पत्ति हुई। आज्ञा हुई कि सब लोग मिलकर प्रणाम करो पूजा भी करो। नारद (शैतान) के अतिरिक्त सबों ने नमन किया। ईश्वर ने नारद को अनन्य भक्त समझ कर दशम द्वार का रक्षक नियत किया। पश्चात आदम होवा की सर्जना हुई। उन्हें स्वर्ग में भेजा गया। शैतान के बहकावे में आकर आदम ने गेहूँ खा लिया–ईश्वर ने इसे खाने का निषेध किया था अतः वे स्वर्ग से निकाल दिये गए। वे दोनों बिछोह में तड़पते रहे। अन्ततः ईश्वर की कृपा से दोनों मिले। उनसे सन्तानों की उत्पत्ति हुई। अपने-अपने धर्म वाले हिन्दू और तुरुक दोनों हुए।

दो पक्षों से युक्त शरीर की रचना, शरीर में ही पुनि सरग' स्वर्ग-नरक

१–जा० ग्र० ना० प्र० सभा पृ० ३०२ दोहा १।

२–जा०, ग्र० ना० प्र० सभा पृ० ३०२ १।१ चौपाई।

३–वही, अखरावट।

सूय चन्द्र आदि की रचना 'जो कछु पिंड सोइ ब्रह्माण्ड' की बात मन की चचलता का वणन देखहु परम हस परछाहीं की बात काया-नगरी के अगम पथ और चारि बसेरे का भेद उसी के सात खण्डों म सात ग्रहो की परिकल्पना अपनी ही भाँति सृष्टि की सजना करने वाले बड ठाकुर की प्रशस्ति ससार की असारता और तप-साधना की बात हम कहाँ से आये हैं और हम कहाँ जाना है ? के बाद गुरु की महत्ता की बात इस्लाम की श्रेष्ठता, अपने गुरु मोहदी और उनकी परम्परा का गुणगान, हस रूपक शू य निरूपण घट रूपक एव दीपक-रूपक के वणन, कबीर की प्रशंसा गुरु शिष्य सवाद-- रूप म अहकार--विनाश प्रम घणा तत्वा की स्थिति के प्रश्न एव गुरु द्वारा स्पष्टीकरण गरु द्वारा ईश्वर के गौरव का गान इत्यादि के पश्चात कवि कहता है कि यह गूढ बात बिना चिन्तन के समक्ष म नही आ सकती। जीव का चाहिए कि इस मिटटी क शरीर को लेकर प्रम का खल खल डाल क्योंकि प्रम प्रभु प्रम से ही प्राप्त होता है।

अखरावट के दार्शनिक आध्यात्मिक बिन्दु

१--सृष्टि--जायसी न अखरावट क प्रारम्भ म सृष्टि क उद्भव और विकास की जो कथा दी है वह मूलत इस्लामी धमग्रन्थो और विश्वासो के आधार पर आधारित है। सष्टि के आदि म जो महाशू य था उसी से वतमान सष्टि की रचना हुई। सवत्र शू य शू य था नाम स्थान सुर, शब्द पाप पुण्य आदि कुछ भी नही था। ईश्वर की भी कलायें ईश्वर में ही लीन था।[1] उस समय गगन धरती, सुर्य चन्द्र आदि कुछ भी नही था। ऐसे शू य अ धकार म ईश्वर ने सबसे पहले मुहम्मद पगम्बर की ज्योति उत्पन्न की--

'गगन हुता नहिं महि हुती हुते चद नहिं सूर।
ऐसइ अधकूप मह रचत मुहम्मद नूर ॥'[2]

कुरान शरीफ एव इस्लामी रवायतो (कथाओ) म यह कथा है कि जब कुछ नही था, तो केवल अल्लाह था। सवत्र घोर अ धकार था। उसने कहा--'कुन' (प्रकाश हो) और कहने के साथ ही प्रकाश हो गया। इस सष्टि के मूल म आदि गोसाई का क्रीडा[3] (खल) है। पुन उसने ही अठारह सहस्र योनियो की रचना की। इस प्रकार उस आदि गोसाई की सत्ता इन अठारह सहस्र जीवकोटियों म प्रकट हुई है।[4] भारतीय साहित्य म भी इस ससार की कल्पना 'अश्वत्थ' के रूप

१--जा० ग्र० ना० प्र० सभा, अखरावट) पृ० ३०४।१।
२--वही, पृ० ३०३।
३--जा० ग्र० ना० प्र० सभा० पृ० ३०३, १।१।
४--वही-- 'रहा जो एक जत गुपुत समुदा। बरसा सहस अठारह बुन्दा ॥'

से की गई है। श्रीमदभगवदगीता[1] और रामचरितमानस[2] म भी सृष्टि प्रसग इसी रूप म वर्णित है। सो उस ठाकुर ने एक बार ऐसा किया पहल उसने नाम रूप म मोहम्मद को रचा। उनकी ही प्रीति के कारण दुनिया पदा की गई। उसी प्रेम बीज से दो अकुर निकले एक श्वेत और दूसरा श्याम। श्वत अकुर से निकला पात धरती बना और श्यामाकुर वाला पात आकाश बन गया। पश्चात इसी द्वत के आधार पर सूरज चाद, दिन रात पाप पुण्य, सुख दुख आनन्द-सताप, नरक-वकुण्ठ अच्छे बुरे, झूठ सत्य आदि की सष्टि हुई[3]।

इबलीस आदम हौवा फिरिश्ते हिदू तुरुक – इसके बाद उसने इबलीस की रचना का आदम[4] का निर्माण किया। चार फरिश्तो को बनाया चार तत्व और पचभूतात्मक इन्द्रिया से 'काया की रचना की उसम नव द्वारों को बनाया दसवें द्वार को मूद करके कपाट दे दिया और फरिश्तो से कहा कि इसको सिजदा (नमन) करो। फरिश्तो ने नमन किय किन्तु इबलीस ने नमन नही किया। अत वह स्वग स निकाल दिया गया। करतार न इबलीस को दशम-द्वार का रक्षक बनाया[5]। इस प्रकार जिस इबलीस ने धम माग स हटाकर पापी कर दिया उसका और आदम का साथ हो गया। इसके बाद हौवा की रचना की गई और आदम हौवा को स्वग म विहार करने के लिये भेज दिया गया। इबलीस के बहकावे म आकर आदम ने गेहूँ खा लिया जिसके खाने का निषेध ईश्वर ने कर रखा था और इस अपराध के कारण उन्हे स्वग स निकाल दिया गया। व बहुत पछताए रोए और अन्त म उन्होने मिलकर सष्टि बनाई। हिदू-तुरुक उन्ही से उत्पन्न हुए हैं। जो

१–श्रीमद्भगवदगीता बालगगाधर तिलक अध्याय १५ –

उध्वमूलमध शाखमश्वत्थ प्राहुरव्ययम।
छन्दासि यस्य पर्णानि यस्त वदेस वदवित ॥
अधश्चोध्व प्रसतस्तस्य शाखा गुण प्रवद्धा विषयप्रवाला।
अधश्चमूला सततानि कर्मानुबधीनि मनुष्य लोके।

२– अव्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षटकध शाखा पचवीस अनेक पन सुमन घने ॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर वलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित ससार विटप नमामहे ॥ – रामचरितमानस।

३–जा० ग्र० ना० प्र० सभा पृ० ३०४–५।

४–जा० ग्र० ना० प्र० सभा पृ० ३०५ (पुनि इबलीस सचारेउ)।

५–वही पृ० ३०६।

६–वही, पृ० ३०७।

७–वही, पृ० ३०८।

८–वही पृ० ३०८

ब्रह्माण्ड सो पिण्ड है — उपनिषदों में ब्रह्म और जीव, आत्मा और परमात्मा की एकता को बार बार समझाया गया है। अर्थात जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है। वस्तुत पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता का अर्थ है अनत और अत की परस्पर अन्योन्याश्रितता। इस तथ्य को लेकर साधना के क्षेत्र में एक विलक्षण रहस्यवाद की उत्पत्ति हुई, जिसकी प्रेरणा से योग में पिण्ड या घट के भीतर ही ब्रह्म का एक विशिष्ट स्थान निर्दिष्ट हुआ और उसके पास तक पहुचने की कल्पना की गई। जायसी ने स्पष्ट कहा है —

सातो दीप नवो खड आठौ दिसा जो आहि।
जो बरह्माण्ड सो पिंड है हेरत अत न जाहि॥[1]

एक पूरा रूपक बाधकर जायसी ने जो कछु पिंड ब्रह्माण्ड का प्रतिपादन किया है —

टा टूक झाँकहु सातौ खडा। खड खड लखहु बरह्माण्डा॥

— — — — — —

सातव साम कपार मह कहा जो दसव दुवार।
जो वह पवरि उघार सो बड सिद्ध अपार॥[2]

इन पक्तियों में कवि ने मनुष्य शरीर के पर गुह्य इन्द्रिय नाभि, स्तन कठ भौहों के बीच के स्थान और कपाल प्रदेशो में क्रमश शनि बृहस्पति मगल आदित्य शुक्र बुध और सोम की स्थिति का निरूपण किया है। यहाँ यह विशेष द्रष्टव्य है कि कवि द्वारा दी गई यह ग्रह स्थिति सूर्य सिद्धान्त प्रभृति ग्रन्थो के ही अनुकूल है। ब्रह्म अपने व्यापक रूप में मानव देह में भी समाया हुआ है—

माथ सरग धर धरती भयऊ। मिलि तिन्ह जग दूसर होइ गयऊ॥
मासु मासु रकत भा नीरू। नस नदी हिय समुद गभीरू॥

— — — — — —

सातौं दीप नवौ खड आठौ दिशा जो आहि।
जो बरह्माण्ड सो पिंड है हेरत अत न जाहि॥
आगि बाउ जल, धूरि चारि मरद भाडा गढा।
आपु रहा भरि पूरि मुहमद आपुहि आपु मह॥[3]

इस्लामी धर्म के तीर्थ आदि को भी कवि ने शरीर में ही प्रदर्शित किया है।

१—वही पृ० ३०६।
२—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, पृ० ३१५—३१६।
३—वही, पृ० ३०६।

इस शरीर को ही जगत मानना चाहिए। धरती और आकाश इसी म अनुस्यूत हैं। मस्तक मक्का है हृदय मदीना है जिमम नबी या पगम्बर का नाम सदा रहता है, श्रवण आख नाक और मुख को क्रमश जिबराईल मकाईल इसराफील और इज राईल समझना चाहिए। इसी प्रकार अय वस्तओ को शरीर म ही गिनाते हुए कवि ने कहा है–

नाभि कवल तर नारद लिए पाच कोतवार।
नवौ दुवारि फिर निति दसई कर रखवार॥[1]

अर्थात नाभि कमल (कुडलनी) के पास कोतवाल के रूप म शैतान का पहरा है। वह नवो द्वार पर नित प्रति घमता है और दशम द्वार (ब्रह्म रध्र) की रक्षा बडी मुस्तदी से करता है।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि न विश्वव्यापी ईश्वर तत्व को घट घट म समाया हुआ माना है। उसकी मायता है कि वाह्य सष्टि मानव शरीर मे भी विनिर्मित है। ब्रह्म की साधना के लिए तीर्थादि म जाने की आवश्यक्ता नहीं है सब कुछ काया नगरी म ही स्थित है जो कछु पिंड सो ब्रह्म ड।

२–जीव ब्रह्म – जायसी का कथन है कि ब्रह्म से ही यह समस्त सष्टि आपूरित है – चौदह भुवन पूरि सब रहा[2]। उसने ही इस समस्त सष्टि की सजना की है[3]। वस्तुत जीव बीज रूप म ब्रह्म म ही था। ब्रह्म से ही अठारह सहस्र जीव योनियो की उत्पत्ति हुई है[4]। वस्तुत वही सब कुछ कर्ता है जीव कुछ करता धरता नहीं –

व सब किछु करता किछु नाही। जस चल मेघ परिछाही॥
परगट गुपुत विचारि सो बूझा। सो तजि दूसर और न सूझा॥[5]

जीव पहले ईश्वर म अभिन्न था बाद म उनका विछोह हो गया। जीव म ब्रह्म से मिलने की जो पीर और तड़पन है उसका कारण यही विछोह है –

हुता जो एकहि सग हौं तुम्ह काहे बीछरा ?
अब जिउ उठ तरग मुहम्मद कहा न जाइ कछु॥[6]

ईश्वर का कुछ अश घट घट म समाया है –

सोई अस घट घट मेला। जौ सोइ बरन-बरन होइ मेला॥

१–जा० ग्र० ना० प्र० सभा प ३१०। २–वही प० ३०३।
३–वही (जेइ सब खेल रचा दुनियाई)।
४–वही (एक अकेल न दुसर जाती। उपजे सहस अठारह भाती॥)
५–वही पृ० ३०३।
६–जा० ग्र०, ना० प्र सभा प ३०५ (सोरठा ३)।

जायसी ने जीव, ब्रह्म और प्रकृति (सृष्टि) की अभेदता का भी प्रतिपादन किया है। सम्पूर्ण जगत ईश्वर की ही प्रभुता का विकास है। नाना योनियों में वही परमात्म तत्त्व ही प्रकट हुआ है —

जो उतपति उपराजै चहा। आपनि प्रभुता आपु सो कहा॥
रहा जो एक जल गुपुत समुंदा। बरसा सहस अठारह बुंदा॥[1]

ब्रह्म ही इस जगत का बड़ा सर्जक है करतार है, धारण करने वाला और हरण करने वाला भी है —

'तुम करता बड़ सिरजनहारा। हरता धरता सब संसारा।'[2]

इस प्रकार जायसी ने जीव और ब्रह्म के अभेदत्व की स्थापना की है। दोनों में अन्तर इतना ही है कि जीव में अल्लाह के जमाल एवं जलाल[3] (सौन्दर्य-माधुर्य एवं शक्ति प्रताप और ऐश्वर्य पक्ष) का लोप हो जाता है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि एक बूँद में समुद्र समाया हुआ है अर्थात् मनुष्य पिंड के भीतर ही ब्रह्म और समस्त ब्रह्माण्ड है जब अपने भीतर ही ढूँढा तो वह उसी अनन्त सत्ता में विलीन हो गया —

बुंदहि समुंद समान यह अचरज कासौं कहौं ?
जो हेरा सो हेरान मुहमद आपुहि आपु महँ॥[4]

साधक के लिए इसी अभेदता का स्पष्टीकरण करते हुए कवि का कथन है कि जैसे दूध में घी और समुद्र में मोती की स्थिति है वैसे ही वह परम ज्योति भी इसी जगत के भीतर भीतर भासित हो रही है।[5] कवि कहता है कि वस्तुतः एक ही ब्रह्म के चित और अचित दो पक्ष हुए, दोनों के मध्य तेरी अलग सत्ता कहाँ से आई। जीव जब अपनी अलग सत्ता व अहंभाव या भ्रम को मिटा देता है तो वह ब्रह्म में मिलकर एक हो जाता है —

एकहि तें दुइ होइ दुइ सों राज न चलि सकै।
बीचतें आपुहि खोइ मुहमद एकै होइ रहु॥[6]

टकार के मिलमिल में भी जायसी ने जीव ब्रह्म और सृष्टि के विषय में अपना मत व्यक्त किया है —

ठा — ठाकुर बड़ आप गोसाईं। जेहि सिरजा जग अपनिहि नाईं॥
आपुहि आपु जो देखा चहा। आपनि प्रभुता आप सौं कहा॥

१—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा पृ० ३०८। २—वही पृ० ३०८।
३—वही पृ० ३०८ ४—वही पृ० ३०८ (सोरठा)।
५—वही पृ० ३१४। ६—वही पृ० ३१४। (सोरठा १५)।

सब जगत दरपन क लेखा। आपुहि दरपन, आपुहि देखा ।।
आपुहि बन औ आप पखेरू। आपुहि सौजा, आपु अहेरू ।।
आपुहि पुहुप फूलि बन फूल । अपुहि भवर बास रस भूले ।।
आपुहि फल आपुहि रखवारा । आपुहि सो रस चाखनहारा ।।
आपुहि घट-घट मह मुख चाहै। आपुहि आपन रूप सराहै ।।
आपुहि कागद आपु मसि आपुहि लखनहार।
आपहि लिखनी आखर आपुहि पडित अपार ।।[१]

कवि निखिल सष्टि म उसी एक सत्ता को सप्रसारित पाता है।

३-साधना – मूलत सूफी साधना प्रम प्रभु की साधना है। विरहानुभूति एव प्रियतम की प्राप्ति के लिए प्रम-पथ का अवलम्बन इस साधना के केन्द्र हैं। साधक अपने भीतर बिछुडे हुए प्रियतम के प्रति प्रम की पीर को जगाता है। पहले जीव-ब्रह्म (बन्दा-अल्लाह) एक थ। पश्चात इस अद्वैत या अभेद स्थिति में भेद की निष्पत्ति हुई। अब जीव इस विरह-जन्य तडपन की स्थिति म है वह पुन अपने बिछुड़ हुए प्रियतम स मिलकर अभेदता का आनन्द पाना चाहता है –

'हुता जो एकहि सग हम तुम काहे बीछुरे।
अब जिउ उठ तरग मुहमद कहा न जाइ किछु ।।'[२]

यह भावतरग मूलत विछोह की तीव्र अनुभूति से उत्पन्न है। कबीर[३] की ही भांति जायसी ने भी इसे एक महान प्रम भावना और शीश का सौदा कहा है–

पर प्रेम के झल पिउ सहु धनि मुख सो करैं।
जो सिर सेंती खेल मुहम्मद खेल सो प्रम रस ।।

इस काया नगरी म ही प्रियतम मिल सकता है हा यह अवश्य है कि उसे खोजने में स्वय खो जाना चाहिए उनम खो जाने पर ही पिउ मिलता है[४]–

आपहि खोइ ओहि जो पावा। सो बीरौ मनु लाइ जमावा ।।
जौ ओहि हेरत जाइ हेराई। सो पाव अमृतफल खाई ।।

१–जा० ग्र० ना० प्र० सभा पृ० ३१६।
२–जा० ग्र० ना० प्र सभा पृ० ३ ५।
३– जह तो घर है प्रम का खाला का घर नाहिं।
सीर उतारै भुइ धर सौ पैसे घर माहिं ।। कबीर।
४–जा० ग्र ना० प्र० सभा पृ० ३०६।
५–हेरत हेरत हे सखी रहया कबीर हेराइ। बूद समानी समद म सोकत हेरी जाइ ।।
हेरत हेरत हे सखी गया कबीर हिराइ। समद समाना बुद म सोकत हेरया जाय ।।
–कबीर ग्रथावली, पृ० १७, ३-४।

आपुहि खोए पिउ मिले, पिउ खोए सब जाइ।
देखहु बूझि विचारि मन लेहु न हेरि हिराय ॥[1]

प्रियतम की यह खोज साधारण जन के वश की बात नहीं है। कोई 'मर जिया' ही उसे पाता है —

कठु है पिउ कर खोज जो पावा सो मरजिया
तहँ नहि हसी न रोज, मुहमद एसे ठाव वह ॥[2]

गुरु की कृपा से ही शिष्य समझ कर इस प्रेम पथ पर चलता है। यह पथ भी अजब विकट है — सात खण्ड हैं, चार सीढ़ियाँ हैं अगम्य चढ़ाई है त्रिवेणी (इडा पिंगला सुषुम्ना) का पथ है इस पर वही चलता है जिसे गुरु चलाता है जो अपने बल पर चढ़ा वह गिर पड़ा नारद दौड़कर संग में हो जाते हैं उसे साथ लेकर कुमार्ग पर चलते हैं आगे फिर तो तेली के बैल की तरह वह निशिदिन फिरता रहता है पर एक पग भी और नहीं बढ़ता।[3]

या तो जायसी उदारतापूर्वक विधिना तक पहुँचने के अनेक मार्गों को स्वीकार करते हैं; फिर भी वे मुहम्मद के पथ (स्वकीय प्रेम पथ या इस्लाम) को श्रेष्ठ मानते हैं उस मार्ग को जो पाता है वह पार उतर जाता है और जो उससे भूला होता है वह बटपारों द्वारा लूट लिया जाता है —

'विधिना के मारग हैं तेते। सरग नखत तन रोवाँ जेते ॥
तेहि महँ पंथ कहौं भल गाई। जेहि दूनौ जग छाज बड़ाई ॥
सो बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है निरमल कबिलास बसेरा ॥ —
वह मारग जो पावै सो पहुँचे भव पार।
जो भूला होइ अनतहि, तेहि लूटा बटपार ॥[4]

जायसी मुहम्मद के पथ को श्रेष्ठ मानते हैं। जायसी ने नमाज, तरीकत हकीकत, मारिफत और शरीअत को इस पथ का महत्वपूर्ण अंग कहा है। इस्लामी सृष्टि रचना की कल्पना से उनका कोई मतभेद नहीं है। कुरान[5] में आदम को खुदा के रूप रंग का कहा गया है। जायसी ने भी लिखा है कि उहै रूप आदम अवतरा।[6] आदम के स्वर्ग से निष्कासन की कथा को भी जायसी ने ज्यों का त्यों स्वीकार किया है। जायसी ने आदम के अल्लाह से बिछोह के दुःख को साधारण जीव के वियोग

१—जा० ग्र० ना० प्र० सभा पृ० ३१६ २०।
२—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा पृ० ३१६—२०।
३—वही पृ० ३२० (दा दाया जा कह गुरु करई आदि)।
४—वही पृ० ३२१। ५—कुरान शरीफ—(हिंदी)।
६—जा० ग्र० ना० प्र० सभा पृ० ३०८।

का दु ख मान कर इस्लामी कल्पना पर सूफीमत की प्राणप्रतिष्ठा कर दी है। वस्तुत बन्दा और अल्लाह म 'जमाल जलाल' के ही अस्तित्व और अनस्तित्व का भेद है। जीव इस ससार म आते ही अल्लाह के जमाल–जलाल से अलग हो जाता है। और इस कारण वह दु खी होता है—

छाँडि जमाल जलालहि रोवा। कौन ठाव तें दव बिछोवा ॥

सूफी साधको ने विधि विहित पथ को स्वीकार किया है। जायसी ने भी अन्य सूफी साधको की भाति नमाज मक्का मदीना, फरिश्तो और इमाम मे विश्वास प्रकट किया है, किन्तु उनकी व्याख्या नवीन प्रकार की है। ये सब कायानिष्ठ हैं अत उनक मत से इनके लिए हज (तीर्थ यात्रा) और कृच्छ-साधना की आवश्यकता नही है।

यद्यपि कायानिष्ठ ब्रह्म की प्राप्ति के लिए चारि बसेरे सो चढ सत सा उतर पार वाली सूफी साधको की विशिष्ट साधना पद्धति है तथापि जायसी ने योग मार्ग की साधना की भी बातें स्वीकार की है। उन्होने स्थान स्थान पर योगियो के पारिभाषिक शब्दो के प्रयोग भी किए हैं। अनहदनाद इला पिंगला, सुषुम्ना ब्रह्मानि शून्य सहस्रार चक्र, कमल कुडलिनी नौ पौरी दशम द्वार आदि अनेक योगसाधना-परक शब्द अखरावट म मिलते हैं।

शून्यवाद-योगमत मे शून्य की महत्ता है। विद्वानो का विचार है कि सभवत बौद्ध शून्यवादी सिद्धो के दाय के रूप म उन्होने इसे प्राप्त किया था। जायसी ने इस 'शून्यवाद' का इस प्रकार निरूपण किया है—

इहै जगत क पुन्नि यह जप-तप यह साधना।
जानि पर जेहि सुन, मुहमद सोई सिद्ध भा ॥
भा मल सोइ जो सुन्नहि जान। सुन्नहि तें सब जग पहिचान ॥
सुन्नहि ते है सुन उपानी। सुन्नहि तें उपजहि बहु भाती ॥
सुन्नहि मांझ इन्द्र बरम्हडा। सुन्नहि ते टीके नवखण्ड।
सुन्नहि ते उपजे सब कोई। पुनि बिनाइ सब सुन्नहि होई ॥
सुन्नहि सात सरग उपाराही। सुन्नहि सातौ धरति तराही ॥
सुन्नहि ठाट लाग सब एका। जीवहि लाग पिंड सगरे का ॥
सुन्नम सुन्नम सब उतिराई। सुन्नहि महं सब रहु समाई ॥
सुन्नहि महं मन रूख जस काया महं जीउ।
काठी माझ आगि जस दूध माह जस पीउ ॥ [1]

हिंदी म सभवत सर्वप्रथम शून्यवाद की बातें सिद्ध सरहपाद की बानी मे मिलती हैं—

1—जा० ग्र० ना प्र० स० पृ ३२३–३२४।

'जहि मण पवण ण सचरइ रवि-ससि णाह पवेस ।
तहि वढ ! चित्त बिसाम करु सरहे कहिउ उएस ॥
आइ ण अन्त ण मज्झ णउ णउ भव णउ णिव्वाण ।
एहु सो परम महासुह, णउ पर णउ अप्पाण ॥'[1]

इस सिलसिले में नागार्जुन के शून्यवाद का महत्व है। नागार्जुन का शून्यवाद बुद्ध के प्रतीत्यसमुत्पाद का ही तर्क प्रतिष्ठित एवं विकास प्राप्त रूप है। उसने प्रतीत्यसमुत्पादवाद, शून्यवाद और मध्यममार्ग भी कहा है।[2] दार्शनिक दृष्टि से जागतिक पदार्थों को न सत कह सकते हैं और न असत। और न उनके विषय में शाश्वतवाद या उच्छेदवाद की ही स्थापना की जा सकती है।[3] न तो हम संसार के पदार्थों के कारण से उत्पन्न होने के कारण ऐकान्तिक असत कह सकते हैं और सापेक्ष होने के कारण उन्हें ऐकान्तिक सत भी नहीं कह सकते।[4]

'शून्यमिति न वक्तव्यं अशून्यमिति एव च।'

नागार्जुन ने तो यहाँ तक कहा है कि तत्व जैसा है वैसा उसका वर्णन करना असंभव है। वह शून्य है। शून्य से ही समस्त पदार्थों की निष्पत्ति हुई है अन्त में वे शून्य में ही लीन भी हो जाते हैं। इस शून्य रूप की अनिर्वचनीय सत्ता की अनुभूति होने से ही कारण बुद्ध तथागत हैं। समस्त दृश्य वस्तुएँ (पदार्थ) भी शून्य ही हैं। यह शरीर भी शून्य है। यही शून्यवाद नाथपंथी योगियों के माध्यम से कबीर आदि निर्गुनियों सन्तों और जायसी आदि सूफियों को प्राप्त हुआ है। भँवर गुफा, ब्रह्मरन्ध्र-दशम-द्वार, अनाहतनाद इड़ा पिंगला-सुषुम्ना आदि शून्यवादी शब्द इन तीनों मतवादों में एक ही प्रकार से प्रयुक्त मिल जाते हैं। जायसी ने शून्यवाद[5] का जो महत्व प्रतिपादित किया है उसके मूल में भारतीय-योग साधना है। उन्होंने अखरावट में नाथों और योगियों की साधना-पद्धति को स्वीकार कर लिया है। क्या प्राणायाम और क्या आसन समाधि, क्या इड़ा पिंगला या सुषुम्ना की बात

१–हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग नामवर सिंह परिशिष्ट, पृ० ३२४।
२–मूल माध्यमिक कारिका, नागार्जुन (चन्द्रकीर्ति की वृत्ति सहित २४।१८)

यः प्रतीत्यसमुत्पादः शून्यतां तां प्रचक्ष्महे।
सा प्रज्ञप्तिरुपादाय प्रतिपत्सैव मध्यमा ॥

महायान, भदन्त शांतिभिक्षु पृ० १९।

३–ए हि० इ० फि०, सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त वा० १ पृ० १४३।
४–मूल माध्यमिक कारिका वृत्ति पंचम प्रकरण, पृ० १४५।
५–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा (अखरावट) पृ० ३३४।

और क्या ब्रह्मरन्ध्र की महत्ता क्या अनहदनाद[1] और क्या सोहम[1] क्या पिंड ब्रह्माण्ड की एकता[1] और क्या इनका सूक्ष्म विवेचन यह सब मूलत हठयोगियों की साधना का ही प्रभाव है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा–

'तब बैठहु बज्रासन मारी। गहि सुखमना पिंगला नारी॥'[1]

जायसी ने कबीर के विषय म लिखा है कि वे बड भारी सिद्ध थे–

ना–नारद तब रोइ पुकारा। एक जोलाहे सो मै हारा॥[2]

कबीर की बानियों पर योग सम्प्रदाय की गहरी छाप है। जायसी द्वारा कबीर को बडा सिद्ध कहना और उनकी महत्ता को स्वीकार करना इस बात की ओर इंगित करता है कि जायसी पर भी योगमत का पर्याप्त प्रभाव पडा है।

'चारि' बसेरे (अवस्थाए)

सूफी मत के साधक की क्रमश चार अवस्थाए[3] कही गई है (१) शरीअत धर्म ग्रन्थो के विधि निषेध का सम्यक पालन (कर्मकाण्ड) (२) तरीकत (बाह्य क्रिया कलापो से परे होकर हृदय की शुद्धता द्वारा ईश्वर का ध्यान (उपासना काण्ड) (३) हकीकत (भक्ति और उपासना के द्वारा सत्य का सम्यक बोध–जिससे साधक तत्व दृष्टि सम्पन्न और त्रिकालज्ञ हो जाता है (ज्ञानकाण्ड) और (४) मारिफत (सिद्धावस्था) –कठिन उपोपवास द्वारा साधक की आत्मा का परमात्मा म लीन हो जाना) इस प्रकार साधक ईश्वर की सुन्दर प्रेममयी प्रकृति का अनुसरण करता हुआ प्रेममय हो जाता है।

अखरावट म जायसी ने इन अवस्थाओ का स्पष्ट उल्लेख किया है–

(शरीअत) कही सरीयत चिसती पीरू। उधरित असरफ औ जहगीरू॥
तहि के नाव चढा हौं धाई। देखि समुद जल जिउ न डराई॥
(तरीकत मारिफत) राह हकीकत परै न चूकी। पैठि मारफत मार बुडूकी॥
साँची राह सरीअत जेहि बिसवास न होइ।
पाव रखै तेहि सीढी निभरम पहुचै सोइ॥[4]

स्पष्ट है कि जायसी सच्चे मुसलमान की भाँति विधि विधान शरअ को मानते थे। उनकी शरीअत पर आस्था थी। इन अवस्थाओ के नाम मात्र के ही वर्णन

१–वही पृ० ३०७, ३१२ ३१६ ३३८।
२–वही पृ० ३०६ (दोहा)। ३–वही पृ० ३२८।
४–वही पृ० ३३१।
५–पद्मावत का काव्य सौंदर्य पृ० १२५।
६–जा० ग्र० हिन्दुस्तानी एकेडमी पृ० ६६४।

अखरावट में मिलते हैं। वे चारों मुकामों और सातों मुकामों के महत्व को भी स्वीकार करते हैं—

"सात खंड और चार नसेना। प्रथम चढ़ाव पंथ तिरबेनी ॥[1]
बाँक चढ़ाव सात खंड ऊँचा। चारि बसेरे जाइ पहूँचा ॥[2]

नैतिक मतवाद एवं आध्यात्मिक वैशिष्ट्य

क्या कबीरदास और क्या सूरदास, क्या तुलसीदास और क्या जायसी—वस्तुतः भक्तियुगीन इन संतों, भक्तों और सूफियों में विचार और भावना की संकीर्णता नहीं है। यद्यपि वे अपने-अपने धर्म और पथ पर दृढ़ हैं फिर भी वे उन्हें एकान्तिक एकमात्र पथ के रूप में नहीं कहते। वे सत्य और परम सत्ता को किसी मत विशेष में बाँधना नहीं चाहते। प्रेमाभिलाष की प्रेरणा से प्रेमी भक्त उस अखंड ज्योतिरूप की किसी न किसी कला से दर्शन के लिए सृष्टि का कोना-कोना झाँकता है, प्रत्येक मत और सिद्धांत की ओर आँख उठाता है और सर्वत्र जिधर देखता है उधर उसका कुछ न कुछ आभास पाता है। यही उदार प्रवृत्ति सब सच्चे भक्तों की रही है। जायसी की उपासना माधुर्य भाव से प्रेमी और प्रिय के भाव से है। उनका प्रियतम संसार के परदे के भीतर छिपा हुआ है। जहाँ जिस रूप में उसका आभास कोई दिखाता है वहाँ उसी रूप में देख के मग्न होते हैं। वे उसे पूर्णतया ज्ञेय या 'प्रमेय' नहीं मानते। उन्हें यही दिखाई पड़ता है कि प्रत्येक मत अपनी पहुँच के अनुसार अपने मार्ग के अनुसार उसका कुछ अंशत: वर्णन करता है। किसी सिद्धान्त विशेष का यह मत या आग्रह कि ईश्वर ऐसा ही है भ्रम है। जायसी कहते हैं—

सुनि हस्ती कर नाव अंधरन टोवा धाइ कै।
जेइ टोवा जेइ ठाँव मुहम्मद सो तैसे कहै ॥

'एकांग दर्शिनों' (एकांगदर्शियों) का यह दृष्टान्त सबसे पहले बुद्ध ने दिया था। इसको जायसी ने बड़ी मार्मिकता से अपनी उदार मनोवृत्ति की व्यंजना के लिए लिया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक मत में सत्य का कुछ न कुछ अंश रहता है।[3]

इसी कारण जायसी मुहम्मद के मत को श्रेष्ठ मानते हुए भी विधना में अनेक मार्गों को स्वीकार करते हैं। वे अखरावट में किसी विशिष्ट सिद्धान्तवाद

१—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, पृ० ३२०।
२—वही पृ० ३१५।
३—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, पृ० १५६—५७।

म बधना नही चाहते। अपनी उदार और सारग्राहिणी बुद्धि के फलस्वरूप योग उपनिषद अद्वतवाद भक्ति इस्लामी एकेश्वरवाद आदि स बहुत कुछ ग्रहण करते हैं। उनके लिए वे सभी तत्व ग्राह्य हैं जो प्रम की पीर जगाने म समथ है। अलग अलग पथो की अनेक भावनायें अनक विचारावलियाँ, अनेक सूक्तियाँ, जायसी की धम साधना म मिलकर इतनी एकाकार हो गई हैं कि साधारण बुद्धि चमत्कृत हो उठती है। ब्रह्मवाद (अद्वत) योग (हठ योग चक्रभेद और आनन्दवाद) और इस्लामी–सूफी सिद्धान्तो का समन्वय जायसी की अपनी विशेषता है।[1] सच्चे साधक को इन्द्रियोप भोग से ऊपर उठना आवश्यक है। साधना के माग मे भारत तो पथ भ्रष्ट करने के लिय है ही चचल मन[2] भी एक प्रबल शत्रु है इसका नियन्त्रण साधक के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अखरावट म साधना पथ के कतिपय रूपक (घी रूपक, धन दरपन रूपक और जोलाहा कम रूपक) भी नाथ पथी साधको की शैली के ही अनुरूप लिए गए हैं–

(क) घी रूपक

मा मन मथन कर तन खीरू। दुहै साइ जो आप अहीरू ॥
पाचो भूत आतमहि मार। गरब करब करसी क जार ॥
मन माठा-सम अरा क धाव। तन खता तेहि माह जिराव ॥
जपहु बुद्धि क दुइ सन फरहु। दही चूर अस हिया अभरहु ॥
पछवा कढ़ई कसह फेरहु। ओहि जोति मह जोति अभेरहु ॥
जस अतपट साढी फूट। निरमर होइ मया सब टूट ॥
मखनमूल उठ लेइ जोती। समुद माह जस उलट मोती ॥
जस घिउ होइ जराइ क तस जिउ निरमर होइ।
महै महेरा दूरि करि भोग कर सुख सोइ ॥[3]

गोस्वामी तुलसीदास न भी इसी प्रकार के धन रूपक की भावना का वणन किया है—

सात्त्विक श्रद्धा धनु सुहाई। जो हरि कृपा हृदय बस आई ॥
जप तप व्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धम अचारा ॥
तेइ तृन हरित चर जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पिन्हाई ॥

१–जायसी डा० रामरतन भटनागर पृ० १७७
२– चचल हि मन कृष्ण प्रमथि बलवद्दृढम्
तस्माह निग्रह मन्य वायोरिव सुदुष्करम
'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। श्री मद्भागवद्गीता।
३–जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, पृ० ३२४ २५।

नाइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा । निर्मल मन अहीर निज दासा ॥
परम धर्ममय पय दुहि भाई । अवटै अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब छमा जुड़ावै । धृति सम जावनु देइ जमावै ॥
मुदिता मथै बिचारि मथानी । दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता । बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ॥
जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ॥[1]

(२) दीपक-रूपक

दीपक जस बरत हिय आरे । सब घर उजियर तेहि उजियारे ॥
तेहि महँ अस समानेउ आई । सुन्न सहज मिलि आवै जाई ॥
तहाँ उठै धुनि आउंकारा । अनहद सबद होइ झनकारा ॥
— — —
सुनहु बचन एक मोर दीपक जस आरे बरै ।
सब घर होइ अँजोर मुहमद तस जिउ हीय महँ ॥[2]
— — —
एहि बिधि लसै दीप तेज रासि बिग्यानमय ।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब ॥
सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा । दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा । तब भव मूल भेद भ्रम नासा ॥
प्रबल अबिद्या कर परिवारा । मोह आदि तम मिटइ अपारा ॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा । उर गृह बैठि ग्रंथि निरुआरा ॥
छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई । तब यह जीव कृतारथ होई ॥
—रामचरितमानस उत्तरकांड ।

और (३) जोलाहा-रूपक

प्रेम-तंतु नित ताना तनई । जप तप साधि सकरा भरई ॥
खरब गरब सत देइ बिथारी । गनि साथी सब लहि सँभारी ॥—
सूत-सूत सो कया मजाई । सीझा काम बिनत सिधि पाई ॥
— — —
भर साँस जब नाव भरी । निसर छूछी पठ भरी ।
राइ-नाद क भरी चलाई । इबलिसाह क दारि चढ़ाई ॥[3]

१—रामचरितमानस गो० तुलसीदास (उत्तरकांड), दोहा ।
२—जा० ग्रं० ना० प्र० सभा पृ० ३२५ ।
३—जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ३३२ (४३।४४) ।

हम घर सूत तनहिं नित ताना ॥'
इगला पिंगला ताना भरनी सुखमन तार से बीनी चदरिया ॥
झीनी झीनी बीनी चदरिया ।

—कबीरदास ।

इन उदाहरणों के प्रकाश में स्पष्ट हो जाता है कि मध्ययुगीन भक्तों के भावों में एक अद्भुत साम्य है और यह वैचारिक एकता आश्चर्यजनक नहीं है। यह उस समय के विद्वानों साधकों योगियों और संतों में समान रूप से पाई जाती है। इन साधकों ने धर्म और जाति से बहुत ऊपर उठकर परम सत्ता के साक्षात्कार की बातें स्पष्ट की हैं। इन बातों में अनन्त शांति और शाश्वत सत्य का निर्देश मिलता है।

'अखरावट' के आधार पर जायसी के आध्यात्मिक विचारों को संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है—

(१) सृष्टि के आदिकाल में एक गोसाईं था उसे विलसता नूर मुहम्मद भी कहा जा सकता है। उसने ही यह क्रियायुक्त सृष्टि उत्पन्न की है।

(२) जीव और ब्रह्म में अभेद था किन्तु नारद के बहकाने के कारण जीव की अभेदता समाप्त हो गई वह स्वर्ग से बहिष्कृत हुआ और ईश्वर के जमाल जलाल से वंचित हुआ। वस्तुतः जीव में जो प्रेम विरह की तड़पन है वह इसी विरुपन के ही कारण है। वह इसी तड़पन और प्रेम पीर की साधना से पुनः ईश्वर के जमाल जलाल की अवाप्ति चाहता है। जीव जब अल्लाह को पुनः पा लेगा तो यह अभेदता मिट जायगी।

(३) मन का परिष्कार इसके लिए एक मुख्य साधन है। मात्र मन के परिष्कार से ही सब कुछ नहीं होता। साधक को कतिपय विशिष्ट साधनाओं की भी आवश्यकता पड़ती है। जायसी विधिना के अनेक मार्गों को स्वीकार करते हैं फिर भी इस्लाम को सर्वोपरि मानते हैं। यद्यपि उन्होंने इस्लाम पथ पर सूफी साधना का रंग चढ़ा दिया है।

जायसी का सूफी पथ सूफी मत को उनकी अपनी देन है। इसमें न केवल शास्त्रीय सूफी सिद्धांत हैं और न भावनात्मक रहस्यवादिता। नमाज तरीकत मारिफत, हकीकत और शरीअत इस्लामी साधना के विधि विधान हैं। जायसी ने इनकी नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है। जायसी योगियों की ही भांति कायानिष्ठ ब्रह्म की साधना को अत्यंत आवश्यक मानते हैं—'जो कछु पिंड सो ब्रह्माण्ड' उनकी साधना का एक मूल मन्त्र है। त्रिकुटी चक्रभेद इला पिंगला सुषम्ना, नौपौरी, दशम द्वार ब्रह्मरन्ध्र प्रभृति यौगिक साधनाओं द्वारा उसे प्राप्त किया जा

सकता है। हृदय मन की शुद्धता के साथ ही साधक को नैतिक आचरण की भी आवश्यकता है। साधक के लिए सर्वश्रेष्ठ साधना है प्रेम पीर की साधना—वस्तुतः इसी के माध्यम से जीव ब्रह्म की परम ज्योति साक्षात्कार करता है।

(४) यह सर्वविदित है कि जायसी ने प्रेम की पीर को सर्वाधिक महत्व दिया है। सूफी साधक एकमात्र प्रेम को ही मानता है। पदमावत में तो प्रेमपीर ही काव्य का विषय है—पदमावत की कहानी प्रेमपीर की ही कहानी है।

इस साधना के क्षेत्र में गुरु का बड़ा महत्व है। वही विरह को प्रदीप्त करता है। उस 'चिनगी' को सुलगाने का काम तो चेला का है। इस दुर्गम पथ पर साधक को अकेले ही चलना पड़ता है—

कठिन खेल औ मारग सकरा। बहुतन्ह खाइ फिरे सिर टकरा॥
मरन खेल देखा जो हंसा। होइ पतंग दीपक महं धंसा॥
तन पतंग भिरिंग के नाईं। सिद्ध होइ सो जुग जुग ताईं॥
बिनु जिउ दिए न पाव कोई। जो मरजिया अमर भा सोई॥

जायसी ने अपनी समर्थ तूलिका से प्रेम-पथ के साधक का एक अत्यन्त जीवंत चित्र दिया है—

प्रेम तन्तु तस लाग रहु, करहु ध्यान चित बांधि।
पारधि जस अहेर कहं, लाग रहे सर सांधि॥

' यह प्रेम की एक लक्ष्य साधना ही स्थूल रूप में रत्नसेन की पदमावती प्राप्ति की कहानी बन गई है।

(५) जायसी दर्शन के क्षेत्र में जीव, ब्रह्म और प्रकृति को तत्वतः एक मानते हैं। जहां-तहां वे प्रकृति को 'उसकी छाया' कहते हैं वहां प्रतिबिम्बवाद की झलक आ गई है। जो अन्तर है वह माया के कारण नहीं है, शैतान की करनी है। शैतान के ही भुलावे में आकर जीव अपने अतीत और उत्थान को भूल गया है। इसी से उनके, अल्लाह के और प्रकृति के बीच में परदा पड़ गया है।

जायसी ने मूलतः अद्वैतवाद के आधार पर ही अपने अध्यात्म जगत का निर्माण किया है—

'अस वह निरमल धरति अकासा। जैस मिली फूल महं वासा॥
सब ठांव औ सब परकारा। ना वह मिला, न रहै निनारा॥
ओहि जोति परछाहीं नवौ खण्ड उजियार।
सुरुज चांद के जोती, उदित अहै संसार॥'[1]

जायसी जीव और ब्रह्म के बीच में माया की सस्थिति का स्वीकार नहीं करते। अखरावट में एक स्थान पर माया का उल्लेख अवश्य है परन्तु शंकर अद्वैत के

१—जा० ग्र० ना० प्र० सभा १४९।

अर्थों मे नही। सूफियो के एक प्रधान वर्ग का मत है कि नित्य पारमार्थिक सत्ता एक ही है। इस दश्यमान अनेकत्व के बीच उसी का ही आभास मिलता है। यह नाम रूपात्मक दृश्य जगत उसी एक मत की बाह्य अभिव्यक्ति है। परमात्मा का बोध इन्ही नामो और गुणो के द्वारा हो सकता है। इसी बात को ध्यान म रखकर जायसी ने कहा है —

दीन्ह रतन विधि चार नन बन सरवन मुख।
पुनि जब मेटिहि मारि मुहम्मद तब पछिताव मैं॥

इस परम सत्ता के दो स्वरूप हैं — नित्यत्व और अनतत्व दो गण है — जनकत्व और जन्यत्व। शुद्ध सत्ता म न तो नाम है न गुण। जब वह निर्विशेषत्व या निर्गुणत्व से क्रमश अभिव्यक्ति के क्षत्र म आती है तब उस पर नाम और गुण लगे प्रतीत होते हैं। इन्ही नाम-रूपा और गुणो की समष्टि का नाम जगत है। सत्ता और गुण दोनो मूल मे जाकर एक ही हैं। दृश्यजगत भ्रम नही है उस परम सत्ता की आत्माभिव्यक्ति या अपर रूप म उसका अस्तित्व है। वेदान्त की भाषा मे यह ब्रह्म का ही निष्ट स्वरूप है। हल्लाज क मत की अपेक्षा यह मत वेदान्त के अद्वैत के अधिक निकट है। मूत-अमूत सबका उस ब्रह्म का व्यक्त-अव्यक्त स्वरूप मानने वाले जायसी यदि उस ब्रह्म की भावना अनन्त सौंदर्य और अनन्त गुणो स सम्पन्न प्रियतम के रूप म करें तो उनके सिद्धान्त म कोई विरोध नही आ सकता। उपनिषदो म भी उपासना के लिए ब्रह्म की सगुण भावना की गई है। जायसी सूफियो के अद्वतवाद तक ही नही रहे है वेदान्त के अद्वतवाद तक भी पहुचे हैं। भारतीय मत मतान्तरो की उनम अधिक झलक है।[1]

सूफी साधक भी अहं ब्रह्मास्मि की ही भाति अनलहक का प्रतिपादन करते हैं और इस प्रकार वे ब्रह्म की एकता और अपरिच्छिन्नता का भी प्रतिपादन करते हैं। जीव और ब्रह्म की अद्वत स्थिति का एक बडा बाधक तत्व अहकार है। अहकार के कुहासे के फटते-छूटते ही इस ज्ञान का उदय हो जाता है कि सब मैं ही हू मुझसे अलग कुछ नही है। जायसी सोऽहम की अनुभूति को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं — (अहकार)

हौं — हौं कहत सब मति खोई। जौ तू नाहि आहि सब कोई॥
आपुहि गुरु सो आपहि चेला। आपुहि सब और आपु अकेला॥

(सोऽहम्)

सोह सोह बसि जो करई। जो बूझ सो धीरज धरई॥

जीव ईश्वर की एकता के साथ ही जायसी जगत को ब्रह्म स अलग नहीं

१—जा० ग्र० ना० प्र० सभा, भूमिका पृ० १४४-४५।

मानते। जगत की जो सत्ता प्रतीत हो रही है यह तो अवभास या छाया मात्र है, पारमार्थिक नहीं --

जब चीन्हा तब और न कोई। तन मन जिउ, जीवन सब सोई॥

हौं -- हौं कहत धोख इतराही। जब भा सिद्ध कहा परछाहीं ?

स्पष्ट है कि जो नाम रूपात्मक दृश्यमान जगत है वह न तो ब्रह्म का वास्तव स्वरूप ही है और न ब्रह्म का कार्य या परिणाम ही है। वह है केवल अध्यास या भ्रान्तिज्ञान। उसकी कोई अलग सत्ता नहीं है। नित्य तत्त्व ब्रह्म एक ही है।[1]

'प्रतिबिम्बवाद' की ओर जायसी ने पदमावत में बड़े ही अनूठे ढंग से संकेत किया है --

सरग आइ धरती महं छावा। रहा धरति पै धरत न आवा॥

'स्वर्गीय अमल-तत्त्व धरती में ही छाया हुआ है, पर पकड़ में नहीं आता।' इस भाव को कवि ने 'अखरावट' में अधिक स्पष्ट रूप में प्रकट किया है --

आपुहि आप जो देखै चहा। आपनि प्रभुता आपु सौं कहा॥
सबै जगत दरपन कै लेखा। आपुहि दरपन आपुहि देखा॥
आपुहि बन और आपु पखेरू। आपुहि सौजा आप अहेरू॥
आपुहि पुहुप फूलि बन फूलै। आपुहि भवर बास रस भूलै॥
आपुहि घट घट महं मुख चाहै। आपुहि आपन रूप सराहै॥
दरपन बालक हाथ मुख देखै दूसर गनै।
तस भा दुइ एक साथ मुहमद एकै जानिए॥

'आपुहि दरपन आपुहि देखा' से दृश्य और द्रष्टा, ज्ञेय और ज्ञाता का एक दूसरे से अलग न होना सूचित होता है। इसी अर्थ को लेकर वेदान्त में यह कहा जाता है कि ब्रह्म जगत का केवल निमित्त कारण ही नहीं उपादान कारण भी है। 'आपुहि आप जो देखै चहा' का मतलब यह है कि जब अपनी ही शक्ति का लीला विस्तार देखना चाहा। शक्ति या माया ब्रह्म ही की है। ब्रह्म से पृथक उसका कोई अस्तित्व नहीं। 'आपुहि घट घट महं मुख चाहै' अर्थात् प्रत्येक शरीर में जो कुछ सौंदर्य दिखाई पड़ता है वह उसी का है। किस प्रकार एक ही अखण्ड सत्ता के अलग-अलग अनेक प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ते हैं यह बताने के लिए जायसी यह पुराना उदाहरण देते हैं --

गगरी सहस पचास जो कोउ पानी भरि धरै॥
सूरुज दिपै अकास मुहमद सब महं देखिए॥[2]

१--जा० ग्र० ना० प्र० सभा भूमिका पृ० १८७।
२--जा० ग्र० ना० प्र० सभा, पृ० १४७--४८

अखरावट म जायसी न उदारतापूवक इस्लामी भावनाओ के साथ भारतीय हिन्दू भावनाओ के सामञ्जस्य का प्रयत्न किया है। स्पष्ट है कि व इस्लाम पर पूण आस्था रखते है किन्तु उनकी यह इस्लाम भावना सूफी मत की नवीन न्याख्याओं से सवलित हैं योगमत के योगाचार विधानो से मण्डित है और हिन्दू मुस्लिम दोना एक ब्रह्म की ही सतान हैं की भावना से अलकृत है। ब्रह्मा विष्णु और महेश के उल्लेख[1] प्रसग वश अलिफ एक अल्ला बड मोई[2] केवल एक स्थल पर अल्लाह का नामो-लख करान[3] के लिये कुरान और पुरान के नामोल्लेख स्वग या बिहिश्त के लिए सवत्र कलाश या कबिलास के प्रयोग अह ब्रह्मास्मि या अनलहक के लिये सो ह[4] का प्रयाग इ लीस या शैतान के स्थान पर नारद[5] का उल्लेख योग साधना के विविध वणन प्रभृति बात इस बात की ओर इगित करती हैं कि जायसी हिन्दू मुस्लिम भावनाओं म एकत्व को दृष्टि म रखते हुए समन्वय एव सामञ्जस्य का प्रयत्न करते हैं। महात्मा कबीर ने भी इस दिशा म प्रयत्न किया था। कबीर ने बडी ही लापरवाही और अक्खडता से इसी सामञ्जस्य भावना की ओर इ गित किया था जो तू तुरुक तुरुकनी जाया। आन बाट होइ काहे न आया॥ (कबीर) और जायसी ने भी हिन्दू मुसलमानों की एकता के विषय में अत्यत नम्रता पूवक कहा—

तिन्ह सतति उपराजा भातिन्ह भाति कलीन॥
हिन्दू तुरुक दुवौ भए अपने अपने दीन॥
मातु क रक्त पिता क बिन्दू। अपने दुवौ तुरुक औ हिन्दू॥[6]

जायसी की यह सामाञ्जस्य भावना उनक उदार मानवतावादी दृष्टकोण की परिचायिका ह—

आखिरी कलाम

हस्तलिखित प्रतिया और सम्पादन

सवप्रथम आखिरी कलाम का प्रकाशन फारसी लिपि म हुआ था। यह बहुत पुरानी छपी हुई थी[9] सयद कल्बे मुस्तफा साहब के परिश्रम के परिणाम स्वरूप

१—जा० ग्र ना प्र० सभा (अखरावट) पृ० ३०४।
२—वही, पृ० ३३०।
३—वही पृ० ३२१ ३३०।
४—वही, पृ० ३०७।
५—वही पृ० ३१२ ३२८।
६—वही पृ० ३०८–३२ (इक्तीस) ३३१ (ना नारद तब रोइ पुकारा)।
७—वही पृ० ३०८।
८—वही पृ० ३१३।
९—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा (वक्तव्य द्वितीय सस्करण, पृ० १)।

शेख नियामतुल्लाह साहब की कृपा से यह पुस्तक प्राप्त हुई और जायसी ग्रंथावली के द्वितीय संस्करण में (१९३५ ई०) प्रकाशित होकर हिंदी जगत के समक्ष आई।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'जायसी ग्रंथावली' के वक्तव्य में लिखा है कि उन्होंने अपने सम्पादन में 'आखिरी कलाम' का भी पाठ शुक्लजी के संस्करण का ही रखा है। 'उसकी एक लीथो प्रति लखनऊ के श्री सय्यद कल्बे मुस्तफा जायसी से मिल गई। श्री कल्बे मुस्तफा जायसी का कथन था कि इसी प्रति से शुक्लजी ने भी उसका पाठ अपने संस्करण में लिया था। शुक्लजी के पाठ को इस प्रति के पाठ से मिलाने पर यह बात ठीक ज्ञात हुई किन्तु इस प्रति में प्राय: प्रत्येक पंक्ति में एक से अधिक पंक्तियां द्वारा किए गए संशोधन भी हैं जिनका आधार संशोधकों की कल्पना के अतिरिक्त कदाचित और कुछ नहीं है। शुक्लजी ने अधिकतर संशोधनों को स्वीकार करते हुए और अपनी ओर से भी कुछ संशोधन करते हुए रचना का पाठ अपने संस्करण में लिया है।'[1]

निर्माण काल

जायसी तीस वर्ष की आयु में काव्य रचना करने लगे थे। आखिरी कलाम का निर्माण उन्होंने १५२९ ई० (९३६ हि०) में किया। उससे पहिले बादशाह बाबर दिल्ली की गद्दी पर बैठ चुके थे जिसका उल्लेख कवि ने किया है—

बाबर साह छत्रपति राजा। राजपाट उन कहँ बिधि साजा॥
मुलुक सुलेमा कर ओहि दीन्हा। अदल दुनी ऊमर जस कीन्हा॥
अली केर जस कीन्हेसि खाँडा। लीन्हेसि जगत समुद भरि डाँडा॥
बल हमजा जावर जस सभारा। जो बरियार उठा तेहि मारा॥
पहलवान नाए सब आनी। रहा न कतहु बाद कर बानी॥'[2]

जायसी ने शाहंशाह बाबर की जो प्रशंसा की है वह यथार्थ है। बाबर ने २१ अप्रैल १५२६ ई० को पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी को परास्त करके दिल्ली और आगरे पर अधिकार प्राप्त किया था[3]। १५३० ई० तक बाबर ने सभी प्रतिद्वंदियों को परास्त कर लिया था।[4]

कुछ लोगों का यह अनुमान है कि सम्भवत: जायसी बाबरी दरबार में सम्मिलित हुए हों, क्योंकि उस समय तक मुगल राज्य जायस तक नहीं फैला

१—जायसी ग्रंथावली (हि० एकेडमी) पृ० ३।
२—जा० ग्र० ना० प्र० सभा पृ० ३४१—४२।
३—ऐन एम्पायर बिल्डर आफ सिक्सटीन्थ सेन्चुरी—विलियम रशब्रुक पृ० १३८—३५
४—दि मुगल एम्पायर फ्राम बाबर टू औरंगजेब श्री एस० एम० जफर पृ० २१।

था[1]। आखिरी कलाम की पंक्ति जायस नगर मोर अस्थानू प्रकट है कि जायसी इस पंक्ति की रचना के समय जायस से भिन्न स्थान पर निवास कर रहे थे और वह स्थान सम्भवतया शाही दरबार था जिसकी प्रशंसा उन्होंने मुक्तकण्ठ से की है तथा जिस राजा की दान वीरता को जी खोलकर सराहा है।[2]

मसनवी पद्धति के अनुसार यह शाहनक्त की प्रशस्ति है। किन्तु किसी सुदृढ प्रमाण के अभाव में यह मानना कठिन है कि वे बाबरी दरबार में निवास कर रहे थे। आखिरी कलाम में ही जायसी ने निर्माण तिथि भी दी है–

'नौ से बरस छत्तीस जो भए। तब एहि कथा क आखर कहे॥'[3]

अर्थात यह काव्य ९३६ हिजरी में लिखा गया।

आखिरी कलाम की कथा

जायसी ने इस काव्य के प्रारम्भ में मसनवी शैली के अनुसार ईश्वर स्तुति की है। अपने 'नौ सदी' में अवतार धारण करने का उल्लेख करके उन्होंने भूकम्प और सूर्य ग्रहण के भी उल्लेख किए हैं। मुहम्मद स्तुति शाहेतख्त बाबरशाह की प्रशस्ति और सैयद अशरफ की वन्दना जायस नगर का परिचय ९३६ हिजरी में इस काव्य के प्रणयन के उल्लेखों के पश्चात कवि ने अत्यन्त हुलसित भाव से प्रलय काल का वर्णन किया है। धरती को आज्ञा हुई और उसने द्रव्य उगलना शुरू किया। मार्जारी के सूंघने मात्र से ही लोग मरने लगे। पुनः मकाइल को अनुमति मिली। उन्होंने अग्नि की घोर वर्षा की। सारी पृथ्वी जलने लगी। शत शत मन की शिलाएं बरसी टूटी। यह क्रम चालीस दिनों तक चला। संसार के समस्त जीव जन्तु इसमें मर गए। जिबरईल ने इस दृश्य को देखा और ईश्वर से निवेदन किया कि चलकर देख लीजिए संसार में कोई भी जीवित नहीं बचा है। मुर्दों के आधिक्य के कारण धरती की मिट्टी तक नहीं दिखाई देती।

पुनः मकाईल नामक फिरिश्ते को बुलाकर पृथ्वी पर जल बरसाने की आज्ञा दी गई। चालीस दिनों तक धारासार जल वृष्टि होती रही। सम्पूर्ण संसार जलमग्न हो गया।

तत्पश्चात इसराफील को आज्ञा दी गई। उन्होंने सूर (तूर्य) नाद से सारे

१–सुल्तान पुर गजेटियर भाग ३६ १९०३ पृ० १३४ (दी मुगल टू इन देयर फर्स्ट इनवशन डू नाट सी टू हैव टचुड सुलतानपुर)।

२–आखिरी कलाम – दोहा ८ ४१–४२।

३–जा० ग्र० ना० प्र० सभा, पृ० ३४३ (१३।१) डा० माताप्रसाद गुप्त ने तब एहि कविता आखर कहे। पाठ दिया है – जा० ग्र० हि० ए० पृ० ६६१ (१३।१)।

ससार को उडा दिया पथ्वी एव आकाश कापने लगे, चौन्हो भुवन भूले की तरह झूलने लगे। उनकी प्रथम फूक से नदी-नाले समतल हो गए। दूसरी फूक पर पहाड और समुद्र एक हो गए। चाद सूय तारे सब टूट-टूट कर गिर गए।

इसके पश्चात अजराईल को आज्ञा हुई कि समस्त जीवो को न आए। अजराइल ने एक एक करके जिबराईल मकाईल और इसराफील को मार डाला। तब ईश्वर ने उस यम-अजराईल-स पूछा- अब तो कोई नही बचा। उसने कहा 'अब मरे और आपके सिवा कोई नहा बचा। ईश्वर न अजराईल के भी प्राण ले लिए।

चालीस वर्षों तक निष्प्राणिक जीवन के पश्चात ईश्वर ने सोचा मैंने ही यह सम्पूर्ण ससार बनाया है किन्तु अब कोई मेरा नाम लनवाला भी नही है। मैं इन समस्त पडे हुओ को पुन उठाऊगा और सरात के पुन पर स चलाऊगा कौसर म स्नान कराके जीवो को बकुठ म भेजगा।

सवप्रथम चारो फिरिश्ते जीवित किए गए। जिबराइल ने पथ्वी पर आकर महम्मद को पुकारा। लाखो स्वरो ने समवेत भाव म उत्तर दिया। उन्होंने घबडा कर ईश्वर के पास जाकर निवेदन किया, हे गुसाई मैं उन्ह कहा पाऊ ? धरती पर मरी पुकार म उतर म लाखो स्वर एक साथ सुनाई पडते हैं। मैं किसे यहा लाऊ ?

पुन जिबराईल को भेजा गया उन्होंने मुहम्मद को ढूढ निकाला। वे अपने अनुयायियो के साथ उठे। वे सब नग्न थ। उन सब के तालू म आखें थी। सब स्वग की ओर देख रहे थे। एक ओर मुहम्मद दूसरी ओर जिबराईल और बीच म वे सब सब के सब तीस सहस्र कोस लम्बे पुन सरात के अत्यन्त सकरे पथ पर चले। पापी पुल के नीचे पीप के सागर म गिर पडे।

ईश्वर की आज्ञा स सूय फिर स दीप्यमान हुआ। उसी आलोक म समस्त सब जीवो का लेखा जोखा होने लगा। सूय लगातार छ महीने तक चमकता ही रहा और वहा प्रकाश ही प्रकाश-दिन ही दिन रहा। कुछ ताप म व्याकुल जल रह थे कुछ पिपासा से पीडित हुए और जो धर्मी थ उनके सिर पर छाह थी-उन्ह किसी प्रकार का कष्ट नही था। सवा लाख पगवर भी वहा थ। मुहम्मद साहब को आज्ञा दी गई कि वे अपने अनुयाइयो को सामने लाए। मुहम्मद ने निवदन किया कि यदि आपकी आज्ञा हो तो धर्मी जनो को पहले ले आऊ। ईश्वर ने कहा कि मैं पहले पापियो को दड देना चाहता हू। जन उन्ह ही ले आओ। पश्चात मुहम्मद साहब ने आदम ईसा इब्राहीम नूह आदि को एक एक पगबर के पास जाकर उनकी ओर से ईश्वर से विनती करने को कहा। परन्तु कोई प्रस्तत न हुआ। आदम न कहा मैं तो स्वय दुख में हू, गेहू खाकर झझट म फस गया हू।' मूसा ने कहा

हे रसूल, मैं फरऊ बादशाह से झगडा करके स्वय विपत्ति म फसा हू । जब किसी ने साथ नही िया तो रसूल ने ईश्वर से आकर स्वय प्राथना की। ईश्वर ने क्रोधित होकर फातिमा बीबी को बुलवाया। सब न आखें ब द कर ना। फातिमा बीबी ने हसन हुसेन को ईश्वर के यहा प्रस्तुत करते हुए याय की याचना की। उ होन कहा कि यदि मेरा याय न किया गया तो शाप दू गी और सारा आसमान जल जायगा। ईश्वर ने मुहम्म से कहा कि यदि वे अपनी वेटी को शा त न करेंगे, तो उनके सब अनुयायी नरक म डाल िए जाए गे। फातिमा ने जब देखा कि अ य पगम्बर तो अह म हैं और उसके पिता (मुहम्मद) घूप म अपने अनुयायियो के सुख के लिए मारे मारे फिर रहे हैं तो मुहम्मद और उनके अनुयायिया के सकट को देखकर बीबी फातिमा का हृदय पानी पानी हो गया। ईश्वर मुहम्म साहब पर प्रसन्न हो गए। हसन हुसन को मारने वाले यजी को ईश्वर ने नरक म डाल दिया। ईश्वर ने महम्म साहब के कारण सबको क्षमा कर दिया। कौसर के पवित्र जल म सबको स्नान कराया गया। मुहम्मद साहब और उनके अनुयायियो की इस प्रसन्नता के उपलक्ष्य म ईश्वर ने दावत दी। भाति भाति के स्वर्गीय भोजना के पश्चात सबको शराबु तहूरा (स्वर्गीय शराब) दी गई। स्वर्ग म जाने के पहल महम्मद साहब की प्राथना पर ईश्वर ने अपने दि य स्वरूप के दर्शन दिए। दर्शन की मूच्छना मे सब तीन दिन तक मूच्छित पड रहे। जिबराईल ने सबको जगाया और दि य वस्त्र पहन कर सब स्वग मे गए। स्वग म सबके लिए आन और हूरें प्रस्तुत थी।

इस का य का अ त जायसी ने स्वग के अनत विलास और अन त आन द के वणन क साथ किया है। स्वग म न नीद है न मत्यु न दुख है न व्याधि, सवत्र आन द ही आन द है—

नित पिरीत नित नित नव नेहू। नित उठि चौगुन होइ सनेहू।।
तहा न मीचु न नीद दुख रह न देह मह रोग।
सदा अन द मुहम्म सब सुख मान भोग।।

—ज० ग्र० प० ३६१ दोहा ६०।

नाम

जब कि जायसी ने इस ग्रथ के प्रारम्भ म शाहेवक्त बाबर शाह की प्रशस्ति की है सन नवस छतीस जब भए। तब एहि कथा क आखर कहे।। प्रभति पक्तिया लिखी हैं। तब भी हिंदी के नामी गरामी कई लोगा न आलोचक बनने के जोश म यह मान ही लिया है कि यह जायसी का आखिरी कलाम है अर्थात 'अतिम रचना है।

वस्तुत ऐसा कहने का इन विद्वाना के पास कोई आधार नही हैं। कई लोगों ने तो आखिरनामा य आखरियत नामा को ही अधिक समीचीन नाम माना है और

कहा है कि "लेखक की असावधानी से किंवा जनश्रुति के आधार पर परिवर्तित नाम 'आखिरी कलाम' प्रसिद्ध हो गया हो। ग्रंथ के वर्ण्य विषय के विचार से भी आखिरनामा बहुत ही उपयुक्त जचता है।[1] कुछ लोगों को 'आखिरी कलाम' का शब्दिक अर्थ ठीक बैठता दिखाई नहीं देता।[2] कौन-सा नाम अधिक समीचीन है कौन सा नाम किसी आलोचक को अधिक जचता है और लेखक (जायसी या प्रतिलिपिकार) की असावधानी से नाम आखिरी कलाम हो गया हो, ऐसी कल्पनाएं उचित नहीं हैं। वस्तुतः यह प्रलय (आखिरी समय) के वर्णन से सम्बद्ध जायसी का कलाम है।[3] यह कहना कि जायसी के अन्य काव्यों के अनुकरण पर इसका भी नाम आखिरीनामा होना चाहिए,[4] यह प्रस्ताव ही असंगत है। स्पष्ट है कि इस ग्रंथ में सृष्टि के अन्तिम दृश्य का वर्णन होने से अन्तिम वर्णन का काव्य अर्थात् 'आखिरी कलाम' नाम देना ही जायसी ने उचित समझा था। यह कहना कि यह नाम निस्सन्देह नाम की शिथिलता, अपरिपक्व विचारधारा आदि का द्योतक है', कवि के प्रति अन्याय है। क्योंकि आज तक के प्राप्त उल्लेखों, परम्पराओं, ग्रन्थनामों और हस्तलेखों में सर्वत्र 'आखिरी कलाम' ही नाम मिलता है और इस नाम में कोई भी अपरिपक्वता नहीं है। इस नाम में वर्ण्य-वस्तु का पूर्ण इंगित है यह नाम पूर्णतः कलात्मक और कवित्वपूर्ण है अर्थवत्ता और व्यंजकता भी इस नाम में दर्शनीय हैं और इस नाम में एक दर्शन का कमाल भी है।

कलाम से तात्पर्य कलाम पाक, कलाम मजीद, कलामुल्ला' प्रभृति शब्दों का विशिष्ट अर्थ कुरान से लगाया जाता है। कुरान को इस्लाम में आखिरी कलाम भी कहा जाता है। कुरान में अन्तिम रसूल पर अल्लाह की कृपाओं और नियामतों का उल्लेख है। प्रलयकाल का पूर्ण विवरण भी दिया हुआ है। जायसी ने अपने 'आखिरी कलाम' को इस्लाम के आखिरी कलाम (कुरान) के ही अनुकरण पर बनाया है। प्रथम और अंतिम अध्याय के दृश्य पूर्णतः इस्लाम-सम्मत हैं। यह अवश्य है कि प्रस्तुत काव्य में मुहम्मद साहब की महत्ता का मुख्य रूप में प्रतिपादन किया गया है। कुरान और प्रस्तुत ग्रंथ आखिरी कलाम दोनों के प्रलय वर्णन आदि एक से हैं। इस्लाम मजहब के अनुयायियों के लिए जायसी ने मुहम्मद साहब के प्रति

१—सूफी महाकवि जायसी डा० जयदेव पृ० ६२-६३।

२—म० मु० जायसी डा० कमल कुल श्रेष्ठ, पृ० ४६।

३—आदर्श हिंदी शब्दकोश रामचन्द्र पाठक पृ० १८९ (कलाम वचन कथन, वक्तव्य बातचीत) तथा हिन्दुस्तानी इंगलिश डिक्शनरी (कलाम वक्तता साहित्यिक कृति अथवा आपत्ति)।

४—सूफी महाकवि जायसी डा० जयदेव, पृ० ६४।

जिस भक्ति और आस्था विश्वास का प्रनिफल न प्रस्तुत काय म किया है वह उन्ह आखिरी क्लाम के समक्ष ही प्रतीन हआ था और यही कारण है कि जनता के विश्वास और महम्मद साहब ने प्रनि आस्या का दढतर करने के लिए जायसी ने आखिरी क्लाम नाम ही अत्यत उपयुक्त समझा था।

पीर महिमा

'आखिरी क्लाम मे लगता है कि कवि बिन गुरु ज्ञान मिलत नाही का समथक हो चुका है। पीर की महत्ता पर उसकी पूण आस्था है। सयद अशरफ उसके प्यारे पीर है। पीर के द्वार की सेवा (मुरीदी) से ही मनवाछित फल की प्राप्ति हो सकती है –

मानिक एक पाएउ उजियारा। सयद असरफ पीर पियारा॥
जहागीर चिस्ती निरमरा। कल जग मह दीपक विधि धरा॥
समुन्द माह जो बाहति फिरई। तेत नाव सौह होइ तरई॥
तिन्ह घर हौ मुरीद सो पीरू। सवरत बिनु गुरु लावत तीरु॥
जो अस पुरषहि मन चित नाव। इच्छा पूज आस तुलाव॥
जौ चालिस दिन सेव बार बुहार कोइ।
दरसन होइ महम्मन्द पाप जाइ सब धोइ॥ [1]

प्रस्तुत पक्तियो म जो अस – – तलाव विशेष द्रष्टव्य है। अनेक लोग सयद अशरफ जहागीर को भी जायसी का गुरु मानते है। गुरु परम्परा के सिलसिले म स्पष्ट किया जा चुका है कि जायसी के जन्म के बहुत पहले ही सयद अशरफ की मृत्यु हो चुकी थी। वे तो स्पष्ट रूप म जायसी के पूज्य पीर थे जिनका मनचित से ध्यान लाने मात्र स ही इच्छाए पूण हो जाती हैं।

आखिरी क्लाम म कुल मिलाकर ४२० अर्द्धालिया और ६ दोहे है। वास्तव म आखिरी कलाम कवि की अप्रौढ रचना है। कवि न कुरान म आखिरी दिन का जो वणन पढ़ा था उस स्वात सुखाय और बहुजन हिताय आखिरी कलाम म दोहे चौपाई और सहज अवधी भाषा के माध्यम स कह दिया है। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान–दोनो क लिए आखिरी कलाम सुलभ हो गया।

शिया विचारधारा

कहा जा चुका है कि प्रलय (कयामत) के दिन का वणन कुरान-सम्मत है। सूफी मत विशेष रूप स शिया मुसलमानो म प्रिय रहा है। यहा पर फातिमा–पुत्र

१–जा० ग्र० ना० प्र० सभा ३८२ (नाहटा स० ६)

हसन हुसेन की मृत्यु के लिए मुहम्मद साहब के अनुयायियों को गुनहगार ठहराया गया है। रसूल के आग्रह पर और बीबी फातिमा की कृपा पर उन्हें क्षमा मिल गई है। यजीद को सजा मिली है। मूलतः यह शिया-शाखा की विचारधारा है। इसीलिए लगता है कि जायसी शिया थे या शिया सम्प्रदाय की ओर उनका झुकाव था।

इस्लामी धर्म-दर्शन

आखिरी कलाम की कथा ही इस्लामी मजहब के हश्र (प्रलय) दिन की कथा है। प्रायः सभी सामी मतों में ईश्वर को एक कठोर शासक के रूप में माना गया है। सर्वत्र उसके आतंक और प्रताप की ही प्रधानता है। इस काव्य में जायसी ने लिखा है, जब सूर्य चन्द्र प्रभृति सबको को ग्रहणादि का त्रास मिलता है तो जन सामान्य की क्या बात ?–

तासहु ऐसा तरासैं, जो सेवक अस नित।
अबहु न डरसि मुहम्मद काह रहसि निहचित ॥
जा० ग्र० ना० प्र० सभा पृ० ३४० ।

उसने ही धरती गिरि मरु पहाड़ स्वर्ग सूर्य चाँद तारे और अठारह सहस्र योनियों को बनाया है जो जीवन में उसका नाम नहीं लेता उसे वह नरक में डाल देता है–

"सहस अठारह दुनिया सिरे । आवत जात जातना करैं ॥
जेइ नहिं लीन्ह जनम महँ नाऊँ । तेहि अस कीन्ह नरक महँ ठाऊँ ॥
सो अस दउ न राखा जेइ कारन सब कीन्ह ।
दहुँ तुम काह मुहम्मद एहि पृथवी चित दीन्ह ॥ [१]

ईश्वर की उसकी आज्ञा का उल्लंघन पूर्णतः असह्य है–

आयसु इबलीसहु जो टारा। नारद होइ नरक महँ पारा ॥"[२]

उसने फरऊ बादशाह को घोर नरक दिया है। शद्दाद ने बिहिश्त के नमूने पर अपना स्वर्ग बनवाया था। ईश्वर ने उसे द्वार के अन्दर घुसने ही मार डाला–

'जो शदाद बैकुण्ठ सँवारा। पैठत पौर बीच गहि मारा।
जो ठाकुर अस दारुन सेवक तेइ निरदोख।
माया कर मुहम्मद तौ पै होइहि मोख ॥ [३]

इबलीस ने ईश्वर से प्रतिद्वंद्विता की। उसने आदम को बहका कर गेहूँ खिला

१–जा० ग्र०, ना० प्र० सभा पृ० ३६१ (७)।
२–वही। ३–वही।

दिया ।[1] ईश्वर ससार का कर्त्ता[2] पालक और सहारक है–

'भजन गढन सवारन, जिन खेला सब खेल ।
सब कह टारि मुहम्मद अब होइ रहा अकेल ॥'[3]

उसने सपूण सष्टि का उद्भव और विकास मुहम्मद साहब की प्रीति के लिए ही किया है–

'जेहि हित सिरजा सात समुदा । सातहुदीप भए एक बुदा ।
नर पर चौन्ह भुवन उसारे । बिच बिच खड बिखड सवारे ॥
सो अस दउ न राखा जेहि कारन सब कीन्ह ।
तुम तह एता सिरजा आप क अतर हेद ।
देखहु दरस मुहम्मद आपनि उमत समेत ॥'[4]

जायसी ने 'पुले–सिलवान एव कौसर –स्नान का उल्लेख किया है–

पुल सिलवात पुनि होइ अमरा । लखा नै अब (उमत ?) सवकेरा ॥[5]

आखिरी कलाम म अतिम दिन के न्याय का चित्रण कवि का प्रतिपाद्य है । ईश्वर के चार फिरिश्ता और उनके कार्यों के भी उल्लेख इसम मिलते हैं ।

जायसी के मानस म बिहिश्त के लुत्फ शराबुत्तहूरा हूर गिल्म, विलास एव परमानन्द–भोग[6] आदि झूल रहे थे । आखिरी कलाम के अत म इन सब के उल्लसित वणन मिलते हैं–

'चालिस चालिस हूर सोई । औ सगलागि बियाही जोई ॥
औ सेवा कह अछरिन्ह केरी । एक एक जनि कह सौ सौ चेरी ॥[7]
पठि बिहिस्त जौ नौ निधि पहे । अपने अपने मन्दिर सिधहैं ॥[8]
नित पिरीत नित नव नव नेहू । नित उठि चौगुन होइ सनहू ॥
नित्तइ नित्त जो बारि बियाहै । बीसो बीस अधिक ओहि चाहै ॥
तहा न मीचु न नीद दुख रह न देह मह रोग ॥
सदा अनद मुहम्मद सब सुख मान भोग ॥'[11]

१–जा० ग्र० ना० प्र० सभा भूमिका पृ० ३४१–४२ ।
२–वही, पृ० ३३६ (दोहा १ २)
३–वही पृ० ३५७ ।
४–वही पृ० ३४१ ।
५–वही पृ० ३५७ (दोहा ५) ।
६–वही ।
७–वही पृ० ३५७ (दोहा ५०) ।
८–वही प० ३५६ (दोहा ५६ ५७) ।
९–वही पृ० ३५८ (दोहा ५३ । ६–७) ।
१०–वही पृ० ३५६ (दोहा ५७।१) ।
११–वही पृ० ३६१ (दोहा ६०) ।

जीव–सृष्टि–ब्रह्म

जायसी ने कुरान एवं अन्यान्य इस्लामी धर्म ग्रन्थों को ही आधार मानकर 'आखिरी कलाम' की रचना की है। जायसी मुसलमानी एकेश्वरवाद पर विश्वास रखते थे। इस ग्रन्थ में 'सूफी'–सिद्धान्तों और मतों का प्रतिपादन नाम मात्र का ही है। वस्तुतः इसमें मुहम्मद साहब की प्रशस्ति का गान ही मुख्य विषय रहा है।

इस काव्य के अध्ययन से लगता है कि जायसी पर अद्वैतवाद का जादू पूर्णतः चढ़ा हुआ था–

अद्वैतवादी के अनुसार– ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर

अर्थात् ब्रह्म के अतिरिक्त समस्त संसार मिथ्या है–

' साचा सोइ और सब झूठ। ठाव न कतहु ओहि के रूठ॥'[1]

यह संसार मिथ्या किंवा असार स्वप्नवत है–

यह संसार सपनकर लेखा[2]

इस दृश्य जगत में जो कुछ है सब में ईश्वर का प्रतिबिम्ब है–

' सब जगत दरपन कै लेखा। आपन दरसन आपुहि देखा॥'[3]

ईश्वर या ब्रह्म अकेला था। उसने अपने कौतुक के लिए सम्पूर्ण संसार को बनाया सजाया है–

''अपने कौतुक कारन मीर पसारिन हाट''[4]

अठारह सहस्र योनियों का करतार भी वही है। सब में उसी का प्रतिबिम्ब दर्शनीय है। वही इन समस्त जीवों का निर्माण करता है पालन रक्षण करता है और संहार करने के पश्चात् अकेला रहता है–

' भजन गढ़न सवारन जिन खेला सब खेल।
सब कहं टारि, मुहम्मद, अब होइ रहा अकेल॥'[5]

'आखिरी कलाम' में आए हुए जीव ब्रह्म एवं सृष्टि से सम्बद्ध ये व सार्वेतिक बिन्दु हैं जिनका विकास पदमावत में हुआ है।

'आखिरी कलाम' मूलतः एक कथा प्रधान रचना है। इसमें इस्लाम धर्म के अनुसार अन्तिम दिन की कथा कही गई है। इसकी भाषा साधारण है। अलंकृति

१–जा० ग्र० ना० प्र० सभा पृ० ३४० (४)। २–वही'

३–वही पृ० ३४२ (दोहा १०१७)।

४–' स एकाकी न रमते तस्मात्तेनत्त द्वितीयम ऐच्छत।'' एको हं बहुस्याम की इच्छा से ही ब्रह्म ने लीलार्थ सृष्टि की है।

५–जा० ग्र० ना० प्र० सभा पृ० ३४२। ६–वही पृ० ३४७।

और रसमयता का इसम प्राय अभाव है। वणनात्मकता का ही सवत्र प्राधान्य है। इस ग्रन्थ की अवधी म फारसी अरबी और कुरान के शब्द भी पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं। काव्य सौन्दय की दृष्टि से यह विशेष महत्वपूण नही है।

चित्ररेखा

चित्ररेखा की प्रतिया

चित्ररेखा के सपादन[1] म दो हस्तलिखित प्रतियो का उपयोग किया गया है। हैदराबाद के सालार – ए – जग सग्रहालय वाली प्रति का नाम सुविधा के लिए 'प्रति क' और अहमदाबाद वाली प्रति का नाम प्रति स रख लिया गया है। अहमदा बाद वाली प्रति के अतिम पृष्ठ गायब हैं, कुछ स्थल दीमको के शिकार हो चुके हैं फिर भी उसके पाठ शुद्ध हैं और लिखावट सुदर है।

चित्ररेखा की एक हस्तलिखित प्रति 'उस्मानिया विश्वविद्यालय के पुस्त कालय[2] म है, सुना है यह प्रति पूण और सुन्दर है। चित्ररेखा का रचना – काल अज्ञात है पर इतना अवश्य है कि इसकी रचना के समय कवि वद्ध हो चला था–

जेव जेव बूढा तेव तेव नवा

प्रतिलिपिकाल

सालार – ए – जग सग्रहालय वाली प्रति म उसके लिपिक ने अन्त म लिखा है।

तम्मत तमाम शुद पोथी चित्ररेखा सिन तसनीफ मलिक मुहम्मद जायसी दर अहद मुहम्मद शाह बादशाह गाजी बतारीख दो आज दहम सहर रजब मुआफिक ११२७ फसली मुताबिक ११३३ *हिजरी* बरोज मगरवार ववक्त दोपहरी अजखत कमतरीन दयाराम भटनागर बातमाम रसीद।

इस प्रकार इसका प्रतिलिपिकाल ११२७ हि है।

चित्ररेखा की कथा

जायसी ने पदमावत की ही भाति चित्ररेखा का प्रारम्भ भी इस समस्त जगत के एक सजनकर्ता की वन्दना के साथ किया है। उस एक करतार राजा ने ही चौदह भुवनो *का साजा है अठारह सहस्र योनिया* उसी ने रची हैं उसी ने स्वग बनाकर धरती को रचा है उसी ने चाँद, सूय तारे वन समुद्र और पहाड सजन किये हैं उसी न वण-वण की सृष्टि उत्पन्न की है। उसन ही जीवो की

१–चित्ररेखा हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय निवेदन–भूमिका।
२–उस्मानिया यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी हस्तलिखित प्रति।

चौरासी लाख योनियां बनाईं हैं उसने सबके लिए भुगुति (भोजन) और निवास भी दिये हैं उसने मनुष्य रचा और उसे बड़प्पन देते हुए सर्वश्रेष्ठ बना दिया[1]। समस्त सृष्टि – सूरज चांद तारे, धरती गगन विद्युत मेघ – मानो एक डोर से बांधे हुए हैं और ये सब डोर में नाथे हुये काठ की भांति नर्तन करते रहते हैं[2]। पहले सर्वत्र शून्य था पुनः स्थूल रूप में उसने जगत का निर्माण किया। उस घोर अन्धकूप में ज्योति हुई, ज्योति से एक मोती की निष्पत्ति हुई मोती से अपार जल हुआ फेन राशि उठी और आकाश उठ गया –

दूसरे फेन उहै जल जामा। मैं धरती उपजइ सबनामा॥

एक वृक्ष की दो डालें हुईं उन दोनों से अन्य-अन्य प्रकार प्रादुर्भूत हुए। वह तरुवर फलता है झरता है लोग फूल भी कहते हैं संसार की अठारह सहस्र शाखायें (योनियां) हैं और वह (ईश्वर) स्वयं रसमूल है[3]।

इसके बाद जायसी ने सृष्टि के उद्भव की कहानी कहते हुए करतार की प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा है। इसके बाद मुहम्मद साहब और उनके चार यारों का वर्णन करके पूरे दो दोहों में जायसी ने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख किया है। सर्वप्रथम कवि ने अपने प्यारे पीर सैयद अशरफ जहांगीर चिश्ती को अपना पीर कहकर स्वयं को उनके द्वार का मुरीद कहा है।

'कालपी के शेख बुरहान महदी गुरु हैं उन्होंने ही मुझे प्रेम–प्याला पथ' दिखाया है[4]। इसके पश्चात कवि ने अपने विषय में एक विनम्रोक्ति दी है –

मुहमद मलिक पेम मधु भोरा। नाउ बड़रा दरसन थोरा[5]॥ आदि।

इस संक्षिप्त भूमिका के साथ कवि ने चित्ररेखा की कथा प्रारम्भ की है। चन्द्रपुर नामक एक अत्यन्त सुन्दर नगर था। वहां के राजा का नाम चन्द्रभानु था। यह नगर गोमती के तट पर सुशोभित था। वहां के सभी मन्दिर मणि खचित थे – चाहे वे राजा के हों या रंक के। उन प्रासादों के कलश सोने के ढले हुये थे। वहां की स्त्रियां तो साक्षात स्वर्ग की अप्सराओं के समान थीं। राजमन्दिरों में ७०० रानियां थीं। उनमें प्रधान पटरानी थी – रूपरेखा – वह अत्यन्त लावण्यमयी थी। उसके गर्भ से बालिका का जन्म हुआ आनन्द – बधाये बजे। ज्योतिषी और गणक आये। उन्होंने उसका नाम चित्ररेखा रखा और कहा कि यह निष्कलंक चांद के समान अवतरित हुई है, रूप, गुण एवं शील में यह अन्यतम होगी। आज इसका जन्म तो चन्द्रपुर में हुआ है किन्तु यह कन्नौज की रानी होगी। धीरे धीरे चांद की

१–चित्ररेखा हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय सं० – पं० शिवसहायक पाठक।
२–वही पृ० ६६। ३–वही पृ० ६७।
४–चित्ररेखा – शिवसहाय पाठक, पृ० ७४। ५– वही पृ० ७५।

कला के समान वह बढ़ती ही गई। दसएं वर्ष के आते – ही पूनम के चांद जैसा उसका वदन प्रकाशमान हो उठा और सर्प और नेप नाग जैसे उसके केश हो गए। उस गोरी की ज्योति शरद पूनम की ज्योति थी। उस खंजन नयन की भौंहें धनुष के समान, बरुनी बाणों के समान और पलकें तलवार के समान हो गई।

सावन में वह सखियों के साथ हिंडोला झूलती थी। जब वह सयानी हुई, तो राजा चन्द्रभानु ने वर खोजने के लिए अपने दूत भेजे। वे ढूंढते–ढूंढते सिंहद देश के राजा सिंघनदेव के यहां पहुंचे और उसके कुबड़े बेटे के साथ सम्बन्ध कर दिया।

कन्नौज के राजा थे कल्यानसिंह। उनके पास अपार जन धन एवं पदाति हस्ति आदि सेनायें थीं। सब सम्पन्न होने पर भी एक पुत्ररत्न के अभाव में वे बड़े दुःखी थे। घोर तप के उपरान्त उनके यहां एक राजकुमार का जन्म हुआ। पंडित और सामुद्रिक आए। उन्होंने कहा कि इस बालक का जन्म उत्तम घरी में हुआ है, उसका नाम प्रीतम कुँवर रखा और कहा कि यह भाग्यवान अल्पायु है उसकी आयु केवल बीस वर्ष की है। जब उसे इस बात का पता चला और उसकी आयु के केवल अढ़ाई दिन शेष रह गये, तो वह राज पाट छोड़कर घोड़े पर सवार होकर काशी में अन्त गति लेने के लिए चल पड़ा। उधर राजा सिंघनदेव अपने कुबड़े बेटे का विवाह राजकुमारी चित्ररेखा के साथ करने के लिए आए। राजा उसी बाग में आकर उतरे जहां कन्नौज का राजकुमार धूप और यात्रा के श्रम से विकल होकर एक पेड़ की सुखद छाया-तले सो रहा था। राजकुमार उठा तो सिंघन देव ने उसके पैर पकड़ लिए और उसकी पुरी और नाम पूछा और विनती की कि हम इस नगर में ब्याहने आये हैं। हमारा वर कुबड़ा है तुम आज रात विवाह कराकर कल चले जाना।

सिंघनदेव ने उसे बीरा दिया उसे वर के रूप में सजाया गया। उसने सोचा कि कहाँ हम काशी-गति के लिए चले थे और कहां बीच में ही विवाह होने लगा। राजा चन्द्रभानु के अगुआ लोगों ने दूल्हे को देखा तो वे फूले नहीं समाये। बारात चान्द्रभान के द्वार पर पहुंची। सखियों ने दूल्हे को देखकर चित्ररेखा से बड़ी-बड़ी बातें कीं। वह ठाट–बाट से विवाह हुआ। धौरहरे के सातवें खण्ड में उन दोनों को सुलाया गया। प्रीतमसिंह के हृदय में अपनी आसन्न मृत्यु का स्मरण करके बड़ी विह्वलता हुई। उसे चैन कहाँ? वह पीठ देकर लेटा रहा। पिछला प्रहर होने लगा। राजकुमारी के अंचल पट पर प्रीतम सिंह ने लिखा– मैं कन्नौज के राजा का पुत्र हूँ। जो विधाता ने लिख दिया है वह अमिट है। मेरी मात्र २० वर्ष की आयु थी। वह पूर्ण हो गई अब वह पुनः नाई नहीं जा सकती। कल दोपहर के पूर्व मैं काशी में मोक्ष-गति प्राप्त करूंगा। मैं तो सहज ही काशी जा रहा था कि सिंघनदेव ने

आकर मेरा तुम्हारे साथ विवाह करा दिया। तुम्हारे लिये यह अखरना हुआ– और मुझे यह दोष लगा। यह लिखकर वह घोड़े पर बैठकर काशी को चल पड़ा। प्रात काल जब तारे डूबने लगे तो सखियां आईं। उन्होंने देखा कि कन्या सोई हुई है–उसके सब साज सिंगार अछूते हैं। उन्होंने उसे जगाते हुए कहा कि उठो प्रात काल हो गया। तुम्हारा कान्त किधर है? तुम्हारी सेज पर फूल वैसे ही हैं जैसे हमने बिछाए थे। तुम्हारे अंग भी अछूते–अनालिंगित हैं। तुमने किस अवगुण के कारण पति की सेज का स्वीकार नहीं किया। चित्ररेखा ने कहा– मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं। मुझे उसका दर्शन नहीं मिला। केवल पीठ ही देखी। यह कहते समय उसकी दृष्टि अंचल पट के लेख पर पड़ी और उसने कहा– कुँवर तो सहज स्वभाव से काशी चले गये। अब मैं अप्सरा बनकर उनकी सेवा करूंगी और चिता में जल कर स्वर्ग में उनसे मिलूंगी।' इतना कहकर उसने अपना सिंधोरा मंगवाया और मांग में सिंदूर भरकर एवं पति के पट के अंचल में गाँठ जोड़कर वह चिता में बैठ गई। उसने कहा–प्रियतम ने यह 'फेंट' देकर मेरा सम्मान किया है। अब इसी फेंट को ग्रहीत करके मैं स्वर्ग में जाऊंगी। प्रिय तुमने मुझे इस प्रकार भुला दिया पर मैं नारी हूँ। मैं स्वयं को जलाकर तुमसे मिलूंगी।'

प्रीतम कुंवर ने काशी में आकर मरण के लिए चिता बनाई। मरने से पहले खूब दान देना शुरू किया। बड़े-बड़े सिद्ध महात्माओं ने आकर उसे घेर लिया। उन्हीं में व्यास जी भी आये। सबको दान देने के पश्चात राजकुमार ने कहा 'गुसाईं, आप भी लीजिये। उसने भर मूठी दान दिया। व्यास जी के मन में प्रेम उमड़ आया और उन्होंने 'चिरजीव कुंवर होहु' का आशीष दे ही दिया। राजकुमार ने साश्चर्य कहा– मैं तो जल मरने को प्रस्तुत हूँ। हे गुसाईं यह चिरजीव कैसा। यदि जीवन मोल मिल सकता, तो किसी को भी देते हुए न खटकता। पर वह कहीं नहीं मिलता। फिर भी तुमने मरते हुए मुझे जीवन का आशीष दिया है। अत लगता है कि तुम कोई बड़े पिता हो, पालक हो–जिनके दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।' व्यास जी ने भी इस बात को मन में समझ लिया और उन्होंने कहा कि जो मुख से निकल गया वह अन्यथा नहीं हो सकता। मैं व्यास हूँ और विधाता ने मेरे मुख से वह बात कहवा कर तुम्हारे जीवन की अवधि को बढ़ाया है। हे कुंवर, घर जाओ। तुम्हारा नया जन्म हो गया है।

व्यास जी के चरणों का स्पर्श करके वह घोड़े पर चढ़कर चन्द्रपुर की ओर चला। इधर चित्ररेखा के लिये चिता सजाई जा चुकी थी। वह उस पर बैठ चुकी थी, केवल आग लगाने भर की देर थी। चित्ररेखा अंचल पर लिखे हुए लेख को पढ़कर सोच रही है– प्रियतम के मरण की घड़ी आ जाय तो मैं भी चिता में आग देकर उसके साथ ही जल जाऊं। अब वह घड़ी पूर्ण होने को आई और यह इच्छा

कर रही थी कि आग लेकर चिता म लगा दू ठीक इसी समय प्रीतमसिंह का आगमन हुआ। उन दोनो की आखें मिली। उसके हाथ की अग्नि हाथ मे ही रह गई। उसने लज्जावश अपना सिर ढक लिया। वह चिता स उतर कर मदिर की ओर चली। राजकुमार के चिरजीवी होने की बात चारो ओर फल गई। बाजे बजने लगे। दव ने आज शोक के मध्य सुख और भोग की निष्पत्ति की। जिनके हृदय म सच्चा वियोग होता है वे वियोगी अश्वमेव मिनते हैं।

सखियो न चित्ररेखा को पुन जडाऊ हार आदि से खूब अलकृत किया और कहा– आज तुम्हारे कात तुम्हे भेंटना चाहते है। समस्त सताप आज मिट जायेंगे। प्रियतम की सेवा म जिसका मन लगा है उसका सोहाग दिन पर दिन बढ़ता ही रहता है। जो सेवा करते हैं व दसवी दशा तक पहुच जाते हैं और जो छलते रहते हैं वे पीछे पछताते हैं।

चित्ररेखा के कुछ विशिष्ट आकर्षण

आदि एक बरनौ सो राजा मसनवी पद्धति एव मगलाचरण विधान के अनुसार जायसी ने चित्ररेखा के प्रारम्भ म करतार राजा की वदना की है–

आदि एक बरनो सो राजा।
जाकर सब जगत यह साजा॥

वह सवव्यापी है–

चौदह भुवन पूर क साजू। सहस अठारह भू जइ राजू॥
सरग साजि क धरती साजी। बरन बरन सिष्टी उपराजी॥[1]

स्पष्ट है कि उसी करतार राजा ने ही समस्त जगत का साजा है चौदह भुवन उसी ने साजा है अठारह सहस योनिया उसी ने रची हैं–

साज चाद सुरुज औ तारा। साजे बन कह समुद पहारा॥
जीया जोनि लाख चौरासी। जल थल माह कीन्ह सब वासी॥
सब कह दीन्हेउ भुगुति निवासू। जो जिह थान सो ताकर वासू॥
सब पर मानुस सरा गोसाई। सब सरा मानुष क ताई॥

यह द्रष्टव्य है कि जायसी न इस्लाम के अनुसार सहस अठारह और हिन्दुत्व के अनुसार जीया जोनि लाख चौरासी दोनो की बातें कह दी हैं। इस ससार म ईश्वर ने जितनी वस्तुयें बनाई हैं सब अस्थिर हैं। उसने इस सष्टि के पीछे एक 'ताजन (कोडा) लगा रखा है–

तिन्ह ताजन डर जाए न बोला। सरग फिरद जो धरती डोला॥[2]

१–चित्ररेखा – शिवसहाय पाठक पृ० ६५।
२–वही,। ३–वही पृ० ६६। ११–१२

चांद सूर्य मेघ, विद्युत, धरती स्वर्ग – सभी उसी के इंगित से परिचालित है–

'नाचे डोर काठ अस नाचा। खेल मेलाइ फेरि गहि साचा॥'[1]

सृष्टि का उद्भव – (जगत)

जायसी ने लिखा है कि आदि में सर्वत्र महाशून्य था–

औ सुन्न भा औ ब्रह्म अचीन्हा। पुन अस्थूल भएउ जग चीन्हा॥[2]

उस निराकार ब्रह्म (अचीन्हा) ने स्थूल (व्यक्त सत्ता) होते हुए जगत की रचना की। उस अन्धकूप (महाशून्य) में उसने ज्योति को आलोकित किया[3]। उस ज्योति में एक मोती की निष्पत्ति हुई। उस मोती से अपार जल राशि हुई। फेन उठा और मेघ या आकाश भी उठ गया। वही फेन जम कर धरती के रूप में परिणित हो गया। जब ब्रह्म ने इस सम्पूर्ण जगत का निर्माण किया, तो उसे नमूने या अभ्यास की आवश्यकता न हुई।[4]

वह आदि सत्ता इन अठारह सहस्र जीव कोटियों में व्यक्त हुई है।[5] यह जगत उसने द्विधामूलक बनाया है–

जीव चित में चरइ औ चल। होइ दो पाइ मन्द औ गल॥
सुख दुख पाप पुन्न व्यवहारू। हारि दोइ चल चलेउ संसारू॥
सेत स्याम रचना औ रंगा। जहाँ पड छांह तिन संगा॥
धरती सरग देवस औ राती। दुहुन डार साखा सब भाँती॥[6]

एक वृक्ष की दो शाखायें हुई[7] उन दोनों से अन्यान्य शाखायें हुई।[7] उसने जगत को द्वैतमूलक बनाया। सुख-दुःख पाप-पुण्य, श्वेत श्याम, धरती स्वर्ग दिन रात इसी द्वैत के आधार पर संसार चलता है।[8]

जीव, ब्रह्म और जगत की एकता के विषय में जायसी की आस्था है। स्वर्गीय अमृत तत्व इसी जगत में परिव्याप्त है, पर पकड़ में नहीं आता–

आपु आप चाहेसि जौ देखा। जगत सानि दरपन कै लेखा॥
घट घट जस दरपन परछाहीं। नाहें मिला दूर फुनि नाहीं॥

१–वही, पृ० ६६। ११–१२।
२–चित्ररेखा शिवसहाय पाठक, ६७। ३–४।
३–कुरानशरीफ। ४–चित्ररेखा, शिवसहाय पाठक पृ० ६७।
५–वही पृ० ६७ (सहस अठारह साखा आपु भएउ रस मूल)।
६–वही पृ० ६८। ७–वही, पृ० ६७।
८–वही, पृ० ६८।६।

हौं तो दोउ बीच की काई। जब छूटी तब एक होइ जाई ॥
हिय कर दरपन मन कर मजन। देखु आपु मह आपु निरजन ॥[1]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि दृश्य और द्रष्टा ज्ञेय और ज्ञाता एक दूसरे से अभिन्न हैं। आपु आप चाहेसि जब देखा अर्थात जब ब्रह्म ने अपनी ही शक्ति की लीला का विस्तार देखना चाहा। वह प्रत्येक घट में दरपन परछाई की भांति व्याप्त है। उस निरञ्जन निराकार को अपने में देखा जा सकता है।

उस ईश्वर की सत्ता काष्ठ में अग्नि और दूध में घी के सदृश अनुस्यूत है जो मनसा मथन करता है वही उसे पाता है। जो भौंरे के समान केतकी के कांटे से अपना हृदय प्रेम की पीर से छेद लेता है वही दुख सहने के पश्चात् उसे पाता है जस चीटा गुड़ को —

अगिनि काठ घिव खीर सा क्या। सो जानी जो मन दइ मथा।
भवर भयउ जस केतकि कांटा। सो रस पाइ होइ गुड़ चांटा ॥[2]

प्रेम की सर्वोच्चता

विरह प्रेम की निष्पत्ति एवं बाह्याडम्बर तथा निष्प्रेम साधना की निस्सारता —

जायसी प्रेम पथ के एक महान साधक — संत थे। प्रेम पथ में उन्होंने प्रेम पीर की महत्ता का प्रतिपादन किया है। व्यर्थ की तपस्या काय क्लेश एवं बाह्याडम्बर को वे महत्वहीन मानते थे। वे प्रेमप्रभु की प्राप्ति के लिये हृदय में विरह' का होना अत्यंत आवश्यक मानते थे —

का भा परगट क्या पखारे। का भा भगति भुइ सिर मारे ॥
का भा जटा भभूत चढ़ाए। का भा गेरू कापरि लाए ॥
का भा भेस दिगंबर छांटे। का भा आपु उलटि गए कांटे ॥
जो भेखहि तजि मौन तू गहा। ना बग रहैं भगत वे चहा ॥
पानिहि रहइ मछि औ दादुर। टांगे नितहि रहहिं पुनि गादुर ॥
पसु पछी नांगे सब खरे। भसम कुम्हार रहइ नित भरे ॥
बर पीपर सिर जटा न थोरे। अइस भस की पावसि भोरे ॥
जब लगि विरह न होइ तन हिये न उपजइ पेम।
तब लगि हाथ न आव तप-करम-धरम-सत नेम ॥[3]

जायसी ने अपने समय में कृच्छ्र-काय क्लेश और नाना विध बाह्याडम्बर

१—चित्ररेखा — शिवसहाय पाठक, पृ० ६९।
२—वही, पृ० ६६।　　३—चित्ररेखा शिवसहाय पाठक पृ० ७०।

वाली साधनाओं को देखा था उन्हें लक्ष्य करके वे कहते हैं कि प्रकट भाव से काया प्रक्षालन से कोई फायदा नहीं। धरती पर सिर पटकने वाली साधना व्यर्थ है। जटा और भभूत बनाने चढ़ाने का कोई मूल्य नहीं है। मरिक वमन धारण करने से क्या होता है? दिगंबर योगियों का-सा रहना भी बेकार है। काटे पर उत्तान सोना और साधक होने का स्वांग भरना निष्प्रयोजन है। देश-त्याग कर मौन व्रती होना भी व्यर्थ है, कहीं बगुला भी मौनी बनकर भगत होते हैं? पानी में ही तो मछली और मेढक भी रहते हैं (अतः जल में लगातार रहना और साधक होने का दम भरना निस्सार है) चमगादड़ पक्षी भी तो अपने को टांगे रहता है (अतः पर ऊपर करके सिर नीचे करने वालों की शीर्षासनी साधना से भी कुछ नहीं होता)। पशु पक्षी नग्न बदन रहते हैं (अतः मनुष्य की नंगे बदन रहने वाली दिगम्बरी साधना से भी कुछ नहीं होता) कुम्हार भी तो भस्म से नित्य प्रति सना रहता है (अतः भसम रमाने से क्या होता है?) क्या बट और पीपल में कुछ कम जटायें हैं? अरे भोले ऐसे वेश से कहां ईश्वर मिलता है? जब तक विरह नहीं होता – हृदय में प्रेम की निष्पत्ति नहीं हो सकती। बिना प्रेम के तप कर्म धर्म और सत नेम की सच्चे अर्थों में प्राप्ति नहीं होती। स्पष्ट है कि जायसी सहज प्रेम विरह की साधना को ही सर्वश्रेष्ठ साधना मानते हैं।

चित्ररेखा का मार्मिक संदेश

चित्ररेखा मूलतः एक छोटी सी प्रेम-कथा है। दैव की कृपा से कभी-कभी शोक के भीतर से सुख और भोग का अद्भुत संयोग उत्पन्न हो जाता है। वे विछोही प्रेमी अवश्यमेव मिलते हैं जिनके हृदय में सच्चा वियोग होता है अर्थात सच्चे प्रेमियों का विछोह मिलनजन्य आनन्द में बदल ही जाता है–

'दई आन उपराजा सोग माह सुख भोग।
अवस ते मिल बिछोही जिन्ह हिय होइ वियोग ॥'[1]

दुःख में सुख का भोग उत्पन्न होना तो भगवान की ही कृपा का परिणाम है। यह वह कृपा है जो सच्चे प्रेमी को प्रेम परीक्षा के पश्चात अनायास सुलभ होती है।

इस न्यायमूलक सृष्टि के विषय में लिखते हुए उन्होंने प्रेम के विषय में लिखा है–

दुहुन जो बार एक दिसि राखे। सो फल प्रेम प्रीति रस चाखे ॥[2]

१–चित्ररेखा–शिवसहाय पाठक पृ० १११।
२–वही पृ० ६८।११–१२।

वस्तुत ईश्वर की सत्ता काष्ठ म अग्नि और दूध मे घी के समान है, जो मन देकर उसका मथन करता है वह उसे जानता है। इसके लिए जो साधक भौंर के सदृश केतकी के काटे से अपना हृदय प्रेम की पीर से छेद वेध लेता है वही दुख सहने के पश्चात उस रस का आस्वाद पाता है।

अगिन काठ घिव खीर सोक था। सो जानी जो मन देइ मथा॥
भवर भएउ जस केतकि काटा। सो रस पाइ होइ गर चाँटा॥[१]

जो प्रेम प्रभु आज प्रकट रूप मे मिला हो, उससे क्या न मिल लिया जाय? कल मिलने की आशा लिए हुए पुन अवधि रखने का क्या प्रयोजन?[२]

जायसी ने जगत निर्माण की बात लिखते हुए कहा है—

प्रम पिरीति पुरुस एक किया। नाउ मुहम्मद दुहु जग दिया॥
अधकूप भा अहा निरासा। ओनक प्रीति जोति परकासा॥[३]

अर्थात ईश्वर ने प्रेमपूवक मुहम्मद को बनाया और उस महापुरुष म उन्ही की प्रीति के कारण ज्योति प्रकाशित की। अपने महदी गुरु शेख बुरहान की प्रशस्ति करते हुए उन्होने प्रम के विषय मे कहा है कि उन्होंने ही मुझ प्रम प्याला पथ दिखाया है—इस झूठे जग के धध को तजकर जिसने सच्चा प्रम पथ पा लिया जिसने प्रेम-प्याला पी लिया और प्रम मे चित्त को बाध दिया वही सच्चा प्रमी और साधक है।

अपने विषय म कवि ने कहा है कि मैं प्रम मधु भोरी हू। हाथ मे प्याला और साथ म सुराही है-प्रम प्रीति का पूणत (बहुत दूर तक) निर्वाह कर रहा हू।[५] वे स्वय प्रम पथ के पथिक हैं घर मे ही उदास हैं उस प्रम प्रभु का वे कभी मन से स्मरण करते हैं और कबहु टपक उदास रहते हैं।[६]

सावन और हिंडोले का वणन करते हुए जायसी ने प्रम के खेल की महत्ता स्पष्ट की है— जब तक यह नहर है तभी तक यह प्रम का खेल है अत जबतक यहा हो—खूब खेल लो।[७] सभी रानिया नवल प्रम रस राती और प्रेम प्यारी थी व सब की सब प्रेम रग राती अभय भाव से नाच रही थी।[८]

कनौज म कल्यान सिंह नामक राजा के घर म पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम भी प्रम और प्रीति से ही सम्बद्ध प्रीतम कुवर रखा गया। जब प्रीतमकुवर

१—वही पृ० ६६। ११—१४।
२—चित्र रेखा—शिवसहाय पाठक पृ० ९ १५—१६।
३—वही प ७१।१—४।
४—वही पृ० ७४।७ से १६ तक।
५—वही पृ० ७५।
६—वही पृ० ७६। १५—१६।
७—वही पृ० ८४।
८—वही, पृ० ८३।

वाशी गति के लिए रानी चित्ररेखा को सोता छोडकर चला गया तो रानी ने कहा कि हे प्रियतम जो तुमने मुझे इस प्रकार भुला दिया है तो मैं भी सच्ची पतिव्रता कहलाऊँगी जब अपने आपको जलाकर तुम से मिलूँगी। यहाँ पर रानी चित्ररेखा की प्रीति का उज्वल पातिव्रत्य रूप प्रस्तुत किया गया है

'जौ तुम पिउ हौं अस्स बिसारी। आपुहिं जारि मिलौं तौ नारी ॥ [1]

चित्ररेखा प्रसादान्त या प्रेमान्त कथा-काव्य है जायसी ने इस कथा का अन्त अवध भोजपुर जनपद म लोक-ख्यातिलब्ध और प्रेम महत्ता की प्रतिपादिका उक्ति से ही किया है–

'कातिक पोथी पढि मरे पंडित भा नहिं कोइ।
एक अक्खर प्रेम का पढ़ सो पंडित होइ ॥

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि चित्ररेखा म आदि से लेकर अंत तक प्रेम की ही महत्ता का गुणगान किया गया है।

मुहम्मद साहब और उनके चार मीत

सृष्टि के आदि म ईश्वर ने एक पुरुष रचा उसका नाम मुहम्मद रखा। उन्ही की प्रीति के कारण उसने उस अंधकूप (महाशून्य) मे ज्योति को प्रकाशित किया। वे स्वतः अपनी ज्योति से प्रदीप्त थे उन्ही की ज्योति से अन्य सब प्रकाशित हैं। यह एक सूक्ष्म बात है कि उनमे ही यह संपूर्ण संसार हुआ है वे हजरत नबी रसूल सब के अगुआ हैं–

'प्रेम पिरीति पुरुष एक किया। नाउ मुहम्मद दुहु जग दिया।
अंधकूप भा अहा निरासा। ओनक प्रीति जोति परगासा ॥
उनतें भा ससार सपूरन सुनहु बचन अस्थूल।
वे ही सब के अगुआ हजरत नबी रसूल ॥[2]

हजरत मुहम्मद के चार मीत (चार यार या चार खलीफा) उत्तराधिकारी हुए। उन चारो को दोनो लोको म प्रतिष्ठा दी। उनम प्रथम अबूबकर सिद्दीक थे, उन्होंने इस्लाम म सत्य की प्रतिष्ठापना की है दूसरे हैं उमर अदल वे जब दीन में आए तो जगत म न्याय (अदल) फैला उन्होंने अन्याय की बात सुनकर अपने पुत्र को मरवा डाला। तीसरे खलीफा मित्र है उसमान। ये बडे विद्वान और गुणी थे। उन्होने सुदर पुराण कुरान लिखकर सुनाया। और चौथे हुए रणगाजी अली जो सिंह की तरह शक्तिसंपन्न थे।[3] जायसी ने इन चार मीतों की प्रशस्ति म

१–चित्ररेखा–शिव सहाय पाठक पृ० १ १।१५–१६–१०७ तथा प० १०७ ६–११।
२–चित्ररेखा–शिवसहाय पाठक पृ० ७१। ३–वही प० ७२।

लिखा है–

चारिहू चहू खण्ड भुइ गहै। दौलत अहै जो अस्थिर रहै ॥
पापन रहा मारि सब कान्ा। भा उजियार धरम जग वान्ा ॥
हुए मीत अस चारा जौ मति करहिं न टोल।
पढ़हिं सारे अरथा वही चारि अरथ एक बोल ॥[1]

पीर परम्परा का उल्लेख

जायसी ने पदमावत–अखरावट की ही भांति चित्ररेखा म भी पीर (सत) परम्परा का विशद उल्लेख किया है –सयद अशरफ अत्यन्त प्यारे पीर हैं मैं उनके द्वार का मुरीद हू । वे जहागीर चिश्ती वश वे थ ससार सागर के बीच उनका धम का् यान सजा है । हाजी अहमद, शख कमाल जलाल और शेख मुबारक का जायसी ने प्रशस्तिपूण उल्लेख किया है–

सैयद असरफ पीर पियारा। हौं मुरीद सेवौं तिन बारा।
जहागीर चिस्ती व राज। समुद माहिं बाहित किन साज ॥
उलघि पार दरियाव गहे। भए सो पार करी जिन गहे ॥

– – –

हाजी अहमद हाजी पीरू। दीन्ह बाह जिन समद गभीरू ॥
शेख कमाल जलाल दुआरा। दुओ सो गनन बहुत यह बारा ॥
असमसदम बोहित लाइन धरम करम कर चाल।
करिआ सख मुबारक खवट सेरा जमाल ॥[2]

जायसी ने यहाँ पर सयद अशरफ जहागीर चिश्ती की पीर परम्परा का उल्लेख किया है। ये फजाबाद जिले के कछौछा के चिश्ती सप्रदाय के सूफी सत थे जो आठवी शती हिजरी के अत और नवमी शती के आरम्भ म जायसी से बहुत पहले हुए थे। जायसी उनके घरान के बड भक्त थे।[3]

जायसी जायस म रहते थे। सयद अशरफ साहब की दरगाह वहा अब तक विद्यमान है। पडित रामचन्द्र शुक्ल ने सयद अशरफ को जायसी का दीक्षा गुरु माना है। शुक्लजी के अनेक नकलची विद्वानो न भी शुक्लजी के वाक्य को अपना बना लिया है, पर वस्तुत ऐसी बात नही है। जायसी सयद अशरफ को अत्यन्त प्रिय पीर मानते थे। सयद अशरफ की मत्यु जायसी के जन्म से काफी पहले ८०८ हिजरी

१–वही प० ७२।

२–चित्ररेखा–शिवसहाय पाठक पृ० ७३।

३–पदमावत–डा० वासुदेवशरण अग्रवाल प० ३८।

में हो चुकी थी। कुछ लोग उनकी मृत्यु तिथि ८४० हि० मानते हैं।[1] अतः वे जायसी के दीक्षा गुरु नहीं हैं। हां यह सच है कि जायसी अशरफी परम्परा के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हैं।[1]

गुरु-परम्परा

जायसी ने पद्मावत[2] एवं अखरावट के अतिरिक्त चित्ररेखा में भी अपनी गुरु-शिष्य-परम्परा का वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है–

महदी गुरु सेख बुरहानू। कालपि नगर तेहिक अस्थानू ॥
मक्कइ चौथहि कह जस त्यागा। जिन्ह के छुए पापतिन्ह भागा ॥
सो मोरा गुरु तिन्ह हौं चेला। धोवा पाप पानि सिर मेला ॥
पेम पियाला पंथ लखावा। आपु चाखि मोहि बूंद चखावा ॥
सो मधु चन्द न उतरइ कावा। परेउ माति पाएउं फेरि आवा ॥
माता धरती सो भइ पीठी। लागी रहई सरग सो दीठी ॥

सयद राजे हामिद शाह मानिकपुर के बहुत बड़े सूफी संत थे एवं उनके शिष्य दानियाल खिज्री थे एवं उनके शिष्य सैयद मोहम्मद महदी हुए। इनका १५०४ ई० में देहान्त हुआ था। इनके शिष्य अलहदाद हुए और उनके शिष्य शेख बुरहान कालपी वाले हुए जो महदी की परम्परा में होने के कारण स्वयं भी महदी गुरु कहलाए। महदी गुरु शाह बुरहानू ने पदमावत की निम्नलिखित पंक्तियां घोषित हो उठती हैं–

गुरु महदी खेवक मैं सेवा। चलै उताइल जिन्हकर खेवा ॥
अगुआ भएउ सेख बुरहानू। पंथ लाइ जेहि दीन गियानू ॥[3]

इस प्रकार चित्ररेखा के प्रकाशन से यह सिद्ध हो जाता है कि कालपी नगर के शेख बुरहानू के पश्चात कोई महदी या महदी नामक संत जायसी के गुरु नहीं थे बल्कि शेख बुरहानू के दादा गुरु और शेख अलहदाद के गुरु सयद मोहम्मद महदी के विरुद के अनुसार स्वयं शेख बुरहान की महदी गुरु के विरुद से प्रसिद्ध हो गए थे।[6]

१–अखबार उल अख्यार–धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक–डॉ० रामखेलावन पाण्डेय।
२–जा० ग्र०, सं० डा० माताप्रसाद गुप्त (पद्मावत) १३१–३२।
३–जा० ग्र० ना० प्र० सभा, (पद्मावत) पृ० ८ (दोहा २०)
४–वही (अखरावट), पृ० ३२२ (दोहा २७)।
५–जा० ग्र० ना० प्र० सभा पृ० ८ (दोहा २०।१२)
६–चित्ररेखा–शिवसहाय पाठक भूमिका पृ० १४–१५

कवि का अपने विषय मे कथन

सवप्रथम जायसी ने अपने विषय म लिखा है कि सयद अशरफ प्यारे पीर हैं और मैं उनके द्वार का मुरीद हू ।[1] पश्चात शेख बुरहान महदी गुरु का स्तवन करते हुए उन्होंने कहा है—

सो मोरा गुरु तिन्ह हौं चेला । धोवा पाप पानिसिर मला ।
पेम पियाला पथ लखावा । आपु चाखि मोहिं बूद चखावा ॥
जो मधु चढा न उतरइ कावा । परेउ माति पाएउ फरि आवा ॥[2]

इसके पश्चात तो उन्होने बड ही विनम्र ढग से अपने विषय म लिखा है—

मुहमद मलिक पेम मधु भोरा । नाउ बडरा दरपन थोरा ॥
जेध जेव बूढा तेव-तेव नवा । खुदी कई खयाल न कवा ॥
हाथ पियाला साथ सुराही । पेम पीतिलइ ओर निबाही ॥
बुधि खोई और लाज गवाई । अजहू अइस धरी लरिकाई ॥
पता न राखा दुहवइ आता । मता कलालिन के रस माता ॥
दूध पियावइ तस उधारा । बालक होइ परातिन्ह बारा ॥
रोवउ लोटउ चाहउ खेला । भएउ अजान चार सिर मेला ॥
पेम कटारी नाइक मता पियावइ दूध ।
बालक पीया चाहइ क्या मगर क्या बूध ॥[3]

इन पक्तियो से लगता है कि ये प्रम मधु के भमर थ (प्रम मधु माते थे) उनका नाम ता बहुत बडा था पर वे दरसन थोरा थे । ज्यो-ज्यो वृद्धावस्था आ रही थी त्यो-त्यो उनम अभिनवता का सन्निवेश हो रहा था । अजहू अइस धरी लरिकाई । से स्पष्ट है कि इनकी अवस्था अधिक हो चली थी और 'चित्ररेखा इनकी वृद्धावस्था की रचना है । ससार की अस्थिरता का वणन करते हुए जायसी ने एक अन्य स्थल पर भी इसी प्रकार का इ गित किया है—

यह ससार झूठ थिर नाही । तरुवर पखि तार परछाहीं ॥
मोर मोर कइ रहा न कोई । ओरे उवा जग अथवा सोई ॥
समुद तरग उठ अध कूपा । औ बिलाहिं सब होइ होइ रूपा ॥
पानी जइस बुलबुला होई । फूट बिलाहिं मिलइ जल सोई ॥
मलिक मुहम्मद पथी घर ही माहि उदास ।
कबहू सवरहि मन क कबहू टपक उवास ॥

१–चित्ररेखा–शिवसहायक पाठक भूमिका पृ० ७३ ।
२–चित्ररेखा शिवसहाय पाठक प० ७४ ।
३–वही पृ० ७५ । ४–वही पृ० ७६

यद्यपि इन पंक्तियों में संसार की अस्थिरता (जन्म मृत्यु) एवं वैराग्य विषयक बातें कही गई हैं बुल्ले, तरंग आदि प्रतीकों के माध्यम से जन्म के पश्चात विलाने (विलीन होने) की बातें स्पष्ट की गई हैं तो भी ओरे उवा जग अथवा सोई क द्वारा कवि ने अपनी वृद्धावस्था की ओर इंगित कर ही दिया है क्योंकि वे गत जीवन का मानो सर्वेक्षण करते हुए कह रहे हैं --'जो जग नीव होत अवतारा। होर्नोह जनम न रावत बारा ॥

चित्ररेखा में उन्होंने अन्यत्र भी अपने विषय में लिखा है--

मुहमद सायर दीन दुनि मुख अम्रित बनान।
बदन जइस जग चन्द सपूरन सूक जइस वनान ॥[1]

स्पष्ट है कि उनका बदन तो सम्पूर्ण चन्द्र के सदृश था पर नेत्र शुक्राचार्य जैसे ही थे।

दोहा चौपाई

चित्ररेखा' की कथा मसनवी शैली में लिखी गई है। दोहे-चौपाई वाली छन्द परम्परा को ही जायसी ने यहां भी गृहीत किया है। सम्भवतः जायसी ने सात अर्द्धालियों के पश्चात् एक दोहे का विधान किया था, किन्तु जिन प्रतियों के आधार पर 'चित्ररेखा का सम्पादन हुआ है, उनमें इस क्रम का निर्वाह सर्वत्र नहीं है।

मुझे प्रो० राजकिशोर जी पाण्डेय से ज्ञात हुआ है कि उस्मानिया विश्व विद्यालय वाली हस्तलिखित प्रति पूर्ण है और उसमें सात अर्द्धालियों के पश्चात एक दोहे का विधान आद्यन्त मिलता है। 'चित्ररेखा की प्रतियां फारसी अक्षरों में हैं कुछ तो प्रतिलिपिकार के अधिक गद्य पद्य और कुछ पुरानी लिखाई और इन सबने मिलाकर कहीं कहीं मात्रा-सम्बन्धी कमी बेशी का दोष उपस्थित कर दिया है। यों डा० माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है कि पदमावत आदि में जायसी ने दोहे-चौपाई का स्वतन्त्र प्रयोग किया है। फिर भी 'चित्ररेखा में जहां भी यह दोहा था प्रस्तुत विद्यार्थी ने विचार विमर्श किया है। स्वयं डा० माताप्रसाद जी गुप्त[2] ने एक पत्र भेजकर कुछ स्थलों के स्थान पर अपना प्रस्तावित पाठ भेजा है।

कहरानामा

कहरानामा की एक हस्तलिखित प्रति 'कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस,

१-चित्ररेखा शिवसहाय पाठक पृ० ७७।
२-डा० माताप्रसाद गुप्त का पत्र, दिनांक १७।६।६०।

कहरा का अर्थ कहार (जाति विशेष) कष्ट–दुख या कहर और गीत विशेष है। 'कहारों के गीतों में बहुत से गीत निरगुन' कहलाते हैं। भक्त कहार कह उठते हैं 'अच्छा अब कोई निरगुन कहरवा सुनाओ'। इस प्रकार कहरवा गीत में निर्गुण ब्रह्म का गुणगान करना, आत्मा और परमात्मा के प्रेमपरक गीत गाना हमारे देश की एक अत्यन्त प्राचीन लोक परम्परा है। जायसी कबीर आदि ने उसे गृहीत करके काव्य रूप में निबद्ध किया है।

महरी बाईसी का प्रकाशन

सन १९५१ ई० में डा० माताप्रसाद गुप्त ने जायसी ग्रन्थावली का संपादन किया था। उसमें उन्होंने 'महरी बाईसी' नामक जायसी की एक अनुपलब्ध प्रति को भी छापा था। उन्हें इस ग्रन्थ की एक प्रति कामनवेल्थ रिलेशंस आफिस लन्दन से प्राप्त हुई थी। उन्होंने लिखा है – 'महरी बाईसी' नाम मेरा दिया हुआ है। स्पष्ट नामोल्लेख कृति में नहीं है। केवल महरी गाने का उल्लेख कृति में जहां-तहां हुआ है और इस कृति में कुल बाईस गीत हैं इसलिए यह नाम दे दिया गया है। सम्भव ही नहीं आशा भी है कि आगे की खोजों में इस कृति का ठीक नाम ज्ञात हो जावेगा।'

यह कृति केवल सन ११९४ हिजरी की एक प्रति के आधार पर सम्पादित हुई है। लिखावट प्रायः शिकस्त है और दिया हुआ पाठ अत्यन्त कठिनतापूर्वक उससे प्राप्त किया गया है।[1]

डा० गुप्त का कथन है कि 'इस प्रति में अनेक स्थानों पर शब्द और पंक्तियां भी छूटी हुई हैं।'[2]

वस्तुतः इस ग्रन्थ का नाम 'कहरानामा' या 'कहारानामा' है। यह नाम इस ग्रन्थ की अनेक प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थों में मिला है। रामपुर स्टेट लाइब्रेरी में पद्मावत के प्रति के अन्त में कहरानामा की भी एक पूर्ण और सुलिखित प्रति मिली है। यह प्रति १०८६ हिजरी (१६७५ ई०) में लिखी गई थी।[3] मनेरशरीफ के खानकाह पुस्तकालय की फारसी लिपि में लिखित प्रति में पद्मावत, अखरावट और कहरानामा की प्रतियां मिली हैं। यह प्रति काफी उच्च श्रेणी की और सुलिखित है। यह सत्रहवीं शताब्दी में शाहजहां के समय में लिखी गई थी।

१–जा० ग्र० (भूमिका –) डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० १०४।
२–वही, पृ० १४।
३–पदमावत – डा० वासुदेवशरण अग्रवाल प्राक्कथन पृ० १०।
४–जे० बी० आर० एस (प्रो० हसन अस्करी का लेख) भाग ३९ १९५३
पृ० १०–४ (अवधी ग्रन्थों की एक नई हस्तलिखित प्रति।

मनेरशरीफ वाली प्रति रामपुर वाली प्रति और कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस वाली प्रति, इन प्रतियों को देखने पर ज्ञात हुआ कि डा० माताप्रसाद गुप्त ने जो पाठ दिया है वह संतोषजनक नहीं है। इसका पुनः सम्पादन आवश्यक है।

कहरानामा की कथा

कहरानामा तीस पदों की एक प्रेम कथा है। इसे निर्गुण-प्रेम कथा भी कह सकते हैं। भूल से इसका नाम महरीबाईसी रखा गया है। इसमें बाईस छंद नहीं हैं – तीस छंद हैं। संसार एक सागर के समान है। इसमें धर्म की नौका पड़ी हुई है। केवट एक ही है। नहर से महराई कैसे आई? कौन केवट है? कौन कहरा है? कौन गुण लाकर पथ को सिर पर रखता है? कौन गुन (रस्सी) से नौका को तट पर खींचता है? कोई इस पथ को तलवार की धार कहता है तो कोई सूत जैसा। मैंने नरक का फंद नहीं देखा है जाल में उलझ गया हूँ। कोई इस सागर में परते-तरते हार गया है और बीच में खड़ा है, कोई मध्य सागर में डूबता है और सीप ले आता है कोई टकटोर करके छूछे ही लौटता है कोई हाथ झार कर पछताता है मुहम्मद कहते हैं कि संभाल रहो टोइ गई पाव उतारो नहीं तो खाले में पड़ोगे।

जायसी गुरु की आज्ञा पालन करने की बात लिखते है कि साधना पथ पर गतिमान होने वाले साधक के लिए गुरु की आज्ञा या गुरु का साथ होना आवश्यक है। अन्त में तो एक ही आश्रय रह जाता है ईश्वर। कहरानामा मे कई बार इस अंतिम आश्रय की ओर संकेत किया गया है।

जो नाव पर चढ़ता है वह पार उतरता है और नाव चली जाने पर जो बाहु उठाकर पुकारता है और केवट लौटता नहीं तो पछताता है लोग उसे मूर्ख-अभागी कहते है। बहुत दूर जाना है रोने पर कौन सुनता है? जो गैंठ पूरे हैं, जो दानी हैं, उनमे हाथ पकड़ कर केवट नाव पर चढ़ा लेता है, वहां कोई भाई, बन्धु और संघाती नहीं। मन अकेला विसूरता है मुहम्मद कहते हैं। इस मार्ग पर चलो मंझधार में न डूबो। साधक को इस संसार-सागर मे पैर संभाल कर रखना चाहिए अन्यथा पदभ्रष्ट होने का भय है।

वर्षाऋतु में नदी के पाट को देखकर मन आतंकित हो जाता है पवन द्वारा उद्वेलित लहरें हृदय को प्रकंपित कर देती हैं। सूस मगर गाह, घरियार पद-पद पर उछलते उतराते हैं संकट पड़ने पर केवट को बहुत से लोग पुकारते हैं परन्तु वह सबको नहीं मिलता, ऐसे भीषण प्रवाह में केवट के बिना नाव का पार लगना बड़ा मुश्किल है। जायसी ने योग युक्ति मन की चंचलता को दूर करने, भोगों से दूर रहने और प्रेम प्रभु में मन रमाने की बातें कही हैं। जायसी ने महरी महरा

के विवाह के बहाने आत्मा परमात्मा के विवाह का वर्णन किया है। आत्मा का श्रृंगार वर्णन वैसा ही है जैसा सूर सागर में राधा का श्रृंगार–

साजइ माग झारि दुइ पाटी चतुरि न चीर सवारहु रे
बेनी गू थहु इ गुर लावहु रचि रचि सेंदुर सारहु रे।

जायसी ने भी यहाँ वे ही उपमायें दी हैं जो सूरदास ने वे ही आभूषण हैं जो राधा के। आत्मा रूपी प्रिया अपने प्रिय परमात्मा का गम्भीर गुणों से संयुक्त और महनीयरूप में अनुभव करती है। यह प्रिय पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण, सभी दिशाओं में गतिमान है। उसकी प्राप्ति तभी होती है जब अपने आपको समाप्त कर दिया जाता है।

अन्त में कवि ईश्वर के प्रेम का निरूपण करते हुए कहता है कि जिसे वह अपना सेवक समझता है उसे दरिद्र और भिखारी बना देता है। उसकी सृष्टि की विपरीतता भी दर्शनीय है—*जिसे वह अपना सेवक जानता है उसे भीख मंगाता है* कवि और पंडित दुःख और दरद[1] में जीते हैं और वह मूरख को राजभाग दे देता है। जहाँ चन्दन है वहाँ नाग हैं, जहाँ फूल है वहाँ काँटे भी हैं जहाँ मधु है वहाँ माखी भी हैं और जहाँ गुर है वहाँ चीटा भी हैं–

जा सेवक आपुन कै जाने तेहि घरि भीख मंगाव रे।
कबिता पंडित दुक्ख–दरद महं मुरुख के राज कराव रे॥
चन्दन जहाँ नाग है तहवाँ जहाँ फूल तह काटा रे।
मधु जहवा है माखी तहवा गुर जहवाँ तह चाटा रे॥

विशेष

कहरानामा में कहारों के जीवन और वैवाहिक वातावरण के माध्यम से कवि ने अपने आध्यात्मिक विचारों को अभिव्यक्त किया है।

आत्मा और परमात्मा के मिलन–विवाहों की बात को कवि ने कहार जीवन के विवाह के बहाने स्पष्ट किया है–

भा भिनुसारा चल कहारा होतहि पाछिन पहरा रे।
सखी जी गावहि हुडुक बजावहि हसि के बोना महरा रे॥
हुडुक तबर औ झाझ मजीरा बासुरि महुअर बाज रे।
सबद सुनावा सखिय ह गावा घर घर महरी साजै रे॥
पूजा पानी दुलहिन आनी, चूनह भा असवारा रे।
बाजन बाज केवट साज, भा बसन्त संसारा रे॥

१–मनेर शरीफ वाली हस्तलिखित प्रति से।

मंगलचारा होइ झकारा औ संग सैन सैहली रे ।
जनु फुलवारी फूलौ वारी जिह कर नहि रस केली रे ।।
सेंदुर लै-लै मारहि घ घ, राति माति सुभ डोली रे ।
भा सुभ मसू फूला टेसू जनहु फाग होइ होरी रे ।।
कहै मुहम्मद जे दिन अनन्दा सो दिन आगे आव रे ।
है आम नग रनि सबहि जग दिनहि सोहाग को पाव रे ।।

इस पद्य में हुडुक तबर थाप मजीरा, बाँसुरी महवर, महरा महरी, फाग खेलना टेसू, सेंदुर मंगलाचार आदि के द्वारा कवि ने फागुन में कहारों के विवाह और ईश्वरीय अर्थों में आत्मा का परमात्मा के रंग में रंग जाने का वर्णन बड़े ही ललित रूप में प्रस्तुत किया है। कहरानामा के सभी पद गेय ललित और आध्यात्मिक अर्थों की व्यंजना से समन्वित हैं। अनुप्रास और श्लेष के सौंदर्य प्राय सर्वत्र दर्शनीय है। जैसे कबीर कहते हैं कि 'दुलहिन! गावहु मंगलाचार। आजु घर आए राजा राम भरतार।' वैसे ही जायसी ने भी इस छोटे से ग्रंथ में निर्गुण ब्रह्म को प्रियतम और भक्त या आत्मा को प्रियतमा मान कर दोनों के चिर मिलन का बड़ा ही मनोमय वर्णन किया है।

मसला[1]

नागरी प्रचारिणी सभा में जायसी कृत 'अखरावती' की एक हस्तलिखित प्रति है। इस प्रति के लिखने वाले हैं सीतलदास। अखरावती की पुष्पिका में उन्होंने लिखा है–

लिखा है सीतलदास महमद कृत अखरावती ग्रंथ एह नाम जौ मसला आगे लिखब।[2]

अखरावती की पुष्पिका के पश्चात सीतलदास जी ने जायसीकृत मसला[3] को लिखा है। नागरीप्रचारिणी सभा में मसला के केवल तीन पृष्ठ ही मिले हैं। एक तो प्राचीन लिखाई, दूसरे पढ़ने की कठिनाई तीसरे लिपिक की असावधानी और चौथे खण्डित प्रति–इन सभी कारणों से इस कृति की पूर्णरूपरेखा स्पष्ट नहीं हो पाती। इतना स्पष्ट है कि 'मसला' में अवध जनपद के मुहावरे लोकोक्तियाँ, कहावतें आदि सुन्दर रूप से प्रयुक्त हैं।

१–ना० प्र० सभा खोज रिपोर्ट १६ ७।
२–नागरीप्रचारिणी सभा काशी के पुस्तकालय की 'जायसीकृत अखरावती और मसला' की प्रतियाँ पृ० २५।
३– महंतगुरुचरन प्रसाददास के पास जायसी की कई हस्तलिखित प्रतियों के साथ मसला भी है।

प्रस्तुत खण्डित प्रति नागरी अक्षरों में है। (परिशिष्ट में मसला या मसलानामा को दिया गया है)।

वर्ण्य और उसका वैशिष्ट्य

मसला की कथा अज्ञात है। किसी अन्य प्रति के प्राप्त होने पर ही निश्चय पूर्वक कुछ कहा जा सकता है। फिर भी प्राप्त खंडित प्रति के आधार पर कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ में जायसी ने मसला (=मसल या मसलो) के सुंदर प्रयोग किये हैं। अवधी भाषा और अवध जनपद में प्रयुक्त मसलों को जायसी ने अत्यंत जीवंत रूप में उपस्थित किया है। इन प्राप्त मसलों के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि मसला की प्रति से मुहावरे, लोकोक्तियों और कहावतों के क्षेत्र में एक नवीन अध्याय का आरम्भ हुआ है। प्रारम्भ में कवि ने अल्लाह से मन लगाने की बात कही है—

यह तन अल्ह मियां सों लाई। जिहि की पाई तिहि की गाई ॥[1]

यहां यह कह देना समीचीन है कि प्राप्त प्रति की प्रत्येक पंक्ति में कोई न कोई कहावत या लोकोक्ति अवश्य प्रयुक्त है। इन कहावतों के कतिपय प्रयोग अत्यन्त भव्य, जीवन्त और लोक जीवन के प्रतिनिधि हैं। ज्ञान का सागर अथाह और अनन्त है—इसके विस्तार की कोई सीमा नहीं है—इतनी बड़ी सत्ता में एक व्यक्ति का क्या विस्तार—भला 'जिस घर में सासु ही तरुणी हो उस घर में बहुओं का कौन सिंगार'?

बुधि विद्या के कटक मों हौं मन का विस्तार।
जेहि घर सासु तरुनि है बहुअन कौन सिंगार ॥[3]

जो जिस को पाना चाहता है पाकर ही रहता है। अनाज छोड़कर लोग घुन को पकड़ ही लेते हैं—

जासों प्रेम सो ध ध पर। नाज छाड़ि घुन बिनिया कर ॥

बहुत सी बातें बनाकर कही जाती हैं किन्तु क्या उन बहुत बनाकर कही गई बातों में कुछ सार अंश भी होता है? छूछ पछोरते समय उड़ उड़ जाता है—

बात बहुत कहे बनाई। छूछ पछोर उड़ि उड़ि जाई ॥

इस पंक्ति में 'बात बहुत बनाकर कहना' और 'छूछ पछोर उड़ि उड़ि जाय' इन दो

१.—मसला की दो हस्तलिखित प्रतियां जायस से प्राप्त हुई हैं। देखिए ना० प्र० पत्रिका २०१७ अंक १ जनवरी–मार्च।
२—मसला (हस्तलिखित प्रति) पृ० २४।
३—वही पृ० ३।

कहावतो के सुदर एव दष्टातमूलक प्रयोग दर्शनीय हैं। ससार म जीवन अल्पकाल का है और उपहास बहुत है– जीवन थोर बहुत उपहासू।'

यदि निष्प्रेम भाव स जीवन निर्वाह किया जाय तो वह व्यथ है जिस हृदय म प्रम नहा वहा (ईश्वर या अय) कोई किस प्रकार आ सकता है ? भला सूने गाव म कोई जाता है–

बिना प्रम जो जीव निबाहा। सूने गाउ म आव काहा॥

कुछ लोग प्रियतम और प्रेम म प्रायक्य बतलाते हैं, किन्तु क्या वे दोनो पथक हैं ? धान के खेतो के होन की पुष्टि पयार (पुआल) से ही हो जाती है–

प्रीतम प्रम कोइ कहै आना। धान क खेत पयारहि जाना॥

यहा प्रियतम और प्रम की एकता कोई कहै आना (अय कहना) और धान के खेत पयारहि जाना, लोकोक्तियो के प्रयोग दर्शनीय हैं।

जहा पाच भूत है वहा सुमति कहा ? चाहे फिर ये पाच भूत हो या पाच भूत (इद्रिया)–

पाच भूत कोइ सुमति न करै।

खेत को अधिक गहराई पर खादन और गहराई म बीज डालने स अनाज सहज ही जल भुन जाता है–अकुरित भी नहा होता–

सहज नाज जाइ सब जर। अधिक खेत जो नीव पर ?

यदि तुम अत (परिणाम) को नही समझा तो व्यथ बठ रहने का क्या प्रयोजन ? अरे अभी तो तुम कल साधारण से बनिया थे और आज बड धना सठ हो गए–

अत न समुनु करसि का बठ। काल्हिहि बनिया आजुहि सेठ॥

अन्त न समझना हाथ पर हाथ धर बठ रहना और 'कल के बनिये और आज के सठ मुहावरे यहा प्रयुक्त हुए हैं। वसे हा रहना करनी करना और जिसकी लाठी उसकी भस मुहावरो का प्रयोग–

करनी करहु रहहु का बस। जिसकी लाठी तिसकी भस।

पुण्य–पाप एक रूप न जानना,' दूध का दूध पानी का पानी मुहावरा के प्रयोग–

पुय पाप एक रूप न जानी। दूध क दूध पानी क पानी।

कवि 'साईं स नेह करने की बात कहता है और इगित करता कि जब कालक्षण (अतिम क्षण) आ जायगा, तो क्या हो सकता है ?

अब साईं सो नेह कर, फरि न यह सयोग।
काल्हि (?) ते (जो?) पनी उतरी, भई व लही जोग॥'

साधक कवि कहता है कि अवश्य ही मैंने 'पतनुकवा आम की तरह तुम्हारे रूप को

१–द्रष्टव्य–१ 'कोल्हू ते खरि ऊनरी भई बल ही जाग (अधिक शुद्ध पाठान्तर)

'हरे लिया है अब या तो आम आएगा या लवेदा अटक जाएगा—

निश्च तोर रूप मैं हेरा। आव अब कि जाइ पवरा ॥

बिना स्वामी के और कुछ सुहाता नही। पया रूखा—सूखा ही खाती है—

बिनु साई नाँहि और सोहाई। घन जिउ (हौं तो) रूपा पाई ॥

यदि कर सको तो कुछ नेकी कर लो—

सकहु मछू नेकी ले साथा। पावा भात उडावा पाता।

'नेकी साथ लकर चलना और भात खा कर पान उडा देना मुहावरा के प्रयोग यहा दर्शनीय है।

स्वय देखकर दूसरा को दिखाना ही बुद्धिमानी है—

आपु देखि और सो सिपाव।

आज जो करना है कर लो अयथा यह सासारिक धधा छोड कर तो मरना ही है—

करि ल आजु अहै जो करना। धधा छाडि आखिर है मरना।

तू ईश्वर—परम रूपमय—को छोडकर इस माया मोह के जाल म नु ध हुआ है

रूप निरजन छाडि क माया देखि लोभान।[१]

प्राप्त हस्तलिखित प्रति की ये ही उपलब्धियाँ है। १६ वी शती की अवधी भाषा भाषा की 'यजवता पुण्य पाप एक रूप न जानी दूध का दूध पानी का पानी, 'जा सो प्रम सो ध ध पर बिना प्रम जो जीउ निवाहा बुधि विद्या के कटक म हौ मन का विस्तार जहि घर सासुहि तरुणि है बहुवन कौन सिंगार प्रीतम प्रम को" कह आना, अब साई सो नह करु करि न यह सयोग निश्च तोर रूप मैं हेरा, बिन साई नाँहि और सोहाई आपु देखि सो और सिखाव प्रभति तथ्या के प्रकाश म कहा जा सकता है कि यह कृति सवथा जायसी की भाषा के साँचे म ढली हुई है और है अत्यत मनोरजक।

घाघ और भड्डरी की कहावतें हिंदी म प्रख्यात हैं फिर भी दृष्टाता लोकोक्तियो मुहावरो एव कहावता की दष्टि से यह ग्रथ महत्त्वपूर्ण है। कहावता क आधार पर इस प्रकार उपदेशमूलक दष्टाता के उपस्थापन स सम्बद्ध सभवत यह हिंदी का अपने ढग का प्रथम अनमान ग्रथ है।[२]

१—इसके आग की पक्ति (हस्तलिखित प्रति म) नहा है।

२—द्रष्टव्य— मसला या 'मसलानामा।

४

कथावस्तु का संघटन : मूल स्रोत और अन्य उपकरण

(हस्तलिखित प्रतियां, रचनाकाल और लिपि)

पदमावत की प्राप्त हस्तलिखित प्रतियां

हिन्दी साहित्य के विद्वानों के अत्यन्त सौभाग्य की बात है कि जायसीकृत पदमावत की हस्तलिखित प्रामाणिक प्रतियाँ पर्याप्त संख्या में मिलती हैं। और शोध करने पर और भी अनेक प्रतियों के उपलब्ध होने की संभावना है। गार्सा द तासी, पं० रामचन्द्र शुक्ल, डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रो० अस्करी प्रभृति विद्वानों की शोधों के परिणामस्वरूप पदमावत की अनेक बहुमूल्य प्रतियों का पता चला है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने पदमावत का सम्पादन करते हुए चार मुद्रित प्रतियों और एक कैथी लिपि में लिखित हस्तलिखित प्रति का सहारा लिया था किन्तु उन्होंने इस प्रति का कोई विवरण नहीं दिया है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने जायसी ग्रंथावली के संपादन में सोलह प्रतियों के आधार पर पाठ-संशोधन का काम किया है। इनमें पांच प्रतियां बहुत ही अच्छी थीं। उनमें से चार प्रतियां लन्दन के कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस में हैं।

(१) कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस, लन्दन की प्रति—यह २१८ पन्नों में है और पूर्ण है। इसमें अनेक चित्र भी दिए गए हैं। इसके प्रतिलिपिकार (इबादुल्लाह अहमद) खान मुहम्मद गोरखपुर के थे। इन्होंने शव्वाल ११०७ हि० में किन्हीं दीनानाथ के लिए यह पुस्तक लिखी थी।

(२) महाराज काशीनरेश के सरस्वती-भवन (पुस्तकालय) की प्रति—इसमें कुल २१६ पन्ने हैं। यह प्रति भी पूर्ण है। यह नागराक्षरों में है। यह फाल्गुन

स० १८१८ की लिखी हुई है।

(३) एडिनबरा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की प्रति–इसमें कुल ३३८ पत्र हैं। यह प्रति भी पूर्ण है। प्रतिलिपिकाल सन ११४२ हि० है। डा० गुप्त का कथन है कि यह प्रति अत्यन्त त्रुटिपूर्ण है।

(४) कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस लन्दन की प्रति–इसमें कुल १८० पत्र हैं। प्रति पूर्ण है और फारसी अक्षरों में अत्यन्त सुलिखित है। प्रतिलिपिकाल १११४ हि० है।

(५) कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस लन्दन की प्रति–इसमें कुल १८४ पत्र हैं। प्रति पूर्ण है। अक्षर फारसी हैं और लेख अत्यन्त सुन्दर हैं। लिपिकार रहीम दाद खां शाहजहांपुर। प्रतिलिपिकाल ११ ६ हि० है।

(६) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रति–यह प्रति लीथो प्रेस द्वारा छापी हुई है। इसमें कुल ६३६ पृष्ठ हैं। प्रति फारसी अक्षरों में है। अहमद अली मुंशी द्वारा उर्दू में किया हुआ अनुवाद भी इसी में है। इसका प्रकाशन कानपुर से शेख मुहम्मद अजीमुल्लाह पुस्तक विक्रेता द्वारा १३२३ हि० में हुआ था। इसकी एक प्रति श्री सयद कल्बे मुस्तफा जायसी के पास भी है। विश्वविद्यालय की प्रति में ७३ से १०४ तक के पृष्ठ नहीं है। मुस्तफा साहब की प्रति में ये पृष्ठ हैं।

(७) मुंशी नवलकिशोर की लीथो प्रति–इसमें ३५३ पृष्ठ हैं। लिपि फारसी है। हाशिए में उर्दू भावार्थ भी दिया गया है। टीकाकार हैं श्री हसनअली। प्रकाशन तिथि १८७० ई० है। प्रथम संस्करण १८६५ में छपा था। यद्यपि यह प्रति मुद्रित है किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि इसका पाठ भी मूलतः किसी एक हस्तलिखित प्रति के अनुसार है।

(८) कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय (किंग्स कालेज) की प्रति–यह प्रति भी पूर्ण और फारसी अक्षरों में सावधानी के साथ लिखी हुई है। संभवतः यह प्रति ११५३ हि० की है।

(९) रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल की प्रति–इसमें कुल १ ७ पत्र हैं। प्रथम पत्र गायब है। शेष प्रति पूर्ण है। प्रति कैथी अक्षरों में लिखी हुई है। लिपिकार हैं झब्बूलाल कायस्थ मौजा शरीतारा सलेमपुर आसपुर सरकार सूबा बिहार मुकाम–अजीमाबाद महल–सुलतानगंज। प्रतिलिपि की तिथि ११९८ हि० स० १८४२ जेठ बदी दो, मंगलवार है।

(१०) कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस लन्दन की प्रति–इसमें कुल २१३ पत्र हैं। प्रति फारसी अक्षरों में सुलिखित है। प्रति पूर्ण है। संभवतः यह प्रति

लगभग २०० वर्ष प्राचीन है।[1]

(११) कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस लन्दन की प्रति–इसमें २११ पत्र हैं। प्रति फारसी लिपि में है। लिपिकाल नहीं दिया गया है। सम्भवतः यह १७वीं या १८वीं शताब्दी की प्रतिलिपि है।

(१२) कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस लन्दन की प्रति– इसमें कुल ३४० पत्र हैं। प्रति नागराक्षरों में सुलिखित और पूर्ण है। यह सचित्र प्रति है। इसमें ३४० पृष्ठ मूल पदमावत के हैं और ३४० चित्रों के पृष्ठ हैं। चित्र अत्यन्त कलापूर्ण हैं। लिपिकार हैं थान कायथ मिर्जापुर।

(१३) श्री गोपालचन्द्र सिंह की प्रति (उत्तरप्रदेश सरकार, आफिसर आन स्पेशल ड्यूटी सेक्रेटरियट लखनऊ)–इसमें पृष्ठसंख्या नहीं दी गई है। प्रति फारसी अक्षरों में अत्यन्त सुलिखित और पूर्ण है। लिपिकार ईश्वरप्रसाद निवास स्थान—गंगा गौरौली है। लिपिकाल ११९८ हि० और लिपिस्थान करतारपुर बिजनौर है।

(१४) कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस लन्दन की प्रति—फारसी अक्षरों में सुलिखित है और पूर्ण है। लिपिकाल सन ३६ (?) दिया हुआ है। लिपिकार का नाम तो नहीं पर पता दिया गया है—मुहम्मद नगर परगना सिधौरा सरकार लखनऊ।

(१५) महन्त गुरुप्रसाद की प्रति–प्रति नागराक्षरों में और पूर्ण है। लिपिकाल सं० १८५८ है। यह प्रति हर गांव के डा० जगसरगंज जिला सुल्तानपुर के महन्त गुरुप्रसाद के पास है।

(१६) सय्यद क्ल्बे मुस्तफा की प्रति–प्रति खंडित है। खंडित अंशों को मुस्तफा साहब ने किसी अन्य प्रति से पूर्ण करा लिया है।[2]

(१७) मनेर शरीफ की प्रति–यह प्रति फारसी अक्षरों में है। इसमें पदमावत अखरावट और महारानामा नामक ग्रन्थ हैं। अखरावट की पुष्पिका में ६११ हि० दिया हुआ है। प्रो० हसन अस्करी का विचार है कि यह प्रति शाहजहाँ के काल में १७वीं शती में लिखी गई थी। इस प्रति के पाठ अत्यन्त उच्च कोटि के हैं।[3] पटना विश्वविद्यालय ने इसकी एक प्रति कराई है।

१—जा० ग्र० डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० ५ (भूमिका)।

२—जा० ग्र० डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० ७।

३—प्रस्तुत प्रति के अखरावट और महारानामा वाले अंश की फोटो लिपि मेरे पास भी हैं। पाठ की दृष्टि से ये प्रतियां अत्यन्त शुद्ध हैं।

४—जर्नल आफ बिहार रिसर्च सोसाइटी भाग २६ १९५३ पृ० १०४०।
प्रो० अस्करी का लेख अवधी ग्रंथों की एक नई हस्तलिखित प्रति।

(१८) बिहार शरीफ की प्रति – यह प्रति फारसी लिपि मे है। यह ११३६ हि० (सन १७२४) म मुहम्मदशाह बादशाह क राज्य सवत के पाचवें वष म लिखी गई थी। यह प्रति भा सम्पूण है सुलिखित है और पाठ की दृष्टि से भी मू यवान है। यह प्रति अस्करी पटना विश्वविद्यालय के पास है।

(१९) रामपुर राज्य पुस्तकालय की प्रति – यह प्रति अत्यन्त सुदर प्रामाणिक और सुलिखित है। लिपि फारसी है। अरबी के जबर जेर पेश आदि के उपयोग स अवधी, भाषा के दोहे चौपाई अत्यत्त सावधानी के साथ लिखे गय हैं। इसम कुल ६५९ दोहे हैं। चौपाइयो के नीचे प्रत्यक शब्द का फारसी म पर्याय भी दिया गया है। इस प्रति के अत म कहरानामा की एक सम्पूर्ण प्रति है।[1]

(२०) पैरिस की प्रति[2] फ्रास (पैरिस) के राजकीय पुस्तकालय म भी नागरी अक्षरा म लिखित एक प्रति है।

(२१) लीड की प्रति[3] – लीड के पुस्तकालय मे कथी नागरी अक्षरो म भी एक प्रति सरक्षित है जो बिनमेट पर आधारित है।

(२२) ईस्ट इण्डिया हाउस पुस्तकालय की प्रति – अपने पृष्ठो की प्रत्यक पीठ पर चमकील चित्रो से सुसज्जित यह ७४० फोलियो पृष्ठा की एक सुदर पुस्तक है। यह नागरी अक्षरो म लिखी गई है।

(२३) उदयपुर वाली प्रति – महाराज उदयपुर पुस्तकालय म भी पदमावत की एक पूण और सुलिखित प्रति है। इसका लिपिकाल १८३८ ई० है।

(२४) बिहार रिसच सासाइटी पटना की प्रति – यह प्रति प्रो० अस्करी को मिली थी और इस सासाइटी के पुस्तकालय म सुरक्षित है। यह उर्दू लिपि म लिखी गई है। इसके लिपिकार हैं पटना के भोलानाथ। यह १८वी शती म लिखी गई थी।

(२५) वसी नकवी की प्रति – जायस के श्री वसी नकवी के पास पद्मावत की एक सुलिखित और पूण प्रति है। इसकी लिपि नागरी है। ग्रन्थावली

१–रजा लाइब्रेरी रामपुर स्टेट की प्रति – इसम कहरानामा की प्रति भी है। बम्बई विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष की कृपा से मझ इसकी एक माइक्रो फिल्म कापी प्राप्त हुई है।

२–जाती सग्रह न०३१ (गार्सां द तासी ने अपने इस्तवार दी ल लितरत्यूर ऐ दुई ऐ ऐ दुस्तानी मूल के द्वितीय सस्करण म इसे फारसी अक्षरो म लिखी गयी कहा है। (देखिए – हिंदुई साहित्य का इतिहास – गार्सांदतासी पृष्ठ ८४)।

३–लीड मे पुस्तकालय व सूची पत्र की सख्या १३४–१३५।

४–इस्तवार [redacted] ला लितरत्यूर ए दुई ऐ ऐ दुस्तानी, वा० १ जायसी।

के रूप में इसमें पद्मावत अखरावट कहरानामा और मसलानामा नामक ग्रन्थ संगृहीत हैं। इसमें लिपिकाल नहीं दिया गया है।

(२६) श्री त्रिभुवन प्रसाद त्रिपाठी की प्रति — जायस क्षेत्र के सेमरौता जू० हा० स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री त्रिभुवन प्रसाद त्रिपाठी के पास भी 'पद्मावत' की एक सुलिखित प्रति है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में ३३० पृष्ठ हैं। इसमें पदमावत कहरानामा मसलानामा एवं अखरावट क्रम से संग्रहीत है। लिपिकार हैं मदनदास जी।

(२७) उदयपुर स्टेट लाइब्रेरी में पदमावत की एक हस्तलिपि प्रति है। यह कथी लिपि में है। ग्रियर्सन ने अपने सम्पादन में इसका उपयोग किया था।

(२८) महंत गुरुचरण प्रसाद दास स्थान डाकटर बछरावां, जिला राय बरेली के पास 'पद्मावत' की एक सुलिखित प्रति है।

(२९) ना० प्र० सभा खोज रिपोर्ट १९४७ २९७ में पद्मावत की एक हस्तलिखित प्रति का विवरण दिया हुआ है। सभा की खोज रिपोर्टों में पदमावत के हस्तलेखों की सूची इस प्रकार है—

२०	१०९
२४	२८४ ए० बी०
२६	२८९ बी०
२९	२२५
४२	५३७
४७	२८७ ख

एक नए हस्तलेख का विवरण १९४७–४८ वाली खोज रिपोर्ट में है। इसका प्रतिलिपिकाल १९३५ वि० है। यह फारसी लिपि से नागरी में लिखा गया है। लेखक पं० रामदीन द्विज (खो० रि० ४८–४९–५० ई०)।

३०–३१–३२ कथी लिपि की तीन प्रतियों का उल्लेख डा० रामकुमार वर्मा[1] ने किया है जिसमें प्रति नं० १ का प्रतिलिपिकाल १७५५ ई० है। बतालगढ़ की (अपूर्ण) प्रति का लिपिकाल १७०१ ई० है और प्रति नं० २ का लिपिकाल १८२२ है। इनके विषय में डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि ये प्रतियाँ बहुत अशुद्ध हैं और इनमें पाठान्तर भी अनेक हैं।

(३३) भारत कला भवन काशी वाली प्रति — यह प्रति कथी लिपि में है।

इधर शोध के सिलसिले में पद्मावत की और भी कई हस्तलिखित प्रतियों का पता चला है।

१–हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ३०९।

पदमावत का रचनाकाल

जायसी ने पदमावत के रचना-काल का उल्लेख करते हुए लिखा है—

सन नौ स सतालिस अह। कथा अरम्भ बन कवि कह। [१]

नौ स सतालिस हिजरी (१५४० ई०)[२] म शेरशाह दिल्लीपति हुमायू को परास्त करके दिल्ली का सम्राट बन चुका था। इस समय तक वह दिल्ली का सम्राट ही बना था। उसका राज्याभिषक ७ शवाल ९४८ हि० (अर्थात २५-२६ जनवरी १५४१ ई०) को हुआ था।[३] जायसी ने शाहे वक्त के रूप म दिल्ली के सुल्तान शेरशाह के वभव का अत्यत वभववत उल्लेख किया है—

सेरसाहि दिल्ली सुल्तानू। चारिउ खण्ड तपइ जस भानू॥[४]

९४७ के अनक पाठातर पदमावत की प्रकाशित-अप्रकाशित अनेक प्रतियों में मिलते हैं।

(१) ग्रियसन तथा सुधाकर द्विवेदी ने ९४७ हि० पाठ ही स्वीकार किया है।

सन नौ स सतालिस अहा। कथा अरम्भ बन कवि कहा॥[५]

(२) जायसी ने ९४७ हि० (१५४०-४१ ई) मे अपने पदमावती काव्य की रचना की थी।[६] मिश्र बधुओं न ९२७ पाठ माना है।

(३) प० रामचद्र शुक्ल ने जा० ग्र० के प्रथम सस्करण मे सतालिस पाठ दिया था किन्तु द्वितीय सस्करण म उन्होने नव स सत्ताइस पाठ को ही स्वीकार किया और लिखा कि पहल सस्करण म दिये हुए सन को शेरशाह के समय म लाने के लिए 'नव स सतालिस' पाठ माना गया था। फारसी लिपि म सत्ताइस और सतालिश म भ्रम हो सकता है। इस पदमावत का एक पुराना बगला अनुवाद है उसमे भी नव स सत्ताइस पाठ माना गया है।

शेख मुहम्मद जाति जखन रचित ग्रथ सख्या सप्तविंशनवशत।

यह अनुवाद अराकान राज्य के वजीर मगन ठाकर ने सन १६५ ई के आसपास आला-उजालो नामक एक कवि स कराया था।[८]

१-जा० ग्र० हिन्दुस्तानी एकेडमी पृ० १३८ (२४।१)।
२-एलिमेंटस आफ ग्रुद्दश ऐण्ड मोहमडन कल्चर्स पृ० ४९१।
३-ना० प्र० पत्रिका भाग १२ पृ० १४२ (पदमावत की तिथि और रचनाकाल)।
४-पदमावत (स्तुति खण्ड) १३।१ से आगे।
५-पदुमावति ग्रियसन तथा सुधाकर द्विवदी पृ ३५।
६-हिंदुई साहित्य का इतिहास गार्सा द तासी पृ ८६।
७-मिश्र बधुविनोद भाग १, पृ० २९० (प्र० स०)।
८-जा० ग्र०, प० रामचन्द्र शुक्ल (भूमिका) पृ० ६।

डा० माताप्रसाद गुप्त को भी कुछ प्रतियों (द्वि० ५, तृ० २, च० १) में नौ म सत्ताइस पाठ मिला है, किन्तु आ० प्र० म उन्होंने 'नौ स सतानिम' पाठ को ही मूल पाठ माना है।[1] डा० गुप्त को दो प्रतियों म (द्वि० ७ और ३) पैंतालिश पाठ मिला है।[2]

(५) पं० चन्द्रबली पाण्डेय ने भी ९२७ हि० को पदमावत का रचनाकाल माना है।[3]

(६) ए० जी० शिरफ[4] और डा० रामकुमार वर्मा[5] ने भी नौ म सतालिस पाठ उपयुक्त माना है।

(७) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी[6] प० परशुराम चतुर्वेदी,[7] डा० कमलकुल श्रेष्ठ[8] प्रभृति विद्वानों ने ९२७ हि० का ही पदमावत का रचनाकाल माना है।

गोपालचन्द्र जी[9] की प्रति म 'नौ सै सत्ताइस' पाठ है। भारत कलाभवन, काशी की कथी प्रति म ९३६ हि० (१५३०) पाठ मिलता है।

सन नौ स छत्तीस जब रहा। कथा उरेहि बएन कवि कहा।[10]

बिहार शरीफ[11] की प्रति म ९४८ हि० पाठ मिलता है। रामपुर स्टेट पुस्तकालय[11] की प्रति म ९६७ हि० पाठ है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विभिन्न प्रतियों के माध्यम से पदमावत की रचना तिथि से सम्बद्ध पाच तिथियाँ — ९२७ हि०, ९३६ हि० ९४५ हि० ९४७ हि० और ९४८ हि० म हमारे समक्ष विद्यमान हैं। इस सम्बन्ध में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का मत विशेष उल्लेखनीय है।

१—आ० प्र० डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० १३५।
२—वही (पाद टिप्पणी)।
३—ना० प्र० प० भाग १२, पृ० १४२।
४—पद्मावति ए० जी० शिरेफ भूमिका।
५—हि० सा० का आ० इ०, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० २३—२४।
६—हिन्दी साहित्य, आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २४०—४१।
७—सूफी काव्य-संग्रह प० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १०४।
८—हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य (पृ० ४१—४२) और म० मु० जायसी, डा० कमल कुल श्रेष्ठ, पृ० २४—२५।
९—पदमावत (प्राक्कथन) डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पृ० ३३।
१०—भारत कला भवन की कथी प्रति।
११—जे० बी० एस० आर भाग ३६, ।
१२—पदमावत डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ३३।

– '९२७ हि० पाठ के पक्ष में एक तर्क यह भी है कि अपेक्षाकृत विनष्ठ पाठ है। विपक्ष म यही युक्ति है कि शेरशाह के राज्यकाल से इसका मेल नही बैठता। मैंने अर्थ करते समय शेरशाह वाली युक्ति पर ध्यान देकर ९४७ पाठ को समीचीन लिखा था किंतु अब प्रतियों की बहुल सम्मति और विनष्ट पाठ की युक्ति पर विचार करने से प्रतीत होता है कि ९२७ मूल पाठ था और जायसी ने पदमावत का आरम्भ इसी तिथि म अर्थात १५२१ ई० म कर दिया था। ग्रंथ की समाप्ति कब हुई कहना कठिन है किन्तु कवि ने उस काल के इतिहास की कई प्रमुख घटनाओं को स्वयं देखा था। *बाबर के राज्यकाल का तो स्पष्ट उल्लेख है ही* (आखिरी कलाम ८।१)। उसके बाद हुमायूं का राज्यारोहण चौसा मे शेरशाह द्वारा उसकी हार (९४५ हि०) कन्नौज म शेरशाह की उस पर पूर्ण विजय (९४७ हि०), फिर शेरशाह का दिल्ली के सिंहासन पर राज्याभिषेक (९४८ हि०) ये घटनायें उनके जीवन-काल म घटी। मेरे मित्र श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा ने मुझे *एक बुद्धिपूर्ण सुझाव दिया है कि पदमावत के विविध हस्तलेखों की तिथियां इन* घटनाओं से मेल खाती हैं। हि० ९२७ ई० मे आरम्भ करके अपना काव्य कवि ने कुछ वर्षों म समाप्त कर लिया होगा। उसके बाद उसकी हस्तलिखित प्रतियां समय समय पर बनी रहीं। भिन्न तिथियों वाले सब संस्करण समय की आवश्यकता के अनुकूल चालू किये गये। ९२७ वाली कवि लिखित प्रति मूल प्रति थी। ९३६ वाली प्रति २ की मूल प्रति हुमायूं के राज्यारोहण की स्मृति रूप म चालू की गई– हि० ९४५ वाली प्रति जिसका माताप्रसाद जी गुप्त ने पाठान्तर मे उल्लेख किया है। शेरशाह की चौसा-युद्ध म हुमायूं पर विजय प्राप्त करने के उपरांत चालू की गई। ९४७ वाली चौथी प्रति शेरशाह की हुमायूं पर कन्नौज-विजय की स्मृति का संकेत देती है। पांचवी या अन्तिम प्रति ९४८ हि० की है जब शेरशाह दिल्ली के तख्त पर बैठकर राज्य करने लगा था। मूल ग्रंथ जैसे का तैसा रहा। केवल शाहे वक्त वाला अंश उस समय जोड़ा गया। पदमावत जैसे महाकाव्य की रचना के लिए चार-पांच वर्षों का समय लगा होगा। (और शेरशाह को आशीर्वाद देनेवाली) घटना के पश्चात ही शाहे वक्त की प्रशंसा वाला अंश शुरू म जोड़ा गया होगा।'[1]

इस विषय म निवेदन है कि जब जायसी ने 'मसनवीशैली' म और चार-पांच वर्षों के समय म पदमावत की रचना की थी और समय की आवश्यकता के अनुसार पांच प्रतियां चालू की गई तो स्पष्ट है कि पदमावत की एक नहीं अपितु पांच प्रतियां प्रामाणिक हैं और जब कि इन प्रतियों मे पर्याप्त पाठभेद भी मिलता है, तो यह भी स्पष्ट है कि ये अंश प्रक्षिप्त नहीं है – ऐसी स्थिति मे हिंदी म एक

१–पदमावत (प्राक्कथन) डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पृ० ३३–३४।

नही अपितु जायसी कृत पाच 'पदमावत' हो जाते हैं डा० माताप्रसाद गुप्त या किसी अन्य विद्वान्' के पदमावत के वैज्ञानिक सम्पादन का पुन क्या अर्थ। दूसरा ज्वलन्त प्रश्न है शाहेवक्त का। मसनवी पद्धति के अनुसार प्राय सूफी कवियो ने ग्रन्थ म ईश्वर गुरु आदि के स्तवन के अनन्तर शाहेवक्त का उल्लेख किया है और '६२७ हि० म आरम्भ करके जायसी ने ४-५वर्षों के समय में इसे पूर्ण किया तो अवश्य ही तत्कालीन बादशाह का उल्लेख किया होगा - किन्तु पदमावत की किसी भी प्रति म सिकन्दर लोदी या इब्राहीम लोदी (६२७ हि०) बाबर (१५२६) या हुमायू (६३६ हि०) मे से किसी का भी उल्लेख नही मिलता। पुन यदि ये सस्करण समय की आवश्यकता के अनुकूल चालू किये गये' तो इन विभिन्न तिथियों वाले पदमावतो म उनके शाहेवक्त कहा हैं ? उनके वर्णन भी तो अवश्य अपेक्षित हैं ? इस कथन से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि जायसी एक ऐसे दरबारी कवि थे, जो अनेक युद्धो और अनेक बादशाहो की विजय या राज्याभिषेक के उपलक्ष्य म अपने काव्य के नये नये सस्करण निकालते चलते थे। ६३६ ६४५ और ६४८ का समर्थन जो एक एक प्रतियो म मिलता है - हम किसी निश्चित परिणाम तक नही पहुचाता। इसलिए स्पष्ट है कि यह मात्र प्रतिलिपिकारो का प्रमाद है।

आचार्य प० चन्द्रबली पाडेय का कथन है कि सन ६२७ हि का जीवन-काल १२ दिसम्बर सन १५२० से ३० नवम्बर १५२१ ई० तक था। यह वह समय था जब इब्राहीम लोदी और उसका सहोदर भ्राता जलाल परस्पर सिंहासन के लिए लड रहे थे जो सिकन्दर के नाम पर रो रहा था। अब मथुरा के हिन्दू यमुना मे स्नान करने का साहस कर लेते थे, बाल बनवा सकते थे और अपनी मूर्तियो को दूबर खाने मे जाने से रोक सकते थे। सिकन्दर का आतक इब्राहीम भोग रहा था। जनता उसके प्रतिकूल पडती थी। अनादर अपमान एव अन्याय म वह सिकन्दर का बचा निकला। बगाल का हुसेनशाह कभी सत्य पीर की उपासना कर सदा के लिए सो गया था। साराश यह कि एक भी बादशाह उस समय ऐसा न था जो जायसी का शाहेवक्त होता। सम्भव है कि जायसी ने पवित्र पदमावत को उन शासको का कथाक्षर रखना ही उचित समझा हो और उनकी वदना मे शाहेवक्त को स्थान न दिया हो।

प० चन्द्रबली पांडेय की उपयुक्त सम्भावना विशेष महत्व नही रखती। जायसी ६२६ हि० वाली प्रति म शाहेवक्त स रूप म हुमायू का उल्लेख कर सकते थे अथवा इसके पूर्व के बादशाह बाबर का उल्लेख कर सकते थे (जब कि उन्होंने आखिरी कलाम ८।१ म बाबर साह छात्रपति राजा कहकर उसका उल्लेख भी किया है।) परन्तु अभी तक प्राप्त समस्त प्रतियो म केवल शेरशाह का उल्लेख है।

दिल्ली के सुलतान-पद पर शेरशाह का अभिषेक २५ जनवरी १५४२ ई०

का (ता० ७ शव्वाल हि० सन ६४८) को हुआ था।[1] ९४७ हि० को पदमावत का रचना-काल मानने पर यह कठिनाई उपस्थित होती है कि जायसी ने शेरशाह को दिल्ली का सुलतान कहा है किन्तु ९४७ हि० मे शेरशाह का राजतिलक नहीं हुआ था। 'पदमावत का आरम्भ ग्रीष्म ऋतु मे सभवत दशहरा को ही हुआ। यदि हमारा अनुमान ठीक है तो उस समय शेरशाह दिल्ली का सुलतान नही था। वह तो अगस्त के लगभग दिल्ली मे पहुचता है। अत इस दृष्टि से ९४७ हि को ठीक मानना उचित नही जान पडता।'[2]

आचार्य चन्द्रबली पाडेय की सभावना के अनुसार यदि पदमावत का रचना काल ग्रीष्म ऋतु म मान भी लिया जाय तो भी ९३७ हि० को पदमावत का रचना काल मानने म कोई बाधा उपस्थित नही होती। कन्नौज के युद्ध म हुमायू पर शेरशाह की विजय १७ मई १५४ ई को (९ दिन बीते ९४७ हि) हुई थी। अत ९४७ हि म शेरशाह का दिल्ली सुलतान के रूप म वस्तवत उल्लेख असगत नहीं है। पदमावत का निर्माणकाल कवि ने इस प्रकार दिया है--

सन नव स सत्ताइस अहा। कथा अरभ बन कवि कहा॥

इस का अथ होता है कि पदमावत की कथा के प्रारभिक वचन कवि ने सन ९२७ हि० (१५२० ई० के लगभग) मे कहे थे। पर ग्रथारम्भ मे कवि ने मसनवी की रूढि के अनुसार शाहेवक्त शेरशाह की प्रशसा की है जिसके शासन-काल का आरम्भ ९४७ हि० अर्थात १५४० ई० स हुआ था। इस दशा मे यही सम्भव जान पडता है कि कवि ने कुछ थोड से पद्य तो सन १५२० ई० मे ही बनाए थे पर ग्रथ को १९ या २० वष पीछे शेरशाह के समय म पूरा किया। इसी से कवि ने भूतकालिक क्रिया अहा (--था) और कहा का प्रयाग किया है।[3] 'प० रामचन्द्र शुक्ल ने इस सभावना का कारण बताते हुए लिखा है-- (जा प्र० के) पहले सस्करण मे दिए हुए सन को शेरशाह के समय म लाने के लिये नव स सतालिस पाठ माना गया था। फारसी लिपी म सत्ताइस और सतालीस म भ्रम हो सकता है। पर *पदमावत का एक पुराना बगला अनुवाद है उसम भी नव स* सत्ताइस पाठ माना गया है--

शेख मुहम्मद जानि जखन रचति ग्रथ सख्या सप्तविंश नवशत।

यह अनुवाद अराकान राज्य के वजीर मगन ठाकुर ने सन १६५० ई० के आसपास *आलो उजालो नामक एक कवि से कराया था।*

१--ना० प्र० पत्रिका, भाग १२ पृ० १४२।
२--ना० प्र० पत्रिका भाग १२ पृ० १२६।
३--जा० प्र० प० रामचन्द्र शुक्ल (भूमिका) पृ० ६।
४--वही।

और 'कहा' पुकार-पुकार कर कह रहे है कि जायसी भूतकाल की बातें कह रहे हैं, वर्तमान की नहीं।

प० चन्द्रबली पाण्डे[1] ने भी इसी प्रकार की कुछ बातें कही हैं— 'अहा'

डा० माताप्रसाद गुप्त[2] ने १६ हस्तलिखित प्रतियों के वैज्ञानिक परीक्षण के अनन्तर 'अहा' और 'कहा' के स्थान पर 'अहै' और 'कहै' पाठ स्वीकार किया है। उन्हें केवल एक प्रति (प्रति १) में 'अहा' और 'कहा' पाठ मिला है। इस १५ प्रतियों में प्राप्त होनेवाले 'अहै' और 'कहै' पाठ को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं है। अतः शुक्लजी और पांडेयजी का भूतकाल की बाधा का सहज ही समाधान हो जाता है। जहां तक आलो उजालो वाले सप्तविंश नवशत की तिथि का प्रश्न है वह अवश्यमेव महत्त्वपूर्ण है (इस पर हमने आगे गहन विचार प्रस्तुत किया[3] है) इसका कारण यह है कि यह अनुवाद १२७० ई० के आसपास का है। पदमावत की अभी तक एक भी इतना प्राचीन हस्तलिखित प्रति नहीं प्राप्त हो सकी है। यह तो सुनिश्चित है कि आलो-उजालो[4] ने पद्मावत का अनुवाद किसी हस्तलिखित प्रति से ही किया होगा। फारसी लिपि की घसीट लिखावट के कारण अनुवादक ने सतालिस का सताइस पढ़ लिया है। यह भी संभावना की जा सकती है कि ऐतिहासिक ज्ञान के अभाव के शेरशाह की प्रशंसा और ९२७ हि० वाले असामञ्जस्य को अनुवादक ने लक्षित नहीं किया।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ ने भी ९२७ हि० की डफली में अपना राग मिलाया है। उन्होंने शुक्लजी के मत का विश्लेषण करते हुए बंगला अनुवाद का उल्लेख किया है तदुपरान्त वे लिखते हैं— प्रस्तुत लेखक १५२० ई०-९२७ हि० को मानने वाले विद्वानों से मतैक्य रखते हुए एक और तर्क ९२७ हि० के पक्ष में रखता है वह यह कि जायसी ने अपना अंतिम ग्रन्थ 'आखरी (?) कलाम' १५२९ ई०-९३६ हि० में लिखा था। यह अन्तर्साक्ष्य (?) से प्रमाणित एवं निर्विवाद है जब कि कवि का आखिरी कलाम अर्थात् कवि की अंतिम रचना ९३६ हि० की है तो पदमावती निश्चय रूप से उसके पूर्व का होगी।[5] अन्त में कुलश्रेष्ठ जी मैदान छोड़कर भागते हुए (इस समस्या को छोड़कर) कह ही देते हैं, प्रस्तुत पुस्तक के लिए यह विवाद विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं होगा।[6] जब कवि ने अंतिम रचना ९३६ हि० में बनाई

१—ना० प्र० पत्रिका भाग १२ पृ० १२८-२९।

२—जा० ग्र० डा० मा० माताप्रसाद गुप्त पृ० १४८। ३—देखिए विशेष।

४—ए हिस्ट्री आफ बेंगाली लंग्वेज दिनेशचन्द्र सेन, पृ० ६।

५—हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य डा० कमल कुलश्रेष्ठ, पृ० ४१—४२।

६—वही, पृ० ४२।

तो ९४७ हि० में पद्मावती की कथा आरम्भ ही कैसे की होगी।[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि आखिरी कलाम को कवि की अंतिम रचना कहना नितान्त भ्रांत है। आखिरी कलाम तो कवि कृत अंतिम दृश्य (प्रलय आखिरी समय) से सम्बद्ध कलाम (कलाम-साहित्यिक कृति) है। इस ग्रंथ में अंतिम समय का वर्णन काव्यात्मक शैली में किया गया है।[2]

'आखिरी कलाम' की रचना-तिथि ९३६ हि० है। डा० कुलश्रेष्ठ ने ही लिखा है कि बाद में जब कि सारा ग्रंथ लिख डाला गया तो शेरशाह के समय में कवि ने उसकी भूमिका लिखी। उसमें भूतकालिक क्रिया का प्रयोग करते हुए प्रारंभ काल और सामयिक राजा के रूप में शेरशाह की प्रशंसा की।[3]

इस प्रकार कुलश्रेष्ठ जी ने ९२७ हि० को ही पद्मावत का रचनाकाल माना है। यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि जब जायसी कृत पद्मावत जो ९२७ हि० में शुरू हुआ था अधूरा पड़ा हुआ था। जायसी को इसे भी पूरा करना था (डा० कुलश्रेष्ठ के शब्दों में शेरशाह के समय में भूमिका लिखनी थी) तो वे अपनी एक रचना का नाम अंतिम रचना क्यों रखते? यदि इसे अंतिम रचना मान भी लें तो यह भी मान लेना पड़ेगा कि ९३६ हि० तक पदमावत की रचना पूर्ण हो चुकी थी। स्पष्ट ही कुलश्रेष्ठ जी के कथन में व्याघात एवं असंगति दोष हैं। इतना निश्चित है कि पदमावत की समाप्ति शेरशाह के समय में ही हुई है निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आखिरी कलाम का अर्थ लगाने में कुलश्रेष्ठ जी ने भूल कर दी है आखिरी कलाम जायसी की अंतिम रचना नहीं है। इसकी रचना के पश्चात पद्मावत और 'चित्ररेखा' की रचना हुई है। इन दोनों ग्रंथों के वृद्धावस्था के वर्णन एवं पद्मावत में आए हुए-'दीन्ह असीस मुहम्मद करहु जगहि जगराज'—शेरशाह को आशीष देने के उल्लेख अवश्य ही 'बाबरसाह छत्रपति राजा (आ० क० ८। १) के परवर्ती हैं। पद्मावत को ९२७ हि० की रचना मानने वाले प्राय सिद्धान्त का तर्क है कि शाह वक्त के रूप में शेरशाह के वैभव पराक्रम आदि के वर्णन वाला अंश ९४७ हि (९४८ हि० चन्द्रबली पाडेय के अनुसार) में पद्मावत की समाप्ति के पश्चात जोड़ दिया गया। पदमावत २० वर्षों में लिखा गया हो या ४-५ वर्षों के समय में यह बात स्वीकार्य है किन्तु काव्य की रचना के अनन्तर शेरशाह की प्रशंसावाला अंश (भूमिका की भाँति) इसमें जोड़ दिया गया है—यह बात वर्तमान युगीन लेखकों के लिए उपयुक्त है जायसी के लिए नहीं। यह बात ९२७ हि० को युक्ति की संगति

१-मलिक मुहम्मद जायसी डा० कमल कुलश्रेष्ठ पृ० ७४।
२-द्रष्टव्य इसी प्रबंध का अध्याय ३ आखिरी कलाम।
३-मलिक मुहम्मद जायसी डा० कमल कुलश्रेष्ठ पृ० ७५।

बढाने के लिए कही जाती है। स्तुति-खड के अत म लिखी गई यह बात भी समीचीन नही प्रतीत होती। प्राय सूफी कवि ग्रथारम्भ म ही जगत के करतार की वन्दना करते हैं गुरू का स्तवन करते है शाहेवक्त का उल्लेख करते हैं। मसनवी शली के प्रबध काव्य के लिए ये बातें आवश्यक मानी गई हैं। अत स्तुति-खड निश्चित रूप से पहले ही लिखा गया था। ९२७ हि० की अपक्षा ९४७ हि० को अधिक प्रामाणिक मानने के लिए यह भी एक अत्यन्त प्रबल तर्क है। जायसी भारतीय महाकाव्य की शैली म एव मुख्य रूप स मसनवी शली के (समन्वयात्मक रूप) म अपना काव्य सजित करने जा रहे थे। उन्होने प्रारम्भ म ही नियमानुसार समस्त जगत के करतार राजा की वन्दना की है। उसी ने सृष्टि की उत्पत्ति की है मुहम्मद साहब का पुण्य स्मरण भी (ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए ईश्वर और मुहम्मद पीर आदि) ग्रथ के आरम्भ मे मसनवी पद्धति के अनुसार किया है। मुहम्मद साहब, उनके चार यार तदनन्तर ४५ पक्तियो मे शेरशाह के वभव एव प्रताप का वणन पश्चात पीर सयद अशरफ गुरु महदी आदि का उल्लेख है पश्चात ग्रन्थ की रचना तिथि बताई गई है।

"सन नौ स सतालिस अहै। कथा अरम्भ बन कबि कहै।

महात्मा तुलसीदास ने भी रामचरितमानस के प्रारम्भ म वन्दनादि के पश्चात ग्रथारम्भ की तिथि दी है—

सवत सोरह स इकतीसा। करउ कथा हरिपद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधुमासा। एहि दिन रामचरित परकासा॥[1]

सिंघल दीप वणन क प्रारम्भ म कवि न लिखा है—

सिंघलदीप कथा अब गावौं। औ सो पदुमिनि बरनि सुनावौं॥[2]

पक्ति के अब गावौं औ सो पदुमिनि पद द्रष्टव्य है। इन पक्तियो के ठीक पहले कवि ने लिखा है—

सन नौ स सतालिस अहै। कथा आरम्भ बन कबि कहै॥
सिंघलदीप पदुमिनि रानी। रतनसेन चितउर गढ आनी॥[3]

इन पक्तियो स भी स्पष्ट है कि स्तुति खड समाप्त करने और सो पदुमिनि का इगित करन के पश्चात ही कवि ने सिंघल दीप वणन का आरम्भ किया। इस प्रकार यह कथन महत्वहीन हो जाता है कि शेरशाह वाला अश बाद म जोडा गया है और ९४६ हि० सन म जायसी के ग्रथारम्भ की बात सुदृढ और प्रमाणित

१–रामचरित मानस बालकाण्ड।
२–जा०ग्र० डा० माता प्रसादगुप्त पृ १३६।
३–वही, पृ १३८।

हो जाती है।

डा माताप्रसाद के समक्ष शुक्लजी की अपेक्षा पदमावत की हस्तलिखित प्रतियां अधिक थी। शुक्लजी[1] ने चार मुद्रित एव एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर पदमावत का सपादन किया था। डा मातप्रसाद गुप्त[2] के समक्ष १६ हस्त लिखित प्रतियां थी। इन सोलह प्रतियो म तीन प्रतियो म सत्ताइस और एक प्रति में अहा और कहा पाठ मिले थे, दो प्रतियो म सतालिस के स्थान पर पतालिस पाठ भी मिल थे। इन समस्त प्रतियो का वज्ञानिक ढग से सपादन करते हुए उन्होने सन नौ से सतालिस अहे पाठको ही मूल पाठ माना है।[3]

पदमावत की एक अत्यन्त सुन्दर प्रति रामपुर स्टेट के राज पुस्तकालय म सुरक्षित है। यह प्रति अत्यन्त प्रामाणिक है। इसे १६७५ ई म मुहम्मद शाकिर नामक सूफी सत भक्त ने अपने उपयोग के लिए लिखा था। डा० माताप्रसाद गुप्त के पाठों से यह विलक्षण मेल खाती है। इस प्रति मे रचनाकाल ६४७ हिजरी दिया हुआ है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि लिपिक और लिपि के भ्रम के कारण ६४७ मूल पाठ को ६२७ पढा गया और एक बड विवाद का जन्म हुआ। गार्सा द तासी प्रियर्सन तथा प्रो० हसन अस्करी की मान्यताए रामपुर स्टेट पुस्तकालय की अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रति डा० माताप्रसाद गुप्त की ११ प्रतियां एव उनके सपादन आदि के साक्ष्य एव उपयुक्त विवेचन के आधार पर निष्पत यह स्पष्ट है कि पदमावत का प्रारम्भ ६४७ हि० म ही हुआ था और यह ग्रथ ६४९ हि० के पूव समाप्त हो चुका था।

पदमावत की लिपि एक सर्वेक्षण

हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों के समक्ष पदमावत की आदि प्रति के मूल अक्षरों के विषय म एक बड़ा वितडावाद-सा खडा कर दिया गया है। कुछ विद्वान उसे निश्चित रूप से फारसी अक्षरो म कुछ विद्वान नागराक्षरो म और कुछ विद्वान कथी अक्षरों म लिखा हुआ कहते हैं।

सबसे पहले गर्सा दतासी न [१८३९ ई० म] लिखा कि जायसी ने ६४७ हि० (१५४०—४१ ई०) म पदमावती काव्य की रचना की। यह रचना जो हिन्दी म लिखी गई है या तो फारसी अक्षरो म या देवनागरी अक्षरों में लिखी गई

१—जा० ग्र० प रामचन्द्र शुक्ल वक्तव्य प० १।
२—जा० ग्र डा० माताप्रसाद गुप्त भूमिका, पृ० २।
३—वही पृ० १३५।

है और जिसमे ६५०० के लगभग छद है। 'फारसी या देवनागरी अक्षरो म लिखे जाने का कारण यह है कि उन्होने जिन प्रतियो का उल्लेख किया है उनमे स कई फारसी अक्षरो म है और कई नागराक्षरो मे। स्पष्ट है कि उन्होने आदि प्रति के अक्षरो की समस्या पर गहराई से विचार नही किया।

डा०ग्रियसन ने लिखा है कि मूलत पद्मावत फारसी अक्षरो म ही लिखा गया था और इसका कारण उनका (जायसी का) धर्म था।' ग्रियसन के मत से पदमावत के फारसी लिपि म लिखे जाने की बात स्वत सिद्ध थी।

प० रामचन्द्र शुक्ल का (सन १९२४ ई०) मत है कि आदि प्रति की लिपि फारसी थी। "पाठ का एक बडा कारण यह भी था कि जायसी के ग्रन्थ फारसी लिपि म लिखे गए थे। हिन्दी लिपि म उन्हे पीछे स लोगो ने उतारा है।"[3]

बाबू श्यामसुन्दरदास का कथन है कि 'पद्मावत की प्रतिया अधिकतर उर्दू लिपि म मिलती हैं। सभव है, और अधिक सभव है कि जायसी ने स्वय उसे उर्दू लिपि म लिखा हो। उर्दू म सताइस और सतालीस लिखने पर उनम अधिक अन्तर नही होता। थोडे से भ्रम में सतालीस का सत्ताईस पढा जा सकता है। उर्दू लिपि की यह कठिनाई जगतप्रसिद्ध है।[4] इसी भूमिका म उन्होने यह भी लिखा है कि पदमावत का एक बगाली अनुवाद है[5] जो लगभग सन १६५० ई म अनुवाद हुआ था और जिसम ९२७ पाठ हैं। उन्होने ९२७ पाठ का फारसी या उर्दू अक्षरो के कारण विभ्रष्ट पाठ समझ कर ९४७ को अधिक पसद किया।

प० चन्द्रबली पाडेय ने (१९३१ ई० म) एक लेख लिखकर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि जायसी ने पदमावत की रचना नागरी अक्षरो म की थी।[6] पाडेय जी का कथन है कि ग्रियसन शुक्ल जी, डा० श्यामसुन्दरदास आदि लेखक इस बात पर सावधानी और वैज्ञानिक प्रकार म विचार किए बिना निश्चित निर्णय कर

१—गार्सा द तासी हिंदुई साहित्य का इतिहास, पृ० ८६।

२—इट इज आल सो ड्यू टू हिज रिलिजन दट ही ओरिजिनली नोट इट इन दि परशियन करेक्टर—सर जार्ज ग्रियसन सटीक पदुमावती पृ० ५।

३—प० रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रथावली (वक्तव्य) पृ० ६ (प्रथम सस्करण १९२४ द्वितीय सस्करण के प्र० स० वाले वक्तव्य का परिवर्तित कर दिया गया है)। जा० ग्र० (द्वि० स०) वक्तव्य पृ० ८।

४—डा० श्यामसुन्दरदास, सक्षिप्त पदमावत, भूमिका पृ० १२।

५—वही, पृ० १३।

६—चन्द्रबली पाडेय का लेख ना० प्र० पत्रिका, काशी, भाग १२ स० १९८८ पृ० १०१–१४५।

गय है।

पाण्डय जी का मत सक्षप न इस प्रकार है—

जायसी के समय म उदू का तो नाम भी नही था।[1] हिन्दी भाषा को लिखने के लिए फारसी अक्षरा म आवश्यक विचार भी नही हुए थे।[2]

अर्थात पाण्डेय जी के मन स जायसी ने उदू अक्षरा का प्रयोग नहा किया क्योकि उस काल म ऐसे अक्षर वत्तमान नही थ।

भल ही पाण्डय जी के लख क समय (१६३१ ई०) यह बात अज्ञात रही हो किन्तु आज तो यह स्पष्ट है कि जायसी के समय स बहुत पहले की उदू रचनायें हमारे समक्ष उपस्थित ह। ना० प्र० सभा की खाज रिपाट म पदमावत की एक हस्तलिखित प्रति दज की गई है। इसका प्रस्तुत हस्तलख स० १६ ५ वि० का लिखा हुआ है। इसम पद्मावत के विषय म लिखा है—

सवत पदरह स अशी सात अधिक सम होइ।
रच्या जगत हित याग विधि पढ नान पथ हाइ॥

खाज विवरण (२६–२८६ बी) म भी र० का यही है—

सवत पदरह स असी सात अधिक सव होइ।
रच्यो जगत हित याग यह पढ़ नान पथ हाइ॥

इस हस्तलेख की एक विशेषता यह है कि इसम लिखा है कि वितस्तातीर स्थित गढ नामक पुरी के नवाब मुहम्मद न प्रस्तुत ग्रन्थ को फारसी लिपि स नागरी लिपि म करन की आज्ञा दी। राजा बहादुर कायस्थ फारसी लिपि को पढ़त रहे और प० रामदीन मिश्र उस नागरी लिपि म लिखते रह—

इति श्री जायस नगर वासी मलिक माहमद कृत पदमावति भाषा पाथी सम्पूणम अथ लिखना प्रयोजन लिख्यत—

दिल्ली नगर नरेश अपारा। तिहकर वश भयो उजियारा।
सरित वितस्ता तीर गढ नाऊ। पुरी विदित सबकर बल ठाऊ॥
तहाँ नरेश महम्मद नामा। सूरवीर बन सब दित धामा।
ईछा तिन घनपतिहि समाना। मुष अग्नि समजान वषाना॥
बुद्धि गुनी पन्डित सब आव। सिद्धि वीर भूपति सिर नाव॥
भइ अज्ञा नरपतिहि विशेषी। फारसी त नागरि पुनि लषी॥
मह द्वौ कातिक माम साहाई। कायथ राजबहादुर गाई॥
सवत चौनईस स पनीसा। रामदीन द्विज मिश्र लिषीसा॥

१–चन्द्रवली पाण्डय का लख प० १०४। २–वही प० १२०।

श्रवण दास कछु मति हि हता, जो सुनि सो लिपि दीन ।
समुझि बूझि पण्डित गुनी बिगर बतावन दीन ॥

फारसी लिपि से नागरी लिपि करने में जो कठिनाई होती है वह प्रस्तुत लेख से स्पष्ट है। सम्भवतः पद्मावत के रचनाकाल को १८८७ वि० लिखने में इसके अतिरिक्त उनका 'श्रवण दोष' भी कारण था। उन्होंने इस ग्रंथ का नाम 'पदमावती' लिखा है। उनके समक्ष पद्मावत फारसी लिपि में था। यदि उर्दू लिपि तब तक आविष्कृत नहीं हुई थी तो भी फारसी की विशुद्ध लिपि में पद्मावत को लिखने में कौन सी बाधा या कठिनाई थी? पांडेय जी ने (शाहजहाँ के समय में एक ऐसी लिपि प्रचलित हुई जिसका नाम उर्दू पड़ गया) उर्दू की उत्पत्ति का जो यह अनुमान किया है असंगत है क्योंकि शाहजहाँ के दो-तीन सौ वर्ष पहले के उर्दू लिपि में लिखे ग्रंथ आज उपलब्ध हैं।

पांडेय जी का यह भी मत है कि जायसी का उद्देश्य हिन्दू जनता में सूफी मत का प्रचार था, इसलिए उन्होंने स्वभावतः नागरी लिपि में लिखा होगा। यदि यह मान लें कि जायसी (खालिकबारी की भाँति प्रतियाँ ऊँटों पर लदवा कर देश में बाँटी गई थीं) पद्मावत को प्रकाशित करके प्रचारित करते थे तब तो यह बात ठीक हो सकती है, किन्तु जो प्रति जायसी ने अपने हाथ से लिखी वह उन्हीं के पास रही होगी और जिस लिपि से जायसी अधिक परिचित थे उसी में वह लिखी गई होगी। उस आदि प्रति की शुद्ध अनुकृतियाँ की गई होंगी वे भले ही नागरी या कथी में लिखी गई हों यह और बात है।[1]

पांडेय जी का एक प्रबल तर्क यह है कि अखरावट की रचना कथी वर्ण माला के आधार पर हुई है। अतः जायसी को इस कथी लिपि में लिखना पड़ा। और चूँकि उन्होंने अखरावट को कथी में लिखा, अतः पद्मावत को भी इसी लिपि में लिखा होगा। अखरावट कथी लिपि में लिखी गई हो यह सम्भव है, किन्तु इस बात से पदमावत के भी कथी में लिखे जाने का कोई निश्चित प्रमाण नहीं निकलता। यहाँ पर यह तथ्य भी द्रष्टव्य है कि कबीर द्वारा 'ज्ञान चौंतीसा' की ही शैली में जायसी ने अखरावट की रचना की है। अपने मत सिद्धान्त या प्रतिपाद्य के स्पष्टीकरण के लिए हमारे देश में प्राचीन काल से ही इस प्रकार की रचनाएँ की जाती रही हैं। जायसी ने भी इस पद्धति विशेष को ग्रहीत किया है और इसी कारण यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि जायसी ने नागरी या कथी लिपि में ही पद्मावत की रचना की थी।

श्री ए० जी शिरेफ का कथन है कि लिपि के सम्बन्ध में चन्द्रबली पाण्डेय

१—ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५७ सं० २००९ पृ० ३२८।
२—ए० जी शिरेफ पदुमावति भूमिका पृ० ५६।

के मत उन्हें ठीक नहीं जचते। पद्मावत से पूर्व अक्षरावट के निर्माण की बात वे नहीं मानते। शिरेफ ने अपने मत के समर्थन में पदमावत के तीन स्थलों की चर्चा की है। उनके मत से ये स्थल फारसी लिपि के मत का पर्याप्त अंशों में समर्थन करते हैं। प्रथम स्थल में अवश्य पाठ के संदेह का एक प्रमाण है जो अवश्य ही फारसी लिपि के कारण हुआ। डा० माताप्रसाद गुप्त[1] ने ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं किन्तु उनके पास कोई प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर वे कह सकें कि ये भूलें आदि प्रति के अनुकरण करने में हुई। ये भूलें प्रतिलिपि की किसी भी परम्परा में हुई हो सकती हैं। अतः आदि प्रति के विषय में वह प्रमाण महत्वहीन है।

द्वितीय स्थल में पद्मावत के रचनाकाल के पाठ की समस्या है। डा० माताप्रसाद गुप्त की जायसी ग्रंथावली में स्पष्ट है कि ९२७ का पाठ दो परस्पर असम्बद्ध हस्तलिखित प्रतियों में मिलता है। और उसी बंगाली अनुवाद में (सन १६५० ई० के लगभग)। इन परिस्थितियों से हम अनुमान कर सकते हैं कि यह भूल यदि आदि प्रति से अनुकरण करने में नहीं हुई तो भी उसके बहुत उपरान्त नहीं हुई। किन्तु इस बात से भी किसी निश्चित निर्णय पर पहुंचा नहीं जा सकता।[2]

तृतीय स्थल पर खण्ड चालीस (स्त्री भेद वर्णन-खण्ड) के द्वितीय दोहे में (४०।२।१) कवि ने सखिनी जाति की स्त्री की विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। शुक्लजी के संस्करण में सखिनी शब्द है। उन्होंने टिप्पणी में लिख दिया है कि 'कवि ने शायद शंखिनी के स्थान पर सिंघिनी समझा है।'[3] ए० जी शिरेफ का कथन है कि जायसी ने फारसी में लिखित पुराने ग्रंथों का अनुकरण करते हुए इस शब्द को भ्रम से पढ़कर सिंघिनी समझा और इसलिए सिंहिनी के गुण इस छन्द में भर दिए। डा० माताप्रसाद गुप्त ने बिना कोई भिन्न पाठ दिए सिंघिनी शब्द लिया है। फारसी और उर्दू की प्राचीन प्रतियों को देखने वाले लोगों को ज्ञात है कि इन लिपियों में प्रायः लिखने में क और ग में भेद नहीं रखा गया है। प्राचीन हस्तलेखों की फारसी में सिंघिनी और सखिनी दोनों शब्द एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं। यह सत्य है कि इस प्रसंग में जायसी ने उर अति सुभर खीन अति लंका आदि पंक्तियों में ऐसी स्त्री का वर्णन किया है जो सिंह के गुणों से समन्वित है। कामशास्त्र में ऐसे गुणों का वर्णन नहीं मिलता। यहाँ अभिप्राय इतना ही है कि शुक्लजी का पाठ सखिनी ही प्रामाणिक पाठ है। किन्तु इस शब्द से या इस स्थल के छन्दों से जो भी अनुमान निकलते हैं उनका पद्मावत की आदि प्रति से कोई सम्बन्ध नहीं

१—डा० माताप्रसाद गुप्त ना० प्र० भूमिका पृ० २५ २६।
२—ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५७ सं० २० ६ पृ० १५७।
३—जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी) दोहा २ पृ० २०७।

है। शिरेफ ने एक और तर्क दिया है – मेरी समझ में आठवें अध्याय के आठवें छन्द मे निश्चित प्रमाण है। इस छन्द का आशय रस और रिस के भ्रम पर निर्भर है। केवल फारसी लिपि में, जहां इन दो शब्दों का रूप एक ही है ऐसा भ्रम हो सकता है। किन्तु उस छन्द का स्पष्ट गुण शब्दो मे अनुप्रास का प्रयोग है। फारसी अक्षरो के विषय मे कोई भी प्रमाण यहां नही है।

आदि प्रति की लिपि पर विचार करते हुए डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि पदमावत की प्राप्त प्रतियो मे से तीन (प्र०२ द्वि० ७ त० ३) नागरी लिपि मे हैं शेष फारसी या अरबी लिपि मे हैं किन्तु इन तीन नागरी लिपि की प्रतियो के भी आदर्श फारसी या अरबी लिपि मे थे।[1]

इस प्रसग मे गुप्तजी का प्रथम उद्देश्य यह प्रमाणित करना है कि नागरी और कथी की प्रतियां फारसी प्रतियो की प्रतिलिपियां हैं। इस बात के स्पष्टीकरण के लिए गुप्तजी ने १३६ शब्दो के 'सामान्य पाठ और प्रति का पाठ' प्रदर्शित किया है। जिनमे नागरी प्रति का पाठ स्थापित पाठ से भिन्न है और जिनमे भेद या मूल इस कारण हो सकी है कि प्रति लेखक फारसी लिपि का अनुकरण कर रहा था। ऐसी भूलें प्रधानतया ह्रस्व स्वरो की गडबडी की हैं (जो फारसी लिपि मे अलिखित हैं) क ग की गडबडी और इन अक्षरो की गडबडी जिनकी पहचान फारसी लिपि में बिन्दुओ पर निर्भर है। डा० गुप्त द्वारा दिए गए उदाहरणों से यह बात स्पष्ट है कि प्राप्त नागरी प्रतियो की भी आदर्श प्रति फारसी या अरबी में थी। डा० गुप्त ने इस बात को स्वीकार करने के बावजूद लिखा है – इससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात यह है कि पदमावत की जितनी भी प्रतियां प्राप्त हुई हैं चाहे नागरी की हो *चाहे अरबी की–सबका मूल आदर्श कवि की प्रति नागरी लिपि मे थी।*'[2] इस बात को प्रमाणित करने के लिए उन्होने ६६ उदाहरण दिए हैं। उनके कथन का अर्थ है कि ये पाठ की ऐसी भ्रष्टता के निरूपण हैं जो नागरी प्रति के ही अनुकरण करने मे सम्भव हैं। मात्र इसी तर्क के आधार पर यह मानना कि आदि प्रति नागरी मे थी सुसगत नही जान पडता। डा० गुप्त ने एक ओर यह स्वीकार किया है कि प्राप्त नागरी प्रतियो की भी आदर्श प्रति फारसी थी और दूसरी ओर बिना व्याख्या दिए यह लिखा है कि *नागरी की हो चाहे फारसी की सबका मूल आदर्श कवि की प्रति* नागरी लिपि में थी। इन ६६ उदाहरणों में से ५६ ऐसे हैं जहां ब और व और ओ (या औ) की गडबडी होती है। ब और व की गडबडी नागरी में अवश्य होती है और कथी मे उनका रूप एक ही है। किन्तु अधिक उदाहरण व और ओ (या औ) की

१—जा० ग्र० (हि० ए०) पृ० १६।

२—डा० माताप्रसाद गुप्त जा० ग्र० भूमिका, पृष्ठ २४।

गडबडी के हैं, अर्थात्, जब और जो (या जौ) इत्यादि। यहा दो बातें स्पष्ट हैं। दोनो रूप वे श-द एक ही अथ के है और नागरी लिपि म उनके रूप समान नही। डा० गुप्त की किसी व्याख्या के अभाव म हम केवल अनुमान कर सकते हैं कि उनका विचार यह है कि प्रतिलिपि करते समय एक मनुष्य मूल प्रति पढ देता था और दूसरा मनुष्य प्रतिलिपि लिखता था। यह यदि अनिवाय नही, तो साधारण रीति है। ऐसा होते हुए जब पाठक व्यक्ति नागरी की प्रति पढ देता तो जब और 'जव की गडबडी नागरी लिपि म सम्भव था और पाठक के उच्चारण मे 'जब और 'जौ की गडबडी हो सकती थी।'

इस विचार के विरुद्ध कहा जा सकता है कि व और व की गडबडी भारत की अधिकतर भाषाओ की लिखावट तथा उच्चारण म होती है और जितना पूरब की ओर हम आगे चलते हैं उतनी ही गडबडी बढती है यहाँ तक कि बगाल म ब और व म कोई भेद नहा होता, वे एक ही अक्षर होते हैं। पदमावत की भाषा पूरबी हिन्दी है इसलिए स्वाभाविकत व और व की गडबडी हो सकती है चाहे पाठक ने नागरी प्रति से पढ दिया हो चाहे फारसी से। इसके अतिरिक्त जब और जौ लगभग समान अथ के हैं और जहा समानार्थक नही वहाँ अथ का भेद महत्वपूर्ण नही है (जसे सब और सो) हा जहाँ अथ समान है बहुत सम्भव है कि वहाँ प्रति लेखक ने उस रूप को ग्रहण किया होगा जिस रूप स वह अधिक परिचित था।

अन्य सात उदाहरणो म स चार कुरुम (कूम) और कुरुभ की गडबडी के हैं। यह बात अधिक विश्वास योग्य है क्योंकि नागरी म म और भ में कुछ अधिक भेद नही है तथा कभी म भेद इससे भी कम है। यह पाठ (अर्थात कुरुभ) सब प्रतियो म है – नागरी प्रतियो म भी। सम्भव है कि अनुनासिकता के आधिक्य के कारण पिछले व्यन्जन की गडबडी उच्चारण म हुई। या सम्भव है कि कुरुम ही जायसी की बोली का ठीक श-द हो क्योकि कुरुभ पाठ इस ग्रन्थ म कही नहीं मिलता। किन्तु अकला यही आदि प्रति की नागरी लिपि वाली बात को सिद्ध नही कर सकता।

अन्य तीन उदाहरणो म स एक (रुई के स्थान पर रूप) केवल एक नागरी प्रति में मिलता है इसलिए यह नहा कहा जा सकता कि यह भूल आदि प्रति से प्रतिलिपि करने म हुई। यह भूल उसके अनतर की भी हो सकती है।

दूसरा उदाहरण (छार के स्थान पर ठार या थार) प्रश्नवाचक चिह्न लिए हुए हैं।' इसका स्पष्ट अथ है कि डा० गुप्त ने स्वय इस पाठ को सन्दिग्ध माना है। प्रश्न-चिह्न समर्थित श-द को नागरी लिपि का पक्ष मजबूत करने के लिए प्रस्तुत

१–ना० प्र० पत्रिका वष ५७ सम्वत २००९ पृ० ३३६।

२–डा० माताप्रसाद गुप्त जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३६० (दोहा ३४२।५७)।

करना स्वत अत्यन्त अशक्त तक है।

(रातिहु देवस इहै मन मोरें। लागा कन्त छार ? जेउ तोरें।[1])

'तीसरा उदाहरण गुप्त जी की ही भूल जान पड़ता है क्योंकि वह क और ग की गड़बड़ी की बात है जो फारसी लिपि का गुण है नागरी का नहीं'।[1]

गुप्त जी ने उदाहरणों की विविधता प्रामाणिकता एवं सख्याधिक्य से यह प्रदर्शित किया है कि तीनो नागरी प्रतियाँ फारसी प्रतियों की किसी न किसी समय की हुई प्रतिलिपियाँ हैं किन्तु सभी प्रतियाँ नागरी मूल से उत्पन्न हैं। उनका यह प्रयत्न सफल नही हुआ, क्योंकि उनके उदाहरण विश्वासजनक नही हैं और गुप्त जी व्याख्या से उसका समर्थन नही करते।

आचार्य प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का कथन है कि जायसी ने अपनी पदमावत किस लिपि में लिखी इसका विचार स्व० चन्द्रबली पाण्डेय ने किया है। उनकी धारणा यही है कि फारसी लिपि में वह जायसी द्वारा न लिखी गई होगी हो सकता है कि यह नागरी लिपि में न लिखी गई हो प्रत्युत कथी लिपि में लिखी गई हो, जो लिखने-पढ़ने के लिए पूर्वी अचल में बहु प्रचलित थी चूंकि उनकी रचना मुसलमान बधुओं के मध्य फली इसलिए उसकी अनुलिपियाँ फारसी लिपि में अधिक मिलती हैं।

आचार्य मिश्र जी ने सम्भावनाओं की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि 'हो सकता है कि यह नागरी लिपि में न लिखी गई हो यह तथ्य उचित और सगत है, क्योंकि (डा० माताप्रसाद गुप्त को प्राप्त) तीनों नागरी प्रतियाँ भी मूलत फारसी प्रति की अनुकृतियाँ हैं।'[2]

आचार्य मिश्रजी के मतानुसार दूसरी सम्भावना है कि वह 'कथी लिपि में लिखी गई हो जो पढ़ने-लिखने में पूर्वी अचल में बहुप्रचलित थी। यह सम्भावना दृढ़ आधार पर स्थित है क्योकि पदमावत की कई कथी प्रतियाँ भी मिली हैं।[3]

उपर्युक्त समस्त मतो के विवेचना के पश्चात भी लिपि का प्रश्न वसे ही है, जसे वह ग्रियसन के समक्ष था। ग्रियसन का अनुमान है कि जायसी ने इसे फारसी लिपि में लिखा था। ए० जी० शिरेफ ने भी लिखा है कि जायसी ने अपनी परिचित भाषा में जन-साधारण के लिए कविता लिखते हुए स्वभावत उन अक्षरो का प्रयोग किया होगा जो उनकी शिक्षा के मूल थे। जायस मुसलमानी

१-ना० प्र० पत्रिका काशी, वर्ष ५७ स २००६, पृ० ३४०।

२-वही, पृ० ३४१।

३-डा० माताप्रसाद गुप्त जा० ग्र० भूमिका पृ० १६।

४-पदुमावति ए० जी० शिरेफ भूमिका पृ० ५-६।

शिक्षा का केंद्र था। 'प्रतियों और पुस्तकों की भी परम्परा आधुनिक काल से पहले फारसी लिपि में होती जा रही थी जिससे अनुमान निकलता है कि आदि प्रति उसी लिपि में थी। डा० गुप्त ने प्रमाणित किया है कि सब हस्तलिखित नागरी प्रतियां फारसी प्रतियों की प्रतिलिपियां हैं (यद्यपि वे मूलप्रति को नागरी की मानते हैं) यह भी एक प्रमाण है। पाठ की जो विभ्रष्टता दो सौ वर्ष से कम की अवधि में हो गई वह भी फारसी लिपि का पक्ष पुष्ट करती है। सूर्यकान्त शास्त्री का भी मत है कि पदमावत की भाषा ठेठ अवधी है और यह ग्रंथ फारसी लिपि में लिखा गया था।'[1]

जायसी का फारसी भाषा पर असाधारण अधिकार था यह सिद्ध हो चुका है। उनकी भाषा अवधी अवश्य है पर उनकी लिपि फारसी ही थी। फारसी में ही उन्होंने अपने ग्रंथ लिखे थे। फारसी से कैथी या नागराक्षरों में उसकी प्रतिलिपियां-अनुलिपियां हुई हैं इन प्रतियों की विशाल परम्परा का मूल फारसी था और यह सम्भवतः वही कारण था कि उनकी कृति जनता से दूर ही रही। वे हिन्दी की विशाल परम्परा में उपेक्षित ही रहे। अलाओल आदि के अनुवाद में जो सन की भ्रष्टता है वह भी फारसी लिपि के कारण है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि पदमावत की आदि प्रति फारसी में लिखी गई थी।

कथानक का मूल स्रोत

जायसी के पूर्व कई प्रमाख्यानक काव्य प्रणीत हो चुके थे। चन्दायन (१३७९ ई०) और मृगावती (१५०३ ई०) के ही अनुरूप पद्मावत की भी रचना हुई है।

हिन्दी साहित्य में प्रेमकथाओं की एक सुदृढ़ परम्परा है। अभी कुछ समय पूर्व तक कितनी ही प्रेमकथाओं के नाम मात्र ज्ञात थे कुछ के नाम तक अज्ञात थे। इधर अनेक प्रेमगाथाओं का उद्घाटन हुआ है। अतः आज के शोध के छात्र के लिए पहले से बहुत अधिक प्रेमकथाओं के अध्ययन का सुयोग प्राप्त है।[2]

प्रेमगाथा-परम्परा का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि प्रेम गाथाओं का आधार और मूल स्रोत कोई न कोई प्रेम कथा होती है — कवि उस कथा में अपने कल्पना-विलास का सौन्दर्य भर देता है। इस प्रेम कथा को कवि प्रायः — दोहा-चौपाई छन्द में प्रबन्ध — काव्य की किसी परम्परा के अनुसार प्रस्तुत करता है इस कथा में लोकतत्व की प्रधानता होती है। ऐतिहासिक तथ्यों को भी लोकवार्ता के

१—प० सूर्यकांत शास्त्री पदुमावति प्रीफस पृ० ५ (१९३४) लाहौर।
२—डा० सत्येन्द्र मध्ययुगीन साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन पृ० २७३।

माध्यम से गृहीत किया जाता है।

तुलसीदास, सूरदास आदि महाकवियो ने पौराणिक आख्यानो के माध्यम से अपनी सृजनाए की है किन्तु प्रमाख्यानक परम्परा के कवियो ने अपने काव्यो मे कथाओ का वही रूप ग्रहण किया है जो लोक-जीवन की लोक-गीतो की तथा लोक कथाओ की मौखिक (और कभी कभी साहित्यिक) परम्परा मे ढल चुका था। 'कबीरदास के निर्गुण भजन सूरदास के लीला गान और तुलसीदास का रामचरित मानस अपनी अन्तर्निहित शक्ति के कारण अत्यधिक प्रचलित हो गए और हिन्दू जनता का ध्यान अपनी ओर खीचने म समर्थ हुए। परन्तु जनसाधारण का एक विभाग जिसमे धर्म का स्थान नही था जो अपभ्रश साहित्य के पश्चिमी आकर से सीधे चला आ रहा था जो गावो की बटको म कथानकरूप से और गान-रूप से चल रहा था उपेक्षित होने लगा था। इन सूफी साधको ने पौराणिक आख्यानो के बदले इन लोक प्रचलित कथानको का आश्रय लेकर ही अपनी बात जनता तक पहुचाई।[1] आचार्य प० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि सूफी प्रेम काव्य गुणाढ्य की वहत्कथा से चली आती हुई प्रेम-कथाओ की परम्परा म आते हैं। सूफी प्रमकथाओ का स्रोत लौकिक है ये सभी कथाए लोक जीवन की परम्परा से गृहीत हैं। परिमाणत हम देखते हैं कि सभी सूफी प्रमकाव्यो म अदभुत साम्य है। चन्दायन मृगावती पद्मावत मधुमालती चित्रावली कनकावली प्रभृति प्राय सभी काव्यो की कथाओ का मूल स्रोत एक ही है – लोकजीवन की कोई प्रमकथा।

हमारा अनुमान है कि सूफी कवियो ने जो कहानिया ली है, वे सब हिंदुओं के घर में बहुत दिनो से चली आती हुई कहानिया हैं जिनम आवश्यकतानुसार उन्होंने बहुत कुछ हेर फर किया है। कहानियो का मार्मिक आधार हिंदू हैं। मनुष्य के साथ पशु-पक्षी और पेड पौधो को भी सहानुभूति सूत्र म बद्ध दिखाकर एक अखण्ड जीवन-समष्टि का आभास देना हिंदू प्रम कहानिया का वशिष्ट्य है। मनुष्य के घोर दु ख पर वन के वृक्ष भी रोते हैं पशु पक्षी भी सदेश पहुचाते है। यह बात इन कहानियो म भी मिलती है।[3]

हिन्दी प्रमाख्यानक परम्परा के कविया म हिन्दू जीवन और धर्म के प्रति उच्च कोटि की धार्मिक सहिष्णुता और सहानुभूति है। इसी के माध्यम से उन्होंने अपनी प्रम पीर की अभिव्यक्ति का सहज सरल और मनोरजक निरूपण किया है।

१–डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य की भूमिका प० ६४–६५ (१९५९)।
२–डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य का आदिकाल प० ७१।
३–प० रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, प० ७२।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोक प्रचलित कथानक ही प्रेमाख्यानको के मूल स्रोत हैं। डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि प्रेमकाव्य की कथायें अधिकतर काल्पनिक ही है पर जायसी ने कल्पना के साथ साथ इतिहास की सहायता से अपने पदमावत की कथा का निर्माण किया है। रत्नसेन की सिंहल-यात्रा काल्पनिक है और अलाउद्दीन का पद्मावती के आकर्षण मे चित्तौर पर चढाई करना ऐतिहासिक।"[1] वर्मा जी का प्रस्तुत कथन तर्क सगत है परन्तु इतिहास के आलोक म ध्यान देने पर स्पष्ट हो जाता है कि पदमावत म चित्तौर दिल्ली अलाउद्दीन के नाममात्र ऐतिहासिक है। शेष समस्त बातें कवि-कल्पना प्रसूत हैं। वस्तुत जायसी ने अपनी कहानी को मनोमय और लोकव्यापक बनाने के लिए इतिहास की छौंक दे दी है। यह छौंक नाममात्र की छौंक है इसके मूल मे ऐतिहासिकता ढूढना व्यर्थ है। इनम कतिपय नामो की इतिहास सम्मतता के अतिरिक्त सर्वत्र निजधरी कथाओ के सदृश कल्पना-तथ्य का (फक्टस ऐण्ड फिक्शन का) योग रहता है।[2]

प्रेमगाथाओ की कथा वस्तु के मूल तत्त्व और पदमावत —

प्रेमगाथाओ की मूल कथावस्तु सक्षेप म यह है—

१—नायक किसी दूत या अन्य माध्यम से नायिका की प्रशसा सुनता है या दर्शन करता है और एक दूसरे पर या दोनो एक दूसरे पर मुग्ध हो जाते हैं।
२—नायक नायिका को प्राप्त करने के लिए गृहत्याग कर चल पडता है।
३—मार्ग के प्रत्यूह-मार्ग म अनेक विघ्न आते है किन्तु वह उन्हें पार कर जाता है।
४—उसकी रक्षा भी होती है।
५—दैवी या अमानवीय शक्ति उसकी सहायता करती है अन्त म वह नायिका को प्राप्त कर लेता है और घर लौटता है।
६—लौटते समय भी विघ्न आते है किन्तु वह पार हो जाता है।
७—अन्त म मिलन होता है।
८—(दु खान्त)।

किसी न किसी रूप म ये तत्त्व प्राय सभी प्रेमगाथाओ म मिलते हैं। एक आठवां तत्त्व दु खान्त का भी हो सकता है जिसम किसी कारण से नायक-नायिका

१—डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ५१८।
२—द्रष्टव्य-(आगे) पदमावत की ऐतिहासिकता एक पुन सर्वेक्षण, पृ० १८३ और 'पदमावत का काव्य-सौन्दर्य अध्याय १ (इसम पदमावत की कथावस्तु और मूलस्रोत का सागोपाग विवेचन किया गया है।)

में व्यवधान हो जाता है और एक या दोनों की मृत्यु हो जाती है।[1]

इन तन्तुओं के समान ही कुछ और महत्वपूर्ण तन्तु हैं जिनका उपयोग प्राय सभी प्रेमगाथाओं में हुआ है—

(१) नख शिख वर्णन।
(२) विरहवर्णन बारहमासा।
(३) युद्ध वर्णन और
(४) सती होना।

इस सूची को और बढ़ाया जा सकता है किन्तु मूलरूप से मुख्य तन्तु इतने ही हैं। जायसी ने भी इन्हीं मूल तन्तुओं के माध्यम से पदमावत की कथा-वस्तु का संघटन किया है।

जायसी द्वारा गृहीत 'पदमावती' की कथा

ऊपर कहा जा चुका है कि भारतवर्ष के सूफी कवियों ने लोकजीवन तथा साहित्य में प्रचलित निजधरी कथाओं के माध्यम से अपने आध्यात्मिक सन्देशों को जनता तक पहुँचाने के प्रयत्न किये हैं। कुतबन ने मृगावती में लिखा है कि यह कथा पहले से चली आ रही थी। इसमें योग शृंगार और विरह रस वर्तमान थे मैंने दुबारा फिर उसी कथा को निबद्ध किया है। कुतबन का यह दावा अवश्य है कि पहले से ही प्रचलित कथा के अर्थ को उन्होंने नये सिरे से स्पष्ट किया है।

'पुनि हम खोलि अरथ सब कहा।'[2]

ठीक इसी प्रकार का एक अन्तःसाक्ष्य पद्मावत में भी प्राप्त होता है। जो स्पष्ट इंगित करता है कि पदमावती की कहानी जायसी की निजी कल्पना की उपज नहीं है—

सन नौ से सैंतालिस अहा। कथा अरम्भ बैन कवि कहा॥
सिंहलदीप पदमिनी रानी। रतनसेन चितउर गढ आनी॥
अलउदीन देहली सुलतानू। राघव चेतन कीन्ह बखानू॥
सुना साहि गढ छेंकन आइ। हिन्दू तुरकन्ह भई लराई॥
आदि अन्त जस गाथा अहै। लिखि भाखा चौपाई कहै॥[3]

इन पंक्तियों में जायसी ने यह स्पष्ट बताया है कि आदि से अन्त तक जसी

१—डा० सत्येन्द्र मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन पृ०२७३ २७४
२—कुतबन मृगावती स्तुति खण्ड (अप्रकाशित) हस्तलिखित प्रति से
३—पृ० [illegible]

गाया है उसे ही वे भाखा–चोपाई म निबद्ध करके प्रस्तुत कर रहे हैं। सिंहल की पदिमनी रानी की कहानी जायसी ने सुनी थी। यह गाथा सिंहल की पदिमनी रानी से लेकर हिंदू तुरक्ह भई लराई। तक पूरी होती है। इसका यह अभिप्राय हुआ कि जायसी ने जो वत्त ग्रहण किया है वह आदि से अन्त तक एक ही गाथा है। यह गाथा लोक–गाथा है इसमे सन्देह नही। यह एक ऐसी लोक–कथा है जिसमे ऐतिहासिक पुरुषो और स्थानो के नाम प्रविष्ट कर दिए गए हैं।

प० चन्द्रवली पाण्डय के अनुसार जायसी का यह दावा है कि पदमावती की कथा रसपूण और अत्यन्त प्राचीन थी। काव्यबद्ध करने का प्रथम श्रेय जायसी को ही है। इस कथन की पुष्टि पाण्डय जायसी की निम्नलिखित पंक्तियो से करते हैं—

कवि वियास कवना रसपूरी। दूरि सो नियर नियर सो दूरी ॥
नियरे दूर फल अस काँटा। दूरि सो नियरे जस गुर चाटा ॥
भवर आइ बन खड सन लेइ कवन क बास।
दादुर बास न पावई भलहि जो आछ पास ॥[1]

कवि इसके द्वारा यह व्यक्त करना चाहता है कि यहा एक से एक बढकर कवि हुए हैं और यह कथा भी रस स भरी पडी है फिर भी किसी कवि से न बन पडा कि इस कथा को काव्य का रूप दे। यह काय तो मुझ जस अहिन्दू रा बन पडा।[2]

इस प्रकार इन साक्ष्यो से निष्कष निकलता है कि पदमावती की कहानी भारतवर्ष की प्राचीन कहानिया म से है। जायसी ने इस कहानी को (सुना भी था) पूववर्ती पदमावती रानी की साहित्यिक कहानी एव लोक प्रचलित पदमावती वाली कहानी की परम्पराओ मे गहीन करके गहन चिन्तना विशाल कल्पना एव महत अनुभूति के मिश्रण स विकास एव अनुपम काव्य सौन्दय प्रदान किया है।

पदमावत की कथा

कवि ने पदमावत के प्रारम्भ म समस्त जगत के करतार की पावन वन्दना की है। पश्चात मुहम्मद और उनके चार यारा का उल्लेख गुरु-स्तवन रचना तिथि का उल्लेख और कथा निर्देश करते हुए सिंघल द्वीप उसकी सघन अमराई उसके राजा गधवसेन राजसभा उद्यान नगर इत्यादि का वणन करके कवि ने मूल कथा का वणन प्रारम्भ किया है।

१–वही पृ० ६ (दोहा २४)।
२–प चन्द्रवली पाण्डय हिन्दी कवि चर्चा प० १३४।

सिंघलद्वीप के राजा गंधर्वसेन की पटरानी चंपावती के गर्भ से एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका रूप अप्रतिम था। उसका नाम पद्मावती रखा गया। वह विलक्षण बुद्धि सम्पन्न और सुगुण शालिनी थी। जब वह बारह वर्ष की सयानी हुई तो उसे एक सतखंडा धवल गृह आवास के लिए दिया गया। बाला पद्मावती यौवनभार से झुक गई। उस पद्मगंधा की वेणी नागिनी के सदृश उसकी पीठ मलय गिरि पर आलुलायित थी। वह भौंह रूप धनुष पर कटाक्ष बाण संधान करके घुमाती थी। चकित भ्रमित हिरनी जैसे उसके नेत्र थे। मुखकान्ति कमल कान्ति थी। उसके अधर माणिक्य की भांति और दांत हीरे की भांति थे। उस पद्मिनी का अनूप रूप देखकर संसार मोहित हो गया। उसके पास उसका पालित एक स्वर्ण वर्ण का शुक था। यह शुक अद्भुत पंडित चतुर और शास्त्रज्ञ था। जब रूप गुण की खान रानी पद्मिनी सयानी हो गई तब भी वैभव के मद में राजा ने उसका विवाह नहीं किया। वह अत्यन्त व्यथित रहने लगी। वह रात दिन हीरामन से इसी बात की चर्चा किया करती थी। एक दिन बातचीत के बीच शुक ने कहा कि यदि कहो तो देश देश में घूम कर तुम्हारे योग्य वर ढूँढ़ूँ। किसी ने राजा से यह बात कह दी। राजा ने शुक को मार डालने की आज्ञा दे दी। किसी प्रकार अनुनय विनय द्वारा पद्मावती ने उसकी रक्षा की। शुक ने विदा की प्रार्थना की परन्तु प्रेम कातर पद्मावती ने उसे जाने नहीं दिया। पूर्णिमा के दिन पद्मावती सखियों-सहित मानसरोवर में जलक्रीड़ा और स्नान के लिए गई। सशंक शुक ने उपयुक्त अवसर देखकर वन की राह ली। वन के पक्षियों ने हीरामन का बड़ा सत्कार किया। एक दिन हीरामन एक बहेलिए की जाल में फंस गया। बहेलिया उसे झाबे में रख कर हाट ले गया। चित्तौड़ के एक व्यापारी के साथ एक ब्राह्मण सिंघल की हाट में व्यापार के लिए गया था। हीरामन को पंडित समझ कर उसने दाम से मोल ले लिया।

चित्तौड़ के राजा चित्रसेन की मृत्यु के अनन्तर उसका पुत्र रत्नसेन सिंहासनासीन हुआ। ज्योतिषियों ने कहा कि वह सिंहल द्वीप में जाएगा और पद्मिनी से विवाह करेगा। जब वह ब्राह्मण शुक को लेकर रत्नसेन के दरबार में गया तो शुक के पांडित्य से प्रभावित होकर रत्नसेन ने उसे एक लाख रुपए देकर हीरामन को मोल ले लिया।

एक दिन जब रत्नसेन शिकार करने गया तो उसकी रूप-गर्विता रानी नागमती ने शृंगार मंडित अपना रूप दर्पण में देखा। उसने हीरामन से पूछा 'क्या मेरे समान सुन्दर स्त्री अन्य कोई संसार में है ?' इस पर उसने हँस कर कहा

तुम्हारा रूप नगण्य है। भावी सौत की चिंता से उद्वेलित रानी ने शुक को मार डालने की आज्ञा दी। धाय ने उसे मारा नहीं, छिपाकर रख दिया। लौटने पर जब राजा ने शुक को नही देखा तो वह अत्यंत क्रोधित हुआ। अंत मे हीरामन लाया गया। राजा के पूछने पर शुक ने सारी बातें बता दी। उसने पदमावती के नख शिख का सविस्तार जीवंत चित्र वर्णित किया। उस सौंदर्य वर्णन को सुनकर राजा बेसुध हो गया। उसके मन मे पदमावती प्राप्ति की इतनी प्रबल अभिलाषा जागी कि जोगी वेश मे घर से निकल पड़ा। हीरामन मार्गदर्शक बना। उसके साथ सोलह सहस्र कुंवर भी योगी होकर चले। माता ने विनती की। नागमती ने सीता की भांति साथ चलने का आग्रह किया, किन्तु सब व्यर्थ। चित्तौड़ से चलकर अनेक नदियों पर्वतों एवं सात सागरों के अनेक प्रत्यूहों का प्रत्याख्यान करते हुए जोगियों का यह दल सिंहलद्वीप पहुंचा। रत्नसेन जोगियों के साथ महादेव के मंदिर में बैठकर तप करने लगा। हीरामन ने पद्मावती से भेंट की। वह उसे देखकर बहुत रोई। हीरामन के प्रयत्न से वसंत पंचमी के दिन पदमावती सखियों के साथ शिव मण्डप मे गई। रत्नसेन उसे देखते ही मूर्छित हो गया उसने जोगी को जगाने के लिए अनेक उपचार किए पर सब व्यर्थ। उसने उसके वक्षस्थल पर चन्दन से यह अंकित कर दिया कि जोगी तूने भिक्षा प्राप्त करने योग्य योग नही सीखा जब फल प्राप्ति का अवसर आया तो तू सो गया। वह अपने प्रासाद में चली गई।

चेतना लौटने पर रत्नसेन करुणा क्रन्दन कर उठा। उसके विलाप और जल मरने के दृढ़ संकल्प से देवताओं में त्राहि त्राहि मच गई कि यदि प्रेम पथ का यह पथिक मरा तो विरहाग्नि से समस्त लोक जल जाएंगे।

महादेव पार्वती ने उसके प्रेम की परीक्षा ली। पार्वती ने लावण्यमयी अप्सरा का रूप धारण किया और कहा कि मुझे इन्द्र ने भेजा है। पदमावती को भूल जा। मुझे अप्सरा मिली। रत्नसेन ने कहा कि अप्सरे मुझे पद्मावती के अतिरिक्त और किसी से कोई प्रयोजन नही। परीक्षा में सफल जानकर महादेव जी ने उसे सिद्ध गुटिका दी और सिंहलगढ़ में घुसने का मार्ग बतलाया। रत्नसेन ने अपने साथियों के साथ सिंहलगढ़ पर चढ़ाई कर दी। साहसिक अभियान में वह अपने जोगी साथियों के साथ पकड़ा गया। गन्धर्वसेन ने उन सबको शूली की आज्ञा दे दी। महादेव पार्वती ने भाट-भाटिन का वेश धारण करके गन्धर्वसेन को बहुत समझाया, पर वह न माना। इसी बीच हीरामन शुक से पदमावती ने संदेश भेजा कि 'मेरा मरना और जीना तुम्हारे ही साथ होगा। पुनः योगियों की वाहिनी और गंधर्वसेन की वाहिनी में घोर घमासान की भीषण विभीषिका उपस्थित हुई। रत्न

सेन के साहाय्य के लिए महान्व हनुमान प्रभृति देवता आ डटे। गन्धवसेन की हस्तिसेना को हनुमानजी ने अपनी पूछ मे लपेट कर आकाश मे फेंक दिया। महादेव के घण्टे का भरव निनाद विष्णु के शंख का भीषण नाद तथा अन्यान्य देवा क वाद्यों की भीषण भैरवी जोगियो की सेना मे बज उठीं। साक्षात प्रलयकर शकर को समरागण म तांडव करते देखकर गन्धवसेन उनके चरणा म गिर पडा। उसने निवेदन किया, भगवान ! कन्या आपकी है जिसे चाहू उसे दे दें।" हीरामन ने रत्नसेन के राज-व्यक्तित्व का परिचय दिया। बडी धूमधाम से रत्नसेन-पदमावती का विवाह सम्पन्न हुआ। रत्नसेन के साथी सोलह सहस्र कुवरों का भी विवाह पदिमनी स्त्रियों के साथ हो गया। षट ऋतुओ को रम्पति ने सुख पूवक व्यतीत किया।

एक ओर रत्नसेन अपनी सद्य परिणीता प्रेयसी के साथ आनन्द मे मग्न था और दूसरी ओर वियोग-क्लान्ता नागमती क विलाप म पशु-पक्षी तक विकल हो गए। आधी रात के समय एक पक्षी ने नागमती के विरह का कारण पूछा। नागमती के कहने पर वह पक्षी उसका प्रेम सदेश लेकर सिंहल द्वीप गया। शिकार खलत खलते रत्नसेन एक पेड के नीचे जा पहुँचा। पक्षी ने उससे चित्तौड़ और नागमती का दीन दशा एव दुखकथा का वणन किया। रत्नसेन ने विदा लेकर पदमावती के साथ चित्तौर की ओर प्रस्थान किया।

सागर की उत्ताल तरंगो के घात प्रत्याघातो को सहता हुआ रत्नसेन का जलयान झूमता हुआ चला जा रहा था। सन्ध्या विभीषण के एक राक्षस क कुचक्र के फलस्वरूप रत्नसेन का जलयान भवर वात्याचक्र के आवत विवत म पड गया और उस आलोडन के कारण सागर के अतल तल म खड खड हो कर सदा के लिए समा गया। एक तख्ते पर एक ओर राजा बहा और दूसरे तख्ते पर दूसरी ओर रानी।

जलयान ध्वस क पश्चात पदमावती बहते बहते उस घाट पर जा लगी जहाँ लक्ष्मी झूला झूल रही थी। लक्ष्मी और समुद्र की सहायता से रत्नसेन पदमावती का पुर्नमिलन हुआ। समुद्र ने उनका बडा सत्कार किया और विदाई के समय पाच अमूल्य पदाथ अमृत हस, राजपक्षी शादु ल और पारस-भेंट किये। रत्नसेन चित्तौर पहुचा। नागमती की बारी पल्लवित हो गई। नागमती से नागसेन और पदमावती से पदमसेन नामक पुत्र हुए।

रत्नसेन के दरबार म राघव चेतन नामक एक यक्षिणी सिद्ध पडित रहता था। उसके वेद विरुद्ध आचरण के कारण राजा ने उसे देश स निकल जाने की आज्ञा दी। पदमावती न राघव को प्रसन्न करने के लिए अपना जडाऊ कगन दिया

राघव चेतन ने अपमान का बदला लेने का निश्चय किया। वह कगन लेकर दिल्ली की ओर चल पड़ा। उसने पदिमनी के सौन्दर्य का वर्णन करके अलाउद्दीन को आक्रमण के लिए उत्प्रेरित किया। अलाउद्दीन ने रत्नसेन को पत्र लिखकर पद्मिनी की माग की। राजा ने दूत से कहला दिया कि यदि उन्हें कुछ लाना हो तो वे आज ही आयें।

अलाउद्दीन ने चित्तौर पर आक्रमण किया। आठ वर्ष तक घोर घमासान युद्ध होता रहा। अन्त में अलाउद्दीन ने संधि का प्रस्ताव भेजा। इसमें समुद्र से प्राप्त पाच रत्न मागे गए और बादशाह ने चन्देरी देने की प्रतिज्ञा की। संधि हो गई। बादशाह को दुर्ग में प्रीतिभोज दिया गया। गोरा बादल के मना करने पर भी रत्नसेन ने उनकी बात न मानी। वह अलाउद्दीन के साथ शतरंज खेलने लगा। सहसा दर्पण में पदिमनी का प्रतिबिम्ब देखकर वह मूर्च्छित हो गया। राघव चेतन ने बुद्धिमत्तापूर्ण ढग से परिस्थिति सम्हाल ली। राजा उसे गढ से बाहर पहुचाने आया। छलपूर्वक अलाउद्दीन ने उसे बन्दी बना लिया। वह दिल्ली की ओर रवाना कर दिया गया। इसी बीच कुंभलनेर के राजा देवपाल की एक दूती ने पदमावती को फुसलाना चाहा। अलाउद्दीन की भेजी एक वेश्या ने भी फुसलाने का प्रयत्न किया पर भेद खुल जाने पर वे पीट पाट कर भगा दी गई।

पदिमनी ने गोरा-बादल से अपनी व्यथा कथा कही। गोरा बादल ने सहायता का वचन दिया। युद्ध की तैयारियां हुई। बादल ने सद्य आगत नवल वधू की युद्ध में न जाने की प्रार्थना अनसुनी कर दी। माता ने भी मार्गावरोध किया पर वह वीर राजपूत न रुका। सोलह सौ पालकियो में सशस्त्र राजपूत बैठे। पदमावती की पालकी में एक लुहार बैठा। यह प्रसिद्ध करा दिया गया कि रानी अलाउद्दीन के पास जा रही है। दिल्ली पहुचकर गोरा बादल ने अलाउद्दीन से प्रार्थना की कि पदिमनी पति से अन्तिम बार मिलकर गढ की कुंजियां सौंप देना चाहती है। अलाउद्दीन ने आज्ञा दे दी। लुहार ने रत्नसेन की लौह शृंखलायें काट दी। बादल रत्नसेन को लेकर चित्तौड़ की ओर भागा। दिल्ली में गोरा और बादशाह के वीरो में घोर युद्ध हुआ। गोरा मारा गया। पदिमनी से देवपाल के छल की बात सुनकर रत्नसेन आग बबूला हो गया। उसने आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में रत्नसेन के पेट में साघातिक चोट लगी। चित्तौड़ का किला बादल को सौंप कर वह स्वर्गवासी हुआ। दोनों रानियां सती हो गई। अलाउद्दीन ने पुनः आक्रमण किया। सभी स्त्रियां जौहर की ज्वाला में जल गई। पुरुष युद्ध करते खेत रहे। चित्तौर पर मुसलमानो का अधिकार हो गया। अलाउद्दीन के हाथ जौहर की राख ही आई--

'छार उठाइ लीन्ह एक मूठा।
दीन्ह उडाइ पिरथिमी झूठी ॥

पदमावत की ऐतिहासिकता

जायसी के पदमावत की कथा समय के साथ साथ अत्यन्त लोकप्रिय हो गई। अलाउद्दीन दिल्ली रत्नसेन चित्तौड प्रभृति नामों से संबद्ध होने के कारण धीरे धीरे यह कथा मुखर होती गई और इसे ही ऐतिहासिक सत्य किंवा इतिहास मान लिया गया। टाड फिरिश्ता, आइने-अकबरी आदि की पद्मावती-विषयक कहानी का मूल आधार 'पदमावत' ही है। इस कथा को ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक सिद्ध करने के अनेक प्रयत्न किए गए हैं। परिणामत अनेक निर्मूल और भ्रान्त धारणायें प्रचलित हो गई हैं। वस्तुत पद्मावत आधुनिक काल के उपन्यासों की सी कविता-बद्ध कथा है जिसमें कतिपय ऐतिहासिक नामों के अतिरिक्त सर्वत्र महाकवि जायसी की कल्पना और भावना का विलास और सौन्दर्य दर्शनीय हैं।

टाड के राजस्थान का मूल आधार पद्मावत है—

कर्नल जेम्स टाड ने अलाउद्दीन के चित्तौर के आक्रमण का निम्नलिखित वृत्तांत दिया है—

'विक्रम संवत १३३१ (१२७५ ई०) में लखमसी चित्तौर के सिंहासन पर बैठा। दो बार अलाउद्दीन ने चित्तौर पर आक्रमण किया था। (लखमसी के) छोटे होने के कारण उसका चाचा भीमसी उसका संरक्षक बना। भीमसी ने सिंहल के (चौहान) राजा हम्मीर शंक की कन्या से विवाह किया था। उसका नाम पदिमनी था। यह नाम उसके अलौकिक सौन्दर्य के कारण रखा गया था। पद्मिनी की प्राप्ति ही अलाउद्दीन के आक्रमण का मूल उद्देश्य था यद्यपि यह आक्रमण दीर्घकालीन और व्यर्थ रहा। अन्त में उसने उसके अन्यतम सौन्दर्य को मात्र देखने तक ही अपनी आकांक्षा को सीमित कर दिया और वह भी दर्पण के माध्यम से। वह थोड़े से रक्षकों के साथ राजपूतों के विश्वास के भरोसे पर दुर्ग में गया। अपनी इच्छा-पूर्ति के पश्चात वह लौटा। राजा उस पर विश्वास करके दुर्ग के बाहर तक उसको पहुँचाने आया। हिन्दुओं की महान आस्था पर विश्वास करते हुए ही अलाउद्दीन ने इसी कारण यह साहसिक कार्य किया था। यहां भीमसी को कैद कर लिया गया उसे अत्यन्त शीघ्र तातार शिविर की ओर ले जाया गया। यह घोषित कर दिया गया कि पदिमनी के समर्पण पर ही उसे मुक्त किया जायगा।

जब यह बात ज्ञात हुई तो चित्तौर के लोग विचलित हो उठे। पदिमनी ने अपनी ही जाति और वंश से अपने मायके सीलोन के अपने चाचा गोरा और भतीजा बादल से मन्त्रणा की। जिन्होंने उसके जीवन या इज्जत पर आंच न आने

देने और राजा की मुक्ति हो जाए—ऐसी मन्त्रणा दी। अलाउद्दीन को सूचित कर दिया गया कि पदिमनी जायगी पर अपनी उच्च मर्यादा के साथ। पदिमनी के साथ अनेक दासियां रहेंगी बहुत सी अन्य सखियाँ भी होंगी जो केवल उसे पहुंचाने और विदा करने दिल्ली जाएगी। शाही शिविर में सात सौ से अधिक डालियां पहुँचीं। प्रत्येक डोली में चित्तौर के संरक्षकों में से एक अत्यन्त शूरवीर योद्धा बैठा। एक-एक पालकी उठाने वाले छः छः कहार वेषधारी सशस्त्र सैनिक भी थे। शाही शिविर कनातों से घिरा था। डोलियां उतार दी गईं। आधे घण्टे का समय हिन्दू राजा और उसकी रानी को अन्तिम भेंट के लिए स्वीकृत किया गया। उन्होंने राजा को तुरन्त एक पालकी में बैठाया और चित्तौर गढ़ की ओर लौट पड़े। शेष डोलियां मानो पदिमनी के साथ दिल्ली जाने के लिए वहीं रहीं। किन्तु अलाउद्दीन का इरादा था कि वह भीमसी को वापस चित्तौर जाने की स्वीकृति नहीं देगा। वह ईर्ष्यालु हो रहा था कि रत्नसेन इतनी देर तक भेंट का आनन्द उठा रहा था। *जब राजा और पद्मिनी के स्थान पर पालकियों से वेशभक्त वीर निकल पड़े तो* वह घबरा गया। किन्तु अलाउद्दीन पूर्णतः सुरक्षित था। पीछा करने की आज्ञा दी गई। पालकियों से निकले हुए राजपूतों ने वीरतापूर्वक पीछा करने वालों का कुछ देर तक सामना किया किन्तु वे अन्त में एक एक करके मारे गये।

भीमसी के लिए एक तेज घोड़ा तयार रखा था। वह उस पर सवार होकर सुरक्षित दुर्ग के भीतर पहुंच गया। फाटक पर अलाउद्दीन की सेना से घोर युद्ध हुआ। गोरा बादल के नेतृत्व में राजपूती सेना लड़ती रही। अलाउद्दीन अपने उद्देश्य में विफल रहा। गोरा इस युद्ध में मारा गया।

"खमाण रासो में यह सुन्दर रूप में वर्णित है। बादल मात्र बारह वर्ष का था, किन्तु राजपूत से इस छोटी अवस्था में भी आदमुत्य प्रदर्शन की आशा रखी जाती है। वह वीरता के साथ लड़ा घायल हुआ पर बचकर निकल आया। बादल से अपने पति के शौर्य की कथा सुनकर मेरा पति मेरी प्रतीक्षा करता होगा *कहती हुई उसकी पत्नी आग की लपटों में कूद कर सती हो गई।*

अलाउद्दीन सेना में नई भरती करके शक्ति बनाकर अपने उद्देश्य के लिए *चित्तौर की ओर लौटा।* कथा के अनुसार यह घटना सं १३४६ (१२९० ई०) में हुई किन्तु फिरिश्ता ने तेरह वर्ष बाद की (१३०३ ई०) तिथि दी है। चित्तौड़ की संरक्षिका कुलदेवी ने राजा को दर्शन दिया। राना ने कहा—यद्यपि मेरे आठ सहस्र योद्धाओं ने अपना बलिदान कर दिया फिर भी तुम सन्तुष्ट नहीं हुई ? वह अन्तर्ध्यान हो गई। प्रातः उन्होंने अपने इस रात्रि में दर्शन की बात अपने प्रमुखों से कह दी, जिसे उन्होंने विभ्रमल स्मृति की बात कहकर टाल दिया। अब मैं

चित्तौड के लिये अपना बलिदान करता हूँ कहते हुए अपने ग्यारह पुत्रो के मारे जाने के अनन्तर राणा मारे गए। राणा के युद्ध मे जाने के समय पदमिनी ने जौहर किया। सहस्रो राजपूत क्षत्राणियो के साथ पदमिनी ने दहकती हुई अग्नि के उस गुप्त भूहरे मे प्रवेश किया। राजपूतो ने दुग की अगला का उदघाटन किया। वे मुसलमानो पर टूट पड। भीमसी ने युद्धक्षत्र मे शरीर त्याग किया। — — — इस प्रकार अलाउद्दीन ने १३०३ ई० मे इस राजधानी को जीत लिया।[1]

'टाड की यह कथा राजस्थान के भाट और चारणों के आधार पर लिखी गई है। भाटो की पस्तक मे समरसिंह के पीछे रत्नसिंह का नाम न होने से टाड ने पदमिनी का सम्बन्ध भीमसी से मिलाया और उसे लखमसी की घटना मान ली। ऐसे ही भाटो के आधार पर टाड ने लखमसी का बालक होना भी लिख दिया है परन्तु न तो लखमसी मेवाड का कभी राजा हुआ और न उस समय बालक था, वह सीसोदे का सामन्त था। — — — यह बात कुभलगढ के शिलालेख से स्पष्ट है (१४६० ई०) एकलिंग माहात्म्य के अनुसार भीमसी लखमसी का चाचा नहीं हो सकता।[2]

वस्तुत टाड का ग्रन्थ एकत्र किए गए अनेक विवरणो का ग्रन्थ है। इसम बहुत-सी बातें सुनी सुनाई भटट भणत चारणो-द्वारा कथित और चारण-भाटो के आधार पर लिखी गई हैं। पदमिनी रानी की कहानी से सम्बद्ध टाड की बातें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष पदमावत पर ही आश्रित हैं। टाड ने चारणो से इतिहास से इस कथा को ग्रहीत किया है और चारणो के वतो का मूल स्रोत पदमावत है। टाड द्वारा दी गई कथा मे भी कल्पना और सम्भावना का ही प्राधान्य है। उसमे ऐतिहासिकता तो कुछ नामो और आक्रमण की बात तक सीमित है।

तारीखे फिरिश्ता के पदमिनी-वत्त का मूल आधार पदमावत है—

पद्मावत की रचना के लगभग सत्तर वष के अनन्तर महम्मद कासिम फरिश्ता ने तारीखे-फरिश्ता की रचना की थी। शेरशाह के काल मे लिखे गए पदमावत की उस समय तक धूम मच चुकी थी। विद्वानो का विचार है[3] कि सम्भवत फरिश्ता ने पदमावत से ही कुछ हाल लिया हो, क्योकि अलाउद्दीन के चित्तौड आक्रमण के सम्बन्ध म वह रत्नसेन का नाम तक नही देता और फिर कई घटनाओं के वणन के पश्चात ७०४ हि० (सन १३०४ ई०) के प्रसग म वह लिखता है—

१—ले० क० जम्स टाड ऐनल्स ऐड ऐटिक्स आफ राजस्थान (टू वाल्यूम्स इन वन) वाल्यूम १, चप्टर ६, पृ० २१२—२१५।

२—गौरीशकर हीराचन्द ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० १८७—८८।

३—रायबहादुर गौरीशकर हीराचन्द ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० १८८—८९

इस समय चित्तौड का राजा राय रतन सेन जो सुलतान ने जब उसका किला छीना तब से कैद था – अद्भुत रीति से भाग गया। अलाउद्दीन ने उसकी एक लडकी के अलौकिक सौंदर्य और गुणो का हाल सुनकर उससे कहा कि यदि तू अपनी लडकी मुझे सौंप दे तो तू बन्धन से मुक्त हो सकता है। राजा ने (जिसके साथ कैदखाने म सख्ती की जा रही थी) इसे स्वीकार करके लडकी को सौंपने के लिए बुलाया। राजकुमारी को लोगो ने विष देना चाहा किंतु राजकुमारी ने युक्ति से अपने पिता को छुडाया। उसने अपने विचारो को अवगत करा दिया। वह आत्मरक्षणार्थ सम्बल बल बेरोक-टोक दिल्ली पहुंची। उस समय रात पड गयी थी। सुलतान की खास परवानगी से डोलियाँ कैदखाने म पहुची और वहा के रक्षक बाहर निकल आये। भीतर पहुचकर डोलियो से निकल कर राजपूतो ने तलवारें सम्हाली और सुल्तान के सेवको को मारने के पश्चात व राजा सहित तयार रखे हुए घोडो पर सवार होकर भाग निकले। – – – राजा भागता हुआ अपने पहाडी प्रदेश म पहुच गया। – – – और उसी दिन से वह मुसलमानो के हाथो म रहे हुए मुल्क का उजाडने लगा। अन्त म सुलतान ने चित्तौड को अपने अधिकार मे रखना निरर्थक समझकर खिजिर खा को हुक्म दिया कि किले को खाली करके राजा के भानजे को सुपुर्द कर दे।

पद्मावत और तारीखे फरिश्ता की कथाओं की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि फरिश्ता ने कुछ-कुछ घटा-बढी करके पदिमनी की पद्मावत वाली कथा को ही ऐतिहासिक रूप म रख दिया है। पदिमनी को राजा की पुत्री को रानी न कहकर राजा की पुत्री[1] बतलाया है। यह राजा की पुत्री मूलत राजकुमारी शब्द का भात अनुवाद है। विवाहिता राजकुमारियो के लिए भी राजकुमारी शब्द का प्रयोग होता है। तुलसीदास (राजकुमारि सिखावन सुनहू अयोध्याकाण्ड) जायसी आदि कवियों ने भी राजकुमारी शब्द का प्रयोग विवाहिता राजपुत्रियो के लिए किया है।

फरिश्ता का यह कथन प्रामाणिक नही प्रतीत होता। प्रथम तो पद्मिनी के दिल्ली जाने की बात ही निर्मूल है। दूसरी विचारणीय बात यह है कि अलाउद्दीन जसे प्रबल प्रतापी सुल्तान की कैद से भागा हुआ रतनसेन बच जाय और मुल्क का उजाडना फिरे और सुलतान उसको दण्ड न देकर अपने पुत्र को चित्तौड खाली करने की आज्ञा दे यह सम्भव प्रतीत होता है। प्रामाणिक इतिहासो के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि फरिश्ता की ये बातें ऐतिहासिक नहीं हैं। सन १३०४ ई० मे खिजिर खा के किला को खाली करके छोड देने की बात भी निर्मूल है।[1]

१–फरिश्ता तारीख–ए–फरिश्ता प० ११५ (लखनऊ)।

अलाउद्दीन के समसामयिक केवल चार इतिहासकार पाते हैं—फज्लुल्ला[1] वस्साफ जियाउद्दीन बरनी[2] अमीर खुसरो[3] और अब्दुल्ला मलिक इसामी[4]। अमीर खुसरो ने पदमिनी का नाम नहीं लिया है।

खिलजी वंश के प्रामाणिक इतिहासों में अमीर खुसरो कृत तारीखे अलाई का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अमीर खुसरो सुलतान अलाउद्दीन के साथ इस आक्रमण में चित्तौड़ गया था। इस कारण उसका दिया हुआ वृत्त अधिक प्रामाणिक माना जाना चाहिए। उसने तारीखे अलाई में १३०३ ई० के अलाउद्दीन के आक्रमण के सम्बन्ध में लिखा है—

सोमवार ता० ८ जमादि-उस्सानी हि० स० ७०२ (वि० स० १३५९) माघ सुदि ९ ता० २८ जनवरी १३०३ ई० सुलतान को अलाउद्दीन चित्तौड़ लेने के लिए दिल्ली से रवाना हुआ। ग्रंथकर्ता (अमीर खुसरो) भी इस लड़ाई में साथ था। सोमवार ता० ११ मुहर्रम हि० सन ७०३ (वि० स० १३६० भाद्रपद सुदि १४ ता० २६ अगस्त १३०३ ई० को किला फतह हुआ। राय (राजा) भाग गया। परन्तु पीछे से स्वयं शरण में आया और तलवार की बिजली से बच गया। हिन्दू कहते हैं कि जहां पीतल का बर्तन होता है वहीं बिजली गिरती है और राय का चेहरा डर के मारे पीला पड़ गया। तीस हजार हिन्दुओं को कत्ल करने की आज्ञा देने के बाद जब सुलतान ने चित्तौड़ का राज्य अपने पुत्र खिजिर खां को दिया तब उसका नाम खिजराबाद रखा। सुलतान ने उसको एक लाल छत्र जरदोजी खिलअत और दो झंडे — एक हरा और दूसरा काला — दिए और उस पर लाल और पन्ने न्योछावर किए फिर वह दिल्ली को लौटा। खुदा का शुक्र है कि हिन्द के जो राजा इस्लाम को नहीं मानते थे उन सबको अपनी काफिरों का कत्ल करने वाली तलवार से मार डालने का हुक्म दिया।[5]

यहां विशेष द्रष्टव्य यह है कि अमीर खुसरो ने पद्मिनी नाम तक का उल्लेख

१—तारीख-ए वस्साफ (फारस के मुगलों का इतिहास) १३१२ ई० में पूर्ण हुआ।
२—तारीख-ए फिरोजशाही १३५९ ई० में पूरा हुआ।
३—खजायनुल फतह (अलाउद्दीन की विजयों का वर्णन — १३१२ ई० में) और आशिका या दवल रानी (दक्षिण और खिज्र खां — अलाउद्दीन के बेटे के प्रेम का वर्णन — १३१६ ई० में)।
४—फुतूहस्सलातीन १३४९—५० ई०।
५—इलियट हिस्ट्री आव इण्डिया वाल्यूम ३ पृ० ७६—७।

नही किया है। बर्नी ने भी पद्मिनी की कथा का नाम तक नही लिया है –

जिआउद्दीन बर्नी १३०५–४ ई० में जीवित था। वह उस काल का एक प्रामाणिक इतिहास–लेखक है। बर्नी ने अपने ग्रंथ तारीख–फीरोजशाही में लिखा है – सुल्तान अलाउद्दीन ने चित्तौड को घेरा और थोडे ही अर्से में उसे अधीन कर लिया। घेरे के समय चौमासे में सुल्तान की फौज को बडी हानि पहुँची।[१]

जियाउद्दीन बर्नी अलाउद्दीन का समकालीन इतिहासकार है। उसने अपने इतिहास में कहीं भी पदमावती का उल्लेख नही किया है। उसने कहीं यह भी नही लिखा है कि चित्तौड पर अलाउद्दीन के आक्रमण का कारण किसी नारी का सौंदर्य था। यह मात्र परम्परागत जनश्रुति है।[२]

जायसी की यह कहानी जिसमें प्रेम साहसिकता और श्रृंगारादि तीनों का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है अत्यंत शीघ्र लोकप्रिय हो गई और अत्र–तत्र–सर्वत्र पद्मिनी की यह कहानी कही गई – पुनः पुनः कही गई। परशियन इतिहासकारों ने भी जो तथ्य और कल्पना में विशेष पार्थक्य नही करते थे तुरंत इस कथा को सच्चे इतिहासों में जिनमें फिरिश्ता और हाजी उद्दबीर के इतिहास भी सामिल हैं ऐतिहासिक तथ्य के रूप में गृहीत कर लिया।[३]

आईने–अकबरी की पद्मिनी–कथा

'टाड ने जो वर्णन किया है वह राजपूताने के रक्षित चरणों के इतिहासों के आधार पर है। दो–चार ब्यौरों को छोडकर ठीक यही वृत्तांत आईने अकबरी में

१–इन्शियंट हिस्ट्री आव इण्डिया वाल्यूम ४, पृ १६६।

२– इफ टैडीशन इज टू बी बिलीव्ड इटश काज वाज हिज इनफचुयेशन फार राजा रतनसिंह सक्वीन पद्मिनी आफ एक्सक्विजिट ब्यूटी। बट दिस फैक्ट इज नौट एक्सप्लिसिटली मेंशन्ड इन एनी कन्टेम्पोरेरी क्रानिकल आर इन्स्क्रिप्शन।

–ऐन ऐडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग २ पृ० ३०२।

३–दिस स्टोरी आफ मलिक मुहम्मद जायसी इन व्हिच रोमांस ऐडवेन्चर ऐंड ट्रैजेडी आर आर्टफुली ब्यूटीफुली इन्टरमिक्स्ड वेरी सून ग्रिप्ड दी पाप्युलर माइन्ड ऐंड हियर देयर ऐंड एव्रीह्वयर दी स्टोरी आफ पदमिनी वाज टोल्ड ऐंड रीटोल्ड। दी परशियन क्रानिकलर्स [illegible] डिड नाट वेरी मच केयर टू डिस्टिंग्विश बिटवीन फिक्शन ऐंड फैक्ट रेडिली एक्सेप्टेड इट ऐज टू हिस्ट्री सो दैट आफ्टर दी टाइम आफ मुहम्मद जायसी दी पदमिनी एपिसोड इज मेंशन्ड ऐज ए हिस्टोरिकल फैक्ट इन मेनी हिस्टोरियन्स वर्क्स इन्क्लूडिंग दोज आफ फरिश्ता ऐंड हाजीउद्दबीर।

–हिस्ट्री आफ दि खिलजीज, डा० किशोरीशरण लाल, पृ० १२२–२३।

दिया हुआ है। आइन-अकबरी म भीमसी के स्थान पर रतनसी (रत्नसन या रत्नसिह) नाम है। रतनसी क मारे जाने का ब्योरा भी दूसर ढग पर है। आईन अकबरी म लिखा है कि अलाउद्दीन दूसरी चढ़ाई म भी हार कर लौटा। वह लौटकर चित्तौड स सात कोस दूर पहुचा था कि रुक गया और मैत्री का नया प्रस्ताव भेज कर रतनसी को मिलने के लिए बुलाया। अलाउद्दीन की बार-बार की चढ़ाइया से रतनसी ऊब गया था। इसस उसन मिलना स्वीकार किया। एक विश्वासघाती को साथ लेकर वह अलाउद्दीन स मिलन गया और धोखे स मार डाला गया। उसका सम्बन्धी 'अरसी (?) चटपट चित्तौर क सिहासन पर बिठाया गया। अलाउद्दीन चित्तौर की ओर फिर लौटा और उस पर अधिकार किया। अरसी मारा गया और पदमिनी सब स्त्रियो के सहित सती हो गई।'[1]

स्पष्ट है कि टाड और आईन अकबरी के पदमिनी सम्बन्धी वृत्तो म साम्य है। अबुलफजल कृत आईन अकबरी म वही वृत्त है जो उसन सुना था। इतिहासकारो का कथन है कि सम्भवत अबुलफजल पद्मावत स परिचित था। जो भी हो अबुलफजल के वर्णन स स्पष्ट है कि वह पद्मावत स पर्याप्त प्रभावित है।

हज्जी उद्दबीर का पद्मिनी वृत्त –

हज्जी उद्दबीर का इतिहास अकबर के समय (१६०८ ई) म लिखा जा रहा था। पद्मावत १५४० ई० म शेरशाह के समय म लिखा गया था। पदमावत जो शेरशाह क समय म ख्याति प्राप्त कर चुका था और चित्तौड के राजवश की कीर्ति का सम्वर्द्धन कर रहा था – निश्चय ही उस समय चित्तौड क राजघरान म सम्मान्य रहा होगा। ईडर, साबरकाठा एव सौराष्ट्र क अन्य क्षेत्रो का चित्तौड स घनिष्ट सम्बन्ध था। उन सभी क्षेत्रो म यह कथा प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी अत ऐसी स्थिति म हज्जी उद्दबीर अवश्य ही पद्मावत की कथा स प्रभावित लगता है। हज्जी उद्दबीर और जायसी के पद्मावती सम्बन्धी वृत्तो म बहुत अधिक समता भी पाई जाती है।

अन्य इतिहासकारो के उल्लेख —

'वर्तमान युग के कई नामी-गरामी इतिहासकारो ने बड़े ही विचित्र तर्कों स पद्मिनी की कथा की ऐतिहासिकता सिद्ध करने क प्रयत्न किए हैं। जैसे यदि पदमिनी कथा जायसी की कोरी-कल्पना है तो वह राजपूतो म फैली कैसे? यद्यपि इस कथा स उदयपुर क राजवश की मानहानि होती है फिर भी यह राजवश पदमिनी की कथा को स्वीकार कर सकता है। अलाउद्दीन का मेवाड की रानी की

१–प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रथावली पृ० २४।

ओर आकृष्ट होना और रानी का अपने पति को मुक्त कराने का प्रयास असम्भव नही जान पडता। ये तक अत्यन्त हल्के और आधारहीन हैं। यह कथा 'जायसी की कोरी कल्पना ही नही है जायसी ने इस कथा को सुना' भी था। दूसरे पदिमनी की पदमावत वाली कथा से चित्तौड–उदयपुर के राजवश की कीर्ति म चार चाद लगते हैं। इस कथा म मानहानि की सम्भावना हो नही की जा सकती। 'राजवश इस कथा का स्वीकार करता है चित्तौड म पदिमनी का महल है स्नान गार है प्रभनि तक व्यथ हैं। किसी राजवश के स्वीकार करने मात्र से ही कोई कथा प्रामाणिक नही मानी जा सकती।

प्रो० श्री नेत्र पाडय[1] का कथन है कि हज्जी उद्दबीर ने अपना इतिहास अकबर के समय म गुजरात म लिखा था। यद्यपि पदमावत और उसके विवरण मे अन्तर है तथापि हज्जी उद्दबीर ने पदिमनी की कथा का उल्लेख किया है। मेवाड की परम्परागत कथाए भी पदिमनी की कथा को स्वीकार करती हैं — जो अत्यन्त पुरानी है। अन्तत प्रो० श्री नत्र पाडेय ने भी इस स्वीकार किया है कि पदिमनी की कथा के विषय म बन्त मतभेद है। इस कथा का प्रधान साधन जायसी कृत पदमावत है। विद्वान इतिहासकार का कथन ठीक ही है कि इन समस्त पदिमनी विषयक कथाओ का मूल आधार पदमावत ही है।

सर्वेक्षण और निष्कष

प० रामचद्र शुक्ल ने टाड के विवरण को देने के पश्चात लिखा है, 'टाड ने जो वृत दिया है राजपूताने म रक्षित चारणा के इतिहासो के आधार पर है। दो चार ब्योरो को छोड कर ठीक यही वतात आईने अकबरी म दिया हुआ है। 'आईने अकबरी म भीमसी के स्थान पर रतनसी (रतनसिंह या रतनसेन) नाम है। रतनसी के मारे जाने का ब्योरा भी दूसरे ढग पर है।

इन्ही दोनो इतिहासिक वृत्तो के साथ जायसी द्वारा वर्णित कथा का मिलान करके शुक्ल जी ने पदमावत की उत्तरार्द्ध वाली कथा की ऐतिहासिकता प्रमाणित की है।[3]

टाड के राजस्थान का सम्यक अनुशीलन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उसकी ८० प्रतिशत से अधिक बातें बक्वास या अनगलता के अतगत आती हैं।

१–डा० ईश्वरी प्रसाद भारतवष का इतिहास।

२–श्री नेत्र पाण्डय भारत का बृहद इतिहास भाग २ मध्य कालीन भारत पृ० १३१।

३–प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रथावली भूमिका पृ० २४।

एक प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक (जेम्स टाड) की अति प्रसिद्ध कृति ने इन युगों के विषय में हमारी जनता की दृष्टि को पिछले सौ वर्ष में बहुत गुमराह किया है। -- वह विशेष रूप से राजस्थान का सर्वे करने और राजस्थानी राज्यों को मराठों और मुसलमानों के विरुद्ध उभाड़ने के लिए नियुक्त था। उसे पूरी सफलता प्राप्त हुई। -- अलाउद्दीन और दूसरे सब मुसलमानों को लम्पट-लुटेरा बताना और मराठों को मौसमी डाकू के रूप में चित्रित करना लज्जाजनक असत्य है। अकबर जैसे महापुरुष को कलंकित करने की कोशिश चाँद पर थूकने के समान है। -- दुःख की बात है कि हिन्दी, बंगला और गुजराती साहित्यों के तथा हिन्दुओं के रोपे हुए उर्दू साहित्य के पौधे और सौ बरस पहले बिखेरी गई इन विषमय असत्यों की खाद को आज भी अमृत समझ कर चूसते जा रहे हैं।[1]

यह निर्भ्रान्त सत्य है कि टाड ने अनेक गलत ऐवं भ्रम प्रचारक अनर्गल बातें लिखी हैं। ओझा जी[2] ने भी टाड की शत शत भूलियों की ओर निर्देश किया है। टाड ने पद्मिनी का जो वर्णन किया है वह भी अत्यन्त भ्रमपूर्ण है--

विक्रम सं० १३३१ (१२७४-७५ ई०) और वि० सं० १३४६ (१२९० ई०) में अलाउद्दीन दिल्ली का बादशाह नहीं था। पुनः इन संवतों में अलाउद्दीन के चित्तौड़-आक्रमण की कल्पना अनर्गलता नहीं तो और क्या है? अलाउद्दीन १२९५-९६ ई० में दिल्ली की गद्दी पर बैठा था। सं० १३३१ में चित्तौड़ पर दिल्ली के बादशाह ने अवश्य आक्रमण किया था पर वह बलबन था, अलाउद्दीन नहीं। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण १३०३ ई० में किया था।

इसी प्रकार सिंहल में चौहान राजवंश की कल्पना भी मिथ्या है। टाड के अनुसार 'अलाउद्दीन की दूसरी चढ़ाई में राणा के ग्यारह पुत्र मारे गए। यदि पहली चढ़ाई अलाउद्दीन ने पद्मिनी को पाने के लिए की थी, तो दूसरी चढ़ाई में युद्ध में मारे गए। ये ग्यारह पुत्र कब पैदा हो गये।' इतने तो लड़के रहे टाड ने लड़कियों या मर गई सन्तानों का उल्लेख नहीं किया है। यदि अलाउद्दीन लंपट था तो भी बड़े-बड़े युद्ध में मारे जाने वाले बेटों की माँ के लिये इतना बड़ा साहसिक *अभियान करेगा जिसमें जीत भी अनिश्चित हो। दूसरे इतिहासकारों ने अलाउद्दीन* को प्रजा हितैषी और मर्मी सम्राट कहा है।[3]

टाड की वार्ताओं में एक गल्प और द्रष्टव्य है। उसका कथन है कि जब

१--जयचन्द्र विद्यालंकार--हिन्दी सा० स० नागपुर (अप्रैल १९३६) इतिहास परिषद के सभापतिपद से अभिभाषण, पृ० १६-१७।

२--गौ० ही० ओझा राजपूताने का इतिहास दूसरा खंड, पृ० ४६४-६५।

३--डा० रघुवीरसिंह पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० १२७-१६०।

अलाउद्दीन चित्तौर नहीं ले पाता हार कर दिल्ली की ओर लौट जाता है तो राणा से प्रस्ताव करता है कि पदिमनी को मुख दपण म दिखा दो। राणा इस बात को स्वीकार कर लेता है और पराजित शत्रु को अपनी पत्नी का मुख दपण के माध्यम से दिखलाता है।

जायसी की कथा है कि राणा रतनसेन अलाउद्दीन का सामन्त बनना स्वीकार कर लेता है। वह उसे गढ़ म ले जाता है। वहां अलाउद्दीन अकस्मात पदिमनी की परछाई देखता है। टाड के किस्से से ऐसा लगता है मानो हारे हुए शत्रु को अपनी बीबी का मुह दिखाना राजपूती शालीनता और आतिथ्य का अंश था।[1]

गोरा पद्मिनी का चाचा लगता था और बादल गोरा का भतीजा था। अर्थात बादल पदमिनी के दूसरे चाचा का लडका था। पदिमनी के दो चाचा और चचेरा भाई चित्तौड़ म कैसे रहते थे। उन्हें तो चित्तौड का पानी भी नहीं पीना चाहिए। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि पदिमनी मेवाड की थी और गोरा और बादल चित्तौड के सरदार और उसके सम्बन्धी थे। टाड ने किस्से की सगति लाने के लिए गोरा-बादल को सिंहल का ही बनाया।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि टाड के आधार पर पदमावत का ऐतिहासिक आधार ढूढना और इसी कारण उसे इतिहासाश्रित कहना ठीक नहीं है।

ओझा जी के मत समीक्षा

सवत १९८१ (१९२४ ई) म शुक्ल जी ने जायसी ग्रन्थावली का प्रथम सस्करण प्रकाशित किया। म०म० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा कृत राजपूताने का इतिहास स० १९८५ म प्रकाशित हुआ।

ओझा जी ने पद्मावत की कथा देने के अनन्तर लिखा है— इतिहास के अभाव म लोगों ने पद्मावत को ऐतिहासिक पुस्तक मान लिया परन्तु वास्तव म वह आजकल के ऐतिहासिक उपन्यासों की सी कवितावद्ध कथा है जिसका कलेवर इन ऐतिहासिक बातों पर रचा गया है कि रतनसेन (रत्नसिंह) चित्तौड का राजा पदिमनी या पद्मावती उसकी रानी और अलाउद्दीन दिल्ली का सुलतान था जिसने रतनसेन (रत्नसिंह) से लड़कर चित्तौड का किला छीना था। बहुधा अन्य सब बातें कथा को रोचक बनाने के लिए कल्पित खडी की गई हैं क्योंकि रतनसेन एक बरस भी राज्य नहीं करने पाया ऐसी दशा म योगी बन कर उसका सिंहल द्वीप (लका) तक जाना और वहां की राजकुमारी का ब्याह लाना कैसे सभव हो सकता

१—इन्द्रचन्द्र नारग पद्मावत-सार पृ०।

है ? उसके समय सिंहल द्वीप का राजा गधर्व सेन नहीं किन्तु कीर्ति निशशकदेव पराक्रमबाहु (चौथा) या भुवनेक बाहु (तीसरा) होना चाहिए।[1] सिंहल द्वीप में गन्धर्व सेन नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ।[2] उस समय तक कुम्भलनेर आबाद ही नहीं हुआ था तो देवपाल वहां का राजा कैसे माना जाय ? अलाउद्दीन आठ बरस तक चित्तौड के लिए लडने के बाद निराश होकर दिल्ली को नहीं लौटा किन्तु अनुमानतः छः महीने लडकर उसने चित्तौड ले लिया था वह एक ही बार चित्तौड पर चढा था इसलिये दूसरी बार आने की कथा कल्पित ही है। [3]

जेम्स टाड की कल्पनाओं के विषय में भी ओझा जी ने लिखा है— कर्नल टाड की यह कथा विशेषकर भाटों के आधार पर लिखी गई है और भाटों ने उसको पदमावत से लिया है। भाटों की पुस्तक में समरसिंह के पीछे रत्नसिंह का नाम न होने से टाड ने पदिमनी का सम्बन्ध भीमसिंह से मिलाया और उसे लखमसी (लक्ष्मणसिंह) के समय की घटना मान ली। — — परन्तु लखमसी न तो मेवाड का कभी राजा हुआ और न बालक था किन्तु सीसोदे का सामन्त था और उस समय वृद्धावस्था को पहुंच चुका था। — — रत्नसिंह की सेना का मुखिया बनकर अला-उद्दीन के साथ की लडाई में लडते हुए मारा गया था जैसा कि वि० सं० १५१७ (१४६० ई०) के शिलालेख से स्पष्ट है। — — — ऐसी दशा में टाड का कथन भी विश्वास के योग्य नहीं हो सकता। पदमावत तारीख फिरिश्ता और टाड के राजस्थान के लेखों की यदि कोई जड है तो केवल यही कि अलाउद्दीन ने चित्तौड पर चढ़ाई कर छः मास के घेरे के अनन्तर उसे विजय किया वहां का राजा रत्नसिंह इस लडाई में लक्ष्मणसिंह आदि कई सामन्तों-सहित मारा गया। उसकी रानी पदिमनी ने कई स्त्रियों सहित जौहर की अग्नि में प्राणाहुति दी।

विशेष

पदमावत में चित्तौड पर अलाउद्दीन के आक्रमण के अतिरिक्त और भी कतिपय घटनाओं एवं अनुश्रुतियों का उपयोग भी किया गया है। अलाउद्दीन ने १२९७ ई० में अपने भाई उलूग खां और सेनापति नसरत खां को गुजरात पर चढ़ाई करने को भेजा। मालवा से उन्होंने मेवाड के रास्ते जाना चाहा किन्तु राजा समरसिंह ने उन्हें मार भगाया। तब मेवाड के दक्खिन घूम कर वे आसावल

१–इम्पी॰ ग्जैटियर ... इण्डिया पृ० ३२१ ।
२–वही पृ० ३२१ २२।
३–गौरीशंकर हीराचन्द ओझा–उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० १८७–८८।
–राजपूताने का इतिहास पृ० ४९१–९२–४४८–९५।
४–

जा पहुँचे ।[1] यद्यपि अलाउद्दीन ने इस युद्ध मे सेना का नेतृत्व नही किया था तो भी चित्तौड के राजा समरसिंह के द्वारा अलाउद्दीन की इस युद्ध म प्रथम बार हार हुई थी ।

गौरीशकर हीराचन्द ओझा का कथन है कि जिन पुन सूरि ने अपने तीर्थ कल्प म उलुग खा की गुजरात–विजय का वणन करते हुए लिखा है– विक्रम सवत १३५६ (१२९९ ई०) म सुलतान अल्लावदीण (अलाउद्दीन खिजली) का सबसे छोटा भाई उलूखान (उलूगखा) कणदेव के मन्त्री माधव की प्रेरणा स दिल्ली नगर से गुजरात की ओर चला । चित्रकूट (चित्तौड) के स्वामी समरसिंह ने उसे दण्ड देकर मेवाड देश की रक्षा कर ली ।[2]

यहा ध्यान देने की बात है कि माधव का ही जनश्रुतियो म प्रचार प्रसार और सम्प्रसार होता रहा और सभावना की जा सकती है कि जायसी के राघव चेतन की कहानी का मूल सभवत गुजरात के मन्त्री माधव के चरित्र मे है ।

रणथभौर की जीत से दिल्ली सल्तनत की सीमा मवाड से आ लगी । समरसिंह के बेटे रत्नसिंह को मेवाड की गद्दी पर बठे कुछ महीने बीते थे कि अलाउद्दीन ने चित्तौड को घर लिया । (१३ ३ ई) छ महीने घिरे रहने के बाद रसद और पानी चक गये तो किला अलाउद्दीन के हाथ आया । रत्नसिंह मारा गया और उसकी रानी पदिमनी ने बहुत–सी स्त्रियो के साथ जौहर कर लिया । अलाउद्दीन ने चित्तौड का राज्य अपने बेटे खिजर खा को देकर उसका नाम खिज–राबाद रखा ।

अलाउद्दीन चित्तौड को मुश्किल से ले पाया था कि दिल्ली से मगोलो के नये हमले की खबर आई । तरगी नामक एक मगोल न एक बडी सेना के साथ जमना किनारे डेरा आ डाला और दिल्ली को घर लिया । अलाउद्दीन के आने पर वह हट गया ।[3]

जायसी ने अलाउद्दीन की चित्तौड चढ़ाई के अवसर पर दिल्ली पर हरेवा की चढाई की बात जो लिखी है उसम स्पष्ट तरगी के मगोलो की परछाई है । [4]

यद्यपि रत्नसेन अलाउद्दीन के साथ हुए युद्ध म मारा गया था तथापि सम्भवत आदि अन्त जस गाथा अहै वाली गाथा म रत्नसेन अलाउद्दीन के द्वारा नही मारा गया ।

१–जयचन्द्र विद्यालकार इतिहास–प्रवेश प० २५३ (प्र० स० १९३८)
२–गौरीशकर हीराचन्द्र ओझा राजपूताना का इतिहास द्वि० स० पृ० ४७६–७७ ।
३–जयचन्द्र विद्यालकार इतिहास प्रवेश प० २६५–६६ ।
४–इन्द्रचन्द्र नारग पदमावत–सार ।

जायसी के समय में चित्तौड़ का राणा संग्रामसिंह था। उसके बाद उसका पुत्र रत्नसिंह गद्दी पर बैठा। जायसी के पदमावत वाले रत्नसेन में इस रत्नसिंह की कथा भी जुड़ी हुई है।

'मेवाड़ में सांगा के पीछे उसका छोटा बेटा रत्नसिंह राणा हुआ। -- १५३१ ई० में राणा रत्नसिंह का उसके एक सरदार ने मार डाला।'[1]

' --- महाराणा के एकाएक इस प्रकार स्वर्गवास होने के अनन्तर मेवाड़ की गद्दी पर उसका दूसरा लड़का रत्नसिंह बैठा। -- उसके बाद ही बूंदी के देशद्रोही हाड़ा सरदार जो सांगा की दूसरी रानी कमवती का भाई और उसके पुत्रों विक्रमादित्य और उदयसिंह का तरफदार था और अपने भानजे विक्रमादित्य को सिंहासन दिलाने के लिये मेवाड़ के शत्रु मुगलों--बाबर--से रणथम्भौर प्रदेश उन्हें देने आदि की साठ-गाठ कर रहा था, दण्ड के लिए शिकार--मिस बुलाकर महाराणा रत्नसिंह ने मरवाना चाहा और उनके साथ द्वन्द्व करते हुए स्वयं भी मारा गया (३० जनवरी १५३२ ई०)।'[2]

विक्रमादित्य और उदयसिंह को महाराणा सांगा ने यह बड़ी जागीर रत्नसिंह की आंतरिक इच्छा के विरुद्ध और अपनी प्रीतिपात्र रानी कमवती के विशेष आग्रह से दी परन्तु अन्त में इसका परिणाम रत्नसिंह और सूरजमल दोनों के लिए घातक ही हुआ।[3]

' महाराणा सांगा की मृत्यु के समाचार पहुंचने पर 'उसका कुंवर रत्नसिंह वि० सं० १५८४ माघ सुदी १५ (१५२८ ता० ५ फरवरी) के आसपास चित्तौड़ के राज्य का स्वामी हुआ। महाराणा सांगा के देहान्त के समय महाराणी हाडी कमवती अपने दोनों पुत्रों के साथ रणथंभौर में थी। अपने छोटे भाइयों के हाथ में रणथंभौर की पचास साठ लाख की जागीर का होना रत्नसिंह को बहुत अखरता था क्योंकि वह उसकी आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध दी गई थी। महाराणा बहुत अप्रसन्न हुआ।'

उधर हाड़ी कमवती विक्रमादित्य को मेवाड़ का राजा बनाना चाहती थी जिसके लिए उसने सूरजमल से बातचीत कर बाबर को अपना सहायक बनाने का प्रपंच रचा। -- बाबर अपनी दिनचर्या में लिखता है-- हि० सं० ९३५ ता० १४ मुहर्रम (वि० सं० १५८५ आश्विन सुदि १५--ई० सं० १५२८ ता० २८ सितम्बर)

१--जयचन्द्र विद्यालंकार इतिहास प्रवेश, पृ० ३२८--२९।
२--पृथ्वीसिंह मेहता हमारा राजस्थान पृ० ८७--८८ (१९५०)।
३--गौरीशंकर हीराचन्द ओझा राजपूताने का इतिहास, द्वि० सं० पृ० ६७२--७३।
४--वही, पृ० ७०० ७०१।

को राणा सांगा के दूसरे पुत्र विक्रमाजीत के जो अपनी माता पदमावती (? कमवती) के साथ रणथंभौर मे रहता था कुछ आदमी मेरे पास आए। मेरे ग्वालियर को रवाना होने के पहले भी विक्रमाजीत के अत्यंत विश्वासपात्र राजपूत अशोक के कुछ आदमी मेरे पास ७० लाख की जागीर लेने की शर्त पर राणा की अधीनता स्वीकार करने के समाचार लेकर आये थे—मैंने यह भी कहा कि यदि विक्रमाजीत अपनी शर्तों पर दृढ़ रहा तो उसके पिता की जगह उसे चित्तौड़ की गद्दी पर बिठा दूंगा।

ये सब बातें हुईं, परन्तु सूरजमल रणथंभौर जैसा किला बाबर को दिलाना नहीं चाहता था उसने तो केवल रत्नसिंह को डराने के लिए यह प्रपंच रचा था इसी से रणथंभौर का किला बादशाह को सौंपा न गया, परन्तु इससे रत्नसिंह और सूरजमल में विरोध और बढ़ गया।[१]

— — महाराणा ने उसको छल से मारने की ठान ली। इस विषय में मुहणोत नैणसी लिखता है— राणा रत्नसिंह शिकार खेलता हुआ बूंदी के निकट पहुंचा और सूरजमल को बुलाया।— — राणा ने अपनी पवार वंश की रानी से कहा कि कल हम एक सुअर मारेंगे। — — दूसरे ही दिन सवेरे सूरजमल को साथ लेकर राणा शिकार को गया। राणा ने पूरनमल को सूरजमल पर वार करने का इशारा किया परन्तु उसकी हिम्मत न पड़ी तब राणा ने सवार होकर उस पर तलवार का वार किया जिससे उसकी खोपड़ी का कुछ हिस्सा कट गया इस पर पूरनमल ने भी एक वार किया जो सूरजमल की आंख पर लगा तब तो लपक कर सूरजमल ने पूरनमल पर प्रहार किया जिससे वह चिल्लाने लगा। उसे बचाने के लिये राणा वहां आया और सूरजमल पर तलवार चलाई। इस समय सूरजमल ने घोड़े की लगाम पकड़कर झुके हुए राणा की गर्दन के नीचे ऐसा कटार मारा कि वह उसे चीरता हुआ नाभि तक चला गया। राणा ने घोड़े पर से गिरते गिरते पानी मांगा तो सूरजमल ने कहा कि बाघ ने तुझे खा लिया है अब तू जल नहीं पी सकता। यहां राणा और सूरजमल दोनों के प्राणपखी उड़ गए। पाटण में राणा का दाह-संस्कार हुआ और रानी पवार उसके साथ सती हुई। यह घटना वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में हुई।[२]

जायसी ने पदमावत की रचना शेरशाह के समय में १५४० ई० में की है। पद्मावत की रचना के लगभग १० वर्ष पूर्व मेवाड़ के राणा रत्नसिंह और बूंदी के सूरजमल का द्वन्द्व और दोनों की मृत्यु वाली घटना घटी थी। जायसी ने जिस

१—गौरीशंकर हीराचंद ओझा राजपूताने का इतिहास, पृ० ७०४।
२—वही पृ० ७०४-५।

देवपाल और रत्नसेन-द्वन्द्व की परिकल्पना की थी सम्भवत यही घटना उसके मूल मे है।

'जौ दवपाल राव रन गाजा। मोहि तोहि जूझ एकौझा राजा॥
मेलेसि साग आइ बिष भरी। मेटि न जाइ काल की घरी॥
आइ नाभि तर साग वईठी। नाभि वधि निकसी सो पीठी॥
चला मारि तव राज मारा। टूट कध धड भयउ निनारा॥
सुधि बुधि तौ सब बिसरी भार परा मग बाट।
हस्ति घार को कारर? घर आना गइ खाट॥'[1]

रत्नसिंह – सूरजमल द्वन्द्व तलवार का नाभि तक पहुच जाना दोनो की मत्यु, राना पवार का सती होना वाला घटना और रत्नसेन देवपाल-द्वन्द्व साग का चीरते हुए नाभि तर पहुचना, दोना की मत्यु रानी पदिमनी और नागमनी का का सती होना इन दोना घटनाओ म अदभुत साम्य है।

इसस एक अन्य बात पर भी प्रकाश पडता है कि अवश्य ही पदमावत की रचना इस घटना (अर्थात १८३१ ई०) के बाद ही हुई है। इस प्रकार पदमावत की रचना ६२७ हि० (१५२० ई०) म कहना भी असगत हो जाता है।[2]

श्री गौरीशकर हीराचन्द ओझा[3] न सुदृढ प्रमाणो के आधार पर पदिमनी की कथा का कवि की कल्पना – मात्र माना है। तत्कालीन जीवित और प्रामाणिक इतिहास लेखक राजकवि अमीर खुसरो और बर्नी ने पदिमनी का नाम तक नहीं लिया है। जहा राजकवि खुसरो ने एक ओर देवल देवी और खिजिर खा के प्रेम का वणन ऐतिहासिक तथ्यो के साथ आशिकाह म किया ह जहाँ उसने अलाउद्दीन के आक्रमणो का अत्यन्त उत्सिक्त भाव से और विस्तरित तथ्यावली म रसपूर्ण वणन किया है वहा वह पद्मिनी की कथा जस सरस प्रसग की अवहेलना कर जाय – यह बात असम्भव प्रतीत होती है वह चित्तौड की चढ़ाई म अलाउद्दीन के साथ भी गया था। यदि पद्मिनी की कथा लोक जीवन या लोक कथाओ से गृहीत और कवि-कल्पना न होती न तो वर्नी और खुसरो अवश्य ही उसका रसमय वणन करते। अत पद्मिनी की कथा ऐतिहासिक नहीं प्रमाणित होती।

पूर्वार्द्ध की कथा नायकयियों के सिहल-गमन सिद्धि प्राप्ति आदि पर

१–प० रामचन्द्र शुक्ल जा० ग्र० पृ० २१७।
२–द्रष्टव्य, इसी प्रबन्ध का पद्मावत का रचनाकाल।
३–गौरीशकर हीराचन्द ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास प० १९१।
४–द्रष्टव्य माडन रिव्यू (नवम्बर १९५०) पृ० ३६१—६८ हिंदी अनुशीलन वप ६ अक २ पृ० २६–३१ साहित्य सदेश, (भा० १३ अक ६) पृ० २४६ ५०।

आधारित लोक-कथाओं का कार्यबद्ध विकसित एवं विलमित रूप है। यह बात भी कल्पना मात्र है कि सिंहलद्वीप लंका न होकर राजस्थान का सिंगोली या महाराष्ट्र का बम्बई के पास सिंहल या सांगली स्थान है।

वस्तुत लोगों ने इतिहास के अभाव में या एतिहासिक अध्ययन न करने के कारण पदमावत को एतिहासिकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रन्थ मान लिया है। वास्तविकता यह है कि वह नाम मात्र के लिए ऐतिहासिक है। वह एक सुंदर काव्य ग्रन्थ है जिसका कलेवर इन ऐतिहासिक तथ्यों पर रचा गया है—

(१) रत्नसेन चित्तौड का राजा था। उसने मात्र एक वर्ष राज्य किया था।

(२) दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन ने १३०३—४ ई० में चित्तौड पर चढाई की थी और छ महीने में उसे जीत लिया था।

(३) क्षत्राणियों ने जौहर की ज्वाला में प्राणाहुति दी थी।

(४) सम्भवत उस समय पद्मिनी नाम की रानी नहीं थी, जिसके लिए ही अलाउद्दीन ने आक्रमण किया था। यह परवर्ती भट्ट भणत और मात्र कल्पना है।

फिरिश्ता, अबुल फजल टाड आदि की पदिमनी-सम्बन्धी बातों का मूल स्रोत पदमावत है।

(उपर्युक्त इतिहासकारों की पदिमनी सम्बन्धी बातों का मूल स्रोत पद्मावत है)। हमारे यहाँ पदिमनी सम्बन्धी कथाएं लोक और साहित्य में प्रचलित ही रही हैं।

सिंहल द्वीप की पद्मिनी उसका हीरामन शुक रत्नसेन का सोलह सहस्र जोगी राजकुमारों के साथ सिंहल जाना पदिमनी को ब्याह लाना प्रभृति बातें लोक-कथात्मक एवं कवि कल्पित हैं।

रत्नसेन के समय में सिंहल में गन्धर्व सेन नामक कोई राजा था ही नहीं[1] उस समय वहाँ का राजा कीर्ति निश्शंकदेव पराक्रम बाहु (चौथा) या भुवनैक बाहु तीसरा होना चाहिए।[2] यह गन्धर्वसेन भी कवि कल्पना मात्र है (गन्धर्व सेन की सम्भावना तो इन्द्र के दरबार कुबेर की अलका या हिमालय प्रदेश में की जा सकती है)। उस समय कुम्भलनेर स्थापित तक नहीं हुआ था अत देवपाल को वहाँ का राजा कैसे माना जाय? अलाउद्दीन आठ वर्ष तक चित्तौड के लिए लडने के बाद निराश होकर दिल्ली नहीं लौटा किन्तु अनुमानत छ महीने लडकर उसने चित्तौड ले लिया था वह एक ही बार चित्तौड पर चढा था। इसलिए दूसरी बार आने की

१—इथ्नोलाजी आफ इण्डिया पृ० ३२१—२२।
२—वही पृ० ३२१।

कथा कवि कल्पना एव सभावना है।[1]

जायसी द्वारा गृहीत कथा

पदमावती की कहानी भारतीय लोक जीवन की एक चिर परिचित कहानी है। भारतीय वाङमय म पदमावती की कहानी अनेक रूपो म प्राप्त होती है इनम से कुछ के उल्लेख ऊपर किये जा चुके है। अभी तक निश्चित रूप से यह ज्ञात नही कि पदमावती की उस चिरपरिचित कहानी के साथ अलाउद्दीन, रत्नसेन और पदमावती वाली कहानी का सग्रथन सवप्रथम किसने किया ? जायसी के समय मे यह कथा प्रचलित थी।

सिंहलदीप पदुमनी रानी। रतनसेन चितउर गढ आनी॥
अलाउदी देहली सुलतानू। राघव चेतन कीन्ह बखानू॥
सुना साहि गढ छेका आई। हिन्दू तुरुक्ह भई लराई॥
आदि अत जस गाथा अहै। लिखि भाखा — चौपाई कहै॥[2]

जायसी का कथन है कि जैसी आदि से अन्त तक कहानी रही है तदनरूप उन्होन उसको भाषा–चौपाई म निबद्ध करके उपस्थित किया है। जायसी के समक्ष दोनो कहानियो के रूप वतमान थे। उन्होने इन दोनो कथाओ के ताने–बाने से पदमावत की कथा का सघटन किया है। उन्होने लोकजीवन मे प्रचलित पद्मावती की कथा, साहित्य म समादृत पदमावती की कथा अलाउद्दीन के आक्रमण की कथा और राजपूतनियो के जौहर की कथाओ को एक सूत्र म सगुफित करके पदमावत जैसा एक अद्भुत–अपूव काव्य सौन्दय–सम्पन्न प्रबन्ध काव्य प्रस्तुत किया है।

जायसी ने अपनी कहानी का रूप वही रखा है जो कल्पना के उत्कष द्वारा साधारण जनता के हृदय मे प्रतिष्ठित था। इसलिए शुक्ल जी ने जहा एक ओर अनुमान किया था कि इस कथा का पूवाद्ध तो बिलकुल कल्पित[3] कहानी है और उत्तराद्ध ऐतिहासिक आधार पर है वही उन्होन यह भी कहा है कि अवध म 'पद्मिनी रानी और हीरामन सुए की कहानी प्रचलित है। जायसी इतिहास विज्ञ थे। अत उन्होने रत्नसेन अलाउद्दीन आदि नाम लिए है। जायसी ने प्रचलित कहानी को ही लेकर सूक्ष्म ब्योरो की मनोहर कल्पना करके उसे काव्य का सुन्दर रूप दिया है।[4]

१–गौ० ही० ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास पृ०१८७—८८ से उद्धृत।
२–प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रथावली, पृ० ६।
३—रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रथावली पृ० ६
४—वही भूमिका प० २६।

उपयु क्त विवचना के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि उत्तरार्द्ध की कथा म भी अलाउद्दीन रत्नसेन दिल्ली चित्तौड, अलाउद्दीन–आक्रमण जौहर आदि कुछ ऐतिहासिक आधार हैं, किन्तु जायसी ने उसे जो रूप प्रदान किया है उसमे सवत्र कवि–कल्पना का ही प्राधान्य है। कथा वास्तविक सी लगे – एतदथ इसम ऐतिहासिकता की छौंक दे दी गई है। वस्तुत इतिहास के आधार पर पदमावत की रचना का निर्माण नहीं हुआ है। जिस प्रकार कोई साहित्यिक कृति इतिहास का निर्माण कर देती है इसका ज्वलत उदाहरण पदमावत है। यही है पद्मावतकार की महान सफलता और उसका उत्तम काव्य कौशल।

पदमावत साहित्यिक कृति है ऐतिहासिक नही। अत पदमावत का सौंदय साहित्य का है इतिहास का नही। पद्मावत के विषय म कहा जा सकता है कि उसम सवत्र कवि–कल्पना का काव्य सौंदय दशनीय है। जायसी ईरानी इतिहास कारो की भाति तारीख लिखन नही बठ थे। उन्होने बार–बार अपने कवि कम का उल्लेख किया है। प्रमपीर की अभियक्ति ही उनका प्रतिपाद्य है। वे प्रेम श्र गार के महान कवि हैं। पदमावत म ही अनेक स्थलो पर अपने कवि कम का उल्लेख उन्होने किया है (केवल स्तुति–खण्ड म ही) —

एक नयन कवि मुहम्मद गुनी। सोई विमोहा जेई कविसुनी ॥
२१।१
चारि मीत कवि मुहम्मद पाए। २२।१
जायस नगर धरम अस्थानू। तहा आइ कवि कीन्ह बखानू ॥ २३।१
मुहम्मद कवि जो बिरह भा ना तन रक्त न मांसु। दोहा २३
सन नौ स सतालिस अहै। कथा अरम्भ बन कवि कहै ॥
२४।१ (पदमावत सजीवनी टीका)
आदि अत जस गाथा अहै। लिखि भाषा चौपाई कहै।
कवि बियास कवला रस पूरी। दूरि सो नियर नियर सो दूरी।
२४।५–६।

वे अपने को सभी कवियो का अनुवर्ती (पिछलगुवा) मानते हुए अपन कवि कर्म की अभिव्यक्ति करते हैं —

हौं सब कविन्ह केर पछिलगा। किछु कहि चला तबल दइ डगा ॥[1]

उन्ह साहि के गढ़ छेंकन हिन्दू तुरकों की लडाई और सिंघल द्वीप की पद्मिनी रानी की कहानी–भात थी। यह कहानी आदि से अत तक जिस रूप म थी उस ही उन्होंने – भाषा–चौपाई म कह दिया है।

१—डा० माताप्रसाद गुप्त जा० ग्र० पृ० १३६।

वस्तुत पृथ्वीराज रासो और पदमावत पर विचार करते हुए यह न भूलना चाहिए कि ये उत्कृष्ट कोटि के काव्य-ग्रन्थ हैं इतिहास ग्रंथ नहीं। इन ग्रन्थों में वर्णित घटनाओं अनतिहासिक कहना उनके प्रति अन्याय है। इन ग्रन्थों की ऐतिहासिक चीर-फाड़ से इनका वास्तविक सौन्दर्य का नहीं पाया जा सकेगा। आवश्यकता है इन ग्रंथ रत्नों के साहित्यिक सौन्दर्य के मूल्यांकन की जिससे ये काव्यसमीक्षा शाणोत्तीर्ण होकर अपना आलोक विकीर्ण कर सकें।[1]

कथानक रूढ़ि

यक्ष दोहद अशोक, हंस वर्णिकार चकोर प्रभृति कवि-समय वस्तुत एक प्रकार के विशिष्ट मोटिफ (अभिप्राय) हैं जो अत्यन्त प्रसंग गर्भी हैं। इनमें एक निश्चित कथा-खण्ड की व्यंजना होती है ये अपने आप में एक एक पूर्ण कहानी हैं।[2] 'भारतीय कथाओं में ऐसे अनेक लघु कथा व्यंजक प्रतीकों के प्रयोग हुए हैं। कथाओं में प्रयुक्त होने वाले इन प्रतीकों को कथात्मक मोटिफ[3] अभिप्राय या कथानक रूढ़ि कहा जाने लगा है। धीरे धीरे कथाओं में ऐसे अनेक सजातीय कथात्मक प्रतीकों के संयोग से कथात्मक 'टाइप' बन जाते हैं।

कथानक रूढ़ियों के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है पेंजर[5] और ब्लूमफील्ड[6] के। इस क्षेत्र में बेनिफी और डब्ल्यू नामन की कृतियां भी विशेष महत्वपूर्ण हैं। हिन्दी साहित्य में इस क्षेत्र में दिशा निर्देश का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयत्न आचार्य प० हजारीप्रसाद द्विवेदी का[7] है।

भारतीय कथाकार कथा को विकास देने के लिए एवं अभिलषित दिशा में मोड़ देने के लिए कतिपय सामान्य घटनापरक विशिष्ट अभिप्रायों तथा विषयपरक विश्वासों का आश्रय लेता है जो दीर्घकाल से हमारे देश के कथाकाव्यों में व्यवहृत

१—द्रष्टव्य—शिवसहाय पाठक कृत पदमावत का काव्य सौन्दर्य प्रथम अध्याय पृ० २६।

२—शिप्ले डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर फोक टेल पृ० २४७ (दी मोटिफ इज दी स्मालेस्ट रिकगनिजिबुल एलिमेंट दैट गोज टू मेक अप ए कम्पलीट स्टोरी)।

३—'मोटिफ' के लिए देखिए टामसन मोटिफ इन्डेक्स आव फोक लिटरेचर १९३२-३७ एस० टी।

४—वही पृ० २४८ (दी इम्पार्टेंस आफ दी टाइप इज टू शो दी वे इन व्हिच न रटिव मोटिफ्स फाम इन टू कान्वेंशनल कनसटस)।

५—पेंजर कथासरित्सागर (नया संस्करण) टानी कृत अनुवाद।

६—ब्लूमफील्ड, जर्नल आफ अमरिकन ओरियंटल सोसाइटी वाल्यूम ॰ ४, ४५।

७—आचार्य प० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल।

होते रहे हैं। इन विशिष्टता को पाश्चात्य विद्वानों ने मोटिफ की संज्ञा से अभिहित किया है। हिन्दी में कतिपय विद्वानों ने कथा-परिधान या कथारूप की संज्ञायें भी दी हैं। परन्तु ये शब्द मोटिफ के अन्तर्भूत अर्थ का सम्यक् द्योतन करते प्रतीत नहीं होते। प्रतीक प्रयोजन उपलक्षण और संकेत शब्द भी कथानक रूढ़ि के स्थानापन्न-रूप में प्रयुक्त हुए हैं।[1] मूलतः ये कथा के मोड़-संकेत (टर्निंग-प्वाइंट) या विस्तारक-बिन्दु होते हैं। आचार्य प० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस मोटिफ शब्द को कथानक-रूढ़ि की संज्ञा से अभिहित किया है। अध्ययन की सुविधा के लिए हम कथानक-रूढ़ि शब्द का ही प्रयोग करेंगे।

हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन लोक गृहीत और साहित्य क्षेत्र में समादृत कथाओं में कतिपय ऐसी सामान्य विशेषताएं उपलब्ध होती हैं जिनके मूलभूत कारण स्वरूप ये कथाएं एक साँचे में ढली सी जान पड़ती हैं। इन कथाओं की तुलनात्मक मीमांसा करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि इन कवियों ने कथानक को विस्तार देने और सुनिश्चित दिशा देने के लिए घटनापरक रूढ़ियों का आश्रय लिया है। जायसी ने पदमावत की कथा में अनेक चिर-परिचित कथानक रूढ़ियों का उपयोग किया है।

पदमावत में 'कथानक रूढ़ियों' का प्रयोग

पदमावत की कथा के संघटन एवं चयन पर विचार करते समय कथानक रूढ़ियों का विवेचन अत्यन्त आवश्यक हो जाता है क्योंकि प्राचीन भारतीय चरित काव्यों आख्यायिकाओं तथा अन्य कथाकाव्यों में इनके प्रयोग का प्राचुर्य है। भारतीय काव्यों में ही नहीं अपितु पारसी यूनानी एवं पाश्चात्य देशीय काव्यों में भी इनके प्रयोग का आधिक्य है।

भारतीय और यूनानी दोनों रोमांसों में प्रथम दर्शनजन्य प्रेम के सिद्धान्त की स्वप्न में प्रतिमा का एक दूसरे के लिए हृदय लगाने की और अच्छाई से बुराई की ओर त्वरित गति से भाग्य परिवर्तन की बात पुनः सौभाग्य का प्रत्यावर्तन अदम्य साहस सागर में जलयान का भग्न अलौकिक सौन्दर्य सम्पन्न नायक और नायिकायें प्रकृति और प्रेम के मधुर और सविस्तार वर्णन इत्यादि की प्राप्ति होती है।[2]

अपभ्रंश भाषा के चरित-काव्यों में हिन्दी के आदि कालीन काव्यों में

1—डा० नामवर सिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग पृ० ३१२।
2—आचार्य प० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७२।
3—ए० बी० कीथ ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर पृ० ३६५।

रासो में प्रेमाख्यानक काव्यों में तथा अन्य प्रकार के प्रबन्ध काव्यों में कथानक रूढ़ियों का खूब प्रयोग हुआ है। हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यों के सौंदर्य का संवर्धन करनेवाली इन कथानक रूढ़ियों का अध्ययन पूर्ववर्ती अपभ्रंश साहित्य की पीठिका पर अत्यन्त सुगमता से किया जा सकता है। श्री रामसिंह तोमर ने अपभ्रंश के चरित काव्यों एवं हिन्दी के प्रेमाख्यानक काव्यों में प्रयुक्त कतिपय कथानक रूढ़ियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।[1]

(१) इन दोनों प्रकार के प्रेम काव्यों में एक प्रेम-कथा की प्रधानता होती है।

(२) प्रेमारम्भ चित्रदर्शन रूप गुण श्रवण आदि से होता है।

(३) नायिका की प्राप्ति के लिये नायक का प्रयत्न बीच में कतिपय बाधाओं का समावेश।

(४) लौकिक द्वारा परलौकिक संकेत।

(५) सिंहल यात्रा या किसी सामुद्रिक यात्रा की योजना।

(६) राक्षस अप्सरा या किसी अन्य अलौकिक शक्ति के योग द्वारा कथा में आश्चर्य तत्व का मिश्रण इत्यादि।

श्री तोमर जी की सूची में थोड़ी सी ही कथानक रूढ़ि की चर्चा है। पद्मावत में ऐतिहासिकता नाम मात्र की है। उसमें आद्यन्त प्रायः घटनात्मक निजंधरी कथाओं का ही प्राधान्य है। कुछ ऐतिहासिक नामों के अतिरिक्त उसमें सर्वत्र संभावना और कल्पना विलास का ही सौन्दर्य है। इस विषय में ऐतिहासिक और निजंधरी कथाओं में विशेष भेद नहीं किया गया। केवल ऐसी बात का ध्यान रखा गया है कि संभाव्य कथा कथा है। चित्तौर के राजा से सिंहल देश की राजपुत्री का विवाह हुआ था या नहीं इस ऐतिहासिक तथ्य से कुछ लेना देना नहीं है हुआ हो तो बहुत अच्छी बात है न हुआ हो तो होने की संभावना तो है ही। राजा से राजकुमारी का विवाह नहीं होगा, तो किससे होगा? शुक नामक पक्षी थोड़ा बहुत मानव-वाणी का अनुकरण कर लेता है और भी तो कर सकता था। — — जब ये संभावनायें हैं तो क्या न शुक को सकलशास्त्र विलक्षण सिद्ध कर दिया जाय। इस प्रकार संभावना पक्ष पर जोर देने के कारण कुछ कथानक रूढ़ियाँ इस देश में चल पड़ी हैं। कुछ रूढ़ियाँ ये हैं[2]—

१—कहानी कहने वाला सुग्गा।

२—क—स्वप्न में प्रिय का दर्शन,

१—विश्वभारती खंड ५ अंक २, अप्रैल-जून १९४६ ई०।

२—प० हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७४-७५।

ख–चित्र म देखकर किसी पर मोहित हो जाना,

ग–भिक्षुको या वदियो के मुख स कीर्ति वणन सुनकर प्रमासक्त होना, इत्यादि ।

३—मुनि का शाप

४—रूप परिवतन

५—लिंग परिवतन

६—परकाय प्रवेश

७—आकाशवाणी

८—अभिनान या सहिदानी

९—परिचारिका का राजा से प्रेम और अत म उसका राजकन्या और रानी की बहन के रूप म अभिनान ।

१०—नायक का सौन्य ।

११—पटऋतु और बारहमासा से माध्यम से विरह वेन्ना ।

१२—हस-कपोत आदि से सदेश भजना ।

१३—घोडे का आखट के समय निजन वन म पहुच जाना माग भूलना मान सरोवर पर किसी सुदरी स्त्री या उसकी मूर्ति का दिखाई देना फिर प्रम और प्रयत्न ।

१४—विजय वन म सुदरिया से साक्षातकार ।

१५—युद्ध करके शत्रु से या मत्त हाथी के आक्रमण से या कापालिक की बलि वेदी से सुदरी का उद्धार और प्रम ।

१६—गणिका द्वारा दरिद्र नायक का स्वीकार और गणिका माता का निरस्कार ।

१७—भरण्ड और गरुड आदि के द्वारा प्रिय युगलों का स्थानान्तरण ।

१८—पिपासा और जल की खोज म जाते समय असुर-दर्शन और प्रिया-वियोग ।

१९—ऐसे शहर का मिल जाना जो उजाड हो गया हो ।

२०—प्रिया की दोहद-कामना की पूर्ति के लिए प्रिय का असाध्य-साधन का सकल्प ।

२१—शत्रु-सतापित सरदार को उसकी प्रिया के साथ शरण देना और फल स्वरूप युद्ध इत्यादि ।

वस्तुत भारतीय कथा-साहित्य म प्राचीन काल से ही इस प्रकार की कथानक-रूढियो के प्रयोग मिलते हैं । ईसवी सन की चौथी शताब्दी के आसपास

रचे गए संस्कृत साहित्य म, और पश्चात अपभ्रंश-साहित्य में इनकी बाढ-सी आ गई है। पदमावत की कथा-वस्तु के सघटन के लिए जायसी ने ऊपर दी गई कथानक रूढ़ियों (में से प्राय अनेक रूढ़ियो) का प्रयोग अत्यन्त चारुता से किया है। पद्मावत म इनके अतिरिक्त और भी प्रचलित कथानक रूढ़िया के दर्शन होते हैं, जस सिंहलद्वीप, देवमदिर जोगी और जोगी वेश सपत्नी ईर्ष्या आदि।[1]

जबतक कथाए लोक कण्ठ को अलकृत करती हैं और उन्हे काव्यबद्ध नही किया जाता तबतक उनकी रूढ़िया को लोक प्रचलित कहानी की सज्ञा दी जा सकती है किन्तु जब किसी भी तत्व का साहित्य में प्रयोग परपरा प्रचलित और रूढ हो जाता है तो उसे साहित्यिक-परम्परा की सज्ञा से अभिहित किया जाता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पद्मावतकार के समक्ष अपभ्रंशकाल से चली आती हुई चरितकाव्यो की, मौलिक कथाओ की चन्दायन से चली आती हुई प्रेमकथा काव्यो की एव फारसी मसनवियो की विशाल परम्परा थी। इन काव्यो म अनेक कथानक रूढ़ियों के प्रयोग मिलते हैं। जायसी ने लोक और साहित्य में प्रचलित कथाओ स ही इन रूढ़िया को गहीत किया है। डा० सत्येन्द्र का कथन है कि पद्मावत की सपूर्ण पथ्वीराजरासो की ही भाति पदमावत मे भी कथानक रूढ़ियो का उत्कृष्ट सौन्दर्य दर्शनीय है।

पदमावत मे प्रयुक्त विशिष्ट कथानक रूढियाँ

१—सिंहलद्वीप की पदिमनी।

२—सन्देशवाहक शुक।

३—यह शुक बहेलिया द्वारा पकडा जाकर चित्तौड के ब्राह्मण के हाथ बेचा जाता है।

४—राजा तोते को खरीदता है।

५—राजा की रानी इस भय से कि तोता राजा स पद्मिनी का रूप कहेगा तो वह उसके मोह मे पड जायगा तोते का मार डालना चाहती है पर तोता बच जाता है।

६—एक राजा जो शुक से पद्मिनी का रूप सुन कर उसके प्रेम में मग्न हो जाता है।

७—राजा अपनी पहली रानी और राजपाट को त्याग कर शुक के पीछे पीछे चलता है।

१—शिवसहाय पाठक पद्मावत का काव्य-सौन्दर्य, पृ० ३५–३६।

८–राजा नाव मे बठकर सात समुद्र पार करता है।
९–सिंहल मे अगम्य गढ मे पदिमनी का निवास।
१०–एक शिव जी के मंदिर मे राजा का तपस्या करना जहाँ वसत के दिन पद्मिनी का आना।
११–पदिमनी को देखकर राजा वेसुध, पदमावती उस वेहोश राजा की छाती पर कुछ लिखकर चली गयी।
१२–होश आने पर राजा का दुख।
१३–पावती द्वारा राजा के प्रेम की परीक्षा।
१४–महादेव जी द्वारा कृपा करके सिद्धि देना और गढ का माग बताना।
१५–राजा ने गढ़ पर चढाई की। एक अगाध कुण्ड म रात मे प्रवेश किया, वहाँ वज्र किवाड लगे मिले जिन्हें राजा ने खोला।
१६–राजा महलो म गया और पकडा गया, उसे सूली देने का आदेश।
१७–शिव पावती ने भाट बनकर पदिमनी के पिता को समझाया कि यह तो राजा है, पर उसने न माना।
१८–युद्ध की घोषणा जोगियो की ओर से हनूमान विष्णु तथा शिव को देखा तो राजा ने अधीनता मानी।
१९–पदमावती रत्नसेन को मिली।
२०–नागमती ने पक्षी के हाथ रत्नसेन के पास सिंहल सदेश भेजा।
२१–राजा पदमावती और बहुत सा धन ले सिंहल से विदा हुआ।
२२–समुद्र ने याचक बनकर धन मागा पर राजा ने न दिया।
२३–समुद्र म तूफान से भटक कर जहाज लका म पहुँचे जहा विभीपण का राक्षस उन्हें एक वात्याचक्रालोड़ित समुद्र म ले गया।
२४–तभी एक राज पक्षी उस राक्षस को लेकर उड गया।
२५–रत्नसन–पदमावती का जहाज टूक-टूक हो गया। दोना लकडी के टुकडा को पकड कर अलग-अलग बह गये।
२६–पद्मावती बहकर वहा पहुची जहा लक्ष्मी थी। लक्ष्मी ने उसे बचाया।
२७–लक्ष्मी ने समुद्र से रत्नसेन को लाने को कहा।
२८–समुद्र एकान्त म बिलपते रत्नसेन के पास पहुचा। ब्राह्मण बनकर और उन्हें डड के सहारे माया स पदमावती के द्वीप पर ले आया।
२९–लक्ष्मी ने पदमावती का रूप धर रत्नसेन की परीक्षा ली तब पदमावती से मिलाया।
३०–समुद्र ने पाँच चीजें भेंट देकर दोनों को विदा किया। पाँच चीजें–१ अमृत,

२, हंस, ३, सोनहा पक्षी, ४ शार्दूल और ५, पारस पत्थर।

३१—लक्ष्मी के दिए बाड़ म से रत्न लकर लाख–लश्कर जगन्नाथ म खरीदा चित्तौड़ को चले।

३२—नागमती को अदृश्य शक्ति ने पति के आने की सूचना दी।

३३—एक महा पण्डित राघव चेतन ने आश्चर्य काव्य सुना कर राजा को वश म कर लिया।

३४—उसने यक्षिणी सिद्धि से प्रतिपदा को दूज का चन्द्रमा दिखा दिया, राज पण्डिता का इस प्रकार अपमान।

३५—अपमानित पंडिता ने एस जादूगर को राजसभा म रखने के खतरे राजा को सुझाए। राजा ने राघव चेतन को देश निकाला दिया।

३६—राघवचेतन न जाते-जाते पद्मिनी का रूप देखा और पदमिनी का दिया कंगन लिया।

३७—पद्मिनी के रूप से वह मूर्छित हो गया।

३८—राघव ने दिल्ली अलाउद्दीन को पदमिनी का सौन्दर्य बताया तथा रत्नसेन के पास पाच अमोल रत्नों के होने की बात भी कही।

३९—अलाउद्दीन ने राघव के हाथ पत्र भेजा कि पद्मिनी को दिल्ली भेजो राजा ने मना किया। अलाउद्दीन ने गढ़ घेर लिया।

४०—दोनो म घमासान युद्ध होने लगा। किन्तु राजा ने फिर भी राजपवर पर नृत्य-अखाड़ा जोड़ा।

४१—कन्नौज के मलिक जहांगीर ने अलाउद्दीन के कहने से नीचे से एक बाण छोड़ एक नर्तकी को मार डाला।

४२—अलाउद्दीन ने सन्देश भेजा कि राणा पाचो नग दे दे पदमिनी नहीं लेंगे। राजा ने नग भेज संधि हुई।

४३—अलाउद्दीन चित्तौड़ देखने गया। राणा से शतरंज खेलते हुए झरोखे म आई हुई पद्मिनी को शीशे म देखा और मूर्छित हो गया।

४४—गढ़ से लौटते हुए शाह ने विदा के लिए साथ आए हुए राजा को प्रेम दिखाते हुए बन्दी बना लिया।

४५—इस वियोग म कुम्भलनेर के राजा देवपाल ने दूती को पद्मावती को फुसला लाने के लिए भेजा।

४६—दूती ने पदमावती को फुसलाना चाहा पर वह असफल रही और बड़ी बुरी तरह पीट कर निकाल दिया गया।

४७—शाह ने भी पातुर दूती को जोगिन बनाकर भेजा कि वह उन्हें ले आए।

४८—जोगिन न कहने से पदमावती जोगिन बनने को तयार हुई, पर सखियो ने रोक लिया।

४६—तब पदमावती के साथ गोरा-बादल ने रत्नसेन को छुडाने का वचन दिया।

५०—बादल की नव परिणीता वधू ने रोका पर वह रुका नही।

५१—सोलह सौ चडोल सजाए गए। पद्मिनी की पालकी मे लुहार बठा और डोलो म राजपूत। ये दिल्ली चले।

५२—शाह स कहा कि पदिमनी आपके यहा आई है पर वह रत्नसेन से मिलकर तब आपके यहा आएगी। रत्नसन स मिलने की आज्ञा दीजिए।

५३—इस विधि स रत्नसन को छुडा लिया गया। वह चित्तौड की ओर भेज दिया गया।

५४—बादल रत्नसेन के साथ चित्तौड लौटा गोरा ने शाह की सना को रोका युद्ध किया और मारा गया।

५५—राजा चित्तौड पहुचा। प्रसन्नता छा गई। पदमावती ने दवपाल की दूती का बात बताई।

५६—राजा ने देवपाल पर चढाई कर दी। उसे मार डाला।

५७—राजा को देवपाल की सल का घाव लग गया था। इमस वह भी मर गया।

५८—नागमती और पद्मावती सती हो गई।

पदमावत क इन अभिप्राया के विषय म डा० सत्येन्द्र का मत है कि 'अभिप्रायो की इस सूची को देखने मात्र से यह प्रतीत हो जाता है कि प्रत्येक अभिप्राय काफी विस्तत क्षत्र मे लोक कथाओ म उपयोग म आता रहा है। कोई भी मात्र ऐतिहासिक नही।'[1]

पदमावती रानी की कहानी भी भारतीय लोक और साहित्य की एक कथानक रूढि है —

मूलत पदमावती रानी की कहानी भारतवष की एक पुरानी कहानी है। अवध भोजपुर जनपद की तो यह एक अत्यन्त प्रसिद्ध कहानी मानी जाती है। किसी राजकुमारी का अपने पालित शुक से अपना हृदय खोलना, काम-व्यथा कहना शुक के माध्यम स किसी राजा या राजकुमार के यहा प्रणय-सदेश भेजना राजकुमार का आक्रमण या जोगी रूप म आगमन भवानी या शिव-मदिर म मिलन परिणय ग्रथि म सग्रथन, सागर-यात्रा जलयान ध्वस विविध प्रत्यूह अलौकिक शक्ति अथवा दवी शक्ति की सहायता पुर्नमिलन प्रभति तत्व भारतीय कथाओ म पाए जाते हैं।

१—डा० सत्येन्द्र मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन पृ०२७९ ८२

केवल भारतीय कथाओं में ही नहीं, फारसी कथाओं, ग्रीक-कथाओं, गौथिक कथाओं और अन्य पाश्चात्य देशीय प्राचीन या मध्ययुगीन कथाओं में भी इस प्रकार के कथा-तत्व मिल जाते हैं।[1]

पद्मावती की कथा अपने इसी रूप में लोक में प्रचलित थी।[2] भारतीय वाङ्मय में संस्कृत काल से पद्मावती की कथायें प्रसिद्धि पाती रही हैं। कल्कि पुराण[3] में आई हुई कथा के अनुसार पदमावती सिंहल देश के राजा वृहद्रथ की पुत्री है। कथा सरित्सागर[4] में भी लोक कथाओं से गृहीत पद्मावती की कथा वर्णित है। पृथ्वीराज रासो के पदमावती — समय[5] में भी पदमावती रानी की कहानी के मूल तत्व थोड़े से परिवर्तन के साथ ही हैं। शशिव्रता विवाह समय[6] में शुक के स्थान पर हंस की अवतारणा की गई है उस कथा के भी कुछ तत्व इससे मिलते हैं। इस कथा का मूल स्रोत वस्तुतः नल कथा में भी उपलब्ध है जहां नल के पास हंस आकर दमयन्ती के प्रति प्रेम और उसे प्राप्त करने की चेष्टा उत्पन्न कर देता है।[7] चन्दायन[8] का ढांचा लगभग पदमावती की कहानी जैसा ही है। इन दोनों काव्यों की कथाओं में सादृश्य है। सदयवत्समावलिंगा, मिरगावती, मुग्धावती, मधुमालती, प्रेमावती, सपनावती प्रभृति प्रेम कहानियां में भी प्रेम परक आख्यान वर्तमान थे। जायसी ने लिखा है कि 'सिंहलद्वीप की पद्मिनी रानी की कथा उनके समक्ष वर्तमान थी—

आदि अंत जस गाथा अहै। लिखि भाषा चौपाई कहै॥[9]

जायसी ने जो वस्तु ग्रहण किया है वह आदि से अंत तक एक ही गाथा है। यह गाथा लोक गाथा है इसमें सन्देह नहीं। वस्तुतः यह कहानी आरम्भ से अंत तक लोक कहानी की भांति प्रचलित हो गई थी। अकबर के समय में यह एक लोक कथा

१—पदमावत का काव्य-सौन्दर्य पृ० ३७।

२—वही, पृ० ३७।

३—साहित्य सन्देश (आदि पदमावती) भा० १३ अंक ६ पृ० २४६—५० (डा० दशरथ शर्मा का लेख)।

४—कथा सरित्सागर।

५—पृथ्वीराज रासो (पदमावती समय) हरिहरनाथ टंडन द्वारा सम्पादित।

६—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह — संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो शशिव्रता विवाह समय पृ०८६—७६।

७—डा० सत्येन्द्र आलोचना (पत्रिका) भाग ४ पृ० ३५।

८—मुल्ला दाऊद चन्दायन सं० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त।

९—पदमावत पृ० ६ (दो २४।५)।

के रूप म थी। आईने अकबरी, पृथ्वीराज रासो और टाड म इसी लोक कथा के वत्त दिए गए हैं। इससे यह स्पष्ट हो गया कि पदमावत की सम्पूर्ण कथा लोक कहानी है। उसका ऐतिहासिक वत्त से सम्बन्ध लोक क्षत्र म हो गया था। जिससे कहानी म ऐतिहासिक नाम आ गए हैं और लोक कहानी के अभिप्रायो की ऐतिहासिक व्याख्या लोक मानस मे प्रस्तुत कर दी गई जिसका काव्य रूप जायसी ने खड़ा किया।"

पद्मावत म जायसी ने पद्मावती रानी की इसी कहानी को गहीत करके चरम विकास का सौन्दय प्रदान किया है। पदमावती रानी की कहानी के समस्त लोकात्मक और काव्यात्मक रूपो मे जायसी के पदमावत का काव्य-सौंदय उत्कृष्ट कोटि का है।

पदमावत के कतिपय विशिष्ट अभिप्रायो का सर्वेक्षण[1]

(१) सिंहलद्वीप

भारतीय लोक जीवन और साहित्य म सिंहलदेश की पदिमनी नारियो (मुख्य रूप से राज कन्याओ) से विवाह के अनक समधुर और सुधारस स्नात कथा प्रसग आए हैं। श्री हषदेव की रत्नावली म इसी रूढि का आश्रय लिया गया है। कौतूहल की लीलावती म भी नायिका सिंहलदेश की राजकन्या ही है और जायसी के पद्मावत म भी वह सिंहल देश की ही कन्या है। इन सभी स्थानो पर सिंहल को समुद्र मध्य स्थितकोई देश माना गया है। अपभ्रंश की कथाओ म भी इस सिंहल देश का समुद्र स्थित होना पाया जाता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि सिंहलदेश की कन्यायें पद्मिनी जाति की सुलक्षणा होती है। जायसी के पद्मावत तक के काल म सिंहल के समुद्र स्थित होने की चर्चा आती है। मत्स्येन्द्रनाथ के सम्बन्ध म प्रसिद्ध है कि वे किसी स्त्री देश म विलासिता म फस गए थ और उनके सुयोग्य शिष्य गोरखनाथ ने वहा से उनका उद्धार किया था। योगि-सम्प्रदाया विष्कृति नामक एक परवर्ती ग्र थ म सिंहल को त्रिया-देश अर्थात स्त्री देश कहा गया है। भारत वष म स्त्री-देश नामक एक स्त्रीदश की ख्याति बहुत प्रचीन काल से है। इसी दश को कदलीदेश और बाद की पुस्तको म कजरीवन कहा गया है।[2] सिंहलदेश की सविस्तार चर्चा करते हुए प० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि नाथपथी वहा लिया म भी सिंहलद्वीप और स्त्रीदेश का अन्तर स्पष्ट नहीं हो पाता। गुरु

१–मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक-तात्विक अध्ययन डा सत्यन्द्र प० २७८–७९

२–आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल प० ७६–७७।

३– " नाथसम्प्रदाय ५४–५५–५६।

मत्स्येन्द्रनाथ अपना मत्स्यज्ञान भूलकर एक स्त्रीदेश में जा फँसे थे। वह कहाँ है ? 'मीनचेतन' और 'गोरक्ष विजय' में इस देश को कदलीदेश कहा गया है। योगी सम्प्रदायाविष्कृति में त्रियादेश अर्थात् सिंहलद्वीप कहा गया है। सिंहलदेश प्रथ गार की व्याख्या है। भारतवर्ष में स्त्रीदेश नामक एक स्त्रीप्रधान देश की ख्याति बहुत पुराने जमाने से है। लगभग एक दर्जन मतों का उल्लेख करते हुए पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि इन सब से यह अनुमान पुष्ट होता है कि कदलीदेश आसाम के उत्तरी पहाड़ में है। तन्त्रालोक की टीका और कौल ज्ञान निर्णय में यह स्पष्ट है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने कामरूप में ही कौल साधना की थी। इसलिए स्त्रीदेश या कदलीवन से वस्तुतः कामरूप ही उद्दिष्ट है। यह भी प्रमाणित होता है कि किसी समय हिमालय के पार्वत्य अंचल में पश्चिम से पूर्व तक एक विशाल प्रदेश ऐसा था जहाँ स्त्रियों की प्रधानता थी। मत्स्येन्द्रनाथ जिस स्थान पर गये आचार में फँस गये थे। वह स्त्रीदेश या कदलीदेश था जो कामरूप ही हो सकता है।[1] 'उड्डियान देश के दो भाग हैं एक का नाम सम्भलपुर है और दूसरे का नाम लंकापुरी। अनेक चीनी और तिब्बती ग्रन्थों में इस लंकापुरी की चर्चा आती है। उड्डियान में ही कहीं कोई लंकापुरी है। यह सम्भलपुर सिंहल हो सकता है यह जालन्धर पीठ के पास है।'[2]

सचमुच सिंहल द्वीप उड्डियान के समीप या वहीं कहीं होना चाहिए। पद्मावत का सिंहलद्वीप — कलिंग समुद्र तट से दूर सात सागर पार स्थित है। वहाँ पर अत्यन्त रूपवती लावण्य युक्तिका पद्मिनियाँ पाई जाती हैं। जायसी ने इन पद्मिनी नारियों के रूप सौन्दर्य का अत्यन्त उल्लसित वर्णन किया है—

सिंहलदीप कथा अब गावौं। औ सो पदमिनि बरनि सुनावौं ॥
पानि भरै आवैं पनिहारी। रूप सुरूप पदमिनी नारी ॥
पदुम गंध तिन्ह अंग बसाहीं। भँवर लागि तिन्ह संग फिराहीं ॥
कनक कलस मुखचंद दिपाहीं। रहस केलि सन आवहिं जाहीं ॥[3]

पद्मिनी शब्द मूलतः कामशास्त्र के नायिका प्रकरण से सम्बद्ध है। समस्त नायिकाओं में पद्मिनी श्रेष्ठतम है। वहाँ से चलकर यह शब्द लोक क्षेत्र में पहुँचकर अत्यन्त सुन्दरी का पर्यायवाची बन गया। श्री नाहटा जी ने राजस्थान में प्रचलित कई पद्मिनियों और पद्मावतियों का उल्लेख किया है।[4] मण्डोर नगरी

1—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी नाथ सम्प्रदाय पृ० ७८।

2—डा० प्रबोधचन्द्र बागची स्टडीज इन दि तन्त्राज (कलकत्ता १९३९) भाग १ और नाथ सम्प्रदाय ७ पृ० ७८।

3—ना० प्र० पत्रिका वर्ष ५९ अंक १ २०११।

4—पं० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली सिंहलद्वीप-वर्णन-खंड ३।१ और ८।१२, ४

म चार पदमावतिया का उल्लख है।

जायसी की पदमावती इसी सात सागर पार के सिंहलद्वीप के राजा गधव सेन की पुत्री है। उसकी प्राप्ति के लिए रत्नसेन चित्तौड से सिंहल गया था। जायसी ने नाथा की सिंहल गमन पदिमनी स्त्रिया के अलौकिक सौदय, सात सागर के प्रत्यूह सिद्धि प्राप्ति आदि से सम्बद्ध कथाओ को सुना था। गोरखनाथ की कथा प्राख्यात थी ही—सिंहल मे पदिमनिया की कल्पना गोरखपथी योगियो की देन है। महायानी बौद्धो म धान्यकटक और श्रीपवत सिद्धपीठ माने गए थे।[1] वहा जाकर ही किसी को पूण सफलता प्राप्त होती थी ऐसा उनका विचार था। सिंहल मे जाना और प्रम और योग की साधना म उत्तीण होना सिद्ध योगी के लिए अनिवाय वस्तु थी। वहां साक्षात शिव परीक्षा लते हैं और परीक्षोतीण होने पर अभीप्ट की अवाप्ति होती है। जायसी ने इन्ही सोतो से सिंहलद्वीप की कथा ली है।

पदमावत के रत्नसेन की भाति कबीर भी राम की खोज म सिंहल की यात्रा कर चुके थे—

कबिरा खोजी राम का गया ज सिंहलदीप।
राम तो घट भीतर रह या जो आव परतीति ॥[2]

जायसी के बहुत पहले अपभ्रंश के कई काव्यो म सिंहलद्वीप की कथानक रूढि का उपयोग हो चुका था। इसका उपयोग १०६५ ई० म रचित मुनि कनकामर कृत 'करकण्डुचरिउ' म भी हुआ है।[3] करकण्डु दक्षिण होते हुए सिंहल द्वीप भी गए थे। उन्होने सिंहल की राजकुमारी रतिवगा से विवाह भी किया था। जिनदत्त चरिउ (रचयिता लाखू या लक्खण) (१२७५) म भी सिंहलद्वीप का उल्लख मिलता है। नायक सिंहलद्वीप म जाकर राजकुमारी स विवाह करता है। धनपाल के 'भविसयत्त कहा' (१०वी शती ईस्वी) म भविष्यदत्त की पाच सौ व्यापारिया के साथ 'कचनद्वीप' की यात्रा का वणन है। दसवी शताब्दी म मयूर[4] कवि ने पदमावती कथा की रचना की थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस रोमटिक और मनोरम पदिमनियो के देश का हमारे साहित्य मे उपयोग प्राचीन काल से ही होना चला आ रहा है।

श्री गौरीशकर हीराचन्द ओझा का कथन भी इस सिलसिले मे उल्लेखनीय

१—महापण्डित राहुलसाकृत्यायन पुरातत्व—निबधावली पृ० १२६।
२—कबीर ग्रथावली ना० प्र० सभा पृ० ८१।
३—करजा जन ग्रथमाला स० प्रो हीरालाल जन १ १९३४ ई०।
४—हिन्दी साहित्य, प० ह० प्र० द्विवेदी पृ० २६०।

है। कुछ विद्वानो के कथनानुसार पदमावत का सिंहलद्वीप लका ही है। उनकी राय मे रत्नसेन का सिंहल की पदमावती से विवाह एक ऐतिहासिक तथ्य है। वस्तुस्थिति यह है कि रत्नसेन लगभग एक ही वर्ष चित्तौड का राजा रहा उसमे भी अंतिम छ महीने तक तो वह अलाउद्दीन से लडता ही रहा। ऐसी स्थिति मे उसका सिंहल जाना, वहा पदमावती के साथ एक वर्ष तक रहना और पद्मिनी के साथ चित्तौड लौटना सर्वथा असभव है। —— रत्नसेन के राज्य करने का जो समय निश्चित है उससे यही माना जा सकता है कि उनका विवाह सिंहल द्वीप अर्थात लका के राजा की पुत्री से नही किन्तु सिंगोली के सरदार की कन्या से हुआ हो।[1]

वस्तुत सिंहल द्वीप की ऐतिहासिकता और भौगोलिकता को लेकर बहस करना व्यर्थ है। राजा रत्नसेन का सोलह सहस्र राजकुमार जोगियो के साथ सात सागर पार करना महादेव के मडप मे पदमावती की प्रतीक्षा मे तप-साधना रत रहना, उसके आने पर मूर्छित हो जाना उसके जाने के पश्चात मूर्छा का दूर होना, महादेव पार्वती का कोढी-कोढिन के वेश मे आना परीक्षा लेना रत्नसेन की ओर से युद्ध में हनुमान महादेव प्रभृति देवताओ का आना, उसका पदमावती के साथ लौटना, लक्ष्मी-समुद्र की सहायता करना प्रभृति कथा बिंदु किसी ऐतिहासिक या भौगोलिक तथ्य की ओर इ गित नही करते। वस्तुत ये सब हमारे देश की कथाओ की कथानक रूढिया हैं।

उपयु क्त विवेचन से स्पष्ट है कि जायसी के पद्मावत में वर्णित सिंहलद्वीप न तो राजस्थान का सिंगोली है और न लका-द्वीप। जायसी लोक-कथाओं के सिंहलद्वीप नाथ सप्रदाय के सिंहल देश सबधी आख्यानो तथा अन्य प्रकार की सिंहल देश सबधी आख्यानो और कथाओ से परिचित थे। अत उन्होंने वही से ग्रहीत करके कल्पना और सभावना के सहारे सिंहल द्वीप का विस्तृत चित्रण किया है। पग पग पर कुआ बावरी। साजी बैठक और पावरी॥[2] आदि वर्णन कल्पना मूलक ही हैं।

१—ना० प्र० पत्रिका जिल्द १३ स० १९८९ (पद्मावत का सिंहल द्वीप लेख)।

२—इस वर्णन से स्पष्ट है कि यह अश शेरशाह के शासन काल म लिखा गया था, शेरशाह ने सराय कुर्ये, वृक्ष आदि की अत्यन्त सुन्दर व्यवस्था की थी। इस वर्णन से सन नौ स सैंतालिस अहा। कथा अरम्भ बैन कवि कहा॥ पर भी आलोक पडता है।

—इश्तियाक हुसैन कुरैशी दी ऐडमिनिस्ट्रेशन आव दी सुल्तानेट आव दलहा, पृ० २७० और एस० आर० शर्मा मुगल एम्पायर इन इण्डिया, पृ० १७१।

'पृथ्वीराज रासा' के पदमावती समय में भी पद्मावती[1] की जन्मभूमि को समुद्रशिखर गढ़ कहा गया है। वह उत्तरप्रदेश की कथा बताई गई है (जो कजरी वन प्रियादेश स्त्री देश सिंहल देश आदि के गडमंडल और उपभोग का सूचक है) यद्यपि पद्मावती समय में समुद्र यात्रा की विनियोजना नहीं है तथापि समुद्रशिखरगढ़ नाम ही उसके समुद्र सान्निध्य का सूचक है। कुछ लोगों का अनुमान है कि पद्मावत की रचना के अनन्तर पदमावती समय रासो में प्रक्षिप्त कर दिया गया है। फिर उसका राजा विजय देव[3] सिंहल के राजा विजयसिंह से मिलता जुलता है और जादू कुल में संभवत यातुधान कुल की याद बनी हुई है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारतीय सिंहल देश की पद्मिनी की कथा सम्बन्धी चिर परिचित कथानक रूढ़ि के ताने-बाने से जायसी ने पदमावत की कथा का संघटन किया है।

हीरामन शुक

शुक शुकी चक्रवाक और हंस भारतीय प्राचीन कथा-साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण पात्र है। ये पक्षी भारतीय परिवार में अत्यन्त सम्मानित तो है ही उस परिवार की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति-साहित्य-में भी इनका बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कथाओं में शुक सारिका हंस आदि तीन विशेष उल्लेखनीय काम करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं—

(१) कथा के कहने वाले—वक्ता और श्रोता के रूप में।

(२) कथानक की गति को अग्रसर करने वाले संदेशवाहक या प्रेम सम्बन्ध घटक के रूप में और

(३) कथा के रहस्यों को खोलने वाले अपाराद्ध भविष्य के रूप में। अन्तिम रूप में सारिका अधिक उपयोगी समझी गई है।[4] ये पक्षी प्रेम और मिलन कराने के साथ-साथ कभी कभी भावी दुर्घटना या मंगल की सूचना भविष्यवक्ता के रूप में देते हैं। शुक का उपयोग कथात्मक प्रतीक के रूप में संस्कृत-काल से ही होता आ रहा है।

१– पदमिनिय रूप पद्मावतिय मनहु काम कामिनि रचिय (पदमावती समय ।५)।
२– पूरब दिसिगढ़ गढ़नपति समुदसिखर अति दुग्ग (पदमावती समय १।)
३– तहु सुविजय सुरराजपति जादू कुलह अभग्ग। (वही। १)।
४–हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ७७।
५–आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ८८ और ७५।

संस्कृत और अपभ्रंश भाषाओं में निबद्ध कथाओं में शुक-शुकी का पुराना परम्परा प्रचलित रूप दर्शनीय है। बाणभट्ट की कादम्बरी शुक के मुख से कहलवाई गई है।[1] हर्षदेव की रत्नावली में नायिका के प्रेम रहस्य का उद्घाटन सुसंगता सारिका ने ही किया है। पार्श्वनाथ चरित के तीसरे सर्ग में एक सर्वशास्त्र पारगत शुक की कथा है। अमरुक शतक के एक श्लोक में नायक-नायिका के रात्रि के प्रेमालाप को प्रातः सास जिठानी के समक्ष शुक के दुहराने का मनोरंजक वर्णन मिलता है—

दम्पत्योर्निशिजल्पतो गृहशुकेनाकर्णितं यद्वच ।
तत्प्रातर्गुरु सन्निधौ निगदत श्रुत्वैव तारं वधू ॥
कर्णालम्बित पद्मरागशकलं विन्यस्य चञ्चुपुटे ।
व्रीडार्ता प्रकरोति दाडिम फलव्याजेन वाग्बन्धनम् ॥[2]

पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का मत है कि पृथ्वीराज रासो में शुक-शुकी वाला अंश अत्यन्त प्रामाणिक और महत्वपूर्ण है। रासो की पूरी कहानी शुक-शुकी के मुख से कहलवाई गई है।[3] हीरामन सुआ प्रेम-सम्बन्ध घटक के रूप में कनकामरकृत करकंडु चरिउ[4] में भी आया है। नलकथा में प्रेम-व्यापार संघटन का कार्य हंस ने किया है। रासो के 'समुद्रशिखरगढ'[5] की पद्मावती और दिल्ली के पृथ्वीराज के मध्य संदेश-वहन, प्रणय-संस्थापन और परिणय ग्रंथि निबंधन शुक ने ही किए हैं। पृथ्वीराज रासो के 'शशिव्रता-विवाह-समय'[6] में शशिव्रता और पृथ्वीराज के मध्य प्रणय-परिणय व्यापार का संघटक एक हंसवर्ण हंस है। यह इंछिनी और संयोगिता की प्रतिद्वंद्विता के समय इंछिनी की वियोग-विधुरा अवस्था की सूचना देकर राजा को बड़ी रानी (इंछिनी) की ओर उन्मुख करता है।

भारतीय कथा-काव्यों में व्यवहृत शुक-सम्बन्धी ये सब कथायें लोक-प्रचलित थी अब भी हैं। पद्मावत की कथा को गति देने के लिए जायसी ने इस रूढ़ि का आश्रय लिया है।

१—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ५८ और ७५।
२—अमरुक शतक : १६वाँ श्लोक।
३—हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ७६।
४—(सं०) प्रो० हीरालाल जैन : करकंडु चरित (कनकामरकृत) कारंजा जैन, ग्रंथमाला १९३४।
५—पृथ्वीराज रासो पद्मावती समय (सं० हरिहरनाथ टण्डन)।
६—(सं०) आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी : संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो पृ० ५६–७८।

पदमावत म हीरामन शुक प्रेम सम्बन्ध घटक सदेश-वाहक और परिणय ग्रथि ग्रथन म सहायक–रूपो म आया है। सुआखड, नागमती सुआ खड, 'बनिजारा खड राजा सुआ सवाद खड पदमावती सुआ भेंट-खड प्रभति स्थलो म वही मुख्य पात्र है। इन स्थलो पर जायसी ने अत्यन्त उल्लसित भाव स हीरामन की चर्चा की है।

हीरामन पद्मावती का पालित शुक है। वह स्वण वण का है। वह सकल कला पारगत है। पदमावती का वह प्राण परेवा है। उड जाने पर बहेलिए ने पकड कर उसे एक ब्राह्मण के हाथ बेंच दिया। ब्राह्मण स रत्नसेन ने क्रय कर लिया। शास्त्रविद प्रगल्भ शुक ने नागमती को अधरी रात सदश और पदमावती को आनन्दमय दिन सदश बता दिया। रानी रूठी। उसे मार डालने का उपक्रम हुआ। पारस रूपा पदमावती का नखशिख-वणन सुनकर राजा जोगी बना। राजा ने सिंहल की ओर प्रस्थान किया। शुक गुरु रूप म मार्ग-दशक बना। हीरामन ने ही राजा के मन म पद्मावती के प्रति आकषण और प्रेम उत्पन्न किया है। अन्त म युद्ध क पश्चात उपस्थित होकर उसने राजा के राजन्यतित्व का परिचय दिया है।

कई लोगो का आक्षप है कि शुक पुन अन्त तक काव्य म नहो आता। बात विचारणीय है किन्तु जब उसका काय ही समाप्त हो गया तो उसके उपस्थित होने की क्या आवश्यकता? वह अपने काम का सम्यक प्रतिपादन करके अपना आलोक विकीण करके चला जाता है। जायसी का हीरामन विद्वान और रूपवान है—

तब ही व्याध सुआ ल आवा। कचन वरन अनूप सुहावा॥

शुक पडित और वेदज्ञ—सुए ने रत्नसेन स अपना परिचय देते हुए कहा था—

चतुरवेद हौ पडित हीरामन मोहि नाव।
पदमावति सौं मर्खौ सेव करौ तहि ठाव॥

इससे स्पष्ट है कि वह चारो वेदो का पण्डित है। उसकी भाषा की क्या वणना की जाय?

जो बोल तो मानिक मू गा। नाहि त मौन बाधि रह गू गा॥
मनहु मारि मुख अमृत मेला। गुरु होइ आप कीन्ह जग चेला।

सचमुच गुरु रूप शुक एक उत्तम कोटि का माग दशक था।

विशेष

कुछ विद्वानो का विचार है कि हीरामन का मूल रूप हीरा–मणि रहा होगा किन्तु हमारे यहा हीरामणि को परम ज्ञानामृत का पान कराने वाला तत्व नहा माना गया। सभवत हीरामन का मूल स्रोत हिरण्मय है। हमारे यहा कहा भी गया है—

'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहित वपु ।
सत्यधर्माय दृष्टये त्व पूषन्नपावृणु ॥'

अमृत तत्व इसी हिरण्मय पात्र के ही माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। पदमावत म भी हीरामन पारस, अमृत या परम तत्व रूपा पदमावती को प्राप्त कराने का काय कराता है। उसका और अमृत रूपा परमात्म ज्योति पदमावती का सान्निध्य है।

वस्तुत भारतीय कथा साहित्य की यह एक कथानक रूढि है कि शुक वेदज्ञ पण्डित और मानव की भाषा म अपने विचारो का व्यक्त करने वाला कहा जाता है। विश्व की अनेक प्राचीन कथाओ मे भी पक्षी का यह रूप मिल जाता है। सोमदेव के कथासरित्सागर की कई कहानियो म शुक का उपयोग हुआ है। पाटलिपुत्र के नरेश 'विक्रमकेशरी' के पास 'विदग्धचूडामणि' नाम का एक शुक था। उसी की सलाह से राजा ने मगध देश की राजकन्या चन्द्रप्रभा से विवाह किया था।[1]

उपयुक्त विवचन स यह स्पष्ट हो जाता है कि हीरामन (शुक की कथा) भारतीय जीवन और साहित्य की एक अत्यन्त प्राचीन लोक कथा है जो साहित्य में विविध रूपो म व्यवहृत होती चली आयी है। वस्तुत जायसी ने हीरामन शुक की कथा अवध जनपद मे प्रख्यात हीरामन की कथा स भारतीय लोक और साहित्य म समादत हीरामन की कथानक रूढि स गहीत किया है। यह न तो किसी इतिहास की वस्तु है और न पुराण की। वस्तुत यह लोक कथाओ से गहीत दीघ काल से प्रचलित कथानक रूढि है। इस कथानक मे इतिहास खोजने के लिए मूड मारना बेकार है। इसे अमक ने अमुक से चुराया है या यह अमुक पुराण मे चुराई गई है कहकर इसे पौराणिक कथा मानना या चुराये जाने की बात कहना उचित नही है। दो या तीन स्थानो पर ही इसका उपयोग नही हुआ है कई स्थानो पर हुआ है।[2] उपयुक्त विवचन के प्रकाश म चन्द्रसेन शास्त्री का यह मत है कि कि यह कथा अमुक पुराण से चुराई गई है निमूल सिद्ध हो जाता है।[3]

फारसी साहित्य म प्रेम सम्बन्धी घटक पक्षी मानसरोवर, बारहमासा समुद्र-यात्रा, तूफान जलयान ध्वस, शिवमन्दिर शकर पारवती प्रभृति अनेक रूढिया

१–पेंजर ओशन आव दि स्टोरी पार्ट ६ च० ७, प० १८३ २६७।
२–डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल प० ७६ (पदमावत का काव्य-सौंदय प ४३–४४ स उद्धत)।
३–पदमावत की कथानक रूढियों के विशेष अध्ययन के लिये देखिये पदमावत का काव्य सौंदय प० ३१—४६।

नही मिलती। यह अवश्य है कि नायिका के सौंदय के चित्रण के लिए फारसी के कवि नख शिख वणन[1] अवश्य करते हैं। पदमावत की कथानक रूढ़ियां प्राय भारतीय कथाओं की परम्परा ग्रथित रूढ़ियां है। इसमे लोक कथाओं की रूढ़ियां पवारा से ली गई रूढ़ियां लोक गीतों की रूढ़ियां काव्यो महाकाव्यो की रूढ़ियां आदि का सुगुफन पद्मावत म द्रष्टव्य है। इसकी रचना म मसनवी काव्यों की कुछ रूढ़ियाँ या परम्परायें अवश्य मिलती हैं पर इसकी अनेक कथा रूढ़ियां का मूल स्रोत फारसी साहित्य म नही है। उनका मूल प्राय भारतीय है।

१—लैला मजनूं, निजामी पृ० ३,—३४।

५

प्रबंध काव्य के रूप मे पद्मावत का संघटन

महाकाव्य के भारतीय लक्षण

संस्कृत के लक्षण ग्रंथों में महाकाव्य सम्बन्धी आदर्शों एवं लक्षणों का और उसके विविध अंगों का विशद विवेचन किया गया है। भामह[1] ने 'काव्यालंकार' में लिखा है कि महाकाव्य एक सर्गबद्ध रचना है। उसके चरित्र महान होते हैं उसमें सालंकार शिष्ट भाषा का प्रयोग होता है। उसमें सदाश्रयता होती है। उसमें नायक के अभ्युदय के साथ ही मंत्र दूत प्रयाण आदि का सविस्तार वर्णन होता है। वह पंच संधियों से युक्त होता है। उसमें चतुर्वर्ग (धर्म अर्थ काम और मोक्ष) का विधान किया जाता है अर्थ का प्राधान्य दिया जाता है। नायक का वंश कार्यादि विश्रुत होना चाहिए। उसमें इतर व्यक्ति के उत्कर्ष प्रदर्शन के लिए नायक का वध नहीं दिखाया जाता।'

१— 'सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च तत ।
अग्राम्य शब्दमर्थ्यं च सालंकारं सदाश्रयम ॥
मन्त्रदूत प्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत ।
पंचभि संधिभिर्युक्त नातिव्याख्येयमृद्धिमत ॥
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत ।
युक्त लोकस्वभावेन रसैश्च सकलै पृथक ।
नायक प्रागुपन्यस्य वंशवीर्य श्रुतादिभि ।
न तस्य वध ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया ।
यदि काव्य शरीरस्य न स व्यापितयेष्यते ।
न चाभ्युदयभाक्तस्य मुधादौ ग्रहणस्तवौ ॥''

आचार्य दण्डी[1] रुद्रट[2] हेमचन्द्र[3] विश्वनाथ[4] मम्मट पंडितराज जगन्नाथ ने भी महाकाव्य के स्वरूप की विवेचना की है।

विश्वनाथ कविराज ने महाकाव्य के स्वरूप का निरूपण इस प्रकार किया है—

(१) महाकाव्य की कथा सर्गबद्ध होनी है।

(२) इसका नायक कोई देवता सद्वंशीय क्षत्रिय अथवा धीरोदात्त गुणों से युक्त व्यक्ति होता है। एक ही वंश में उत्पन्न अनेक राजा भी इसके नायक हो सकते हैं।

(३) श्रृंगार वीर और शांत में से कोई एक रस प्रधान होना है। अन्य रस उसके अंगी होकर आते हैं।

(४) वह नाटक की पंचसंधियों से समन्वित हो।

(५) कथानक इतिहास प्रसिद्ध या सज्जनाश्रित होना चाहिए।

(६) उसमें चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म अर्थ काम और मोक्ष में से किसी एक के फल की प्राप्ति हो।

(७) उसमें आशीर्वादात्मक नमस्कारात्मक या वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण

१— सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलायत्तं चतुरोदात्त-नायकम्।
नगरार्णवशैलर्तु-चन्द्रार्कोदयवर्णनैः।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि॥
अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसंधिभिः॥
सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जनम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलंकृति॥
न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदङ्गैः काव्यं न दुष्यति।
यद्युपात्तेषु सम्पत्तिराराधयति तद्विदः॥

—दण्डी काव्यादर्श परि० १ १४—२० (शास्त्री रंगाचार्य रेड्डी तथा वेलंकर (पूना) गवर्नमेंट आफ इण्डिया स्टडीज) पृ० ३६।

२—रुद्रट, काव्यालंकार परि० १६ ७—१६।

३—हेमचन्द्र काव्यानुशासन अध्याय ६ पृ० ३३०।

४—विश्वनाथ, साहित्य-दर्पण, परिच्छेद ६ श्लोक ३१५—३२८।

होता है।

(८) उसमें खल निन्दा और सज्जन स्तुति भी हो।

(९) इसके सर्गों की संख्या आठ से अधिक हो। सर्ग न अधिक छोटे हों और न अधिक बड़े। प्राय प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग होता है। सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन उचित है। एक सर्ग में विविध छन्दों के प्रयोग भी होते हैं। प्रत्येक सर्ग के अन्त में भावी कथा की सूचना होनी चाहिए।

(१०) महाकाव्य में सन्ध्या सूर्य चन्द्र रात्रि, प्रदोष अन्धकार, दिन, प्रातःकाल मध्याह्न मृगया पर्वत ऋतु वन समुद्र संयोग वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर यज्ञ, युद्ध रण-प्रयाण विवाह मन्त्र पुत्रोत्पत्ति आदि का प्रयोग सांगोपांग वर्णन होना चाहिए।

(११) महाकाव्य का नाम कवि, कथावस्तु, नायक अथवा किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर होना चाहिए। सर्गों के नाम सर्गगत कथा के आधार पर होने चाहिए।

(१२) प्राकृत में निर्मित महाकाव्यों में सर्ग आश्वास संज्ञक होते हैं और अपभ्रंश में कुडवक का विधान होता है और प्राकृत में स्कन्धक और गलितक तथा अपभ्रंश में उसके योग्य अन्य विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग होता है।

आचार्य हेमचन्द्र ने संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश के महाकाव्यों को दृष्टि में रखते हुए महाकाव्य की निम्नलिखित परिभाषा दी है–

पद्य प्राय संस्कृत प्राकृतापभ्रंश ग्राम्यभाषानिबद्धभिन्नान्त्यवृत्त सर्गाश्वास सन्ध्यवस्कन्धबन्धं सत्सन्धि शब्दार्थ वैचित्र्योपेत महाकाव्यम्।[1]

हेमचन्द्र ने संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश तथा ग्राम्य भाषाओं में भी महाकाव्य का होना स्वीकार किया है। उनका कथन है कि महाकाव्य संस्कृत में सर्गबन्ध, प्राकृत में आश्वासकबन्ध, अपभ्रंश में सन्धिबन्ध और ग्राम्यापभ्रंश में अवस्कन्धबन्ध होते हैं।

महाकाव्य विषयक पाश्चात्य आदर्श

महाकाव्य के लिए पाश्चात्य साहित्य में 'एपिक' (Epic) शब्द का प्रयोग किया जाता है। मूलत एपिक (Epic) शब्द इपोस से व्युत्पन्न है। 'इपोज' का अर्थ है शब्द[2]। इसका प्रयोग कहानी, वक्तव्य अथवा गीत के लिए होता था। कालान्तर में एपिक शब्द रूढ़ि रूप में एक वीरकाव्य विशेष का पर्याय बन गया, जिसमें किसी महान घटना का भव्य शैली में वर्णन हो।

१–हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, आठवाँ अध्ययन।

२–द्रष्टव्य, डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर (शिप्ले)।

अरस्तू ने ट्रेजेडी और एपिक (महाकाव्य) की तुलनात्मक मीमांसा करते हुए महाकाव्य के लक्षणों पर प्रकाश डाला है। उसका कथन है कि जहाँ तक शब्दों के माध्यम से महान चरित्रों और उनके कार्यों के अनुकरण का सम्बन्ध है महाकाव्य और दुःखान्त की (ट्रेजेडी) में समानता प्राप्त होती है किन्तु कतिपय दृष्टिकोणों से दोनों में पर्याप्त वैभिन्य हैं। महाकाव्य में आदि से लेकर अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग होता है। उसमें आदि मध्य और अन्त से युक्त कार्य की अन्विति होती है। वह प्रकथन प्रधान होता है। उसके कार्य-व्यापार में समय की सीमा नहीं रहती। दुःखान्त की (ट्रेजेडी) का कार्य व्यापार २४ घण्टे तक का ही होता है।[1]

इस प्रकार अरस्तू के मतानुसार महाकाव्य में किसी गम्भीर पूर्ण एवं उदात्त कार्य की कार्यमय अनुकृति होती है। उसकी भाषा शैली में मनोरमता एवं अलङ्कृतता आवश्यक गुण है। इसमें कार्यान्विति व्यापक कथा एवं महान चरित्रों की योजना की जानी चाहिए। फ्रेन्च आलोचक ली बोस्सु ने महाकाव्य को प्राचीन घटनाओं के चित्रण के लिए एक छन्दोबद्ध रूपक के रूप में स्वीकार किया है।[2] लार्ड केम्स के मतानुसार महाकाव्य में वीरतापूर्ण कार्यों का उदात्त शैली में वर्णन होना है।[3] हाब्स ने भी वीरतापूर्ण प्रबन्धात्मक कविता को ही महाकाव्य माना है। डेवनाट का कथन है कि महाकाव्य का आधार प्राचीन घटनाओं पर प्रतिष्ठित होना चाहिए। लुकन ने प्राचीन घटनाओं की अपेक्षा अर्वाचीन घटनाओं को ही महाकाव्य के लिए अधिक उपयुक्त माना है। टसो ने मध्यम मार्ग को महत्व प्रदान करते हुए कहा है कि महाकाव्य की घटनायें न अत्यन्त नवीन हों और न अत्यन्त प्राचीन।[4]

पाश्चात्य समीक्षकों ने मुख्य रूप से महाकाव्य के दो भेद बताये हैं—

(१) विकसनशील महाकाव्य (एपिक आफ ग्रोथ) और

(२) कलात्मक महाकाव्य (एपिक आफ आर्ट)

इन्हें ही उन्होंने प्रामाणिक और साहित्यिक की संज्ञायें दी हैं। विकसनशील महाकाव्य एक व्यक्ति की रचना न होकर अनेक व्यक्तियों की रचनाओं का सुसंबद्ध काव्य रूप होता है[5] जैसे इलियड ओडसी (हिन्दी में पृथ्वीराज रासो)। कलात्मक

१–लामटियस अरिस्टाटिल्स पोइट्री, पृ० १३

२–इबिड पृ० २।

३–एम० डिक्सन इंग्लिश एपिक ऐण्ड हीरोइक पोइट्री पृ० १८।

४–वही पृ० ४२।

५–एपिक ऐण्ड हीरोइक पोइट्री पृ० १।

६–एम० डिक्सन इंग्लिश एपिक एण्ड हीरोइक पोइट्री पृ० २७।

महाकाव्य किसी व्यक्ति की वह काव्यकृति है जिसमें स्वाभाविकता के स्थान पर आलंकारिकता या कृत्रिमता होती है। यह रचना विद्वानों के लिए होती है। काव्य के सुनिर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार इसकी रचना होती है। इसमें कलापक्ष मुख्य रहता है। इसमें भाषा शैली का सौन्दर्य और काव्य रचना का उदात्त रूप मिलता है[1] जैसे इनियड एवं पराडाइज लास्ट।

रघुवंश और कुमारसम्भव इसी के अन्तर्गत आते हैं। पाश्चात्य आलोचकों के महाकाव्य-विषयक प्रधान लक्षण इस प्रकार है—

(१) कथानक महाकाव्य का कथानक प्रकथन प्रधान लोक-विश्रुत विशाल और महत्वपूर्ण होना चाहिए।[2] केम्प ने प्राचीन लुकन ने अर्वाचीन और टसो ने नाति प्राचीन और नाति अर्वाचीन घटनाओं को महाकाव्य के विषय के लिए ठीक बताया है।[3] लोक विश्रुतता और ऐतिहासिक घटनात्मकता का कथानक में होना आवश्यक माना गया है। मात्र कवि कल्पना पर आधारित कथानक महाकाव्य के लिए उपयुक्त नहीं है।

(२) नायक नायक का गुणी शूर और विजयी होना आवश्यक है। एक से अधिक नायक भी हो सकते हैं। नायक देश या जाति का प्रतिनिधित्व करता हुआ चित्रित किया जाता है अत उसको विजयी रूप में चित्रित करना आवश्यक है क्योंकि उसकी विजय देश या जाति की विजय है। नायक का युद्धप्रिय होना चाहिए।

(४) अति प्राकृत और अलौकिक तत्वों का मिश्रण—नाटकों में तो दर्शकों को आश्चर्यचकित करने की ही आवश्यकता रहती है पर महाकाव्यों में उससे आगे बढ़कर असम्भव अविश्वसनीय और आश्चर्योत्पादक बातों एवं घटनाओं के भी वर्णन होते हैं। मानव की प्रकृति है कि वह श्रोताओं को विस्मय विमुग्ध करने के लिए बात को अलकृत रूप में या बढ़ा-चढ़ाकर उपस्थित करता है। यही कारण है कि महाकाव्य में अलौकिक और अति प्राकृत शक्ति वाले देवो, व्यक्तियों या घटनाओं का वर्णन होता है।[4] महाकवि को असम्भव लगने वाली सम्भव घटनाओं की अपेक्षा सम्भव लगने वाली असम्भव घटनाओं का चित्रण[5] करना पड़ता है। इसीलिए इनियड ओडसी, पराडाइज लास्ट प्रभृति महा-

१—एन० एबरक्राम्बी दी एपिक पृ० ४६।
२—वही, पृ० ४८।
३—एम डिक्सन इंग्लिश एपिक एण्ड हीरोइक पोइट्री पृ० २३।
४—एन० एबरक्राम्बी, दी एपिक पृ० ५५।
५—दि एपिक पृ० ४८। ६—वही पृ० ५०।

काव्यों में देवता, अलौकिक शक्ति, भूत-प्रेत आदि का समावेश किया गया है। शायद महाकाव्य की कथा को महत्वपूर्ण और प्रभविष्णु बनाने के लिए और काव्य सीमा की सविस्तरता के लिए पाश्चात्य समीक्षकों ने महाकाव्य में अलौकिक तत्वों का मिश्रण आवश्यक कहा है।[1]

(४) भाषा छन्द का आदि से अन्त तक असाधारण शालीन गरिमा-सम्पन्न प्रयोग होना आवश्यक है।

(५) अन्य-जातीय भावों का प्राधान्य-महाकाव्य किसी जाति की प्रतिनिधि रचना होती है। अन्य पात्रों का चित्रण विविध दृश्यों स्थानों उपाख्यानों, घटनाओं आदि के मनोमय ढंग से उपस्थापन के साथ ही कथा की एक सूत्रता और लक्ष्य की एकता भी महाकाव्य में आवश्यक तत्व माने गये हैं।

महाकाव्य-सम्बन्धी भारतीय और पाश्चात्य मतों की समीक्षा करने पर सिद्धान्तत विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। कथा छन्द नायक अन्य पात्र देवता प्रभृति तत्व लगभग दोनों में समान हैं। भारतीय काव्यों में शृंगार, वीर और शान्त में से एक को प्रधान माना जाता है। पाश्चात्य आलोचकों ने केवल वीर रस को ही प्रधान माना है। उन्होंने जातीय भाव के समावेश का आग्रह किया है। इस विषय में डिक्सन का कथन उल्लेखनीय है— महाकाव्य सभी देशों में एक जैसा है। पूर्व और पश्चिम उत्तर और दक्षिण-सर्वत्र उसकी आत्मा और प्रकृति में एकता है। महाकाव्य कहाँ भी सर्जित हो उसकी रचना सुशृंखलित होती है। वह प्रकथन प्रधान होता है उसका सम्बन्ध महान चरित्रों से होता है उसमें महत्काय गरिमामयी शैली महत् चरित्र आदि की सुनियोजना की जाती है। उपाख्यानों एवं सविस्तार वर्णनों से उसका कथानक समृद्ध बनाया जाता है।[1]

पदमावत का महाकाव्यत्व

पद्मावत के महाकाव्यत्व पर विचार करते हुए डा० शम्भूनाथसिंह ने लिखा है— पद्मावत अलंकृत या साहित्यिक महाकाव्य है अर्थात उसकी रचना एक विशिष्ट पद्धति द्वारा परम्परा प्राप्त साहित्यिक शैली में हुई है। उसकी शैली में विकसनशील महाकाव्यों में प्राप्त होने वाले अनेक तत्व-अलौकिक और अतिप्राकृत शक्तियों में विश्वास कथात्मकता आदि-वर्तमान हैं, उदाहरण सिंहल की भयंकर यात्रा जहाज-टूटना अन्य साहसिक कार्य अलौकिक अति प्राकृत शक्तियों का मानव

१-एल एबरक्राम्बी दी एपिक पृ० ६५।

२-एम० डिक्सन इंग्लिश एपिक एण्ड हीरोइक पोइट्री पृ० २२।

३-वही पृ० २४।

के साथ सम्बन्ध जादू की सिधिगुटिका शास्त्र और मानव भाषा भाषी शुक आदि रोमाचक तत्वो का भी समावेश किया गया है। इसम रोमाचक तत्वो पर विचार करने के पश्चात् उन्होने लिखा है "पदमावत को हमने रोमाचक शैली का महाकाव्य माना हैं। इसमे रोमाचक तत्व बहुत हैं पर व कवि के महदुद्देश्य और प्रतीकात्मक शैली काव्यात्मक वणन तथा उत्तराद्ध की कथा के ऐतिहासिक आधार के कारण नियन्त्रित है। अत यह कथा आख्यायिका न होकर रोमाचक शैली का महाकाव्य है। १

प० रामचद्र शुक्ल का मत है कि प्रबन्ध क्षेत्र के भीतर दो सवश्रेष्ठ काव्य हैं रामचरित मानस और पदमावत। पदमावत हिन्दी साहित्य का एक जगमगाता रत्न है। २

१–सुसगठित और जीवन्त कथावस्तु

पदमावत म चित्तौड के राजा रतनसेन और सिंहल की राजकुमारी की प्रमकथा वर्णित है। सम्पूर्ण काव्य की कथा को दो भागो म विभाजित किया जा सकता है–पूर्वाद्ध और उत्तराद्ध। पूर्वाद्ध की कथा लाक विश्रुत पदमावती रानी की कहानी है। उत्तराद्ध की कथा मे अलाउद्दीन के आक्रमण जौहर आदि ऐतिहासिक तथ्यो की छौंक देकर उन ऐतिहासिक सी कथा बना देने का सफल प्रयत्न है। प्रासगिक एव आधिकारिक कथाओ म पूरी अन्विति वतमान है। इसकी कथा पर्याप्त विस्तृत और व्यापक है। उसम कल्पना और इतिहास का अद्भुत समन्वय मिलता है। सम्पूर्ण कथा रत्नसेन और पदमावती से सुसबद्ध है। सम्पूर्ण कथा का विभाजन ५८ खडो मे किया गया है। खण्ड न विशेष बड़े हैं और न विशेष छोटे। कुछ खण्ड अवश्य छोटे हैं पर अपने छोटे रूप म भी वे प्रभविष्णु एव महत्व पूर्ण हैं। रत्नसेन जन्मखण्ड रत्नसेन-शाती खण्ड और रत्नसेन साथी खण्ड अल्प विस्तार वाले खण्ड हैं किन्तु इस कारण कथा प्रवाह म कही भी अवरोध उत्पन्न नही होता। कथा म आदि से अन्त तक कवि की महान प्रतिभा और कल्पना विलास का सौन्दय दर्शनीय है। अलाउद्दीन का दर्पण म पदमावती की छाया दखना रतनसेन का वन्दी रूप म स्त्री गमन देवपाल की दूती का प्रसग प्रभति अनेक घटनाएं किसी न किसी ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित हैं किन्तु पदमावत म वे सवथा कवि-कल्पित हैं।

स्पष्ट कि इसका विषय महान और व्यापक है। इसम प्रेम पीर ने काव्यात्मक सौन्दय का चरम विकास हुआ है। अरस्तू के अनुसार जीवत कथानक का गुण

१–डा० शम्भूनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास प० ४२८।
२–प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रथावली प० २१०, (भूमिका)।

यह है कि उसम आदि, मध्य और अत अर्थात उसका सर्वांग समानुपातिक विकास हुआ हो। पदमावत म पद्मावती विवाह तक की घटनाय कथा के आदि भाग के अनगत है। विवाह के बाद राघव चतन देश निकाला मत्र तक की कथा मध्य भाग के अन्तगत है और उसके पश्चात की कथा अन्त के रूप म है। स्पष्ट ही इसके आदि मध्य और अन्त म समानुपातिक विकास द्रष्टव्य है।

पदमावत म नाटकीय सन्धियो और कार्यावस्थाओ का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। उत्तरार्ध की कथा म प्रारम्भ प्रयत्न प्राप्त्याशा नियताप्ति और फलागम, इन पाचो कार्यावस्थाओ एव मुख प्रतिमुख, गर्भ विमर्श एवं निर्वहण इन पाच सन्धियो की सम्यक् योजना हुई है। इस कथा म रत्नसेन को फल (पद्मावती) की प्राप्ति हो जाती है। उत्तरार्ध की कथा म मुख्य रूप स प्रारम्भ प्रयत्न और प्राप्त्याशा की ही सयोजना हुई है। अत म नियताप्ति और फलागम को प्रत्यक्षत न दिखाकर नियत और अवसान नामक पाश्चात्य ढग की कार्यावस्थायें दिखलाई पडती हैं।

"पदमावत का काय है पदमावती का सती होना। सम्बन्ध निर्वाह के ही अन्तर्गत गति के विराम का भी विचार कर लेना चाहिए। यह कहना पडता है कि पदमावत म कथा की गति के बीच बीच अनावश्यक विराम बहुत से हैं। मार्मिक परिस्थित के विवरण और चित्रण के लिए घटनाचक्र का जो विराम पहले कह आये हैं वह तो काव्य के लिये अत्यन्त आवश्यक विराम है। क्योंकि उसी म सारे प्रबन्ध म रसात्मकता आती है।"[1] जायसी का सम्बन्ध निर्वाह अच्छा है। एक प्रसग से दूसरे प्रसग की श्रृखला बराबर लगी है। कथा प्रवाह खण्डित नहीं है।[2] पदमावत का कथानक पूर्णत सुसंघटित और गुम्फित है। इस प्रकार अरस्तू की कार्यान्वित और पाश्चात्य देशीय कार्यावस्थाओ की कसौटी पर पदमावत पूर्णत खरा उतरता है। पद्मावत में कोई भी घटना कथा की दृष्टि स अनावश्यक नहीं है। सभी घटनाय और प्रसग एक दूसर स कार्य कारण शृखला म बध है। प्रत्येक घटना कथा प्रवाह म योग देती है। पद्मावत का कथानक पूर्णत सुसघटित कलात्मक और अन्विति युक्त है।

२ नायक

कथावस्तु के अनन्तर महाकाव्य के तत्वो म नायक तत्व को प्रमुख स्थान दिया जाता है। वस्तुत नायक के रूप म एक महत्तम चरित्र की सृष्टि के लिए ही कवि महाकाव्य की सर्जना म प्रवृत्त होता है। इस प्रसग म कवीन्द्र रवीन्द्र

१– प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रथावली (भूमिका) पृ० ७५।
२–वही पृ० ७२।

का कथन उल्लेख्य है—

मन में जब एक वेगवान अनुभव का उदय होता है तब कवि उसे गीति-काव्य में प्रकाशित किए बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार जब मन में एक महत् व्यक्ति का उदय होता है, सहसा जब एक महापुरुष कवि के कल्पना राज्य पर अधिकार आ जमाता है, मनुष्य चरित्र का उदार महत्व मनश्चक्षुओं के सामने आविर्भूत होता है तब उसके उन्नत भावों से उद्दीप्त होकर, उस परम पुरुष की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के लिए कवि भाषा का मंदिर निर्माण करते हैं। उस मंदिर की भित्ति पृथ्वी के गम्भीर अन्तर्देश में रहती है, और उसका शिखर मेघों को भेदकर आकाश में उठता है। उस मंदिर में जो प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है उसके देवभाव से मुग्ध और उसकी पुण्य किरणों से अभिभूत होकर नाना दिग्देशों से आ-आकर, लोग उसे प्रणाम करते हैं। इसी को कहते हैं महाकाव्य।[१]

पद्मावत का नायक रत्नसेन महाकाव्योचित नायक है। नायक में बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, शौर्य, औदार्य, गाम्भीर्य, धैर्य, स्थैर्य, माधुर्य, कला-कुशलता, विनय, निरोगता, शुचिता, स्वाभिमान, प्रियवादिता, जनानुरागिता, वाग्मिता, मन्त्र, यशस्व, दक्षता, तत्वशास्त्रज्ञता, अग्राम्यता, शृंगारिकता, सौभाग्य आदि विशेषतायें होती हैं।[२] रुद्रट[३] और विश्वनाथ कविराज ने भी थोड़े अंतर के साथ इन्हीं गुणों को आवश्यक माना है। विश्वनाथ कविराज के अनुसार धीरोदात्त नायक वह है जो अपनी प्रशंसा नहीं करता और जिसमें क्षमाशीलता, अतिगम्भीरता, स्थिर प्रकृतित्व, महासत्त्व, गर्वीलापन और दृढ़ निश्चयता हो।[४]

इस दृष्टिकोण से पद्मावत का रत्नसेन एक महत्वपूर्ण धीरोदात्त नायक है। सभी गुणों से अलंकृत दृढ़ प्रतिज्ञ, त्यागी, विनयी, स्वाभिमानी, क्षमाशील, गम्भीर और शूर स्वभाव वाला आदर्श प्रेमी है। वह सद्वंशीय क्षत्रिय राजा और महान शूर वीर योद्धा भी है। रत्नसेन पर्याप्त गम्भीर है, पदमावती के प्रति उसका प्रेम उन्माद नहीं है, वह एक दृढ़ और स्थिर प्रेम है। सिंहल से लौटते समय राघव चेतन से कही गई उसकी विनयशीलता की घोषणा करती है।[५]

१—मेघनाद वध (हिन्दी अनुवाद) भूमिका पृ० १३७।
२—वाग्भट काव्यानुशासन, अध्याय ५ (नायक प्रकरण)।
३—रुद्रट काव्यालंकार अध्याय १२ (७—८ श्लोक)।
४—विश्वनाथ साहित्यदर्पण, अध्याय ३ श्लोक ३०।
५—वही श्लोक ३१।
६—डा० श्यामसुन्दरदास रूपकरहस्य, पृ० ६४—६५।

नायक रत्नसेन का चरित्र एक आदर्श प्रेमी त्यागी और बलिदानी के रूप म महान है।

अन्य पात्रा म नागमती आदश भारतीय पतिप्राण देवी है शुक गुरु प्रतीक और अप्राकृत शक्ति वाला पक्षी है। पद्मावती आदश भारतीय प्रमिका के रूप मे (भी) चित्रित है। अलाउद्दीन और राघवचेतन असत पक्ष क प्रतिनिधि पात्र हैं। देवपाल भी उन्ही की तरह है।

रसात्मकता और प्रभावान्विति

भावोद्रेक एव रसात्मकता महाकाव्य का एक प्रमुख तत्व है। पदमावत म मुख्य रूप म आद्यन्त रति भाव की व्यञ्जना हुई है इसलिए इसमे शृगार रस का प्राधान्य है। इसम करुण वीभत्स वीर शान्त प्रभृति रसा का भी समावश है। इसके आरम्भ और अत मे शान्त रस का चित्रण हुआ है। इस काव्य के अन्त म करुण प्लावित शान्त रस की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। जायसी ने अन्तिम दश्य का वणन इस प्रकार किया है कि यहा निर्वेद ही निसार पा सका है। अन्तिम दश्य से अत्यन्त शान्तिपूर्ण उदासीनता बरसती है। कवि की दृष्टि म मनुष्य जीवन का सच्चा अन्त करुणा क्रन्दन नहीं पूर्ण शान्ति है। राजा के मरने पर रानिया केवल विलाप ही नहीं करती हैं बल्कि इस लोक से अपना मुँह फर कर दूसरे लोक की ओर दृष्टि किए आनन्द के साथ पति की चिता म बठ जाती हैं। इस प्रकार कवि ने सारी कथा का शान्त रस म पयवसान किया है।[1] इतना होने के बावजद प्रम और रति भाव के प्राधान्य के कारण शुक्लजी[2] ने भी इस शृगार रस प्रधान काव्य माना है। डा० शम्भूनाथसिंह का कथन है कि यदि जायसी का लक्ष्य लौकिक प्रेम-पथ के माध्यम से आध्यात्मिक प्रम पथ का निरूपण है और इसके लिए यदि उन्होंने प्रतीक और सकेत पद्धति द्वारा आध्यात्मिक प्रम की स्पष्ट व्यजना भी की है। तो उसम रहस्यवाद की दृष्टि से शृगार रस का नहीं शान्त रस को ही प्रधान मानना पडेगा। अन्तिम दृश्य म जो रस व्यजित होता है वह उसी अप्रस्तुत पक्ष के शान्त रस की अन्तिम परिणति है। जिस तरह सूर मीरा और कबीर शृगारिक वणन शान्त रस के अन्तगत माने जाते हैं उसी तरह पदमावत का समग्र प्रभाव शान्त रस समन्वित है शृगार रस वाला नहीं। अत लौकिक कथा की दृष्टि स पद्मावत में विप्रलम्भ शृगार अगी है और आध्यात्मिक दृष्टि स वह शान्त रस प्रधान काव्य है।

१—प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी-ग्रथावली (भूमिका) प ६८।
२—वही प० ७१।
३—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, डा० शम्भूनाथ सिंह, प० ४७७।

ध्यानपूर्वक देखने से स्पष्ट हो जायगा कि जायसी ने कहा-कहीं कथा के बीच में अवसर आने पर अलौकिक सत्ता की ओर संकेत किया है पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि इसमें प्रस्तुत कथा ही गौण है। वस्तुतः रत्नसेन और पद्मावती रानी की कहानी ही इसमें प्रधान है और इसमें शृंगार रस की ही प्रधानता है। इसमें शृंगार रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। संयोग और वियोग दोनों के सुन्दर चित्र पद्मावत में दर्शनीय हैं। वियोग शृंगार के वर्णन में जायसी एक महान् कलाकार के रूप में पूर्ण सफल हैं। रत्नसेन नागमती, रत्नसेन पद्मावती को आलम्बन मानकर कवि ने संयोग शृंगार के कुछ चित्र उपस्थित किए हैं। परन्तु वर्णन की योजना संयोग शृंगार के उद्दीपन के रूप में है। चित्तौड़ आने पर नागमती का मान और रत्नसेन की मधुर मरसना में संयोग शृंगार का ही सौंदर्य है। विवाह के अनन्तर रत्नसेन-पद्मावती-समागम का चित्र भी संयोग शृंगार का ही है।

विप्रलम्भ शृंगार में जायसी ने अपनी प्रतिभा का सुन्दर प्रयोग किया है। नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी विप्रलम्भ शृंगार की एक अनमोल निधि है। इस विरह वर्णन में गम्भीरता है और है विरह-व्यथा की सच्ची अनुभूति। पद्मावत का बारहमासा वियोग शृंगार के उद्दीपन विभाव के रूप में वर्तमान है।

रत्नसेन के चित्तौड़ से सिंहल की ओर विदा होते समय उसकी माता और अन्य रानियों का क्रन्दन एवं उनकी शोक विह्वल दशा करुण रस के अन्तर्गत है। सिंहल से रत्नसेन की विदाई भी करुण रस कारक सुन्दर स्थल है। लक्ष्मी समुद्र खंड में भयानक रस मिलता है। युद्ध के प्रसंगों में वीर रस की प्रधानता है। यद्यपि जायसी मुख्य रूप में शृंगार के कवि हैं फिर भी पद्मावत में अन्य रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। अलाउद्दीन के साथ युद्ध में गोरा की मृत्यु तथा देवपाल के साथ रत्नसेन की मृत्यु की घटनाओं में पाश्चात्य ढंग की नियति की अवस्था दिखाई पड़ती है और अन्त में नागमती पद्मावती का सती होना स्त्रियों का जौहर बादल की मृत्यु और चित्तौड़ पर अलाउद्दीन का अधिकार आदि घटनाओं में पाश्चात्य ढंग की अन्तिम कार्यावस्था-अवसान का रूप दिखाई पड़ता है। इस तरह पद्मावत का अन्त पाश्चात्य महाकाव्य के ढंग का है उसमें पाश्चात्य नाटकों के ढंग की प्रभावान्विति मिलती है। इन प्रभावान्विति में पाश्चात्य काव्यों की तरह उद्वेग और अशान्ति मूलक तीव्रता और स्नायु पर दबाव देने वाली वेदना नहीं है बल्कि शान्तिपूर्ण गम्भीरता और चिरस्थायी निमग्नता और पवित्रता है जो पाठकों के चित्त को अभिभूत कर उन्हें असाधारण भावलोक में पहुंचा देती हैं। इस तरह उसमें रसात्मकता के साथ गम्भीर प्रभावान्विति भी मिलती है।[1]

1–डा० शम्भूनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ४७८।

वस्तु-वर्णन

युग जीवन का एक सम्पूर्ण और जीवन्त चित्र उपस्थित करने के लिए महाकाव्य में जीवन के अनेक प्रसंगों और प्रकृति के विविध रूपों का विशद कलात्मक और प्रभविष्णु वर्णन होता है। ये वर्णन वैविध्य रसाभिव्यक्ति एवं भावोद्रेक के सहायक होकर आते हैं।

पदमावत में वस्तु वर्णन के प्रसंगों में जायसी ने अपनी साधारण वर्णन शक्ति का परिचय दिया है। सिंहल द्वीप जलक्रीडा सिंहलद्वीप यात्रा, समुद्र विवाह युद्ध नखशिख, आदि के माध्यम से जायसी ने पदमावत में विविध वस्तुओं के वर्णनों की योजना करते हुए अपने काव्य कौशल का परिचय दिया है। सिंहलद्वीप वर्णन के अन्तर्गत अमराई सरोवर, कुएं नगर हाट दुर्ग प्रभृति वर्णनों का समावेश है। अमराई सरोवर नगर और दुर्ग के वर्णनों में पर्याप्त सजीवता और जीवन्तता है। सिंहल के पनघट का हुलसित वर्णन और वहाँ की पनिहारिनियों का विलासित सौन्दर्य जायसी की कवित्व शक्ति और वर्णन की कुशलता एवं सुन्दरता के परिचायक हैं। मानसरोदक खंड में जलक्रीडा वर्णन के साथ ही पदमिनी के रूप का अनुपम चित्रण किया गया है।

सरवर तीर पदिमनी आई। खोपा छोरि केस मुकुलाई॥१
ससि-मुख अंग मलयगिरि बासा। नागिन झाँपि लीन्ह चहुँपासा॥
ओनई घटा परी जग छाहा। ससि के सरन लीन्ह जनु राहा॥
छपि गे दिनहिं भानु कै दसा। लइ निसि नखत चाँद परगसा॥
भूलि चकोर दीठि मुख लावा। मेघ घटा महँ चाँद देखावा[१]॥

सात समुद्रों के काल्पनिक वर्णन भी मनोरम हैं। भीषणता दुस्तरता, ताड पहाड की तरह लहरें आदि के चित्रण देखते बन पडे हैं। रत्नसेन-पदमावती के विवाह वर्णन के प्रसंग में हिन्दुओं में प्रचलित विवाह-पद्धति का सुन्दर वर्णन किया गया है।[२] युद्ध-वर्णन अत्यन्त जीवन्त हैं। सैनिकों का भिडना शस्त्रों की झनकार हाथी घोडों की चिंघाड, शस्त्र प्रहार, रुण्ड-मुण्ड का गिरना रक्त-स्राव प्रभृति वर्णनों में पूर्ण सजीवता वर्तमान है।

इस प्रकार पदमावत में वस्तु वर्णन का वैविध्य और विस्तार दिखाई पडता है। नगर दुर्ग यात्रा मंत्रणा जलक्रीडा दूत युद्ध पुत्रोदय विवाह विरह संयोग आदि के वर्णनों से एक युग का समग्र रूप चित्रित हो गया है। इन

१—जा० ग्र० पदमावत मानसरोदक खंड दोहा ४।
२—शिवसहाय पाठक पदमावत का काव्य-सौन्दर्य।

वर्णनों में यद्यपि कहीं-कहीं अनावश्यक विस्तार लक्षित होता है फिर भी इनसे कथा में रसात्मकता और सौन्दर्य की निष्पत्ति होती है।

महत्कार्य

भारतीय लक्षण ग्रन्थकारों के मतानुसार महाकाव्य का कार्य महत् होना चाहिए। पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि पदमावत में कार्य है पदमावती का सती होना।[1] 'रामकृष्ण शिलीमुख'[2] का कथन है कि पदमावती की प्राप्ति ही कार्य है। डा० शम्भूनाथसिंह[3] का कथन है कि पदमावत, पृथ्वीराज-रासो या आल्ह खंड में 'महत्कार्य' ढूँढना बेकार है। उनका कथन है कि पदमावत में पाश्चात्य दर्शों के नाटकों की तरह कार्य रूप या नायक का विनाश दिखाया गया है।

यह स्पष्ट है कि जायसी का लक्ष्य है प्रेम पथ का निरूपण। दृश्यकाव्यों की ही भाँति प्रबन्ध काव्य के विन्यास में भी 'कार्य' महत्त्वपूर्ण होता है। अरस्तू ने इसे 'युनिटी आव ऐक्शन' (कार्यान्वय) की संज्ञा दी है। शुक्लजी का कथन ठीक ही है कि पदमावत का कार्य है पदमावती का सती होना। समस्त घटनायें और वृत्तान्त 'कार्य' तक पहुँचाने में सहायक है। इसी दृष्टि से हीरामन शुक और राघव चेतन का उतना ही वृत्त आया है जितने का कार्य की ओर अग्रसर करने में योग है। पदमावत की समस्त घटनायें कार्य से सम्बद्ध हैं।

प्राचीन विद्वानों की यह मान्यता थी कि कार्य महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। नैतिक सामाजिक या धार्मिक प्रभाव की दृष्टि से कार्य बड़ा होना चाहिए जैसा 'रामचरितमानस' में रावण का वध है और 'पदमावत' में पद्मिनी का सती होना। आधुनिक काव्य मर्मज्ञ यह बात नहीं मानते। आर्नल्ड ने प्राचीन आदर्श का समर्थन किया है। जो हो जायसी का भी यही आदर्श है। उन्होंने अपने काव्य के लिए महत्कार्य चुना है जिसका आयोजन करने वाली घटनाएँ भी बड़ी डीलडौल की हैं जैसे बड़े-बड़े कुँवरों और सरदारों की तैयारी राजाओं और बादशाहों की लड़ाई इत्यादि। इसी प्रकार दृश्य वर्णन भी ऐसे आते हैं जैसे गढ़ वाटिका राजसभा राजसी भोज और उत्सव आदि के वर्णन।[4]

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली (भूमिका) पृ० ७३—७४।
२—रामकृष्ण शिलीमुख सुकवि-समीक्षा पृ० ७१ (हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास में उद्धृत)।
३—डा० शम्भूनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास पृ० ४३५।
४—पं० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली भूमिका पृ० ७४—७५।

उदात्त भाषाशैली

महाकाव्य में भाषा शैली की गरिमा आवश्यक है। महान विषय के प्रतिपादन और उदात्त भावों की उत्कृष्ट व्यंजना के लिए महाकाव्य की भाषा और शिल्प-विधान में भी गरिमा आवश्यक है। विद्वानों का कथन है कि 'पदमावत' में महाकाव्यों (संस्कृत के) चरित काव्यों (अपभ्रंश के) और मसनवी काव्यों के तत्वों का सुन्दर समावेश हुआ है।[1] इसीलिए पदमावत की शैली में इन तीनों प्रकार के काव्यों की गरिमामयी शैली के दर्शन होते हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि पदमावत में खंडों या सर्गों का विभाजन नहीं है। कथा आद्यन्त धारा प्रवाह रूप में लिखी गई है। इसी कारण यदि कोई कहे कि पदमावत सर्ग बन्ध रचना नहीं है तो यह ठीक नहीं होगा क्योंकि पदमावत की अनेक प्राचीन प्रतियों में कथा को खंडों में विभाजित किया गया है। ग्रियर्सन शुक्लजी डा० वासुदेव शरण अग्रवाल आदि विद्वानों ने अपने संस्करणों में भी खण्डों की व्यवस्था की है, और जब तक कोई अत्यन्त प्राचीन कवि की समसामयिक या उसकी मूलप्रति नहीं मिलती जिसमें खण्ड विधान न हो तब तक यह बात स्वीकार्य नहीं है। दूसरे प्राकृत अपभ्रंश में बिना खण्ड विधान या सर्ग विधान के भी प्रबन्ध काव्य लिखे गए हैं। तीसरे यदि सर्गबद्धता महाकाव्य का स्थिर और अन्तरिक लक्षण नहीं है। अतः खंड—विभाजन न होने पर भी पदमावत के महाकाव्य में किसी प्रकार की बाधा नहीं उपस्थित होती। अन्य बाह्य लक्षणों में प्रारम्भ में नमस्क्रिया, आशीर्वचन वस्तु निर्देश आदि के विधान पदमावत में मिलते हैं। गउडवहो की भांति इसका भी मंगलाचरण बहुत लंबा है। समासोक्ति प्रतीक, सज्जन और रोमांचक शब्दाश्रय सौन्दर्य पदमावत में दर्शनीय हैं। पदमावत की भाषा ठेठ अवधी है। उसमें बीच बीच में पुरानी अपभ्रंश प्रयोग भी मिलते हैं। उसमें सर्वत्र व्याकरण सम्मत ठेठ अवधी भाषा का निराला माधुर्य भरा हुआ है। मुहावरे सूक्तियाँ-लोकोक्तियाँ कहावतें उसके सौन्दर्य-वर्द्धन के लिए अत्यन्त स्वाभाविक रूप में सुप्रयुक्त हैं। जायसी की भाषा भावाभिव्यंजना में सर्वत्र पूर्णतः समर्थ स्वाभाविक और सरस है।

पदमावत में आद्यन्त दोहा-चौपाई की कडवक पद्धति अपनाई गई है। *अपभ्रंश के अनेक चरित काव्यों में भी इसी प्रकार की कडवक पद्धति के दर्शन होते* हैं। पदमावत में जायसी ने प्रत्येक कडवक में सात अर्द्धालियाँ साढ़े तीन चौपाइयाँ रखी हैं—उन्होंने सभी कडवकों में चौपाई छंद का और कडवकांत में घत्ता रूप में दोहा छंद का प्रयोग किया है।

पदमावत में कहने की शैली अत्यन्त अकृत्रिम, प्रवाहपूर्ण, सरस और प्रभविष्णु है। अतः सरल किन्तु गंभीर, सहज किन्तु उदात्त माधुर्यपूर्ण किन्तु गरिमा

नयी शैली के प्रयोग की दृष्टि से पदमावत हिन्दी में अपने ढंग का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।"[1]

महान् उद्देश्य

महाकाव्य के निर्माण के मूल में महान् उद्देश्य का होना आवश्यक है। 'चतुवर्ग' में से किसी एक की प्राप्ति को भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य का उद्देश्य स्वीकार किया है। आत्म परिष्कार और मानव-जीवन का उत्थान भी महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य माना गया है सत् की असत् पर न्याय की अन्याय पर पुण्य की पाप पर विजय का चित्रण करता हुआ महाकाव्यकार शिवम् लोकमंगल को ही साध्य मानता है।

डा० शम्भूनाथ सिंह का विचार है कि पद्मावत के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उसका उद्देश्य महान है। 'वह कवि की महती काव्य प्रतिभा से पुष्ट होकर इस काव्य को हिन्दी के अन्य सभी प्रबन्ध काव्यों से भिन्न एक निराले और उच्च पद पर बिठा देता है। काम मोक्ष की प्राप्ति उसका उद्देश्य है। यह अवश्य है कि पदमावत का कवि लौकिक प्रेम कथा के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अनुभूति का आभास भी देता चलता है। अतः मोक्ष प्राप्ति ही पद्मावत का प्रधान फल है। -- अतः अप्रत्यक्षतः पदमावत का फल मोक्ष है।'[2] भले ही अप्रत्यक्ष रूप से पदमावत का उद्देश्य मोक्ष हो पर जायसी ने प्रत्यक्ष रूप से 'काम' को ही प्रतिपाद्य माना है सिद्धान्त प्रतिपादन आध्यात्मिकता आदि की बातें पद्मावत में मिल सकती हैं पर है वह काव्य प्रायः शृंगार-प्रधान ग्रन्थ-जिसमें मुख्य रूप से काम ही साध्य है।

व्यावहारिक और कलात्मक दृष्टिकोणों से देखने पर भी पदमावत का उद्देश्य महान दिखाई पड़ता है। 'पद्मावत में मानवता के उस सच्चे स्वरूप का उद्घाटन किया गया है जो प्रेम, उदारता त्याग सौहार्द सहिष्णुता और बलिदान की व्यापक भूमिका पर प्रतिष्ठित है। अतः उसका उद्देश्य व्यापक और उदार मानवता का प्रसार और मानव हृदय का विस्तार और परिष्कार करना है। मनुष्य इस काव्य-सरोवर में स्नान करके स्वाभाविक और विशुद्ध मानव बनकर निकलता है। उसका हृदय कोमल उदार और प्रशस्त बन गया रहता है। शुक्लजी का कथन है कि 'एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूप रंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव

१—डा० शम्भूनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४७०।
२—वही पृ० ४२६।

करने लगता है। जायसी ने अपने महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसी गुप्त तार को झङ्कृत करके मनुष्यमात्र के चाहे वह जिस जाति धर्म या वर्ग का हो हृदय को जागृत और प्रेम प्लावित करने का प्रयत्न किया है।

इस उद्देश्य के लिये उन्होंने मानव की रागात्मिका वृत्ति–काम को व्यापक अर्थों में गृहीत किया है। इसी के माध्यम से जायसी ने प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य उपस्थित किया। उन्होंने हिन्दू और मुसलमान के बीच की दूरी को स्नेहामृत से भर कर एकत्व की प्रतिष्ठा की है। इसीलिये जायसी के अध्यात्मवाद के अन्तराल में उदार और प्रेम प्रवण मानवतावाद की सरस्वती प्रवाहित हो रही है। इस प्रकार मानवतावाद की प्रतिष्ठा-जाति धर्म आदि की कृत्रिम दीवारों को तोड़ कर मानव मात्र को एक सूत्र में बांधना ही पदमावत का उद्देश्य है और जायसी अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में पूर्ण सफल हुए हैं।

महती प्रतिभा, मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि एवं तज्जन्य गाम्भीर्य

महती प्रतिभा-सम्पन्न कवि जब किसी महत् शक्तिमयी प्रेरणा से उद्वेलित और अभिभूत होता है तो वह महाकाव्य की सर्जना में प्रवृत्त होता है। महाकवि मार्मिक स्थलों का सुन्दर विधान करता चलता है। वह जीवन के मर्मस्पर्शी प्रसंगों का पारखी होता है। ये मर्मस्पर्शी चित्रण मानव हृदय की रागात्मिका वृत्ति को जागृत कर देते हैं। *महाकवि के प्रबन्ध में रस से नीरस पद्य में भी रसवत्ता आ जाती है—*

रसवत्पद्यान्तगत नीरस पद्यानामिव पद्यरसेन प्रबन्ध रसवत्तैया
रसवत्ता हगीकारात।[1]

पदमावत के घटनाचक्र के अन्तर्गत ऐसे स्थलों का पूरा सन्निवेश है जो मानव की रागात्मिका वृत्ति को उद्बोधित कर देते हैं उनमें हृदय को भाव मग्न कर देते हैं। जायसी ने वस्तु-वर्णन के रूप में और पात्र द्वारा भाव-व्यञ्जना के रूप में इन प्रसंगों को कथा प्रवाह के बीच रखा है। *वस्तुतः कथावस्तु की गति इन्हीं स्थलों तक पहुंचने के लिए होती है।* पद्मावत में ऐसे स्थल अनेक हैं जैसे मायके में कुमारियों की स्वच्छन्द क्रीड़ा, रत्नसेन के प्रस्थान पर नागमती आदि का शोक प्रेम मार्ग के कष्ट, रत्नसेन को सूली की व्यवस्था, उस दण्ड के संवाद से विप्रलम्भ की दशा में पद्मावती की करुण महानुभूति, रत्नसेन और पद्मावती का संयोग सिंहल से लौटते समय सामुद्रिक दुर्घटना से दोनों की विह्वल स्थिति

१–पं० रामचन्द्र शुक्ल जा० ग्रं० भूमिका पृष्ठ २।
२–विश्वनाथ साहित्य दर्पण।

नागमती की विरह दशा वियोग–सदेश रत्नसेन की प्रणय स्थिति अलाउद्दीन के सदेश पर रत्नसेन का गौरवपूर्ण रोष और युद्धोत्साह गोरा बादल की स्वामिभक्ति और क्षत्रतेज स भरी प्रतिज्ञा अपनी सात नत्रा भोली भाली वधू की ओर से पीठ फर कर बादल का युद्ध के लिए प्रस्थान देवपाल की दूती के आने पर पद्मावती द्वारा सतीत्व गौरव की अपूर्व व्यजना पदमावती और नागमती का उत्साहपूर्ण सहगमन चित्तौर की दशा आदि। इनम स पाच स्थल तो बहुत ही अगाध और गम्भीर हैं। नागमती वियोग गोरा-बादल प्रतिज्ञा कुवर बादल का घर से निकल कर युद्ध के लिए प्रस्थान दूती के निकट पदमावती द्वारा सतीत्व-गौरव की व्यजना और सहगमन। ये पाचो ग्रथ के उत्तरार्द्ध मे हैं। पूर्वार्द्ध म तो प्रम ही प्रम है मानव जीवन की और उदात्त वत्तियो का जो कुछ समावेश है वह उत्तरार्द्ध मे है।'[1] ये प्रसग अत्यन्त मार्मिक सरस और प्रभविष्णु हैं।

सचमुच जायसी की प्रतिभा महनीय थी। उन्होने ब्रह्म जीव और ससार की गत्थी को सुलझाने के लिए जिस जीवन्त कथानक की कल्पना की है और उसमें अत्यन्त ममस्पर्शी स्थलो का चुनाव करके हृदय का समग्र रस निचोड कर जिस प्रकार अपने काव्य को आकषक और रसमय बना दिया है और साथ ही लौकिक शक्ति की अनुभूति को उन्होने जिस कुशलता से ऊर्ध्वगामी बनाकर आध्यात्मिक जगत की ओर अग्रसर किया है वसा सामान्य प्रतिभा वाला कवि नही कर सकता है। काव्य रचना का उद्देश्य तो कुतबन मझन उसमान आदि सबका वही था जो जायसी का था किन्तु उन कवियो म जायसी जसी स्वाभाविक और शक्तिमती काव्य प्रतिभा नहीं थी। जायसी की काव्य प्रतिभा के दशन सबस अधिक पदमावत के रूप सौन्दय और विरह की मनोदशाओ के वणन म होते है। जिनम उन्होने परम सत्य के चिरतन सौन्दय और अनिवचनीय सौन्दय को मानव–जगत मे प्रतिबिम्बित करके भी उसकी विराटता और अनन्तता को नष्ट नही होने दिया साथ ही उस अनिवचनीय वण्यवस्तु की आभा का पूणत झलका भी दिया है। समासोक्ति एव प्रतीकात्मक शैली की अभिव्यक्ति विराट काव्य चेतना की ही देन हो सकती है।

पदमावत म प्रम उत्साह वराग्य क्रोध करुणा भक्ति भय आदि स्थायी भावो की गम्भीर अभिव्यजना हुई है। क्या वविध्यपूण मनोदशाओ की मार्मिक अभिव्यक्ति और क्या अनभूतियो की सच्चाई–गहराई क्या अभिव्यक्ति की ममस्पशिता और क्या तीव्रता–प्रभविष्णुता तथा प्रम-प्लावित भाव और क्या तीव्र सौन्दय चेतना की विराटता–प्रातिभासिकता क्या दार्शनिक-आध्यात्मिक अनुभूतिजन्य गुरुत्व और क्या उदाराशयता–रमणीयात्मकता क्या क्या की लौकिकता और क्या

1–प० रामचन्द्र शुक्ल जा० ग्र०, भूमिका पृ० ६६ ७०।

समासोक्ति पद्धतिजन्य आध्यात्मिकता—गूढ़ता क्या परमसत्ता के दर्शन के लिये व्याकुलता और क्या तड़पन जन्य प्राणशक्ति—मार्मिक अनुभूति और प्रियतम के प्रर्शन इत्यादि महान तत्वों ने पदमावत में गुरुता—गम्भीरता और महाकाव्य के उपयुक्त महत्ता की प्राण प्रतिष्ठा की है।

सूफी विद्वान और सन्त पदमावत का आदर पुराण[1] की भांति करते रहे हैं। सोलहवीं शताब्दी से ही विविध भाषाओं में इसका अनुवाद होने लगा था। इसकी अनेकानेक प्रतियां फारसी अरबी उर्दू नागरी आदि में लिखी गई। इस ग्रंथ के अनेक संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं। इसकी ओर टीकायें भी लिखी गई हैं। इन बातों से स्पष्ट है कि व्यापक प्रभाव ओर लोकप्रियता की दृष्टि से भी देखने से रामचरितमानस के बाद पदमावत का ही नाम आता है।

महाकाव्य की अमरता उसकी आन्तरिक प्राणशक्ति सशक्त प्राणवत्ता और अनवरुद्ध जीवनी शक्ति के कारण भी होती है। गम्भीर जीवनदर्शन, मौलिकता महान उदार सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक प्रेम-सन्देश लोक प्रवृत्तियों का अन्त स्पन्दन लोकभाषा का पूर्ण निखार लोकमंगल की भावना आध्यात्मिक साधना मानवतावाद आदि ने पदमावत में एक महान जीवन दर्शन और सशक्त प्राणवत्ता का उपस्थापन किया है। उस युग की साधना का शाश्वत अमर संदेश पदमावत में मूर्तिमान है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में—

'जीवन के अनेक स्वरूपों और उनकी अनेक स्थितियों को महाकाव्य में स्थान मिलता है। चरित्रों के विभिन्न आदर्श उसमें रहा करते हैं। महाकाव्यों में स्वभावतः वस्तु चित्रण की प्रधानता होती है। प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन भी वस्तु रूप में ही होता है।[2]

इन बातों का उल्लेख करते हुए आचार्य पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि "परम्परागत महाकाव्यों के लक्षणों की पूर्ति न करने पर भी कामायनी को नये युग का प्रतिनिधि काव्य कहने में कोई हिचक नहीं होनी।[3]

यही बात थोड़े से परिवर्तन के साथ हम पदमावत के लिए भी कह सकते हैं कि पदमावत में महाकाव्य के कतिपय परम्परागत लक्षण भले ही न मिलें फिर भी उपयुक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि पदमावत हिन्दी के श्रेष्ठतम महाकाव्यों में हैं।

१—पदमावति स० ग्रियर्सन और सुधाकर द्विवेदी (रा० ए० सा० संस्करण भाग १) टीका पृष्ठ २

२—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य पृष्ठ ७८

३— " पृष्ठ ८०

६

चरित्र रचना

प्रबन्ध काव्य में स्वभाव की व्यंजना पात्रों के वचन और कर्म द्वारा ही होती है। उनके स्वगत भावों और विचारों का उल्लेख बहुत कम मिलता है। पदमावत में प्रबन्ध के आदि से लेकर अन्त तक चलने वाले तीन पात्र मिलते हैं—पदमावती, रत्नसेन और नागमती। इनमें से किसी के चरित्र में कोई ऐसी व्यक्तिगत विशेषता कवि ने नहीं रखी है जिसे पकड़ कर हम इस बात का विचार करें कि उस विशेषता का निर्वाह अनेक अवसरों पर हुआ है या नहीं। इन्हें हम प्रेमी और पति पत्नी के रूप में ही देखते हैं। हम इन्हें अपनी किसी व्यक्तिगत विशेषता का परिचय देते नहीं पाते। अतः इनके सम्बन्ध में चरित्र निर्वाह का एक प्रकार से प्रश्न ही नहीं रह जाता।[1]

इसके साथ ही यह भी द्रष्टव्य है कि उपर्युक्त तीनों पात्र प्रेम के विविध आयामों के प्रतीक हैं। तीनों प्रेममय हैं और तीनों में रूप शील का अत्यन्त आकर्षक और भव्यतम चित्र प्रेम है। तीनों का सम्पूर्ण कार्य कलाप प्रेम से ही परिचालित है। इसी महत् वैशिष्ट्य का जायसी ने इस काव्य में पूर्णतः निर्वाह और अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से विकास भी किया है।

पदमावत का चरित्र विधान

सूफी साधना में प्रेम ही सब कुछ है। हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों के प्रेमियों के चरित्र का विकास इसी पृष्ठभूमि में हुआ है। प्रायः सभी नायक प्रेम-साधना में लीन चित्रित किये गये हैं।

पद्मावत के चरित्र विधान या स्वभाव चित्रण को अध्ययन की सुविधा के लिए पाँच रूपों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) आदर्श रूप में,

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली। (भूमिका) पृ० १२०

(२) जाति–स्वभाव के रूप में
(३) व्यक्ति–स्वभाव के रूप में,
(४) सामान्य स्वभाव के रूप में
(५) प्रतीक के रूप में और अलौकिक स्वभाव के रूप में।

जायसी का प्रतिपाद्य था प्रेम का वह उत्कर्ष दिखाना जिसके द्वारा साधक अपने अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त कर सकता है। रत्नसेन एक उत्कृष्ट प्रेमी के रूप में चित्रित है। वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए राज पाट सुख भोग किंबहुना अपना सर्वस्व त्याग देने को प्रस्तुत है। वह प्रेम पथ का सच्चा पथिक है। प्रेम पथ पर चलते हुए वह युद्ध पसन्द नहीं करता। साथी राजकुमारों के आग्रह करने पर भी वह गन्धर्वसेन की सेना में लड़ना नहीं चाहता पर अलाउद्दीन का पत्र पाकर वह युद्ध के उत्साह से भर उठता है। पद्मावती एक आदर्श प्रेयसि है। प्रियतम को सूली का दण्ड मिला है इस समाचार को सुनकर वह उसी के साथ प्राण-त्याग करने को बद्ध परिकर है (जिय तजियौं मरौं ओहि साथा)। चित्तौर आगमन और उसके पश्चात भी वह एक त्यागमूर्ति प्रेयसि के रूप में चित्रित है किन्तु उसमें भी सपत्नी के प्रति ईर्ष्या की प्रबल वृत्ति है। उसके रूप शील और चरित्र के द्वारा जायसी ने एक अलौकिक चरित्र की भी सृष्टि की है। इसी प्रकार नागमती को ही लें तो स्पष्ट हो जाता है कि आदर्श रूप में प्रतिप्राणा भारतीय गृहिणी है। प० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि सामान्य स्वभाव के रूप में चरित्र विधान तो चरित्र चित्रण के अन्तर्गत नहीं वह सामान्य प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत है जिसे पुराने ढंग के आलंकारिक स्वभावोक्ति कहेंगे। आदर्श चित्रण के सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने की यह है कि जायसी का आदर्श चित्रण एक देशव्यापी है। तुलसीदास जी की तरह सर्वाङ्गपूर्ण आदर्श की प्रतिष्ठा का प्रयत्न उन्होंने नहीं किया है। रत्नसेन प्रेम का आदर्श है गोरा बादल वीरता के आदर्श हैं पर एक साथ ही शक्ति वीरता दया क्षमा शील सौन्दर्य और विनय इत्यादि सबका कोई एक आदर्श जायसी के पात्रों में नहीं है। गोस्वामी जी का लक्ष्य था मनुष्यत्व के सर्वतोमुख उत्कर्ष द्वारा भगवान के लोक-पालक-स्वरूप का आभास देना। जायसी का लक्ष्य था प्रेम का वह उत्कर्ष दिखाना जिसके द्वारा साधक अपने विशेष अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त कर सकता है।[1] पद्मावत में आदि से लेकर अन्त तक चलने वाले तीन ही पात्र हैं रत्नसेन पद्मावती और नागमती। पद्मावत के चरित्र चित्रण पर प्रकाश डालते हुए डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है पात्रों का चरित्र चित्रण हिन्दू जीवन के आदर्शों से पूर्ण सामंजस्य रखता है। रत्नसेन में प्रेम का आदर्श है। वह

१–प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली (भूमिका) पृ० १२१।

सम्पूर्ण रूप में धीरोदात्त दक्षिण नायक है। धीरोदात्त नायक में जितने गुण होने चाहिए वे सभी गुण रत्नसेन में हैं। पद्मावती स्त्री-धर्म की मर्यादा में दृढ़ और प्रेम करने वाला है। नागमती भी प्रेम के आदर्श में दृढ़ है माहिं भोग सो काज न बारी। सौंह दीठि कै चाउनहारी॥' में उसका उत्कृष्ट नारीत्व निहित है। —— सतोगुणी और तमोगुणी दोनों वर्गों के पात्रों में युद्ध होता है और अंत में सतोगुण की विजय होती है। पात्रों के चरित्र चित्रण में हिन्दू संस्कृति का प्रभाव पूर्ण रीति से है।[1] पद्मावत का एक बहुत बड़ा महत्व पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में है।

रत्नसेन

हिन्दी सूफी काव्यों के नायकों में प्रेम के वे सभी लक्षण पाए जाते हैं जिन्हें सूफी साधकों के लिए आवश्यक कहा जाता है। इनमें सौन्दर्य के प्रति तीव्र आकर्षण है। उनका प्रेम ईश्वर-प्रदत्त है। ये नायक धीर हैं गंभीर हैं सहिष्णु हैं त्यागी हैं, भोगी-योगी हैं तपस्वी और उत्साही हैं प्रेम के असीम आनन्द ही उन्हें कर्म पथ पर आगे बढ़ाता है।

जायसी ने रत्नसेन के चरित्राकन में आदर्श प्रतिष्ठापक व्यवहारों का ही प्राधान्य दिखाया है। वह एक गहरे सच्चे प्रमपथ का आदर्श पथिक है। महाकवि रत्नसेन के माध्यम से पद्मावत में प्रेम की साधनावस्था का भी प्रवेश किया है। सूफी प्रेमाख्यानों के नायक प्रेम में अपने गृहस्थ जीवन में रुचि नहीं लेते, वे अपनी विवाहिताओं की उपेक्षा करते हैं किन्तु तभी तक जब तक कि उनकी प्रेयसी प्राप्त नहीं हो जाती। पश्चात वे पूर्व विवाहिता की उपेक्षा नहीं करते।

रत्नसेन हीरामन सुआ से पद्मावती के अप्रतिम रूप का गुणगान सुनकर उसकी प्राप्ति के लिए चल पड़ा। उसने राज-पाट घर-द्वार सब कुछ छोड़ दिया। वह जोगी वेश में चल पड़ा। चित्तौड़ में करुणा क्रन्दन मच गया। माता व्यथ रोती-कलपती रह गई। पतिप्राणा रानियाँ बाहों को नाथ कर खलिहान करती रह गई पर रत्नसेन न रुका। उसके हृदय प्रदेश को तो पद्मावती की प्रेमधारा ने आप्लावित कर दिया था। उसे ज्ञान था कि प्रेम पथ तो असिधार है, मझधार का संघर्ष है वह जानता था कि उसका लक्ष्य सात सागर पार है, उसे पाना अत्यन्त साधना का काम है किन्तु वह यह भी जानता था कि प्रेम-साधना की राह में शूल भी फूल हो जाते हैं क्योंकि फलत हि पुनवता विघन की चरितायता होती है। वह साधना के पथ पर चलता है वहाँ भी विचलित नहीं होता। वह अपनी प्रेयसि में ही ईश्वरीय सौन्दर्य के दर्शन करता है।

१—डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३१७।

कुछ लोग इस बात को धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोणों से आंकते हुए रत्नसेन के कार्य को निन्दनीय कहते हैं। उनका कथन है कि अपनी विवाहिता पत्नी का परित्याग, घर-द्वार छोड़कर सात सागर पार पराई स्त्री के लिए जोगी बनना, सिंहल गढ़ के भीतर चोरों की तरह सेंध देना प्रभृति बातें लोक दृष्टि से निन्द्य हैं। 'बात-बात में सदाचार का दम्भ भरने वाले तो इसे बहुत बुरी बात कहेंगे। पर प्रेम-मार्ग की नीति जानने वाले चोरी से गढ़ में घुसने वाले (साधक) रत्नसेन को कभी चोर न कहेंगे। वे इस बात का विचार करेंगे कि वह प्रेम के लक्ष्य से कहीं च्युत तो नहीं हुआ। उनकी व्यवस्था के अनुसार रत्नसेन का आचरण तब निंदनीय होता जब वह अप्सरा के वेश में आई हुई पार्वती और लक्ष्मी के रूप जाल और बातों में फंस कर मार्गभ्रष्ट हो जाता। पर उस परीक्षा में वह पूरा उतरा।'[1] मृत्यु की चिन्ता भी उन्हें डिगा नहीं पाती। पदमावती का पिता गन्धर्वसेन रत्नसेन को सूली पर चढ़ाने की आज्ञा देता है। रत्नसेन विचलित न होकर उसी प्रकार हँसता रहता है जिस प्रकार सूली पर चढ़ते हुए मंसूर प्रसन्न था।[2] वह तो पदमावती के प्रेम में सूली का भी हँसते हँसते स्वागत करता है—

जाकर जीव मर हर बसा। सूरी देख सो कस नहिं हसा॥
आजु नेह साहोइ तवेरा। आजु पुहमि तजि गगन बसेरा॥

इस स्थल पर करणीय-अकरणीय और रत्नसेन के स्वभाव की दुर्बलता के प्रश्न उठाए जा सकते हैं किन्तु वास्तविकता यह है कि प्रेम की साधनावस्था में ये कार्य उसके शील में परम भूषण हैं। स्पष्ट है कि वह अदम्य साहसी और कष्ट सहिष्णुता उसकी सम्पत्ति है अनुराग उसकी निधि है और प्रेम-जन्य विराग उसका साधक रानियों का रोना और सात सागर पथ के प्रत्यूह हैं। यह अवश्य है कि वह पद्मावती के लिए अधीर हो उठता है स्वयं को भिखारी बनाता है इष्ट के लिए दुराग्रह करता है चोरी करता है सेंध लगाता है। प्रेम-जन्य होने के कारण ये सब वस्तुएँ उसके शील में दूषण रूप में नहीं अपितु भूषण रूप में आई हैं। उसके लिए पदमावती एक सामान्य नारी नहीं है। वह उसमें विराट सत्ता का दर्शन करता है। वह उसके रक्त की बूँद-बूँद में बसी हुई है, रोम रोम में बसी हुई है हाड़ हाड़ में उसी का शब्द है नस नस में उसकी ध्वनि है। रत्नसेन - पद्मावती का संयोग भी विवाह के अनन्तर ही होता है। इस प्रकार जायसी ने स्वस्थ सामाजिक प्रेम का चित्रण किया है। चन्दायन की तरह पर पत्नी उद्धारों या उद्दाम चित्रण कहीं नहीं किया है।

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल जायसी-ग्रन्थावली (भूमिका) पृ० १२२-२३।
२—ना० प्र० ना०प्र० स० काशी। जस मार वहँ बाजा तूरू। सूरी देखि हँसा मंसूरू॥

यह एक प्रकार की लोक धारणा और उपदेश की बात है कि वस्तुतः अधिक सम्पत्ति के समक्ष बड़े बड़े त्यागियों को भी लोभ हो जाता है और इसलिए सिंहल द्वीप से लौटते समय का रत्नसेन का व्यवहार उसके व्यक्तिगत स्वभाव के अंतर्गत नहीं आता।

जाति-स्वभाव के रूप में रत्नसेन एक क्षत्रिय वीर के रूप में उपस्थित होता है। उसका स्वभाव उग्र है और मन का अत्यन्त दृढ़। अपने लक्ष्य के लिए प्राणों की बाजी लगाकर सात समुद्र पार जाना उसके प्रेम और क्षात्र स्वभाव के साथ जाति स्वभाव का परिचय है। क्षत्रिय होने के नाते अभिमान एवं धार्मिकता से उसका व्यक्तित्व ओत-प्रोत है। राघव चेतन से पद्मावती की रूप चर्चा सुनकर जब अलाउद्दीन ने रत्नसेन के पास पद्मावती के लिए दूत भेजा — उस समय उसके मुख से निःसृत वाक्य उसके संस्कार और जातीय अभिमान को अत्यन्त गौरव एवं ओजपूर्ण शब्दों में व्यक्त करते हैं —

सुनि अस लिखा उठा जरि राजा। जानहु देव तड़पि घन गाजा॥
म्लेछहि साह पुहुमी पति भारी। माँग न कोउ पुरुष कै नारी॥
धा माहिं तें अस सूर उपारा। कस सरग ससि पर पगारा॥
हौं रनथभउर नाह हमीरू। कलपि माथ जेइ दीन्ह सरीरू॥
हौं सो रतनसेन सक-बंधी। राहु बेधि जीती सैरंध्री॥
हनिवँत सरिस भार जेहि काँधा। राघौ सरिस समुद जेहि बाँधा॥
बिक्रम सरिस कीन्ह जेइ साका। सिंघलदीप लीन्ह जौं ताका॥
ताहि सिंघ कै गढ़ै को माठा। जौं अस लिखा भाइ तेहि भागा॥
— — —   — — —
तुरक जाइ कहु मरै न धाई। होइहि इसकंदर कै नाइ॥
— — —   — — —
सहू समुझि अब अगमन सचि राखा गढ़ साजु॥
काल्हि होइ जेहि आवन सो चलि आवौ आज॥[1]

रत्नसेन ने अलाउद्दीन के दूत को जो उपयुक्त उत्तर दिया था वह उसके चरित्र पर अधिक तीव्र प्रकाश डालता है। इस प्रकार के अनेक कथोपकथन-विधान द्वारा जायसी ने रत्नसेन के स्वभाव का उद्घाटन किया है।

दिल्ली में लौटने के अनन्तर देवपाल की कुटिलता और दूती का प्रस्तुत हो

१—पदमावत (बादशाह चढ़ाई खण्ड) दोहा १ ३ ५ (४८१—४९३) (सं० डा० अग्रवाल) पृ० ५१०—११।

बात पदिमनी से सुनकर वह रोषाभिभूत हो उठा। वह शान ही देवपाल की दूती बनाने की प्रतिज्ञा करके कुंभलनेर पर टूट पड़ता है। पेट में साग धूम जाने पर भी देवपाल पर साघातिक आक्रमण करके उसे मार कर बांध लेता है। प्रतिकार की यह प्रबल वासना राजपूतों का नागरिक लक्षण है।[1]

रत्नसेन के चरित्र की यत्किंचित विशेषतायें भी अनेक स्थलों पर मिलती हैं। गोरा-बादल उसे चेतावनी देते हैं किंतु वह अलाउद्दीन के कपटाचार पर शंका नहीं करता वह उसके साथ गढ के बाहर पहुंचाने चला जाता है। दूसरे पर छल का सन्देह न करने से राजा के हृदय की उदारता तथा सरलता तथा नीति की दृष्टि से अपनी रक्षा का पूरा ध्यान न रखने में अदूरदर्शिता प्रकट होती है। वह व्यक्तिगत रूप से दोनों पत्नियों से समान प्रेम करता है। सिंहल में पक्षी से नागमती का सन्देश पाकर चित्तौड़ जाने के लिए वह मन्त्रवसन से मठ खोजता है।

रत्नसेन का व्यक्तित्व एक साधक का व्यक्तित्व है। कहीं वह अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है और कहीं ब्रह्मसाधना में लीन—

चला भगुति माग कहु साजि कयातप जाग।
सिद्धि होउ पद्मावति पाए हिरदय जेहि क वियोग॥

ये सिद्ध और वियोग विशिष्ट अभिप्राय युक्त शब्दों के रूप में प्रयुक्त हैं। रत्नसेन काया है और पदमावती जीव है—दोनों अभिन्न हैं—'अब तुम जीव कया वह जोगी। कया करोग जीव प रागी।[2]

सरग सीस धर धरती हिया सो प्रेम समुंद।
ना बौड़िया होइ रह न ल उठहिं सो बंद॥

रत्नसेन पदमावती का भिखारी है, क्योंकि ईश्वरीय रूप उसमें अभिव्यक्त है।

रत्नसेन के व्यक्तित्व के इस आध्यात्मिक या साधनात्मक पहलू का और भी कवि ने समासोक्ति पद्धति से अनेक स्थलों पर इंगित किया है।

योगी रूप में मकड़ा की परवाह न करने में सच्चे साधक के रूप में युद्ध कला—प्रवीण रूप में स्वच्छ निष्कपट हृदय वाले व्यक्ति के रूप में क्षत्रियोचित गौरवशाली रूप में एवं सर्वोपरि आदर्श प्रेमी के रूप में उसके स्वभाव में निष्काम त्याग, लगन उदात्तता और आत्म बलिदान प्रभृति आकर्षण के केन्द्र हैं।

पदमावती

पद्मावती का चरित्र विस्तृत रूप और शील-सम्पादन में अत्यन्त विशद रूप में चित्रित हुआ है। प्रधान नायिका होने से उसके चरित्र में भी आदर्श का ही प्राधान्य

१—प० रामचन्द्र शुक्ल, जा० ग्र० पृ० १२४।
२—जा० ग्र हि० एके०, २५६।

य है। मूलतः उसके रूप और शील के दो आशय हैं—

(१) लौकिक और (२) अलौकिक।

पदमावती पद्मावत में केन्द्र स्वरूपा है। इसी का आश्रय लेकर समस्त घटनाओं का स्रोत फूटा है। वह सिंहलद्वीप के राजा गन्धर्वसेन की राजकुमारी है। चित्तौड़ आगमन के पूर्व एक सच्ची और आदर्श प्रेमिका के रूप में चित्रित हुई है। वह एक आदर्श निष्ठामयी सुन्दर प्रेमिका और व्यवहार कुशल नायिका है। रत्नसेन के लिए सूली की आज्ञा की सूचना पाकर वह व्याकुल हो उठती है। अपने प्रियतम के ही साथ वह प्राण त्याग देने को उद्यत है।

'काढ़ि प्रान बैठी लेइ हाथा। मरे तो मरौं जियौं एक साथा॥'

प्रारम्भ में वह कुछ कठोर अवश्य थी पर जब उसे रत्नसेन के सच्चे प्रेम की प्रतीति हो गयी तब उसने आत्मसमर्पण किया। उसके कोमल और प्रेम प्रवण हृदय की ही अभिव्यक्ति है—"यदि अपना प्राण जलाने से प्रियतम मिल तो मैं अपना प्राण जला दूँ।"[1] सिंहल से चित्तौड़ जाते समय समुद्र में जलयान ध्वस्त हुआ, हाथी, घोड़े आदि सब नष्ट हो गये। लक्ष्मी समुद्र से विदा पाकर वे चलने लगे तब राजा को समुद्र ने हंस शार्दूल आदि पाँच अनमोल वस्तुयें दीं और रानी को लक्ष्मी ने पान के बीड़े के साथ कुछ रत्न दिये। पुरी में आने पर राजा ने देखा कि हंस शार्दूल आदि पाँच वस्तुओं के अतिरिक्त उसके पास पाथेय कुछ नहीं है। पदमावती ने तुरन्त उन रत्नों को बचने के लिए प्रस्तुत कर दिया जो विदा के समय लक्ष्मी के द्वारा छिपाकर दिए गए थे। यहाँ पर उसका चरित्र एक संचयशीला बुद्धिमती और आदर्श गृहणी के रूप में निखर उठता है—

'लछमी महा दीन्ह मोहिं बीरा। भरि कै रतन पदारथ हीरा॥
काढ़ि एक नग बेगि भंजावा। बहुरी लच्छि फेरि दिन पावा॥'[2]

तुलसीदास ने भी भगवान पर वन में प्रसंग में सीता के अपरिग्रहत्व और 'मणि मुँदरी' देने की बात के द्वारा सीता के गृहणीत्व को निखारने का प्रयत्न किया है—

'पिय हिय की सिय जाननि हारी। मनि मुँदरी मन मुदित उतारी॥'[3]

राघव चेतन को रत्नसेन ने देश से निकल जाने की आज्ञा दी थी। पदमावती सच्चे अर्थों में रानी थी। उसने सोचा कि राघव चेतन पण्डित है, गुणी है जादू टोने में प्रवीण यक्षिणी सिद्ध है। यदि वह थोड़ा मिथ्याचारी है तो क्या हुआ?

१—पद्मावत छन्द ४०१।
२—पदमावत (लक्ष्मी समुद्र-खण्ड) २८।५—६।
३—रामचरितमानस काशिराज संस्करण पृ० १८७ (१०२।३)।

है तो वह पण्डित। हार तो जाते हैं उसके समक्ष सब लोग। है तो वह दरबार की शोभा। ऐसे प्रवीण सभा पण्डित को इस समय दण्ड दिये जाने का परिणाम बुरा होगा। जो यक्षिणी के प्रभाव से दूज न होने पर भी दूज का चन्द्रमा दिखा सकता है वह इस सूर्य (रत्नसेन) के स्थान पर दूसरा सूर्य भी उपस्थित कर सकता है। कवियों और पण्डितों की जीभ तो तलवार है — इसमें आग भी है और पानी भी —

ग्यान दिस्टि धनि अगम बिचारा। भल न कीन्ह अस गुनी निसारा॥
जेइ जखिनी पूजि ससि काढ़ा। सूर के ठाँव कर पुनि ठाढ़ा॥
कवि कै जीभ खरग हरदवानी। एक दिसि आगि दसर दिसि पानी॥
जनि अजगुत काढ़ै मुख भोरें। जस बहुतें अपजस होइ थोरें॥[1]

पदमावती अपने हाथ के कंगन-दान से राघव चेतन को सन्तुष्ट प्रसन्न करने का प्रयत्न करती है। इस स्थल पर उसकी दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता का स्पष्ट परिचय मिलता है। रानी होने पर भी वह अत्यन्त निरभिमान थी। अलाउद्दीन दुर्ग के भीतर प्रविष्ट हुआ। उसकी चेष्टाओं से गोरा बादल ने उसके कपटाचार को भाँपकर राजा को उससे मित्रता न करने की सलाह दी। रत्नसेन अपने निश्चय पर अडिग रहा। गोरा बादल रुष्ट होकर चले गए। अलाउद्दीन ने छलपूर्वक रत्नसेन को बन्दी बना लिया। गोरा-बादल को अपना सच्चा हितैषी समझ कर राजसी अभिमान छोड़कर उनके पास जाकर और बन्दी राजा को छुड़ाने का सफल अनुरोध करके रानी ने बुद्धिमत्ता का ही परिचय दिया है। पति को बन्धनमुक्त करने के लिए उसने गोरा बादल को जिन उन्मुक्त ओज भरे शब्दों में ललकारा है वह क्षत्रिय नारी के उपयुक्त उसके साहसपूर्ण उद्योग का परिचायक है। उसने कहा था —

प्रिय जहँ बन्दि जोगिनि होइ धावौं। हौं होइ बन्दि पियहि मोकरावौं।[2]

जायसी ने पद्मावती के स्वभाव की जातिगत विशेषताओं को भी अत्यन्त मनमोहक रूप में उपस्थित किया है। स्त्री में प्रेम गर्व और सपत्नी के प्रति ईर्ष्या की वृत्तियाँ स्वाभाविक हैं। नागमती की बारी नाज प्रफुल्लित है राजा ने उसे सुशोभित किया है—ये बातें सुनकर पद्मावती जल उठती है वह वहाँ पहुँचकर नागमती से घोर विवाद करती है इस विवाद में पद्मावती रत्नसेन के प्रेम का गर्व भी व्यक्त करती हैं। स्त्री जाति के सामान्य स्वभावगत (ईर्ष्या गर्व प्रेम मान असूया प्रभृति वृत्तियाँ) पद्मावती के स्वभाव में (इस स्थल पर) दर्शनीय हैं। नागमती-पद्मावती के विवाद को दृष्टि में रखते हुए शुक्ल जी ने एक बड़े ही मार्मिक तथ्य की ओर इंगित किया है। यह ईर्ष्या और यह प्रेम-गर्व स्त्री जाति के

१—पदमावत (राघव चेतन देश निकाला खण्ड) ४५० (३८) २—३—५—६।
२—वही, छन्द ६०९।

सामान्य स्वभाव के अन्तर्गत माना जाता है, इसी से इनके वर्णन में रसिकों को एक विशेष प्रकार का आनन्द आया करता है। ये भाव व्यक्तिगत दुष्ट प्रकृति के अन्तर्गत नहीं कहे जा सकते। पुरुषों ने अपनी जबरदस्ती से स्त्रियों के कुछ दुःखात्मक भावों को भी अपने विलास और मनोरंजन की सामग्री बना रखा है। जिस दिलचस्पी के साथ वे मेढों की लड़ाई देखते हैं उसी दिलचस्पी के साथ अपनी कई स्त्रियों के कलह को। नवोढ़ा का भय और कष्ट भी नायिका भेद के रसिकों के आनन्द के प्रसंग है। इसी परिपाटी के अनुसार स्त्रियों की प्रेम सम्बन्धी ईर्ष्या का भी शृंगार रस में एक विशेष स्थान है।[1]

पदमावती का सतीत्व हिन्दू नारी के चरम उत्कर्ष का निदर्शन है। इसीलिए कहा जा सकता है कि सबसे उज्ज्वल रूप जिसमें हम पदिमनी को देखते हैं वह सती का है। 'देवपाल और अलाउद्दीन द्वारा प्रेषित दूतियों की परीक्षा की अग्नि में तप कर उसका सतीत्व स्वर्ण-सदृश प्रभाविकीर्णकारी हो गया है। ऐसे लोकोत्तर और दिव्य प्रेम की परीक्षा के लिए लगाई गई कसौटी कदापि उसके महत्व के उपयुक्त नहीं है, किन्तु इतना अवश्य है कि सतीत्व की इस परीक्षा द्वारा उसके चरित्र की उज्ज्वलता और महानता की ही व्यंजना हुई है। रत्नसेन की मृत्यु के अनन्तर वह अपनी सपत्नी के साथ चिता पर बैठकर सती हो जाती है। पदमावती और नागमती का सती होना 'जौहर' के रूप में नहीं कहा जा सकता है। (वे तो सती हुईं और अन्य क्षत्राणियों ने जौहर व्रत का सम्पादन किया)। सती होकर इन दोनों रानियों ने अपने प्रेम की अनन्यता की चरितार्थता ही कर दी है। सती होते समय उनके उल्लास का पारावार उमड़ रहा था–

नागमती पदमावति रानी। दुवौ महा सत सती बखानी।
दुवौ सवति चढ़ि खाट बईठी। औ सिवलोक परा तिन्ह दीठी॥
आजु सूर दिन अथवा आजु रैनि ससि बूड़।
आजु नाचि जिउ दीजिए आज आगि हम्ह जूड़॥[1]
— — —
एहि दिवस हौं चाहति नाहा। चलौं साथ पिउ देइ गलबाहा॥
लागी कण्ठ आगि देइ होरी। छार भई जरि अंग न मोरी॥[2]

यह एकनिष्ठ प्रेम पद्मावती के स्वभाव को अन्यतम निखार प्रदान करता है।

१–पं० रामचन्द्र शुक्ल जायसी-ग्रन्थावली, (भूमिका) पृ० १२५।
१–पदमावत (पदमावती-नागमती-सती खंड) (५८।२)
२–वही (५७।१, ५७।३)

पदमावती के रूप और शील की अभियजना म जायसी ने प्राय उसकी अलौकिकता की ओर भी इ गित किया है। उसके रूप वणन के प्रसग म आध्यात्मिक सकेत मुखरित हैं —

बेनी छोरि झार जो बारा। सगर पतार होइ उजियारा ॥
सिर टूति सोहरि परहि भुइ बारा। सगरे देस होइ अधियारा ॥

इसी प्रकार अन्य अनेक स्थलो पर भी कवि ने पदमावती के रूप सौ दय वणन और उसके स्वभाव के माध्यम मे उसकी लौकिकता के साथ ही अलौकिकता की ओर भी इ गित किया है।

नागमती

नागमती के स्वभाव शील म उप-नायिका के प्राय सभी गुणधम मिल जाते हैं। वह रत्नसेन की प्रथम विवाहिता पत्नी है (नागमती तू पहिलि बियाही)। अत्यन्त सु दरी और श्यामवण नागमती को अपने रूप सौ दय पर गव है यह स्त्रियो का सामान्य स्वभाव भी है। सुए स अपने रूप की भत्सना सुनकर वह सशक और क्रोधपूण हो जाती है। रत्नसेन राज पाट और घर नार त्याग कर सिंहल जाने लगा तो नागमती ने साथ चलने का अनुरोध किया। उसने तक भी दिया—

अब का हमहिं करहि भोगिनी। हमहू साथ होब जोगिनी ॥
की हम्ह लावहु अपने साथा। की अब मारि चलहु एहि हाथा ॥
तुम अस बिछुरे पीउ पिरीता। जहवा राम तहा सग सीता ॥
जौ लहि जिउ सग छाड न काया। करिहौं सेव पखरिहौं पाया ॥

— —   —   — —

राज करहु चितउर गढ राखहु पिय अहिवात।[1]

इन पक्तियों से स्पष्ट है कि नागमती सीता की भाति पतिप्राणा थी। उसका अनुरोध रत्नसेन की तकधारा म बह जाता है—

राघव जो सीता सग लाई। रावन हरी कवन सिधि पाई ॥

रत्नसेन नागमती को रोता छोड़कर चला आता है।

पति सिंहलद्वीप गए। सुदीघ काल बीत गया। उसने अपनी गृहिणी की सुधि तक न ली। उस रोती कलपती और विरह म विसूरती रानी ने रत्नसेन और पदमावती को पक्षी-दूत द्वारा सदश प्रेषित किया—

हाड भए सब किंगरी नस भई सब तानि।
रोव रोव ते धुनि उठ कहौं बिथा केहि भाति ॥

— —   — —   — —

१–जा०ग्र० (पदमावत नखशिख ख ड दो० ६) पृ० ५५।

मोहिं भोग सा काज न बारी । सौंह दीठि क चाखन हारी ॥

पति स बिछोह करान वाली के प्रति उसके मन म भाव है परनारी के वश म होन वाले के प्रति उपालभ है । प्रथम विवाहिता होने का उसे गव है । फिर भी उसकी वेदना-सवेदना मे विनम्रता भरी हुई है —

सवति न होसि तू वरिनि मोर कत जेहि हाथ ।
आनि मिलाव एक बर तोर पाय मोर माथ ॥

यहा पर उस विरहिणी का नि स्वाथ पातिव्रत्य और उज्ज्वल चारित्र्य विशेष दर्शनीय है । इस स्थल पर उस आदश एव निष्ठ पतिप्राणा के पत्नीत्व का शीलकमल अपना पूरा परिमल बिखेर रहा है । भवभूति की सीता सूर की राधा और जायसी की नागमती भारतीय वाङ मय का करुण विरह प्लावित आदश और अन्यतम विरहिणिया हैं । बारहमासा वणन द्वारा जायसी ने विरहिणी नागमती के चरित्र का अधिक उदात्त बनाने का सफल प्रयत्न किया है । नागमती क कण्ठ म उन्होने अपना सम्पूण हृदय दलित द्राक्षा की भाति नि शेष भाव स उडेल विरहगान किया है । उसका चरित्र विरह की अग्नि म तपकर स्वण सदश काति विकीण कर रहा है । (ऐ ड लव इज नवलिएस्ट ह्वन इम्बाल्म्ड इन टीयस) उसकी वियोग-दशा द्वारा पति के प्रति उसके-गूढ गम्भीर और महत प्रम की व्यजना हुई है । प्रम के अश्रुमय स्वरूप का नागमती के चरित्र द्वारा सुदर काव्यात्मक निरूपण हुआ है । कालिदास की शकुतला, भवभूति की सीता सूर की राधा और जायसी की नागमती सचमुच भारतीय वाङ मय की सव श्रेष्ठ रूप और शीलयुक्त विरहिणिया हैं । सवदनशील नारी के रूप म नागमती पदमावती से भी अधिक सशक्त च रत्र है । उसम नारी हृदय की सारी दुबलताए सारी शक्तियाँ भरी हुई हैं । नारी का शुद्ध मानवीय रूप उसम ही प्रकट हुआ है ।

पदमावती का विमान आया, नागमती क हृदय म अन्य रस की निष्पत्ति हुई । वह सपत्नी की ज्वाला नही सह सकती, अत दूसरे मन्दिर म उस उतार दिया जब नागमती की बारी पलुही तब पदमावती उस सहन न कर सकी और दोनो का वाद विवाद प्रारम्भ हो गया । रत्नसेन वहा इस लडाई (मेंटो की लडाई—शुक्ल जी) का आनन्द लने लगा । इस स्थल पर भी ईर्ष्या की मात्रा सामान्य स अधिक बनी हुई हम नहीं पाते हैं जिसस उसकी विशष ईर्ष्यालु प्रकृति का अनुमान कर सकें । पति की हित-कामना ही उसकी ईर्ष्यावृत्ति है । रत्नसन के बन्दी होने पर उसने रोते हुए कहा था—

पदमिनि ठगिनि भई कित साथा । जहि ते रतन परा पर हाथा ॥

सक्षप म हम इतना ही कह सकते है कि उसके हृदय म प्रियतम के प्रति अपार अनुराग है, करुणा उसका आभूषण और क्षमा उसका निलय है विरहजन्य

थे उसके प्रतिकूल कहकर वह अपनी धाक जमा देता था।

उसमें कृतघ्नता के भाव भी भरे हैं। देश से निकाले जाते ही उसकी प्रतिशोध की अहंवृत्ति प्रदीप्त हो उठी। उसने बदला लेने का दृढ़ संकल्प किया। पद्मिनी ने अपने कर कंगन से उसे संतुष्ट करने का असफल प्रयत्न किया। स्वामी रत्नसेन और उसकी पत्नी के प्रति बुरे भाव उसकी घोर नीचता एवं विवेकहीनता के परिचायक हैं। स्पष्ट है कि जिस राजा के यहां रहा उसी के प्रति उसके मन में अकृतज्ञता के भाव भरे हैं। उसने अलाउद्दीन के द्वारा चित्तौर को ध्वस्त करा देने का प्रयत्न किया। धन लोभ प्रतिकार वासना हिंसावृत्ति अहं प्रवृत्ति और स्वामी के प्रति नीच विचारों से उत्प्रेरित होकर वह अलाउद्दीन के पास गया। उसे लज्जा भी नहीं आई। आखिर क्यों? वह निलज्ज भी तो प्रथम श्रेणी का था। अलाउद्दीन के साथ वह रत्नसेन के दुर्ग में भी जाता है। उसकी जघन्य नीच वृत्ति की पराकाष्ठा तब आती है जब वह किले के बाहर निकलने पर रत्नसेन को बन्दी बनाने का इशारा करता है। साराश यह कि वह अहंकार, कृतघ्नता पांडित्य वाममार्गिता लोभ निर्लज्जता और हिंसा का जीवंत विग्रह है। वह समाज में देशद्रोही एवं धर्म द्रोही जन का प्रतिनिधित्व करता है।

गोरा–बादल

इन दो पात्रों के रूप में क्षत्रिय वीरता का निर्मल आदर्श साकार हो उठा है। ये गढ़राजा के रक्षक हैं अपूर्व स्वामिभक्ति गौरव और वीरता के जीवंत विग्रह हैं। ये सच्चे स्पष्टभाषी हैं। इनके व्यक्तिगत गुण दूरदर्शिता आत्मसम्मान का भाव स्वामिभक्ति आदि किसी भी देश के लिये गौरव की वस्तु हैं।

इनकी दूरदर्शिता उस स्थल पर निखर आई है जिस समय इन्होंने अलाउद्दीन को गढ़ में घूमते हुए देखकर छल का संकेत किया। इन्होंने राजा को तुरन्त सावधान रहने का संकेत किया था। राजा ने इनकी बात न मानी। अतः आत्मसम्मान की रक्षा के लिए ये रूठ गए। मंत्रणा देने के कर्तव्य से मुक्ति लेकर ये शस्त्र ग्रहण की बाट जोहने लगे। रानी पद्मावती रत्नसेन के कैद हो जाने पर पहले इनके घर पहुंची। वह बहुत रोई। उसने राजा को छुड़ाने की प्रार्थना भी की। ये दोनों वज्रादपि कठोर और कुसुमादपि कोमल थे। 'गोरा बादल दुवौ पसीज। रोवत रुहिर बूड़ि तन भीजे॥' उनका द्रवित होना उनकी लोक रक्षणकारी वृत्ति का परिचायक है। इन्होंने क्षत्रियोचित प्रतिज्ञा की और पद्मावती ने साधुवाद दिया—

'तुम टारन भार जग जाने। तुम सु पुरुष जस करन बखाने॥'

सचमुच गोरा-बादल संसार का भार उतारने वाले विपत्ति ग्रस्तों का उद्धार करने वाले और अन्याय–अत्याचार का विरोध करने वाले शूर–वीर थे।

एक तो बादल की छोटी आयु, दूसरे गौने में आई नवल वधू ! कर्तव्य की उपस्थित भीषण कसौटी ! जायसी ने इस मार्मिक प्रसंग को अत्यन्त प्रभविष्णु और सुन्दर बनाकर उपस्थित किया है। स्नेहमयी मां ने युद्ध की विभीषिका दिखाकर रोकना चाहा, पर उसे अपने शौर्य पर विश्वास था। उसने माता के आग्रह को दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर दिया। बादल ने नवागता वधू को सामने देखकर मुँह फेर लिया। यह उसके हृदय की कठोरता नहीं थी यह तो कर्तव्य की विवशता थी। पत्नी ने फेंटा पकड़ लिया, किन्तु बादल ने उसे समझाया—

जो तुइ गवन आइ गज गामी। गवन मोर जहवां मोर स्वामी ॥[1]

क्षात्र धर्म में कर्तव्य की कठोरता कितनी सुन्दर मर्मस्पर्शिनी है !

युद्ध कला में अद्भुत वीरता दोनों का वयक्तिक गुण है। सोलह सौ पालकियों में राजपूतों को भरकर दिल्ली ले जाना उनकी राजनीतिक चतुराई का नमूना है। वृद्ध वीर गोरा ने सहस्र साथियों के साथ बादशाही फौज को तब तक रोक रखा, जब तक बादल के छः सौ साथी चित्तौड़ नहीं पहुंच गए। बादल लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ। चारण ने तुरन्त धन्य धन्य कहा—

भाँट कहा 'धनि गोरा तू भा रावन राव।
आनि समेटि बानि क तुरग देत है पाव ॥

बादल भी रत्नसेन की मृत्यु के अनन्तर चित्तौर दुर्ग के फाटक पर मारा गया। इन दोनों क्षत्रिय वीरों के उज्ज्वल चारित्र्य विषयक पं० रामचन्द्र शुक्ल के ये शब्द उल्लेख्य हैं "अबलाओं की रक्षा से जो माधुर्य मारण के मध्ययुग के नाइटों की वीरता में दिखाई पड़ता था उसकी झलक के साथ ही साथ स्वामि भक्ति का अपूर्व गौरव इनकी वीरता में देखकर मन मुग्ध हो जाता है। जायसी की अंतर्दृष्टि धन्य है जिसने भारत के इस लोक-रंजनकारी क्षात्र-तेज को पहचाना।"[2]

१—द्रष्टव्य पदमावत का काव्य सौंदर्य पृ० १८६–१८६।

२—पं० रामचन्द्र शुक्ल जा० ग्र०, भूमिका पृ० १२८।

७

प्रकृति—चित्रण

प्रकृति का अथ और काव्य

व्यावहारिक रूप से तो जितनी मानवेतर सृष्टि है उसको ही प्रकृति कहा जाता है किन्तु दार्शनिक दृष्टि से हमारा शरीर और मन उसकी ज्ञानेंद्रियां—मन बुद्धि चित अहकार आदि सूक्ष्म तत्व प्रकृति के अतभूत है। यह सारय की प्रकृति सारी सृष्टि का कारण है। साख्यवादियों ने जिसको प्रकृति कहा करीब—करीब उसको ही वेदान्तियो ने माया कहा है मायातु प्रकृति विद्यात। भेद इतना ही है कि साख्यवादी प्रकृति को सद मानते हैं और वेदान्तवादी उसको सद्-असद से विलक्षण और अनिर्वचनीय मानते हैं। आस्तिक दर्शनों म न्याय और वशेषिक जीव प्रकृति और परमात्मा को तीन स्वतत्र सत्ताए मानते हैं किन्तु साख्य म बिना पुरुष के वह कुछ नही कर सकती है।[1]

प्रकृति के महत्तत्व उससे अहकार और अहकार स षोडश पदार्थों का समूह उत्पन्न होता है। इन षोडश पदार्थों म पचतन्मात्राए भी हैं जो कि शब्द स्पश रूप रस और गध की मूल रूपा हैं। वेदान्तियो के अनुसार प्रकृति परमार्थत असत है। शकर मत से वह माया रूप से अनिर्वचनीय है। विशिष्टाद्वत म वह अचित रूप से ब्रह्म का एक विशेषण है और इस मत से भी वह सत्य मानी गई है।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से प्रकृति स हमारा अभिप्राय मनुष्येतर जगत स है जिसम नदी पवत वन कछार आकाश चन्द्, ज्योत्स्ना, सूय रग बिरगी छटायें आदि सभी सम्मिलित हैं। प्रकृति या प्राकृतिक का अथ है स्वभाव या स्वाभाविक अत प्रकृति के अन्तगत वही वस्तुए आती है जिन्हे मनुष्य के हाथो ने सवारा या सजाया

१—डा० किरणकुमारी गुप्ता हिन्दी काव्य म प्रकृति—चित्रण, पृ० ८।

नहीं है और जो स्वयं ही अपनी नैसर्गिक छटा से हमें आकर्षित करती है। ईश्वर की कारीगरी को हम प्रकृति और मानव की कारीगरी को कला कहते हैं। सृष्टि के आदिकाल से ही मानव हृदय प्रकृति के अहरह परिधान परिवर्तित करने वाले और क्षण-क्षण नवीनता प्राप्त करने वाले रमणीय रूप-सौंदर्य से अभिभूत – सिक्त और आप्यायित होता रहा है। जन्म से मृत्यु तक मानव प्रकृति के प्रांगण में ही सांस लेता है। 'आरम्भ से प्रकृति अपनी ममतामयी गोद में मानव को धारण करती और उसका पोषण करती है। पवन व्यजन करता है निर्झर अपने कल-कल स्वर से संगीत सुनाते हैं नक्षत्रगण उसके दुख-सुख के साक्षी हैं कलियां चिटक कर उसे परिमल देती हैं दुग्ध-धौत ज्योत्स्ना उसे सुधा-स्नात कराती है, सूर्य ज्योति विकीर्ण करता और उसे जीवन देता है। प्रकृति की गोद में मानव सुख का अनुभव करता है। और साहचर्य – जन्य मोह का स्वाभाविक रूप से उसके हृदय में प्रादुर्भाव हो जाता है। इस प्रकार आलम्बन रूप से प्रकृति मानव को प्रभावित करती और उसे आकर्षित करती है। प्राकृतिक दृश्य आलम्बन के भावों को उद्दीप्त करने में सहायक होते हैं। प्रकृति प्रेमी सहृदय कवि प्रकृति में चेतना प्रतिस्पंदन एवं संवेदनशीलता के दर्शन करता है। इसी चेतना के अनुभव के फलस्वरूप आदि कवि को सीता विरह में पर्वत श्रेणियां अश्रु बहाती हुई प्रतीत हुई थीं और इसी चेतना के अनुभव के कारण अंग्रेजी कवि मेडसवर्थ को प्रकृति में मानव से अधिक संवेदनशीलता प्राप्त हुई थी।

भारतवर्ष के प्राचीन कवियों ने प्रकृति के विराट सुंदर और भयंकर सभी रूपों का विशद वर्णन किया है। उन्होंने प्रकृति देवी के उन्मुक्त प्रांगण में स्वच्छन्द विहार किया था। उन्होंने प्रकृति देवी के प्रत्येक अंग का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। स्पष्ट ही उनका ज्ञान प्रत्यक्ष-अनुभव-जन्य था।

वैदिक ऋचाओं में हम तत्कालीन मनीषा को उषा वरुण आदि के समक्ष श्रद्धावनत और इन्द्राग्नि के कोप के कारण विनत तथा भयातंकित पाते हैं। सचमुच भारतीय मनीषा को प्रकृति के मनोहर और मनोरम रूप से जितनी प्रेरणा मिली है हृदय को जितनी सौंदर्यानुभूति की उपलब्धि हुई है और मस्तिष्क को जितना चिन्तन का विस्तार मिला है उतना सृष्टि के किसी अन्य तत्व से नहीं।

कालिदास, भवभूति आदि ने प्रकृति को बड़े ही व्यापक रूप में गृहीत किया है।

हिन्दी के आदिकालीन और मध्ययुगीन साहित्य में प्रकृति चित्रण को विशेष महत्व नहीं दिया गया। चन्दवरदायी का प्रकृति-वर्णन प्रायः परम्परा प्राप्त है। भक्ति काल की प्रकृति पर देवताओं का व्यक्तित्व भी आरोपित किया गया है। रीतिकाल में वह आलम्बन के स्थान पर उद्दीपन बनकर रह गई।

जायसी भक्तियुग के एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने प्रकृति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया था। पदमावत में उन्होंने एक ओर संस्कृत साहित्य की स्वीकृत भारतीय परम्परा का अनुवर्तन किया है दूसरी ओर अपभ्रंश भाषा और जनकंठ की परम्परा से सीधे चले आते हुए लोकगीतों लोक उपमाओं और लोकदृष्ट जीवन के तत्वों के माध्यम से प्रकृति चित्रण किया है। उन्होंने जनकण्ठ से मुखरित होने वाले विरहा-गान बारहमासा, आदि के लोकगान पद्धति में समाप्त प्रकृति-चित्रण-शैली को भी गृहीत करके पदमावत के काव्य-सौंदर्य का सम्वर्द्धन किया है।[1]

जायसीकृत प्रकृति-वर्णन के विविध रूप

यद्यपि आलम्बन उद्दीपन और अलंकरण रूपों के ही अन्तर्गत प्रकृति-चित्रण के रूप वैविध्य को समेटा जा सकता है, किन्तु यहां हम जायसी द्वारा किए गए प्रकृति-चित्रण को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित विभागों के अन्तर्गत रख सकते हैं —

(१) उपमान रूप में किया गया प्रकृति चित्रण (अलंकरण रूप)।
(२) वातावरण की निर्मिति (संघटना-वर्णन के रूप)।
(३) आध्यात्मिक अभिव्यक्ति और ईश्वरीय वैभव के स्पष्टीकरण के रूप में किया गया प्रकृति चित्रण।
(४) उपदेश और नीति के रूप में किया गया प्रकृति-चित्रण।
(५) मानवीय हर्ष-विषादादि की अभिव्यंजना के लिए किया गया प्रकृति-वर्णन।
(६) उद्दीपन रूप और विप्रलंभ शृंगार।

(१) उपमानों के रूप में किया गया प्रकृति-चित्रण

अपनी भावाभिव्यक्ति के चरमोत्कर्ष के लिए प्रायः कवि प्रकृति के उपादानों को अलंकार रूप में ग्रहण करते हैं। ऐसा करके वे प्रकृति प्रदीप्त उपमानों के माध्यम से सौंदर्य को अधिक तीव्र गाढ़ मार्मिक और प्रभविष्णु अभिव्यक्ति देने में समर्थ हुए हैं। कवि उपमा उत्प्रेक्षा रूपकादि के द्वारा अपने प्रतिपाद्य विषय में सौंदर्य लाने के लिए सारी सृष्टि को छान डालता है। वह चन्द्रिका चर्चित चन्द्रमा में सुन्दर मुख का-सा सुधा-स्नात शैत्य-पावनत्व भाव पाता है मृग शावक के सुदीर्घ नेत्रों में मुग्ध-सारल्य का अनुभव करता है मदमस्त कुंजर की मंथर गति में प्रियतमा की गति का प्रत्यक्षीकरण करता है, सावन की कजरारी घन घटा में घुंघराली केश राशि को आलुलायित देखता है। इस प्रकार उपमानों की सहायता से जब प्रकृति में

१—पदमावत का काव्य-सौंदर्य, तीसरा अध्याय, पृ० ६५।

चेतन सौंदर्य का जीवन्त और स्पन्दनशील आरोप किया जाता है। प्रकृति क्षेत्र से गृहीत उपमानों के सहारे जब जायसी सौंदर्य की तीव्र और गाढ़ व्यंजना करने लगते हैं तब उनमें प्रायः तीन प्रकार के उपमान परिलक्षित होते हैं।

(अ) परम्परा-प्रचलित रूढ़िबद्ध उपमान,

(ब) लोक-गृहीत उपमान

(स) मौलिक उपमान।

लोक-गृहीत एवं मौलिक उपमानों के निदर्शन के लिए निम्नलिखित दोहा पर्याप्त होगा। विरह में सूखते और विहरते हुए हृदय का उपमान सरोवर—

सरवर हिया घटत नित जाइ। टूक-टूक ह्वै कै बिहराई॥

बिहरत हिया करहु पिउ टेका। दीठि दवगरा मेरवहु एका॥[1]

इन पंक्तियों में विरह विदीर्ण नागमती के हृदय की उपमा सूखते हुए सरोवर से दी गई है। स्पष्ट ही यहां दो जीवन चित्रों की अवतारणा की गई है (१) पानी सूखने के साथ ही साथ तालाब की मिट्टी का फटते जाना, (२) प्रथम वर्षा होने पर इन दरारों का मिलकर एक हो जाना या समाप्त हो जाना। ग्राम्य जीवन के सूक्ष्म पारखी जायसी ने विहरता हुआ सरवर हिया और 'दवगरा' को बड़े निकट से देखा था। प्रियतम के स्नेहाभाव की व्यथा में नागमती का हृदय उसी प्रकार विहरता जा रहा है जिस प्रकार पानी के अभाव में सरोवर का हृदय। ये दरारें रतनसेन की कृपादृष्टि (वर्षा) की बाट जोह रही है। इन मौलिक उपमानों से काव्य-सौंदर्य वर्द्धन तो होता ही है साथ ही कवि का सूक्ष्म लोक ग्राहिणी दृष्टि के भी स्पष्ट दर्शन होते हैं। इन उपमानों की प्रभविष्णुता, हृदय-स्पर्शिता आदि भी द्रष्टव्य है। इसी प्रकार—

'तोर जोबन जस समुद हिलोरा। देखि-देखि जिय बूड़ मोरा॥

में उन्मत्त यौवन के लिए कल्लोल भरे सागर के उपमान का विधान किया गया है जो पाठकों के समक्ष एक व्यापक और जीवन्त रसमय चित्र प्रस्तुत कर देता है।

परम्परा-प्रचलित और रूढ़िबद्ध उपमान

जायसी ने संस्कृत अपभ्रंश एवं फारसी साहित्य में प्रयुक्त उपमानों के माध्यम से प्रकृति का चित्रण किया है। अध्ययन की सुविधा के लिए इस उपमान रूप को तीन प्रमुख उप विभागों के अन्तर्गत रखा जा सकता है—

(क) नखशिख-वर्णन के उपमान,

(ख) मानवी भावनाओं के वर्णन में प्रयुक्त उपमान और

१—जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी), पृ० १५६।

(न) अन्य वस्तुओ एव कार्यों के उपमान।

(क्ष) नखशिख–वर्णन मे प्रकृति के उपमान

रूप-सौंदय का वणन करते हुए पदुमावती के लौकिक और अलौकिक छायाओ की गाढ सौंदर्याभिव्यक्ति के लिए प्रकृति के उपमानो द्वारा अपनी समथ तूलिका से मार्मिकता और सरसता से सवलित काव्यात्मकता का ही चरम उत्कष प्रदर्शित किया है। (नखशिख वणन के उपमानो का सविस्तर अध्ययन अप्रस्तुत विधान के अन्तगत किया गया है[1])। यहा पर तीनो प्रकार के उपमान रूपो के सक्षिप्त विवेचन पर्याप्त होगे—

सहस किरिन जो सुरुज दिपाई। देखि लिलार सोउ छिपि जाई।[2]
कचन रेख कसौटी कसी। जनु घन मह दामिनि परगसी॥[3]
फूल दुपहरी जानौं राता। फूल झरहिं ज्यो–ज्यो कहवाता।

(त्र) मानवी भावनाओ के वणन मे प्रयुक्त उपमान

प्रकृति क्षेत्र से गहीत मानवीय भावो की अभिव्यजना के लिए प्रयुक्त उपमानो न वणन को अत्यन्त मार्मिक और सजीव बना दिया है जसे—

काह हसौ तुम मोसौं किएउ और सो नेह।
तुम मुख चमक बीजुरी मोहि मुख बरसै मेह॥[4]

रत्नसेन सिंहल से लौट आया है। पदमावती की प्राप्ति के कारण उसके हष की कोई सीमा ही नही है बचारी नागमती के लिए तो अश्रु–प्लावित विरह के दिन ही देखने पड रहे हैं। रत्नसेन के हर्षातिरेक पर ही उसने यह कहा है। रत्नसन के मुख म विद्युत कौंध रही है और नागमती के नयनो म मेघ की झडी लगी है। 'बिजली का चमकना और मह का बरसना के द्वारा व्यजना अत्यन्त मार्मिक हो गई है—

कवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गएउ सुखाय।
कबहु बेलि पुनि पलुहै जौ पिउ सीचै आइ॥[5]

नागमती के विरहगान का यह प्रख्यात दोहा नागमती की व्यथा को अधिक जीवन्त

१—देखिय इसी प्रबन्ध म 'अप्रस्तुत विधान।
२—जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० ४२।
३—वही पृ० ४१। ४—वही पृ० ८३।
५—वही पृ० २१७। ६—वही प० १७८

रूप में प्रस्तुत करता है। इस जीवन्तता के मूल में कमल, मानसर, जल के उपमानों के साथ ही प्रकृति का प्रस्तुत सजीव चित्र भी है।

आजु सूर दिन अथवा आजु रैनि ससि बूड़।
आजु नाचि जिउ दीजिये आजु आगि हम्ह जूड़ ॥[1]

इन पंक्तियों में पदमावती-नागमती के सती होने के समय की भावनायें भी प्रकृति के ही माध्यम से अभिव्यक्त हुई हैं। सूर्य, चन्द्र, दिन और रात मानवीय रूप विपाग्नि की अभिव्यंजना के लिए प्रयुक्त हुए हैं (सूर-से रत्नसेन का तात्पर्य है)।

यह जायसी की एक बहुत बड़ी विशेषता है कि उन्होंने अपनी कविता में प्रायः मानवी सुख दुखों का वर्णन प्रकृति के उपमानों के माध्यम से किया है।

(ञ) अन्य वस्तुओं और कार्यों के प्रकृतिक्षेत्र से गृहीत उपमान

इस प्रकार के उपमान भी पद्मावत में मिल जाते हैं—

खड़ग बीजु चमकै चहु ओरा। बुंदबान बरसहिं घनघोरा।[2]
ओनइ घटा चहूं दिसि आई। छूटहिं बान मेघ झरि लाई ॥[3]

यहां पर प्रथम पंक्ति में खड़ग-बीजु और बुंदबान का सौन्दर्य दर्शनीय है। द्वितीय पंक्ति में बाणों के लिए उपमान 'मेघ की झड़ी' और लगातार बाण छूटने का उपमान मेघ की झड़ी लगना है।

(२) वातावरण की निर्मिति और घटना वर्णन के लिए किया प्रकृति वर्णन—

आलंबन रूप में प्रकृति कवि के लिए साधन न बनकर साध्य बन जाती है। कवि प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करता है, उसके सूक्ष्मतम तत्वों के प्रति आकृष्ट होता है और प्रत्येक वस्तु को एकत्र करके संश्लिष्ट वर्णन करता है। उसका प्रकृति चित्रण प्रत्यक्ष दर्शन का-सा आनन्द प्रदान करने वाला होता है। संस्कृत के वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति आदि कवियों ने प्रकृति के आलंबन रूप का वर्णन प्रचुर मात्रा में किया है। तुलसीदास ने प्रकृति का आलंबन रूप में चित्रण किया है किन्तु वह चित्रण भी राम माहात्म्य से ओतप्रोत है, प्रकृति वर्णन गौण हो जाता है—

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
वर्षा ऋतु प्रवेश विशेषगिरि देखत मन अनुरागत ॥ इत्यादि।
चहु दिसि बन सम्पन्न विहंग मृग बोलत सोभा पावत।

१—जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० २६६।
२—वही, पृ० १८२।
३—वही (गोरा-बादल युद्ध खंड) पृ० २८६।

जनु सुनरेश देश पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ।।[1] इत्यादि

जायसी ने अनेक स्थलों पर प्रकृति के चित्रों का शुद्ध प्रकृति वर्णन के रूप में भी चित्रण किया है। वे जब वातावरण विनिर्मित के लिए प्रकृति चित्रण करने लगते हैं तब ग्रामीण उन्मुक्त दशा के रूप में प्रकृति का आलंबनगत रूप ही प्रमुख हो उठता है। सिंहल द्वीप के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन सिंहल के वैभव चित्रण की पृष्ठभूमि के रूप में किया गया है। चतुर्दिक सघन अमराई सुहावन मलय पवन उस छाया में भी जाड़ा लगना हरा हरा आकाश आम खिरनी जामुन महुआ आदि के द्वारा वैभवमय वातावरण का निर्माण किया गया है। ये सभी प्रकृति के शालीन रूप की झाँकी प्रस्तुत करते हैं–

घन अबराउ लाग चहुँ पासा । उठा भूमि हुत लागि अकासा ।।
तरिवर सब मलयगिरि लाए । भै जग छाँह रैनि होइ छाए ।।
मलय समीर सोहावन छाँहा । जेठ जाड़ लाग तेहि माँहा ।।
ओही छाँह रैनि होइ आवै । हरियर सबै अकास दिखावै ।।
पथिक जौं पहुँचै सहि घामू । दुख बिसरै सुख होइ बिसरामू ।।[2]

अमराई का वर्णन करते हुए कवि ने फलों का भी सश्लिष्ट वर्णन किया है–

फरे आँब अति सघन सोहाए । औ जस फरे अधिक सिर नाए ।।
कटहर डार पीड सनि पाके । बडहर सो अनूप अति ताके ।।
खिरनी पाकि खाँड अस मीठी । जामुन पाकि भँवर अस डीठी ।।
पुनि महुआ चुअ अधिक मिठासू । मधु जस मीठ पहुप जस बासू ।।[3]

इन पंक्तियों में फलों की मधुरता स्वाद स्वरूप रंग और गंध के अनुरूप ही उनके खाँड भँवर मधु और पुष्प आदि उपमान दिए गए हैं। वृक्षों और फलों का वर्णन करने के अनन्तर कवि ने पक्षियों की भी एक सजीव और सोद्देश्य सूची दी है –

बसहिं पंखि बोलहिं बहुभाखा । करहिं हुलास देखि कै साखा ।।
भोर होत बोलहिं चुहचूही । बोलहिं पाँडुक एक तूही ।।
पीव पीव कर लाग पपीहा । तुही तुही कर गडुरी जीहा ।।
कुहू कुहू कर कोइल राखा । औ भिंगराज बोल बहु भाखा ।।
दही दही कर महरि पुकारा । हारिल बिनव आपन यारा ।।

१–तुलसीदास गीतावली अयोध्याकांड ५० ।
२–पदमावत (सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड) दोहा २।२–६ ।
३–जायसी ग्रंथावली (ना० प्र० सभा काशी) पृ० ११ ।

जावत पखी जगत के, भरि बठ अमराउ ।
आपनि आपनि भाखा लेहिं दई कर नाउ ॥[1]

लगभग एक दजन दी गई और जावत पखी जगत के द्वारा इंगित की गई पक्षियों की इस सूची से जायसी का वक्तव्य इतना ही है कि सभी पक्षी उस परम सत्ता की ओर उन्मुख हैं। कोई पक्षी एक तूही कह रहा है तो कोई पीव-पीव इसी प्रकार दही-दही 'कुहू-कुहू शब्द' भी पूर्णत सोद्देश्य प्रयुक्त हैं।

फलों और फूलों की भी जायसी ने सूचियां दी हैं। शुक्ल जी ने इन सूचियों के विषय में लिखा है सूची मात्र देने का काम तो कोई बहेलिया भी कर सकता है।[2] शुक्लजी का यह कथन पर्याप्त अंशों में ठीक है, किन्तु कई दृष्टियों से इन सूचियों का बड़ा महत्त्व है—

(१) हमारे साहित्य में इस प्रकार की परिगणन शैली संस्कृत अपभ्रंश और हिन्दी के प्राचीन काल में रूढि बन गई थी। फलों व ना घोड़ों आदि का सविस्तार वर्णन अनेक काव्यों में मिलता है। महाकाव्य में ये संश्लिष्ट और सांगोपांग वर्णन आवश्यक माने गए हैं।

(२) इन सूचियों द्वारा आलम्बनगत गुण प्रकृति वर्णन किया गया है। साहचर्यन परोक्ष सत्ता की ओर पीव-पीव एक तूही प्रभृति शब्दों द्वारा इंगित भी किया गया है।

(३) ये सूचियां विशेष वनानिकता के साथ नहीं दी गई हैं[3] बात समझ में नहीं आती कि विशेष वनानिकता का क्या अर्थ है। भले ही इस सूची के विषय में कुछ कहा जाए पर इतना सत्य है कि इनमें काव्यात्मक सरसता विद्यमान है। यदि ये लिया और जायसी की सूचियां में काव्य-दृष्टि का अन्तर सदा रहेगा। बहेलिया हारिल महरि कोइल आदि की परिगणना करा के विरक्त हो जायगा किन्तु श्लेष के आचार्य और समासोक्ति के प्रकाण्ड पंडित जायसी हारिल', महरि कोइलि और उनकी बोलियों के द्वारा चमत्कार एवं परम सत्ता की ओर संकेत भी करते चलते हैं। (दह-दही-दग्ध हुई-दग्ध हुई हे प्रियतम मैं तुम्हारे विरह में जली-जली कुहू कुहू—कहां-कहां-हे प्रियतम तुम कहां हो ? या मैं कहां हूं ?) ये वर्णन जायसी की भाषा के सामर्थ्य के भी द्योतक हैं।

फूले हुए श्वेत कुसुमों से अलंकृत ताल और तालाब ग्राम्य-श्री और ग्राम्य जीवन के जीवन्त और वभववत अनुपम चित्र हैं। इनमें ग्राम्य शोभा मुखरित होती

१—जायसी ग्रंथावली (ना० प्र० सभा काशी) पृ० ११।
२—प० रामचन्द्र शुक्ल चिंतामणि भाग २ (१९४५)।
३—डा० कमलकुल श्रेष्ठ मलिक मुहम्मद जायसी (१) पृ० ७१।

है। जायसी ने उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से छिछली तलैया और तालावों में प्रफुल्ल कुमुदों के सौंदर्य को अधिक प्रभविष्णु बना दिया है। मेघों का उतरना, पानी लेकर चलना और विद्युत की कौंध की सजीव प्रक्रियाएं भी द्रष्टव्य हैं–

'ताल तलाव वरनि नहिं जाहीं। सूझ वार पार किछु नाहीं ॥
फूले कुमुद सेत उजियारे। मानहु उए गगन महं तारे।
उतरहिं मेघ चढ़हिं लेइ पानी। चमकहिं मच्छ बीजु क बानी ॥'[1]

उपर्युक्त उद्धरण जायसी की सूची और आचार्य शुक्ल कथित वहेलिए की सूची में पार्थक्य दिखलाने के निमित्त पर्याप्त होंगे। इन उद्धरणों में स्पष्ट उपमा उत्प्रेक्षा परिकरांकुर आदि अलंकारों और समासोक्ति शैली के द्वारा महाकवि ने काव्योपयुक्त रसमयता का आनयन किया है। जायसी की दृष्टि में कविलास का स्वप्निल ऐश्वर्यमय वातावरण झूल रहा था–

जबहिं दीप नियरावा जाई। जनु कविलास नियर भा आई ॥'

जायसी ने अन्य कई स्थलों पर भी आलंबनगत प्रकृति चित्रण किया है। इन सभी स्थलों पर उनका प्रकृति चित्रण काव्यात्मक है।

(४) आध्यात्मिक अभिव्यक्ति और ईश्वरीय वैभव के स्पष्टीकरण के लिए किया गया प्रकृति चित्रण–

रहस्यवादी प्रकृति में परम तत्व के दर्शन करता है। और इस प्रकार प्रकृति विश्वात्मा के दर्शन का माध्यम बन जाती है। मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में कबीर और जायसी में यह सर्वात्म मूलक भावना मिलती है कबीर ने अमर तत्व को अन्तर में व्याप्त और पल भर की तलाश में मिलने वाला बताया है। ब्रह्मवाद की भावना से अभिभूत कबीर ने निखिल विश्व में उसी परम सत्ता के दर्शन किए हैं 'लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल' के अनुसार सम्पूर्ण जगत उसी शक्ति से अनुरंजित प्रतीत होता है। जहां तक दृष्टि जाती है कबीर को उसी परम सत्ता का ही सौम्य दृष्टिगोचर होता है।

जायसी के लिए भी आत्मा और परमात्मा की एकता एक अनुभूत सत्य है। परमात्मा प्राण रूप में हृदय में ही व्याप्त है। आश्चर्य की बात है कि भेंट नहीं होती। जायसी भेंटने के लिए विकल हैं–

पिउ हिरदय महं भेंट न होई। को रे मिलाव कहौं केहि रोई ॥[2]

वे केवल हृदय में ही नहीं उस अखंड ज्योति के सब लोकों में भी दर्शन करते हैं–

१–जा०ग्र० (ना०प्र० सभा काशी) पृ० १३।
२–जा० ग्र० (ना०प्र० सभा, काशी) ।

बहुत जोति जोति औहि भई

रवि ससि नखत दिप ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥

मध्य युगीन सूफी प्रम-काव्यो म एकेश्वरवाद का ही स्वर प्रधान है। ये विचार और भावना प्रवण मनीषी प्रकृति की विभूतियों म सष्टा और नियामक की भावना को सर्वोपरि मानते हैं। जायसी ने भी विश्व के मूल उस आदि एक करतार की वदना की है–

सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीह कीन्ह ससारू॥

कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा। कीन्हेसि बहुत रग उरेहा॥

कीन्हेसि धरती सरग पतारू। कीन्हेसि बरन बरन औतारू॥[1]

जायसी ने इस प्रकार की ईश्वर स्तुति का विधान पद्मावत अखरावट, आखिरी कलाम कहरानामा चित्ररेखा और मसला (अब तक प्राप्त) नामक ग्रथों के प्रारम्भ म किया है। सष्टि को उसी करतार न किया है। सष्टि और प्रकृति के विविध उपादान प्रकाश तारे सूय चद्र धरती पवन मेघ, धूप, छाह आदि इस स्तुति के माध्यम हैं। जायसी के पूववर्ती मुल्ला दाऊद ने चन्दायन के प्रारम्भ म भी इसी प्रकार का स्तुति विधान किया है–

पहले गाऊ सिरजनहार। जिन सिरज्या यह दिवस बयारू॥

सिरजसि धरती औ आकासू। सिरजसि महुमदर कबिलासू॥[2]

इत्यादि।

नूर मुहम्मद[3] ने भी इसी प्रकार की स्तुति द्वारा सिरजनहार की वदना की है–

"धन्य आपु जग सिरजनहारा। जिन बिनुखम्भ अकास सवारा॥

गगन की सोभा कीन्ह सितारा। धरती सोभा मनुस सवारा॥"

प्राय सभी सूफी कवियो ने इसी प्रकार की वन्दना का विधान किया है। इस प्रकार हम कह सकते है कि प्रकृति क मूलभूत तत्वो और विभूतियो क माध्यम से एकेश्वरवाद का सदेश निर्देश प्राय सूफी प्रमाख्यानक परम्परा के सभी कवियो के काव्य-सौंदय का एक वशिष्ट्य है।

प्राय सूफी प्रमाख्यानो म प्रकृति के माध्यम स (१) आध्यात्मिकता और (२) प्रम की अभिव्यञ्जना – दोनो का स्पष्ट और अभिभाज्य रूप प्रस्तुत किया गया है। जायसी ने सिंहलद्वीप का वणन करते हुए प्रकृति के अत्यन्त विलसित और

१–जा० ग्र० (ना०प्र० सभा, काशी), पृ० १।

२–मुल्ला दाउद चदायन। (डा० परमेश्वरी लाल गुप्त) हि० ग्र० रत्नाकर बम्बई।

३–नूर मुहम्मद इन्द्रावती स्तुति खड दोहा १२।

सुदर वातावरण द्वारा आध्यात्मिक शांति और परम आनन्द की ओर इ गित किया है उस द्वीप के निकट पहुचने पर ऐसा लगता है मानो स्वग निकट आ गया है। उसके चारो ओर सघन अमराई है —

'पथिक जो पहु चे सहिक घामू। दुख विसर सुख होइ बिसराम ।।
जेइ वह पाई छाह अनूप। फिरि नहि आइ सहै यह धूप ।।'[1]

प्रस्तुत उद्धरण से यह अभीष्ट है कि जायसी ने ऐसे अनेक स्थनो पर प्रकृति की निःसीम व्यापकता सघनता चिरतनता परम आनन्दत्व और स्वर्गीय रमणीयत्व की भी कल्पना को सजीव रूप म उपस्थित किया है।

मानसरोदर खण्ड मे भी उन्होने लौकिक वातावरण के साथ अलौकिक वातावरण प्रस्तुत करते हुए परमसत्ता के सौन्दय की अभिव्यक्ति का प्रयत्न किया है—

देखि रूप सरवर क गइ पियास औ भूख
जो मरजिया होइ तह सो पाव यह रूप।[2]
जौ मरजिया होइ तह सो पाव यह सीप।[3]

जायसी ने प्रकृति के उल्लसित और क्रियाशील रूप के भी चित्रण किये है। पक्षियो की बोली पीउ पीउ कुहू-कुहू दही दही शब्द ध्वन्यात्मक और सोद्देश्य हैं। सभी पक्षी अपनी-अपनी भाषा म ईश्वर का नाम लेत है — इस प्रकार समग्र प्रकृति प्रेम तत्व के माध्यम से ईश्वर की ओर प्रवोन्मुख है।

जायसी ने बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव द्वारा भी प्रकृति वणन किया है। राजा सुआ-सवाद खण्ड म प्रकृति मानवी प्रम-विरह के प्रतिबिम्ब रूप म आध्यात्मिक प्रेम की पृष्ठभूमि बन जाती है। प्राय सभी सूफी कवियो ने ससार के सौन्दय को प्रिय के प्रातिभासिक सौन्दय के रूप म देखा है। अत इनकी साधना म लौकिक भी अलौकिक हो गया है। इसी प्रकार दश्य प्रकृति भी अलौकिक तत्व का ही प्रति-बिम्ब है और यह भी उसी की ओर उन्मुख है।

जायसी पदमावती के रूप म अलौकिकता का अनभव करते हुए उसके सौन्दय के प्रभाव म अत्यधिक तीव्रता लाना चाहत हैं। उन्होंने सम्पूण प्रकृति का उसी के सौन्दय से अनुरञ्जित बताया है—

हसत दसन अस चमके पाहन उठे झरक्कि।
दारिउ सरि जा न क सका फाटेउ हिया दरक्कि ।।[4]

१—जा० ग्र० ना० प्र० सभा काशी पृ० १२ (१३।५।३)।
२—वही पृ० १२ (दोहा ७)।
३—वही, पृ० १३ (दोहा ८)।
४—जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० ४४ (दोहा ६)।

यहा पर पदमावती की दन्त प्रभा स पत्थर के हीरा होने का वणन है ।

वेनी छोरि झार जो बारा । सरग पतार होइ उजियारा ।।[1]

गगन नखत जो जाहिं नगनं । व सब वान आहि व हने ।।

धरती बान वोधि सब राखी । साखी ठाट देहिं सब साखी ।।[2]

[1] इन पक्तिया म स्पष्ट ही पद्मावती क कश और वरुनी क विश्व व्यापी प्रभाव म आध्यात्मिक सकत मिलत हैं । प्रमोपासक जायसी क प्रियतम प्रकति म व्याप्त हैं । इन्होंने समस्त चराचर प्रकति म उसी का याप्ति का अनुभव किया है । अलकार और उद्दीपन रूप म भी प्रधानता आध्यात्मिक प क की ही है । उन्होंने अपने प्रेमास्पद का प्रतिबिम्ब समस्त प्रकति म देखा । इन्होने प्रियतम को अपने दृदय म तो व्याप्त पाया ही साथ ही प्रमाधिक्य और प्रम की अनयता क कारण उसको समस्त जड और चेतन प्रकति म भी व्याप्त देखा है । [3]

उपदेश और नीति के माध्यम के रूप मे प्रकृति–चित्रण

मानव ने प्रकृति के काय कलाप को अनक रूपा म आदश मानकर शक्ति ज्ञान और सान्त्वना प्राप्त की है । प्रकृति के नियम अत्यन्त स्थिर शुभ और उत्तम हैं। मानव अपने जीवन मे नीति नियम आदि की अस्थिरता की स्थिति म प्रकृति से प्ररणा और विचार ग्रहण करता रहा है । पवत चारित्रिक दृढता के पवन अन वरत सवा वत्ति का सरिता और वक्ष परोपकार मुक्तदान और समदृष्टि के आदश उपस्थित करते हैं ।

श्रीमदभागवत म प्रकति को नीति और उपदेश के माध्यम के रूप म गृहीत किया गया है । उसी से प्रभावित होकर तुलसीदास जी ने रामचरितमानस के किष्किधाकाण्ड म नीति और उपदेश के लिए प्रकति को गहीत किया है ।[4]

नीति और उपदेश की प्रधानता होने क कारण प्रकति का स्थान गौण हो जाता है ।

सिंहल के पक्षी ईश्वर के नाम-स्मरण का उपदेश व्यञ्जित कर रहे हैं–

पीव-पाव कर लाग पपाहा । तुही तुही कर गडुरी जोहा ।।

यहा पर प्रकति उपदेशदाता क रूप म व्यञ्जित है ।

१–वही पृ० ४३ (६–४–७) ।

२–वही पृ० ४३, (६।६) ।

३–डा० किरणकुमारी गुप्ता हिन्दी काव्य म प्रकति चित्रण पृ० ११५ ।

४–श्रीमदभागवत – स्कन्ध १० अध्याय २० (श्लोक १५–१६–१७–३३) और रामचरितमानस, किष्किधाकाण्ड दोहा १६ १७ ।

कहीं कहीं दृष्टान्त के रूप में जायसी ने प्रकृति द्वारा उपदेश की अभिव्यक्ति भी की है–

मुहमद बाजी पेम कै ज्यों भावै त्यों खेल।
तिल फूलहिं के संग ज्यों होय फुलायल तेल॥

नीति और उपदेश के रूप में किए गए प्रकृति वर्णन का काव्य सौंदर्य-वर्द्धन की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं है। ऐसे वर्णनों में कवि का उपदेशक रूप मुखर हो उठता है और कथा प्रवाह में शैथिल्य आ जाता है।

(५) मानवीय हर्ष विषाद की अभिव्यञ्जना के रूप में किया गया प्रकृति चित्रण (मानवीकरण से सम्बद्ध प्रकृति चित्रण)।

कवि का प्रकृति प्रेम प्रकृति सुन्दरी के क्रिया कलाप तक ही सीमित नहीं रहता अपितु उसको वह अनुराग विराग क्षोभ हर्ष विषाद आदि के भावों से पूर्ण देखता है। *प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप ही मानवीकरण (परसानिफिकेशन) है।* कालिदास ने मेघ को दौत्यकर्म सौंपते हुए मेघ पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप किया है। आदि कवि वाल्मीकि ने 'रे रे वक्षा पर्वतस्था गिरि गहनलता वायुना वीज्यमाना' और 'सीतेव शोकसंतप्ता मही बाष्पविमुञ्चनि' के द्वारा प्रकृति पर चेतना का आरोप किया है।[1]

पद्मावत में हर्ष विषादादि के भाव प्रभाव प्रकृति पर भी दिखाए गए हैं। ऐसे स्थलों की मुख्यतः दो विशेषताएँ हैं–

(१) सुख दुःख के प्रभाव स्वरूप प्रकृति को संवेदनशील रूप में चित्रित किया गया है और

(२) मानव मनोभावों की अभिव्यक्ति की गयी है।

जायसी ने प्रकृति को विरह-व्यथिता नागमती के विरह-दुःख से अनुतप्त रूप में चित्रित किया है–

तेहि दुख भए परास निपाते। लोहू बूडि उठे होइ राते॥
रातें बिम्ब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक फाट हिय गोहूँ॥[2]

नागमती की विरह-व्यथा से प्रकृति के अचेतन पदार्थ भी अत्यन्त दुःखी हैं। पलाश-पत्र शून्य होकर श्री हीन हो गया है सरोवर तक का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया है।

सरवर हिया घटत नित जाई। टूक टूक ह्वै कै बिहराई॥[3]

१–वाल्मीकि रामायण किष्किन्धाकाण्ड (सर्ग २८।७)।
२–जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० १५८ (दोहा १६।८–९)।
३–वही, पृ० १५६।

'मानसरोदक खण्ड' म पदमावती क अप्रतिम रूप से मानसरोवर तरंगायित हो रहा है –

सरवर रूप विमोहा हिए हिलोरहिं लेइ ॥
पाव छुव मकु पावौं एहि मिस लहरहिं देइ ॥[1]

पदमावती के खोपा' छोडने और केश मकुलाने पर विश्व तिमिराच्छन्न हो उठता है, और –

'चकई बिछुरि पुकार कहा मिलौ हो नाह।
एक चा' निसि सखा मह दिन दूसर जल माह ॥[2]

कवि समय सिद्ध प्रसिद्ध है कि रात्रि म चक्रवाक-युग्म एक दूसरे स बिछुड जाते हैं और वे दिन म साथ रहत हैं। जायसा ने इसी प्रसिद्ध कवि-समय क आधार पर उपयुक्त दोहा लिखा है। चक्रवाको क दिन के मिलन और रात्रि वियोग वाले कवि-समय की प्रसिद्धि प्राय प्राचीन भारतीय (और हिन्दी क भी) कवियो की कठहार रही है –

चक्वी बिछुटी रणि की आइ मिली परभाति
जे जन बिछुटे राम सू, ते दिन मिले न राति ॥[3]
' राति जु सारस कुर लिया गुजि भरे सब ताल।
जिणकी जोडी बीछिडी तिणका कवण हवाल ॥'

प्रकृति मे मानवीकरण की भावना हम आदि कवि वाल्मीकि क ही काव्य मे प्राप्त होती है। कविया न प्रकृति से तादात्म्य का स्थापन करते हुए उसम प्रतिस्पदन का आभास पाया है और उसे मानव भावनाओ का समझन म समय समझा है। जायसी न प्रकृति म सवदनशीलता का तो अनुभव किया ही है इसक अतिरिक्त उन्होंने मानव क्रिया-कलापो से भी प्रकृति को पूर्ण पाया है।

नवल सिंगार बनस्पति कीन्ह। सीस परासहि सेंदुर दीन्हा ॥[5]

बसन्त ऋतु म प्रकृति न अभिनव शृगार किया है और पलाश न माग म सेंदर दिया है। प्रकृति को कवि न एक शृगार – मण्डित सौभाग्यवती नारी के रूप म चित्रित किया है।

१–जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० २४ (दोहा ४)
२–वही पृ० २४ (दोहा ८)।
३–कबीर ग्रन्थावली (ना० प्र० सभा काशी) पृ० ३१३।
४–ढोला मारूरा दूहा (ना० प्र० सभा, काशी)।
५–जायसी ग्रथावली ना० प्र० सभा, काशी।

(६) उद्दीपन रूप और विप्रलम्भ शृंगार

उद्दीपन रूप में प्रकृति का शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों में वर्णित किया गया है। उद्दीपन विभाव का शास्त्रीय स्वरूप यही है कि संयोगावस्था में प्रकृति का विलास सुख संवर्द्धक और वियोगावस्था में विषादप्रद हो। संयोग में मलय पवन, चन्द्रिका-चर्चितयामिनी, मजरित अमराई आदि पारस्परिक आकर्षण को बढ़ाते हैं, किन्तु वियोग में प्रकृति के ये समस्त आकर्षण विरही जनों को दग्धकारक प्रतीत होते हैं। वियोग तीन प्रकार का माना गया है—मानजन्य, प्रवासजन्य और मृत्युजन्य। प्रिय की मृत्यु पर करुण रस का आविर्भाव होता है। मान क्षणिक होता है अतः उसमें अपेक्षाकृत तीव्रता की कमी होती है। वस्तुतः प्रवासजन्य वियोग ही पूर्ण और प्रभावशाली होता है। विरह की दस अवस्थायें मानी गई हैं अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। प्रकृति का उद्दीपक वर्णन भी प्रायः दो रूपों में मिलता है। प्रथम के अन्तर्गत वह वर्णन आता है जिसमें उद्दीप्त भाव आगे आ जाता है और प्रकृति का रूप पीछे पड़ जाता है। दूसरे प्रकार के वर्णन में प्राकृतिक दृश्य एवं व्यापार अपना वास्तविक स्वरूप सुरक्षित रखते हुए भी भावोद्दीपन में सहायक होते हैं। पदमावत में प्रथम प्रकार के वर्णन का प्राधान्य है।

संयोग शृंगार के प्रमुख रूप से दो उपयोग हैं। एक तो प्रकृति मानसिक उल्लास की अभिवृद्धि करती है और दूसरे शारीरिक उपयोग की वस्तु बन जाती है। संयोगावस्था में प्रकृति के दृश्य पारस्परिक आकर्षण में अभिवृद्धि करते हैं। शीतल परिमलमय पवन, ज्योत्स्ना, निर्झर, कल्लोलिनी, उपवन, खगकूजन, तारक विखचित गगन आदि प्रेमी प्रेमिका के आकर्षण में एक विशिष्ट प्रकार की तीव्रता, सरसता और मधुरता का संचार कर देते हैं। सर्वत्र उनमें आकर्षण, उल्लास, आनन्द, मिलन, उमंग, प्रेम आदि के ही दर्शन होते हैं किन्तु विरहावस्था में ये सभी आकर्षण विकर्षण में परिणत हो जाते हैं। विरही मन स्थिति में कोकिल की कूक-हूक बन जाती है, किंशुक पुष्प अंगार बन जाता है, चाँद की किरणें शीतल न होकर अग्नि की किरणें वाला हो जाता है[1] किंसुक गुलाब औ अनारन की डारन पै अंगारन के पुञ्ज डोलते दिखाई देते हैं।[2] विरहिणी की विरह-दशावस्था के भी बड़े ही अतिशयोक्तिपूर्ण चित्र कवियों ने दिए हैं।

डा० किरणकुमारी गुप्ता का कथन है कि उद्दीपन में प्रकृति का अपना महत्व नहीं है, संयोग अथवा वियोग दोनों अवस्थाओं में प्रकृति का एक ही

१–राजा लक्ष्मणसिंह शकुन्तला नाटक हिमांशु चन्द्रांशु कुसुमसर वाणो कन्द यथा।
२–पद्मावत पद्माभृत पृ० १५८।

उपयोग है—मनोगत भावों को उद्दीप्त करना।[1] वस्तुतः मनोगत भावों का उद्दीप्त करना ही प्रकृति का अपना महत्त्व है और बिना प्रकृति के अपने महत्त्व के केवल ही भाव उद्दीप्त हो जाएं पर उनमें अपेक्षित तीव्रता सरसता और प्रभविष्णुता का अभाव रहेगा। जायसी ने शृंगार में उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत जो प्रकृति चित्रण किया है उसमें संस्कृत साहित्य में अविच्छिन्न भाव से चली आती हुई षड् ऋतु वर्णन की प्रणाली एवं जनगीतों की बारहमासा विरहगान आदि की लोक प्रणाली के भी दर्शन होते हैं। जायसी ने उद्दीपक प्रकृति का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग किया है—

बरसै मघा झकोरि झकोरी। मोरि दुइ नैन चुवैं जस ओरी।[2]

प्रस्तुत पंक्ति में प्रकृति के मघा नक्षत्र में झकोर झकोर कर बरसने वाले रूप वर्णन के द्वारा विरहिणी नागमती की करुण मूर्ति का सजीव रूप चित्रित कर दिया गया है।

वियोग-व्यथा से नागमती अपने रानीपन को विस्मृत करके प्रकृति के उपकरण पशु पक्षी आदि के साथ तादात्म्य का अनुभव करती है। वह अपने प्रियतम के पास विरह के धुएं से काले पड़े काग और भ्रमर से संदेश भेजती है—

पिउ सौं कहेउ सँदेसड़ा हे भौंरा हे काग।
सो धनि बिरहै जरि मुई तेहिक धुवाँ हम्ह लाग॥[3]

उद्दीपन रूप के अतिरिक्त संयोगावस्था में षट्ऋतु और वसन्त वर्णन तथा वियोगावस्था में बारहमासा वर्णन के कारण प्रकृति-सौन्दर्य की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। जायसी ने प्रकृति को प्रियतम के प्रेम धागों में बिंधे रूप में चित्रित किया है। सम्पूर्ण प्रकृति प्रियतम के समागम के लिए उत्साहपूर्ण उत्कण्ठित है। उसके वियोग में व्यथा से व्याकुल है। प्रियतम का रूप सौन्दर्य अप्रतिम है। चाँद भी प्रकृति का तत्त्व उसके अनन्त सौन्दर्य से मुक्त नहीं रह सकता—

उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा॥
गगन नखत जो जाहिं न गने। वै सब बान ओही के हने॥
बरुनि बान अस ओपहँ बेधे रन-बन-ढाँख।
सौजहिं तन सब रोवाँ पंखिहि तन सब पाँख॥[4]

इस प्रकार प्रियतम के प्रेम धागों से बिंधी हुई सम्पूर्ण प्रकृति उसके वियोग में व्याकुल है।

१—डा० किरणकुमारी गुप्ता : हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण पृ० ८३।
२—जायसी ग्रन्थावली (ना० प्र० सभा काशी) पृ० १५३।
३—जायसी ग्रन्थावली (ना० प्र० सभा, काशी) पृ० ८३ (दोहा ६)।
४—वही।

बूडि उठे सब तरि वर पाता। भीजि मजीठ टेसू बन राता॥[1]

वृक्षों के पत्ते और पुष्प भी उसी के वियोग में रक्त (अनुरक्त) हो गए हैं। इस अखण्ड ज्योतिरूप प्रियतम से मिलन होने पर प्रकृति उल्लास से आन्दोलित हो उठती है विरह की दारुण व्यथा से क्लान्त प्रकृति अनुराग के रंग में रंग उठती है—

'भा वसंत राती वनसपती। औ राते सब जोगी जती॥

राती सती अगिनि सब काया। गगन मेघ राते तेहि छाया॥'

वनस्पति, मेघ आदि उसी के प्रमोल्लास के ही कारण अनुरक्त हो उठे हैं।

षड ऋतु वर्णन

प्रकृति के उद्दीपन के अन्तर्गत षडऋतु और बारहमासा के माध्यम से शृंगार निवेदन करना भारतीय कवियों की एक अत्यन्त प्राचीन प्रथा है। षडऋतु वर्णन मिलनजन्य आनन्द में उद्दीपन का संचार करता है।[2] इसके द्वारा कहीं कहीं विरहजन्य दु:खबोध को अधिक गहन और मार्मिक बनाने का भी कार्य लिया जाता है। पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि 'कालिदास के समय से या उसके कुछ पहले ही से दृश्य-वर्णन के सम्बन्ध में कवियों ने दो मार्ग निकाले। स्थल-वर्णन में तो वस्तु वर्णन की सूक्ष्मता बहुत कुछ बनी रही पर ऋतु-वर्णन में वस्तु-चित्रण उतना आवश्यक नहीं समझा गया जितना कुछ इनी-गिनी वस्तुओं का कथनमात्र करके भावों के उद्दीपन का वर्णन। —— जान पड़ता है कि ऋतु-वर्णन वैसे ही फुटकर पद्यों के ही रूप में पढ़े जाने लगे जैसे बारहमासा पढ़ा जाता है। अतः उनमें अनुप्रास और शब्दों के माधुर्य आदि का ध्यान अधिक रहने लगा'[3]। संस्कृत साहित्य में ऋतु वर्णन का एक अन्य रूप 'ऋतु संसार' में देखने को मिलता है।

कभी-कभी कवियों ने पात्रों के मुख से ऋतु सौन्दर्य का उद्घाटन करवाया है। कर्पूर मंजरी में इस प्रकार के कई सुन्दर स्थल मिलते हैं।[4] १४वीं शताब्दी की पुस्तक वर्ण रत्नाकर में छहों ऋतुओं का विधान बताया गया है। उसमें प्रत्येक ऋतु की वे मुख्य-मुख्य विशेषताएं दी गई हैं जिन्हें उस ऋतु का वर्णन करते समय कवियों को नहीं भूलना चाहिए। उदाहरणार्थ वसन्त-वर्णन में वृक्ष की नवीनता पल्लव का उद्गम कुसुम का संभार मलयपवन कोकिल का कलरव, भ्रमर की रुनझुनी काम की क्रीड़ा विरहिणी की उत्कंठा-व्यग्रता नायक का हर्ष नायिका

१—जा० ग्र० (ना० प्र० सभा, काशी) पृ० ४३ (दोहा ६)।
२—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ८४।
३—पं० रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि काव्य में प्राकृतिक दृश्य, भाग २।
४—राजेश्वर कर्पूर मंजरी १।१७।

की अभिलाषा इत्यादि के वर्णन का विधान बताया गया है[1]।

संदेश रासक में अद्दहमाण[2] ने ऋतु वर्णन की परम्परा का उपयोग नायिका के विरह को अपेक्षाकृत गम्भीर रूप में प्रकट करने के लिए किया है। चंदवरदाई ने भी पृथ्वीराजरासो[3] से ६१ वें समय में षड्ऋतु वर्णन की नियोजना की है।

संस्कृत साहित्य के आदि कवि वाल्मीकि[4] से अनवच्छिन्न भाव से चली आती हुई षड्ऋतु वर्णन की परम्परा अपभ्रंश से होती हुई हिंदी साहित्य में भी चली आई है। इस परम्परा में कालिदास के ऋतु संहार में षड्ऋतु वर्णन का भव्य, अनाविल और जीवन्त सुन्दर रूप दर्शनीय है। जायसी ने भी इसी परम्परा से रत्नसेन और पद्मावती के संयोग शृंगार के उद्दीपन-रूप में षड्ऋतु वर्णन खण्ड का नियोजन किया है।

पदमावत का षड्ऋतु वर्णन नूतन परिणीता पद्मावती के हर्षातिरेक का चित्रण करता है।

नवल वसन्त ऋतु पद्मावती के लिए अभिनव जीवन का संदेश देते हुए आई है, नवल वसंत नवल ऋतु चैत और वैशाख की श्री सम्पन्नता चंदन, चीर पुष्पहार, परिमल-सुवास, भौंरा का पुष्प के संग प्रीति पराग खेलना चाचर धामरी, प्रभृति उद्दीपक वस्तुएं पदमावती के यौवन में अभिनव उल्लास का संचार करता हैं, सर्वोपरि बात तो यह है कि कांत घर में है ऋतु सुहावनी है आवा न करे वसंत पुन पुन नित्य प्रति।[5]

जहाँ ज्येष्ठ-आषाढ़ से कान्त घर में ही है वहाँ ग्रीष्म ऋतु की तपन कहाँ रह सकती है? धनी ने मुरंगी भीना परिधान पहन रखा है परिमल और मद से उसका तन मह-मह हो उठा है, एक तो पद्मावती का शरीर यों ही शीतल और सुवासित था, दूसरे नैहर में पिता का राज्य – उसमें भी कान्त का प्राप्त सुसान्निध्य, उसका अधर ताम्बूल और भीमसेनी कपूर से लाल था, वह चन्दन-चर्चित शरीर में सेज लगाती था, अंगूर अनार और ग्रीष्म के सदाफर आम्र आदि के रसास्वादन से उसके सम्भोग-सुख में तीव्रता ही आती है।[6]

पावस ऋतु में कांता का कान्त के साथ विलास सावन-भादों का अति

१—वर्णरत्नाकर, चतुर्थ कल्लोल पृ० १८–१९।
२—संदेश रासक (सं० प० हजारीप्रसाद द्विवेदी)।
३—डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी चन्दवरदायी और उनका काव्य, पृ० १०६।
४—वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड, सर्ग १ श्लोक २२–३१।
५—जायसी ग्रंथावली (पद्मावत) पृ० १४८, (दोहा ५)।
६—पद्मावत डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ३३५, दो० ३३६।६

सुदर लगना, कोकिल की मधुरध्वनि काकनी सुनाना गमन सुनानी धरती मेघमय असमान म बकपंक्ति-गमन लानिम परिवानावता धयाओ का ऐस निकलना जसे बीर-बहूटियां हो विद्युत की कौंध — उसम धारासार वडी का स्वण-सदृश दृष्टिगोचर होना दादुर और मयूरा के अति सुन्दर शब्द प्रियतम के सग रति रग म जागी अनुरागिणी धया गगन गजन से चौंक कर उसका कठालिंगन करना हरा भरा ससार हरित भूमि कुसुभी वस्त्र धया का प्रियतम के साथ हिंडोल का आयोजन पवन झकोरे वतास का शीतल लगना धया स पवन और पवन से धया परिमल और सुवास प्राप्त करके धय धय होना चाहते है ।[१]

इस प्रकार वर्षा ऋतु के सुहाने तत्व समागिनी पदमावती का हर्षातिरेक प्रदान करत हैं । कवि ने प्रकृति के उपादानो के द्वारा भावो के सदेश और तादात्म्य सम्बध का भी उपस्थापन किया है—

रग-राती पियसग निसि जागे । गरज चमकि चौंकि कठ लागे[२] ।

गगन गरजता है तो धया चौंक कर प्रियतम के गले स लिपट जाती है । यहा पर प्रकृति और मानव भावा का सामजस्य स्थापित किया गया है जिसम प्रकृति भावा को आधार प्रदान कर रही है ।

अत्यत सुहानी कुआर कार्तिक की अभिनव उजियारी पूर्णिमा की पूणकला षोडश शृगार नक्षत्रा स भरा आकाश प्राजल धरती-आकाश पुष्प विकसित पय लिका स्वर्णिम फूलो से फूली पृथ्वी खजन सारस-युगम का विहार आदि शरद ऋतु के उपकरण प्रियतम के सग म आलिगित धया और धया के गल-लगे प्रियतम के सुख विलास का सवर्धित करते हैं ।[३] केशवदास ने शरद ऋतु के वण्य उपकरणो की सूची इस प्रकार दी है—

अमल अकास प्रकास ससि मुदित कमल कुल कास ।
पथी पितर पयान नृप सरद सुकेसवदास ॥[४]

यहा यह द्रष्टव्य है कि जायसी का शरद वणन सादृश्य है वह मात्र परपरा पालन के ही लिए नही है । इस वणन की कतिपय पक्तियाँ अथ-व्यजना और उत्कृष्ट काव्य सौदय की दृष्टि स अतुलनीय ह— पदमावति म पूनिव कला । चौदह चाद उए सिघला ॥ सोरह करा सिंगार बनावा । नखतन्ह भरे सुरुज ससिपावा ॥[५]

१—पदमावत डा वासुदेवशरण अग्रवाल पृ० ३३६ दोहा ३ ७।७ ।

२—पदमावत (डा वासुदेवशरण अग्रवाल) पृ ३३६ (दोहा ३८।४) ।

३—जायसी ग्रथावली, ना० प्र० सभा काशी पृ० १४६ (दोहा ८) ।

४—केशवदास प्रियाप्रकाश ३३वां दोहा पृ० १४३ ।

५—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पदमावत पृ० ३८७ (टिप्पणी और अथ) ।

इन पंक्तियों का अर्थ समर्थता व्यंजना और जीवन्त चित्रात्मकता आदि का सौन्दर्य दर्शनीय है।

हेमन्त और शिशिर वर्णन में कवियों का प्रकृति का बहुत कम ध्यान रहता है। इन ऋतुओं का वर्णन करते समय उसका ध्यान मानव व्यापारों पर ही अधिक केन्द्रित रहता है।

अगहन पूस में जिस घर में प्रिय हो वहां सर्दी तो होती ही नहीं। धन्या और प्रियतम के बीच में तो यह शिशिर ऋतु सोहाग का काम करती है। मन से मन शरीर से शरीर और हृदय से हृदय ऐसे मिले कि हार भी नहीं रहा चन्दन की भांति शीत भी नहीं। हंसयुग्म की भांति रत्नसेन और पदमावती क्रीड़ा रत थे। शीत जो प्रिया के अंग में था, वहां से भगाए जाने पर (चकवे के रूप में) अलग खड़ा पुकार रहा था मानो उसे किसी चकवी का वियोग हुआ है।[1] हेमन्त ऋतु में रत्नसेन के पास पाला नहीं लगता। शीत भी सुखकर है। भला जहां बाला और पति एक साथ हो वहां शीत कहां? वहां से शीत ऐसे भागता है जैसे बाण देख कर काग। बेचारे शीत ने भाग कर इन्द्र-दरबार में अपना देश निकाला वाला दुखड़ा निवेदित किया इस ऋतु में मैं उसके संग शयन करता, अब तो मुझ उसके दर्शन भी दुर्लभ हो गए हैं। अब तो शशि सूर्य से भेंट हो गई है—शीत का देश निराला हो गया है। इन्द्र ने भी कहा कि यह तो यही नियम है कि कभी किसी की बारी है और कभी किसी की।'[2]

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राकृतिक उपादानों द्वारा नव दंपति के हर्ष और सुख विलास को उद्दीप्त करने के मिस षड्ऋतु-वर्णन की योजना द्वारा माधुर्य-सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

पृथ्वीराज रासो[3] संदेश रासक[4] ढोला मारू रा[5] दूहा और पदमावत में ऋतु वर्णन के अन्तर्गत प्रकृति वर्णन किया गया है। इन ग्रन्थों में ऋतु वर्णन का प्रसंग प्रायः उद्दीपन के ही रूप में आया है। जायसी ने पूर्ण मनोयोग के साथ प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों की अकृत्रिम मनोरम झांकियाँ दिखाकर नायक–नायिका के भावों के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए प्रेम विरह की व्यंजना की है।

१—जायसी ग्रन्थावली (हिन्दुस्तानी एकेडमी), दोहा ३३९।

२—वही दोहा ३४०।

३—पृथ्वीराज रासो (कई समयों में), मुख्य रूप से 'शशिवृता विवाह समय' और वनवज्ज समय।

४—संदेश रासक प्र० २ ३।

५—ढोला मारू रा दूहा, पृ० २४०—४१–४२।

बारहमासा और उसका सौन्दर्य

बारहमासा वर्णन की परम्परा संस्कृत साहित्य में नहीं मिलती। संभवत लोकजीवन से गृहीत यह परम्परा हिन्दी साहित्य की अपनी वस्तु है। बारहमासे के द्वारा प्रत्येक महीने की प्रकृति के विरही और विरहिणियों पर पड़े हुए प्रभाव वैविध्य के माध्यम से प्रकृति चित्रण किया जाता है। संभवत इस परम्परा का मूल उत्स अपभ्रंश कालीन जनगीतियों का उन्मुक्त क्षेत्र है। जनगीतियों की भावधारा में वियोगिनी की व्यथा के साथ परिवर्तित नर्तित काल का रूप और उसकी प्रतीक्षा मिलकर आई है। प्रत्येक मास की प्रमुख प्रकृति की रूप रेखा के आधार पर वह अपने प्रियतम को याद कर लेती है और उसके लिए विकल हो उठती है।[1] वर्ष का प्रत्येक मास यथा कातरा विरहिणी के भावों को उद्दीप्त करता है। कान्त के वियोग में वसन्त उसे उन्मत्त बना देता है तो ज्येष्ठ की प्रचंड गर्मी उसे जला डालती है भूधराकार घनों की घमंड–गर्जना में वह संत्रस्त हो उठती है तो शरद की ज्योत्सना अग्नि बरसाती प्रतीत होती है।

हिन्दी साहित्य में बारहमासा वर्णन आदिकाल से ही मिलने लगता है। नरपति नाल्ह कृत बीसलदेवरास में वियोगिनी राजमती का बारहमासा ही प्रमुख प्रतिपाद्य है।[2] विद्यापति ने भी बारहमासे का वर्णन किया है (मोर पिया सखि गेल दूर देस। — – भइन विद्यापति बारहमास[3])। मंझन उसमान दुखहरन दास बोधा आदि कवियों ने भी अपनी भाव लड़ियां बारहमासा वर्णन से गूंथी हैं। जायसी के पदमावत में भी प्रकृति के प्रत्येक मास के रूप का अत्यन्त सुन्दर वर्णन हुआ है। प्रकृति के बारहों महीने के रूप और उनके साथ नागमती के विरह दग्ध हृदय की अनुभूतियों का भी उन्होंने मार्मिक और करुणापूरित चित्रण किया है।

जायसी के बारहमासा वर्णन का लक्ष्य है नागमती का विरहोद्दीपन एवं स्वाभाविक प्रकृति चित्रण द्वारा विरहिणी नागमती की विरहजन्य वेदना का हृदय स्पर्शी निरूपण इस बारहमासा का मूल आधार नागमती का विरह निवेदन ही

१–डा० रघुवंश प्रकृति और हिन्दी-काव्य मध्ययुग, पृ० ४०६।

२–क (स०) डा० माताप्रसाद गुप्त, बीसल देव रास।

ख बीसलदेव रासो (ना०प्र० सभा काशी) तृतीयसर्ग पृ० ६७–७०।

३–रामवृक्ष बेनीपुरी विद्यापति पदावली पद २०८ (५० पंक्तियों में) पृ० २७१–७३।

४–मंझन कृत मधुमालती (हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय) पृ० १२०–२३।

५–डा० रघुवंश प्रकृति और हिन्दी काव्य पृ०३५१–५४।

है। परम्परा प्रचलित प्रकृति के उपमान नवीन मौलिक उपमान एवं मार्मिक उक्तियों से युक्त इस बारहमासे में क्षण क्षण नवीनता और उत्कृष्ट सौंदर्य प्रदान करने वाली ताजगी विद्यमान है।

एक तो दूसरी स्त्री के लिए पति के जोगी होकर घर से चले जाने की विरह व्यथा दूसरे प्रत्येक महीने की विरह व्यथा को तीव्र करने वाली प्रकृति बचारी जिए भी तो कैसे ?

पुष्य नखत सिर, ऊपर आवा। हौं बिनु नाह मंदिर को छावा ॥ [1]

नागमती है तो चित्तौड़ की पटरानी, किन्तु वह चित्रना में सामान्य विरहिणी बाला के रूप में उपस्थित होती है। कान्त घर में नहीं है भला उसके बिना मेरी टूटी कुटिया का कौन छाएगा ? (श्लेष से) कान्त के अभाव में इस शून्य राजप्रसाद या (मन मंदिर) को कौन अलंकृत करेगा ? सावन का सुहावना महीना ग्रामीण संयोगिनियों के हृदय का पारावार तरंगित होता हुआ रहता है। वे हिंडोले पर झूलती हैं गाती हैं पर विरहिणी को तो ये सब वस्तुयें प्रियतम की सुधि में विसूरने का बाध्य करती हैं। सखिन रचा पिउ संग हिंडोला 'पूस नाग' सब घर घर कापा प्रभृति पंक्तियों में प्रकृति के यथार्थ चित्रण के साथ ही ग्राम्य जीवन की सच्ची अभिव्यक्ति हुई है। ये पंक्तियां अत्यन्त स्वाभाविक हैं।

जायसी ने इस वर्णन में प्रकृति के उद्दीपन विभाग के अंतर्गत आने वाले रूपों की दृष्टि से अधिक उन्मुक्त वातावरण का सृजन किया है। परवर्ती रीति कालीन कवियों में भाव-व्यंजना एवं वेदना की अनुभूतियों की अभिव्यंजना के स्थान पर वेदना के बाह्य अनुभवों और विलास के क्रीड़ा-कलापों का संवर्धन होता गया है। किन्तु जायसी ने ऋतु के बदलते हुए विभिन्न दृश्य रूपों को विरहिणी के मार्मिक भावों के सम पर ही उद्दीपक बनाया है। इसमें विरहिणी के विरह प्रसंग को लेकर प्रकृति को अत्यन्त सहज संबंध में चित्रित किया गया है। विरह कातरा नागमती प्रत्येक मास के परिवर्तमान प्राकृतिक वातावरण के साथ अपनी विरह-वेदना को सम अथवा विरोध पर रखकर अधिक कष्ट का अनुभव करती है। प्रियतम की प्रवासजन्य वेदना के ऊपर से ऋतुएं भी उसे महान कष्ट दे रही हैं।

'आषाढ़ मास के पूर्व श्याम और ध्वजा वर्ण के धावमान बादल श्वेत धवल रूपी बकपंक्ति गमन तलवार की भांति विद्युत की कौंध, बूँदों की धारासार बाण वर्षा घटा का जलभार में घुमड़ना दादुर की टर-टर कोकिल की काकली पपीहे की 'पी-पी', विद्युत का गिरना और ऐसे गाढ़े समय में कान्त का 'बाहर' रहना

१—जा० ग्र० ना० प्र० सभा काशी, पृ० १९२।

बेचारी नागमती का सब सुख विस्मृति प्राय है।[1]

सावन महीने की प्रकृति के उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत भी प्रकृति और विरहिणी के भावों का सामंजस्य स्थापित किया गया है। सावन में अपार पानी बरस रहा है चारों ओर भरा पानी है फिर भी विरहिणी सूखती जाती है वह रक्त के आंसू रोती है जैसे बीर बहूटियाँ रेंग चली हैं सखियों ने हिंडोल का निर्माण किया है किन्तु उसका हृदय तो स्वयं दोलायमान हो रहा है सारा संसार जलमय हो रहा है और उसकी नाव खेवक के बिना ठहरी हुई है। विरहिणी के पास न पांव हैं न पंख प्रियतम और उसके बीच पर्वत समुद्र बीहड़ वन और घने ढाख के जंगल हैं वह उसमें कैसे मिले ?[2]

इसी प्रकार जायसी ने प्रत्येक महीने की उद्दीपक प्रकृति के यथार्थ और मर्मस्पर्शी सुन्दर चित्रों द्वारा भी नागमती के विरह निवेदन को अधिक तीव्र मार्मिक और प्रभविष्णु बनाया है—

गजमान बादलों के साथ आषाढ़ चढ़ा है	प्रिय बचाओ मैं काम आक्रान्ता हूँ।
बिजली गिरती है	घट में जीव नहीं रह जाता।
पुष्य नक्षत्र सिर के ऊपर आ गया है	स्वामी के बिना कौन मेरा मंदिर छायेगा।
आर्द्रा लगने ही बिजली चमक कर	
भूमि छने लगी	सुनो प्रिय के बिना कौन आदर देगा ?
सावन में पानी खूब बरस रहा है	
भरन पड़ी है	मैं सूख रही हूँ।
संसार जल से आप्लावित है	मेरी नाव खेवक बिना थकी है।
मघा में बादल झकोर-झकोर कर	विरहिणी के नयनों में धारागार अश्रु
बरसता है	वर्षा हो रही है।

स्पष्ट है कि इस बारहमासे में प्रकृति और विरहिणी की भावनाओं का सामंजस्य अत्यन्त सरस एवं मनोमय ढंग से उपस्थित किया है। प्रकृति का स्वाभाविक रूप भावों को आधार प्रदान करता है और भावों की सहज स्थिति प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त करती है। इसके साथ ही प्रकृति के विविध क्रिया-व्यापारों में भावों की व्यंजना का सन्निविष्ट रूप भी बारहमासे का एक आकर्षक और सौंदर्य-वर्द्धक तत्व है। वियोगिनी के भावों और अनुभावों के साथ ही प्रकृति में कल्पना का भी उपस्थापन किया गया है। यदि मघा में झकोर-झकोर कर वर्षा होती है तो उसके

1—जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० १५० (दोहा ८)।
2—जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० १५२ (दोहा ६)।

नयनों से भी अनिमेष आसुओं की झड़ी लगा है यदि अन्धकार अथाह और गम्भीर है तो उसका मन भी मलिन है।"

बारहमासे का रेखांकन

जायसी ने बारहमासे में शब्दों व गुम्फन का ऐसा उत्कृष्ट विधान किया है कि वर्ण्य-वस्तु का आकृति-चित्र पाठक की आंखों के समक्ष झूलने लगता है।

'जेठ में संसार जल उठता है लू चलने लगती है बवंडर उठते हैं, अंगार बरस पड़ते हैं विरह गरज कर हनुमान की तरह जागा है और शरीर में लंका दहन कर रहा है चारों ओर से चलकर पवन अग्नि को प्रदीप्त कर देता है, वह अग्नि लंका को जलाकर पर्वत गिरा में लग गई है आग उठती है, आंधी आती है और नयनों से नहीं सूझता हाय मैं विरह दुख में बंधी मरती हूं।' जायसी ने प्रकृति के इस चित्र में रेखाओं को खूब उभार कर अपनी सूक्ष्म काव्य कला शक्ति का परिचय दिया है। प्रकृति के दृश्य खण्ड की योजना की यथार्थता प्रकृति और मानवीय भावों का सहज तादात्म्य सम्बन्ध और शब्दों के माध्यम से रेखांकन इस प्रक्रिया के विशिष्ट आकर्षण के केन्द्र हैं।

कार्तिक में शरच्चन्द्र की उज्ज्वलता में जग शीतल हो रहा है और मैं विरह में जल रही हूं। पूनम की चन्द्रा से संयुक्त चन्द्र प्रकाशित है, मुझे लगता है मानो धरती-आकाश सब जल रहे हैं मेरे तन और मन में सेज अग्निदाह उत्पन्न करती है। सबके लिए यह चांद है पर मेरे लिए तो राहु हो गया है। घर में कान्त नहीं हैं मेरे लिए चतुर्दिक अंधियारा ही है। अरे ओ निठुर अब भी तो इस शुभ दिन घर आजा जब संसार में दीवाली का पर्व मनाया जा रहा है। सखी का झोड़-झोड़ कर कर हाथ-साथकर सखियां घूम घूम कर झूमक गा रही हैं और मैं झखती-झूखती हूं कि मेरी जोड़ी बिछुड़ गई है। जिसके घर में प्रिय है वह पूजा कर रही है मुझे एक तो विरह का दुख ऊपर से सपनी का चिन्ता भी है।[2]

नागमती अपनी विरह व्यथा का निवेदन परिवर्तित ऋतु रूपों के माध्यम से करती है। उसकी विरहाभिव्यक्ति के मूल में प्रकृति से अधिकाधिक सहृदयता स्थापित करने की भावना भी अनुस्यूत है। इस वर्णन में प्रकृति का भी जीवन्त रूप समक्ष उपस्थित हो जाता है—

सावन में— जग जल बूडि जहां लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी।

१—जा०ग्र० (ना०प्र० सभा काशी), पृ० १४६ (दोहा १८)।
२—वही पृ० १५३ १४ (दोहा ८)।

भादो म —'धनि सूने भरे भादो माहा । अबहु न आएन्हि सीचेन्हि नाहा ॥

'चित्रा का मीत चन्द्र मीन राशि म आ गया पपीहा ने पिउ पिउ पुकारते हुए मानो अपने सखि को पा लिया, अगस्त उदित है स्वातिबूद चातक के मुख म पड गया सरोवर का स्मरण करके हस लौट आए, सारस कुरलित एव क्रीडाशील हैं खजन दिखाई पडते हैं कास फूल गए हैं–य समस्त उल्लास तो आए पर हे कान्त, तुम नहीं लौटे विदेश म ही भूल रहे'।

इन वणना, दशा और प्रकृति के चित्रा के साथ ही जायसी ने ग्राम्य प्रकृति के अनेकश सुरम्य चित्रो को अत्यन्त जीवन्त रूप म उपस्थित किया है –

(भादो मे) बरस मघा झकोरि-झकोरी । मोरि दुई नन चुव जस ओरी'।

(क्वार म) भा पर गास कास उन फूले । कत न फिरे विदेसहि भूले'।'

(कार्तिक म) सखि झूमक गाव अग मोरी । हों भुराव बिछुरी मोरी जोरी ॥

(अगहन मे) काप हिया जनाव सीऊ । तो प जाइ होइ सग पीऊ ।'

अत 'पिउ सो कहेउ सदेसडा हे भौंरा हे काग ।

सो धनि बिरहे जरि मुई तेहिक धुवा हम्ह लाग'।

(यहा पर नागमती की सम्पूण विरह वेदना का अत्यन्त कारुणिक और सवेदनीय रूप दशनीय है)।

(पूस म) पूस जाड थर–थर तन कापा । सुरुज जडाइ लक दिसि तापा'।

(माघ म) लागेउ माघ पर अब पाला । बिरहा काल भएउ जडकाला' ॥

(फागुन म) फागु करहिं सब चाँचरि जोरी । मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी ॥

यह तन जारी छार क कहीं कि पवन उडाव ।

मकु तेहि मारग उडि पर कत धर जह पाव' ॥

(चत म) चत बसता होइ धमारी । मोहि लखे ससार उजारी'।

(बशाख म) लागिउ जर जर जस भारू । फिरि फिरि भूजेसि तजिउ न बारू ॥

१–जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी) प० १८३ (दोहा ७) (पद्मावत, डा० अग्रवाल पृ० ३४७ दोहा ३४७।४)

२–वही प० १८३ (दोहा ६।५)। ३–वही प० १५३ (दोहा ७।७)।

४–वही प० १५४ (दोहा ८)।

५–जा ग्र० (ना० प्र० सभा, काशी) दोहा ६।

६–पद्मावत (डा० वासुदेवशरण अग्रवाल) प० ३४६ (१०।१)

७–जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० १५४ (दोहा ११।१)।

८–वही, पृ० १५५ (दोहा १२)। ९–वही पृ० १५५ (दोहा १३।१)।

सरवर हिया घटत नित जाई। टूक टूक ह्वै कै बिहराई॥
बिहरत हिया करहु पिउ टेका। दीठि दवगरा मेरवहु एका॥
कवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गएउ सुखाइ।
कबहु बेलि पुनि पलुहै जौं पिउ सींचै आइ[1]॥

नागमती के हृदय की उपमा कवि ने सूखते हुए सरोवर से दी है। उसकी यथा प्रस्तुत चित्र म साकार हो उठी है। यह चित्र ग्राम्य जीवन महान पारखी कवि जायसी की ही लेखनी से सम्भव थे। इन पंक्तियों के विषय म प० रामचन्द्र शुक्ल का कथन विशेष रूप से उल्लेख्य है – मैं तो समझता हू इसके जोड की सुन्दर और स्वाभाविक उक्ति हिन्दी काव्यों मे बहुत ढूंढने पर शायद ही कहीं मिल तो मिले[2]। सचमुच य पंक्तियां ही जायसी को अमर महाकवि सिद्ध करने को पर्याप्त हैं। यहा पर प्रकृति के आलम्बन रूप के माध्यम से मानव की रागात्मिका वृत्ति का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया गया है। समष्टि रूप म कहा जा सकता है कि 'नागमती का बारहमासा प्रकृति सौंदय विरह-वेदना की अन्यतम अभिव्यक्ति और उत्कृष्ट काव्य सौंदय की दृष्टि से हिन्दी साहित्य का एक महाघ रत्न है।

'बारहमासे के सम्बन्ध म यह जिज्ञासा हो सकती है कि कवि ने वणन का आरम्भ आषाढ़ से क्यों किया है चैत से क्यों नहीं किया? बात यह है कि राजा रत्नसेन ने गङ्गा-दशहरे को चित्तौड से प्रस्थान किया था जसे कि इस चौपाई से स्पष्ट है –

'दसव दाव क गा जो दसहरा। पलटा सोइ नाव लेइ महरा॥

यह वचन नागमती ने उस समय कहा है जब राजा रत्नसेन सिंहल से लौट कर चित्तौर क पास पहुचा है। इसका अभिप्राय यह है कि जो केवट दशहरे के दिन मेरी दशम दशा (मरण) करके गया था, ज्ञात पडता है कि वह नाव लेकर आ रहा है। दशहरे के पाच दिन पीछे ही आषाढ लगता है इससे कवि ने नागमती की वियोग दशा का आरम्भ आषाढ से किया है[3]।

वैशिष्ट्य

जायसी ने ऋतु वणन म परवर्ती रीतिकालीन कवियों जसी बेमेल ठूसठांस या उक्ति चातुय की कलाबाजियों का भद्दा प्रदर्शन नहीं किया है। इनके वणन की सबसे

१—जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० १५६ (दोहा १४)।
२—जा० ग्र० (ना० प्र० सभा, काशी) भूमिका पृ० ८६।
३—वही पृ० ८६।

बड़ी विशेषता है व्यंजना का सारल्य और लोक जीवन के विविध रूपों की सीधी, सहज किंतु अत्यन्त मार्मिक समर्थ, अर्थपूर्ण और प्रभविष्णु अभिव्यक्ति। लोक जीवन और उसके उपादानों के यथार्थ वर्णन में जायसी सिद्धहस्त थे। इसे स्पष्ट करने के लिए दो एक उदाहरण पर्याप्त होंगे —

चमक बीजु बरस जल सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना
(विद्युत की कौंध में धारासार वर्षा की बूंदों का सुवर्ण के समान चमकना)।
पिउ सजोग धनि जोबन बारी। भौंर पुहुप सग करहिं धमारी॥
होइ फाग भलि चाचरि जोरी। बिरह जराइ दीन्हि जस होरी॥
जिन्ह घर कंता ऋतु भली आव बसंत जो नित्त।
सुख भरि आवहिं देवहरे दुःख न जानै कित्त[1]॥
पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह मंदिर को छावा॥
बरसै मघा झकोरि झकोरी। मोरि दुइ नैन चुवैं जस ओरी[2]।
सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक ह्वै कै बिहराई[3]॥
बिहरत हिया करहु पिउ टेका। दीठि दवंगरा मेरवहु एका॥
—जायसी

कंत बिन बासर बसंत लागे अंतक से
तीर ऐसे त्रिविध समीर लागे लहकन
—देव

चंतगी कहा तो चांदनी में चरि जायगी।
बनन में बागनि में बगरयो बसंत है।
—पद्माकर।

स्पष्ट है कि रीतिकालीन कवियों ने शब्दों और अलंकारों के व्यामोह में प्रकृति का निरीक्षण नहीं किया और सहज ही सौंदर्य समाप्त हो गया किंतु जायसी के सहज शब्दों से उनका सूक्ष्म निरीक्षण और मार्मिकता तथा अर्थपूर्ण भाषा समर्थता सीधे हृदय को स्पर्श कर लेती हैं।

समष्टि रूप में हम कह सकते हैं कि पद्मावत का बारहमासा उद्दीपन रूप में प्रकृति में अवसादमय रूप का चित्रण करता है (उद्दीपन रूप में प्रकृति के हर्षमय तथा सुखमय स्वरूप का चित्रण वसंत वर्णन और षड्ऋतु वर्णन खंड में हुआ है।

'जग जल बूडि जहां लगि ताकी' आदि का औचित्य —

ध्यानपूर्वक विचार करने पर पता लगता है कि जायसी नागमती के प्रवह-

---

१—जा० ग्रं० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० १४८।
२—वही पृ० १५२ १५३। ३—वही पृ० १५६।

मान आंसुओं में बह गए हैं। उन्होंने देश का ध्यान भुला दिया है। आलोचकों का यह आक्षेप है कि चित्तौडगढ़ निवासिनी नागमती के मुख से यह कहवाना उचित नहीं है –

'जग जल बूडि जहा लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी ॥
सावन बरस मेह अति पानी। भरनि पड़ी हौं बिरह झुरानी ॥
धनि सूखे भरें भादों माहा।
जल थल भरे अपूर सब धरति गगन मिलि एक

कहा जा सकता है कि उनकी नागमती जायस में गङ्गा जमुना के दो आबे में या बेरापू जी के निकट नहीं है, वह तो चित्तौर में है जो मरुभूमि है। सम्भवतः परम्परा और वर्णन के मोह में कवि को यह ध्यान ही नहीं रहा। कुछ लोगों ने इस भूल का मार्जन इस तर्क से किया है कि तन चितउर मन राजा कीन्हा ॥, आदि – इस रूपक को ध्यान में रखने पर उपरोक्त भूल भूल नहीं रह जाती, क्योंकि तन ही चित्तौर है और मन ही राजा और नागमती दुनिया धन्धा है। किन्तु मैंने इस रूपक के औचित्य पर 'पद्मावत की सार्वतिकता' के अन्तर्गत विचार किया है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने सिद्ध कर दिया है कि यह रूपक प्रक्षिप्त है। अतः इस प्रकार के तर्क कपोल कल्पित हैं जिनका कोई महत्व नहीं है।

यदि हम सहानुभूत्यात्मक दृष्टिकोण से इन पंक्तियों के औचित्य पर विचार करें तो ज्ञात होता है कि जायसी का वक्तव्य सार्वकालिक और सार्वदेशिक है एक देशीय नहीं। हम जायसी के दृष्टिकोण से उनके कथन पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करना चाहिए। यहां पर नागमती के माध्यम से जायसी का कथन है 'जहां तक देखती हूं संसार जल में डूबा है।

पुनः नागमती तो जग जल बूडि जहा लगि ताकी कह रही है। वह यह नहीं कहती कि चित्तौड़ या राजपूताना जल से आप्लावित हो गया है। इस प्रकार नागमती की उक्ति सार्वकालिकता और सार्वदेशिकता की कसौटी कसी जानी चाहिए। पुनः यदि साहित्यकार अपने वक्तव्य की प्रेषणीय भूमिका में सफल है, तो उसके ऐतिहासिक या भौगोलिक औचित्य का कोई प्रश्न नहीं उठता। पद्मावत पृथ्वीराज रासो और रामचरितमानस महाकाव्य हैं इनकी कसौटी साहित्य है इनका सम्पूर्ण सौन्दर्य साहित्यिक है ऐतिहासिक या भूगोलिक नहीं।

८

शैलीगत विवेचन

पदमावत की सांकेतिकता

पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा संपादित जायसी ग्रन्थावली में पदमावत के उपसंहार खंड में कतिपय ऐसी पंक्तियाँ हैं जिनमें पात्रों और स्थानों के प्रतीकों के स्पष्टीकरण किए गए हैं। ये पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

' मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा ॥
चौदह भुवन जो तर उपराही। ते सब मानुष के घट माहीं ॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा ॥
गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा ॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बांचा सोइ न एहि चित बंधा ॥
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू ॥
प्रेम-कथा एहि भांति बिचारहु। बूझि लेहु जौं बूझै पारहु ॥
तुरकी अरबी हिंदुई भाषा जेती आहि।
जेहि मंह मारग प्रेम कर सबै सराहैं ताहि ॥ '[1]

डा० माताप्रसाद गुप्त ने प्रस्तुत पंक्तियों को प्रक्षिप्त अंश माना है। उन्होंने मूलतः १४ प्रतियों के आधार पर पदमावत का संपादन किया है।[2] उन्हें यह छंद चार प्रतियों में मिला था। ये प्रतियाँ इस प्रकार हैं – प्रति १ प्रति तीन १ प्रति दो ४ और ५।

इन प्रतियों में प्रति १ डा० गुप्त को मिली प्रतियों में सर्वाधिक प्राचीन है।

१–जा० ग्र० सं० रामचन्द्र शुक्ल ना० प्र० सभा, काशी पृ० ३०१।
२–जा० ग्र० माताप्रसाद गुप्त भूमिका पृ० ६३।

इसका प्रतिलिपिकाल ११०७ हि० है। आज पद्मावत की लगभग तीन दर्जन प्रतियों का पता चल गया है। इन प्रतियों के आधार पर पद्मावत के पुन वैज्ञानिक सम्पादन की आवश्यकता है। इस सम्पादन म जायसी की भाषा, व्याकरण आदि का भी ध्यान रखना आवश्यक होगा। अभी यह गन्तव्य है कि इन तीस प्रतियों म किन किन प्रतियों म यह अश मिलता है। यह भी अभी समस्या ही है कि यह अश जायसी द्वारा विरचित है या नहा।

जिस आधार पर उन्होंने पदमावत क उक्त अश को प्रक्षिप्त माना है वह कोई विशेष प्रामाणिक आधार नही कहा जा सकता। जायसी-साहित्य की अभी अधिकाधिक खोज होनी चाहिए और प्रामाणिक प्रतियों के आधार पर ही विद्वानों को कोई ऐसा सर्वमान्य निर्णय करना चाहिए। अभी तक जो प्रतियाँ उपलब्ध हैं उनके सम्बन्ध म विद्वानों के विभिन्न मत हैं। सक्षप में यही कहना है कि तन चितउर मन राजा कीन्हा वाला अश प्रक्षिप्त नहीं है। फिर सम्पूर्ण कथा को एक अन्योक्ति मान लेने म किसी को विरोध नही होना चाहिए क्योंकि पदमावत की मूल कथा साधना की कथा है, सामान्य कथा नहीं।[1] डा० सुधीन्द्र का कथन है कि 'पदमावत एक विराट आध्यात्मिक रूपक सकेत अथवा अन्योक्ति है, जिसमें लौकिक, शारीरिक और वाक्गम्य प्रतीकों के द्वारा अलौकिक अशारीरिक और ज्ञानातीत ब्रह्म जीव और उसके चिरन्तन सम्बन्ध अद्वैत की व्यञ्जना की गई है।[2]

प० चन्द्रबली पाण्डेय ने भी इस अश को जायसी-कृत माना है।[3]

— ——— — ——— — कथन है कि कवि ने जो कुञ्जी दी है । मानना भी ठीक नहीं है। हम तो नागमती की अवहेलना कर पद्मावती प्राप्ति क प्रयत्न को उसी दृष्टि स देखते हैं। जिस दृष्टि से नाथपंथी मछन्दरनाथ को सिंहल जाकर पद्मिनी स्त्रियों के जाल म फँस जाने की। वह पतन है उत्थान नहा। नागमती का प्रेम जितना प्रिय है उतना पद्मावती का नहा।

श्री ए० जी० शिरेफ का कथन है कि सम्पूर्ण पद्मावत म कोई निश्चित अन्योक्ति है इस विषय म मुझे सन्देह है। कवि ने उपसहार म जो कुञ्जी दी है वह

१–प्रो० दानबहादुर पाठक और प्रो० जीवन प्रकाश जोशी जायसी और उनका पदमावत पृ० १७६—७७।

२–वही पृ० १८०—८१।

३–पद्मावत का काव्य सौन्दर्य पृ १२६—३०।

४–डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल द्विवेदी अभिनन्दन ग्रथ, पद्मावती की कहानी और जायसी का अध्यात्मवाद, पृ० ३८५—४०१।

ताले मे ठीक नही बठती।[१] डा० सूयकात शास्त्री का कहना है कि अत्तार की तरह जायसी भी महान सूफी है। वे चित्तौर को शरीर, रतनसन को आत्मा सुआ को गुरु पद्मावती को बुद्धि राघव को शतान और अलाउद्दीन को माया के रूप म मानते हैं। इस प्रकार और भी व्याख्या देकर वे पदमावत को अन्योक्ति मानते हैं।[२]

डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि 'यह (तन चितउर मन राजा कीहा वाला) छन्द शुक्लजी के सस्करण म प्राय अन्त मे आता है और कथा के गूढाथ का निर्देश करता है। चित्तौर को तन राजा को मन, सिंहल को हृदय पद्मिनी को बुद्धि आदि बताता है। यह छन्द शुक्लजी को नवलकिशोर प्रेस और कानपुर वाले सस्करणो म मिला था, कदाचित इसलिए उन्होने इसे प्रामाणिक मानकर ग्रन्थ के मूल पाठ मे स्थान दिया। मुझ केवल दो हस्तलिखित प्रतियो म यह छद मिला है प्रति १ तथा त० १। ये प्रतिया पाठ परम्परा मे सबसे नीची पीढी मे आती हैं। इसलिए यह छन्द निश्चित रूप से प्रक्षिप्त है। किन्तु इस छन्द को प्रामाणिक मान लेने के कारण जायसी के रूपक निर्वाह के विषय मे शुक्लजी ने और उनके पीछे के जायसी के समस्त आलोचको ने कितना बडा वितडावाद किया है।[३]

डा० गुप्त को मूलत चार प्रतियो म यह अश मिला था। यह कहा जा सकता है कि किसी सूफी प्रचारक ने मत प्रचारक रूप का सद्धान्तिक जामा पहनाने की धुन मे यह अश पदमावत म डाल दिया है।[४]

इन पक्तियो के प्रकाश मे सम्पूर्ण कथा पर रूपक रूप का ठीक आरोप नहीं हो पाता। इस से जायसी की कुछ मान्यताओ का खण्डन भी हो जाता है। राघव को कही भी दूत के रूप म नही माना गया है यह तो चित्तौर का निष्कासित व्यक्ति है। यद्यपि यह अभी भी ज्ञातव्य है कि यह छन्द जायसी कृत है या नही तथापि यह छन्द जायसी की प्रतीक-योजना पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।

इन पक्तियों से स्पष्ट ध्वनित है कि अरबी फारसी और हिन्दुई सभी

१–ए० जी० शिरेफ पद्मावति (अग्रेजी अनुवाद) भूमिका पृ० ८ १९४४। 'आई डाउट वेरी मच इफ देयर ही (दि पोएट) हेड एनी डिफिनिट एलीगरी प्रजेन्ट टू हिज माइन्ड थ्रू आउट हिच ही गिव्स अस इन दी फस्ट स्टजा आफ दी एनवाय इज नाट बाई एनी मीन्स फिट फि साट।

२–डा० सूयकान्त शास्त्री पद्मावति प्रीफेस पृ० २।

३–डा० माताप्रसाद गुप्त जा० ग्र० भूमिका पृ० ११४।

४–वही, पृ० ६३।

५–पद्मावत का काव्य-सौंदय पृ० १३१।

भाषाओं में प्रेम मार्ग की प्रशंसा है। इन पंक्तियों में यह भी आग्रह किया गया है कि पदमावत की प्रेम कथा का इन्हीं प्रतीकों के प्रकाश में विचार किया जाय।

पदमावत में जायसी ने अनेक स्थानों पर अपने प्रतीकों की ओर इंगित किया है। उन्होंने कथा के आरम्भ में स्पष्ट कर दिया है कि पदमावत में व्यंग्यार्थ (आध्यात्मिक प्रेम पद्धति) ही प्रधान है। उसके प्रस्तुत अर्थ को प्रधान मानने वाले उसी प्रकार मूल रस से वंचित रह जायेंगे, जैसे दादुर कमल की सुगंधि का आनन्द नहीं उठा पाता।

कवि बियास कवला रस पूरा। दूरि सो नियर नियर सो दूरी॥
नियरे दूर फूल जस काटा। दूरि जो नियरे जस गुड़ चाटा॥
भवर आइ बन खण्ड सन लेइ कवल क बास।
दादुर बास न पावई भलहिं जो आछै पास।[1]

सिंहल को दर्पण के समान कहा गया है। सूफियों के यहाँ दर्पण हृदय का प्रतीक माना जाता है—

सिंहल दीप कथा अब गावौं। औ सो पदमिनि बरनि सुनावौं॥
निरमल दरपन भांति बिसेखा। जौ जेहि रूप सो तैसइ देखा।[2]

जायसी ने पदमिनी को ब्रह्म-ज्योति या परमात्मा के प्रतीक के रूप में माना है—

प्रथम सो जोति गगन निरमई। पुनि सो पिता माथ मनि भई॥
पुनि वह जोति मातु घट आई। तेहि ओदर वहु आदर पाई॥
जस अवधान मह दिन न दीया। तस उजियार दिखाव हीया॥
सौने मन्दिर सवारहि औ चन्दन सब लीप।
दिया जो मनि सिव लोक महं उपना सिंहल दीप॥[3]

रतनसेन जीवात्मा का प्रतीक है—

हौं तो अहा अमरपुर जहाँ। इहा मरनपुर आएउँ कहाँ॥
अब जिउ तहाँ इहाँ तन सूना। कब लगि रहै परान बिहूना॥
कहुँ हाय तन सरवर हिया-कवल तेहि माहं।
नैनहिं जानहु निअरें कर पहुँचत अवगाह॥

१–ना० प्र० ना प्र० सभा काशी, पृ ८।
२–वही पृ० १० (भाग १। १—२)।
३–वही पृ० १६ (भो० १)।
४–पद्मावत, भाग १२१ पृ० ११७ (निरगाव काशी)।

हीरामन शुक को स्पष्ट रूप से कवि ने गुरु का प्रतीक कहा है –

देखु अन्त अस होइहि गुरू दीन्ह उपदेस ।
सिंघल दीप जाय हम माता देहु अदेस ।[1]
हीरामन राजा सौं बोला । एही समुद आइ सत डोला ।[2]
एहि ठाव मह गुरु सग कीज । गुरु सग होइ पार तौलीज ॥
पूछा राज कहु गुरु सुआ । न जनौं आज कहा दिन उवा ॥[3]

'गुरु सुआ जइ पथ दिखावा' पदमावत म जीवन्त रूप म द्रष्टव्य है।
पद्मावत के प्रतीक और उनके पर्याय इस प्रकार है—

पदमावती	परमात्मा की ज्योति (परमात्मा)
रत्नसेन	जीवात्मा
सिंहल	पवित्र हृदय
हीरामन शुक	गुरु
नागमती	सासारिक सम्बन्ध
अलाउद्दीन	माया
राघव चेतन	शैतान (नारद)
देवपाल और दो दूतियाँ	मन की पाप वसिया
सात समुद्र	सूफियो के सात जगल या आध्यात्मिक साधना की सात सीढियाँ
मानसर	मनस या ब्रह्मरन्ध्र
सिंहल-यात्रा	प्रेम माग की यात्रा ।

उपसहार वाले छन्द म प्रतीक योजना इस प्रकार है—

चितौड	तन
रत्नसेन	मन
सिंहल	हृदय
पदिमनी	बुधि
नागमती	दुनिया धधा
अलाउद्दीन	माया
राघव चेतन	शैतान
पद्मावती की कथा	प्रेम-कथा

१–जा० ग्र० ना० प्र० सभा काशी पृ० ५५ (दोहा ५) ।
२–पद्मावत (चिरगाव वाली) पृ १४६ दोहा १५६ ।
३–वही पृ १५२ दोहा १७६ ।

प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का कथन है कि 'पद्मावत में उस अंश को प्रक्षिप्त ही माना जाय तो भी यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि पदमावत के अध्ययन की परम्परा में यह बात स्वीकृत थी कि सारी रचना अन्यापदेशिक है। अतः पद्मावत के अध्ययन में उस रचना का उपयोग करना जायसी की स्थापना के विरुद्ध नहीं माना जा सकता। इसमें एक तो जो पिंड में है सो ब्रह्माण्ड में, जो ब्रह्मांड में सो पिंड में वाली धारणा दिखाई देती है और यह योग मार्ग से आई हुई है। इसमें तो स्पष्टतः ही अंतःकरण के चार रूपों में से एक प्रकार को छोड़कर शेष तीन अर्थात मन चित्त और बुद्धि क्रमशः राजा सिंहल और पदिमनी के अन्यापदेश कहे गए हैं। मन संकल्प-विकल्प करने वाला होता है रत्नसेन को भी इसी स्थिति में दिखाया गया है। चित्त अनुसंधानात्मक होता है और सिंहल भी अनुसंधानात्मक है। बुद्धि निश्चयात्मक होती है अर्थात ज्ञान के क्षेत्र की होती है। वह स्वयं ज्ञान स्वरूप है ब्रह्म भी ज्ञान-स्वरूप है। इसीलिए कदाचित लोगों ने पदिमनी और ब्रह्म को एक कर दिया है। मार्गदर्शक गुरु हीरामन सुग्गा है और बिना गुरु के निर्गुण की प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि यह अंश कवि का लिखा हुआ नहीं है तब तो शुक्लजी का पक्ष और भी दृढ़ होता है अर्थात इसका व्यंग्य ही मानना पड़ेगा वाच्य नहीं। इसलिए इस पद्धति का समासोक्ति ही कहना ठीक है अन्योक्ति नहीं।"[1]

उपर्युक्त विवेचन और प्रस्तुत मत के आलोक में कहा जा सकता है कि पदमावत समासोक्ति शैली का एक महाकाव्य है अन्योक्ति का नहीं।

अन्योक्ति

तन चितउर मन राजा कीन्ह तथा अन्य प्रतीकों को दृष्टि में रखकर कुछ विद्वानों[2] ने पदमावत की कथा को अन्योक्ति मूलक कहा है।

यह सही है कि रत्नसेन का पद्मावती तक पहुँचाने वाला प्रेम-पथ जीवात्मा को परमात्मा में ले जाकर मिलाने वाले प्रेम पथ का स्थूल आभास है। प्रेम-पथिक रत्नसेन एक सच्चे साधक के रूप में उपस्थित किया गया है। पदिमनी ही ईश्वर में मिलाने वाला ज्ञान या बुद्धि है अथवा चैतन्यस्वरूप परमात्मा है जिसकी प्राप्ति का मार्ग बताने वाला सुआ सद्गुरु है। उस मार्ग में अग्रसर होने से रोकने वाली नागमती संसार का जंजाल है। तनरूपी चित्तौर का राजा मन है। राघव चेतन शैतान है जो प्रेम का ठीक मार्ग न बता कर इधर-उधर, भटकाता है। माया

१—प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र हिंदी साहित्य का अतीत पृ० १७४–१७५।

२—पद्मावति प्रीफेस पृ० २ (१९३४)।

में पड़े हुए सुलतान अलाउद्दीन को माया रूप ही समझना चाहिए। इस प्रकार जायसी ने सार प्रबन्ध को व्यंग्य-गर्भित कह दिया है। यदि कवि के स्पष्टीकरण के अनुसार व्यंग्य अर्थ को ही प्रस्तुत या प्रधान मानें तो जहाँ जहाँ दूसरे अर्थ भी निकलते हैं वहाँ वहाँ अन्योक्ति माननी पड़ेगी। पर ऐसे स्थल अधिकतर कथा के अंग हैं और पढ़ते समय कथा के अप्रस्तुत होने की धारणा किसी पाठक को हो नहीं सकती। अतः इन स्थलों के वाच्यार्थ को अप्रस्तुत कह नहीं सकते। इस प्रकार वाच्यार्थ के प्रस्तुत और व्यंग्यार्थ के अप्रस्तुत होने से ऐसी जगह सर्वत्र समासोक्ति ही माननी चाहिए।[1] शुक्ल जी ने ठीक ही लक्षित किया था कि पदमावत की कथा में सर्वत्र अन्योक्ति नहीं है।

जहाँ कथा प्रसंग से भिन्न वस्तुओं के द्वारा प्रस्तुत प्रसंग की व्यंजना होती हो वहाँ अन्योक्ति होगी जैसे—

सूर उदै गिरि चढ़त भुलाना। गहन गहा कवल कुँभिलाना॥

यहाँ इस अप्रस्तुत के कथन द्वारा राजा रत्नसेन के सिंहलगढ़ पर चढ़ने और पकड़ जाने की व्यंजना की गई है।

'कवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गयउ सुखाइ।
अबहुँ बेलि फिर पलुहै जो पिउ सींचै आइ॥

यहाँ पर विरहिणी की दशा प्रस्तुत प्रसंग है और जल कमल का प्रसंग प्रस्तुत नहीं है। अतः यहाँ अप्रस्तुत से प्रस्तुत की व्यंजना होने के कारण अन्योक्ति है। यदि औपसंहारिक छंद को जायसीकृत मान लें और व्यंग्य अर्थ को ही प्रस्तुत या प्रधान मानें तो जहाँ-जहाँ दूसरे अर्थ निकलते हैं, वहाँ वहाँ भी अन्योक्ति माननी पड़ेगी किन्तु ऐसे कथा के स्थलों में सर्वत्र अप्रस्तुत की प्रधानता बाधक होती है। अतः पदमावत को अन्योक्ति पद्धति का ग्रंथ मानने में बड़ी कठिनाई है। इस सांकेतिक कोश के अनुसार भी सम्पूर्ण कथा को अन्योक्ति मानने में कठिनाई है। कम से कम अन्तिम तीन प्रतीकों में कथा की स्वाभाविकता और काव्य-सौन्दर्य में व्याघात उपस्थित हो जाता है।

(१) क्या नागमती को दुनिया-धंधा माना जा सकता है?

नागमती रत्नसेन की प्रथम परिणीता पत्नी है। उसका पातिव्रत्य और उज्ज्वल चारित्र्य आदर्श हिन्दू गृहिणी के रूप में चित्रित है। पति इतर स्त्री के सौंदर्य पर प्रलुब्ध होकर सिंहल गमन करता है। वह सीता की भाँति उसके साथ जाना चाहती है। उसकी वृत्तियाँ भी बड़ी उदात्त हैं—

मोहिं भोग सौं काज न बारी। सौंह दीठि कै चाहनहारी॥

१—ना० प्र०, ना० प्र० सभा काशी भूमिका पृ० ५६-५७।

सवनि न हासि तू बैरिनि, मोर कंत जेहि हाथ।
आनि मिलाव एक बेर तोर पाँय मो माथ ॥[1]

यह भावना उस मानवता के सर्वोच्च आसन पर आसीन कर देता है। रत्न सेन की मृत्यु के अनन्तर पदमावती भी नागमती के साथ सती हो जाती है। अत यदि यह कहा जाय कि पदमावती की तुलना म नागमती का चरित्र किसी भी प्रकार कम नहीं है तो उचित ही है।

नागमती का दुनिया-ध धा—सांसारिकता के ही अर्थों म माना जा सकता है। उसके द्वारा सवत्र अन्योक्ति का विधान किया गया है यह मानना ठीक नहा है, क्योंकि प्रस्तुत रूप म उसका चरित्र आदर्श भव्य और सती का है।

(२) राघव दूत सोइ सैतानू ?

यह ठीक ही कहा गया है कि सूफी साधना म शतान या नारद साधक को साधना पथ से विचलित करता है। उसे साध्य की प्राप्ति का बाधक माना जाता है। जब रत्नसेन साध्य (पदमावती) स मिल गया तब शतान की क्या आवश्यकता यह पदमावत म दूत रूप म नहा आया है वह तो चित्तौर का निष्कासित और अपमानित व्यक्ति है।

(४) अलाउद्दी माया सुलतानू ?

यह रूपक है या प्रतीक ठीक नहा जान पड़ता। रत्नसेन की भाँति अला उद्दीन भी प्रश्न स्वरूप पद्मिनी की प्राप्ति क लिए प्रयत्नशील है। यदि एक क्षण के लिए सपूण पदमावत को अन्योक्ति मान भी लें तो भी अलाउद्दीन को माया कहना भ्रमपूर्ण रहेगा। राघव का दूत और अलाउद्दीन को माया कहना जचता नहीं। पद्मावती ईश्वर की प्रतीक है रत्नसेन रूपी साधक पदमावती रूपी साध्य से मिल गया है। पुन इस मिलन के अनतर शतान या माया की क्या आवश्यकता है ?

१—जा० ग्र० ना० प्र० सभा काशी पृ० १६० (दोहा ३)।

विशेष डा० माताप्रसाद गुप्त ने उसे प्रक्षिप्त माना है। उन्होंने १४ प्रतियों के आधार पर पद्मावत का सपादन किया है। उन्हें केवल तीन प्रतियों म यह छन्द नहा मिला। शेष ११ प्रतियों म यह छन्द था। रामपुर स्टेट पुस्तकालय म पदमावत और कहरानामा की एक अत्यन्त सुन्दर प्रति है। इस प्रति म भी यह छद है अत इस अश को प्रक्षिप्त नहीं माना जाना चाहिए। (प्रक्षप ३६१ म, पृ० ५८२) प्रसंग क अनुसार भी इस छन्द की वहा आवश्यकता है। मेरे मत म इस छन्द को प्रक्षिप्त कहने का कोई आधार नहीं है।

द्रष्टव्य, डा० माताप्रसाद गुप्त, जा० ग्र० भूमिका पृ० ७४। और प्रक्षप २६१ व पृ० ५८२।

और माया उसे स्वयं अपनी पत्नी बनाने के लिए आक्रमण छल आदि क्यों करती है ? वस्तुतः माया का प्रयोजन साधना की अपूर्णावस्था में ही साधक को पथभ्रष्ट करने का होता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि चाहे यह छन्द जायसी कृत हो या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विरचित पर इससे जायसी के प्रतीक विधान पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। यह कहना कि कवि ने इसके द्वारा कथा की लौकिकता को छिपाने के लिए एक जामा पहिनाया है जिससे सर्वसाधारण उसकी आध्यात्मिकता में विश्वास रखे निराधार है। डा० माहनसिंह और डा० कमलकुल श्रेष्ठ का यह अनुमान कि कवि ने सारे कथानक को शरीर के ही अन्दर घटित किया है जिसमें कवि असफल है और काव्य लिखने के बाद कवि ने यह व्याख्या दी है काव्य रचना के समय कवि के मस्तिष्क में ऐसी कोई बात नहीं थी महत्वहीन है। इस छन्द के आधार पर पदमावत को अन्योक्ति मूलक नहीं माना जा सकता।[1]

समासोक्ति मूलक अभिव्यक्ति

पदमावत में चार चाँद लगाने वाली समासोक्ति मूलक अभिव्यक्ति का बड़ा महत्व है। वस्तु-वर्णन के प्रसंग में जायसी ने प्रायः इस प्रकार के विशेषणों का प्रयोग किया है जिसमें प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत परोक्ष सत्ता का अर्थ भी पाठक के चित्त में अनायास उदभासित हो सके जैसे सिंहलगढ़ के वर्णन के प्रसंग में नौ पौरी और उनके बाद दसवें दरवाजे वाले नगर का संकेत पाठक को नौ छिद्र और दसवें ब्रह्मरंध्र वाले शरीर का संकेत उपस्थित करते हैं। इसी को समासोक्ति पद्धति कहा जाने लगा है। समासोक्ति एक अलंकार है जिसकी सुंदरता विशेषणों के प्रयोग पर निर्भर करती है। इसलिए इसे शास्त्र में विशेषण विच्छित्तिमूलक अर्थात् विशेषण की सजावट पर निर्भर रहनेवाला अलंकार कहा जाता है। यह श्लेष से भिन्न है क्योंकि श्लेष की सुन्दरता विशेषण और विशेष्य दोनों की सजावट पर निर्भर है। इसीलिए उसे विशेषण-विशेष्य विच्छित्ति मूलक अलंकार कहते हैं। श्लेष में कवि दो अर्थ बनाने के लिए वचनबद्ध होता है किन्तु समासोक्ति में वह कौशल के साथ ऐसे विशेषणों का प्रयोग करता है जो सहृदय के चित्त में पवन अप्रस्तुत अर्थ का संकेत भर कर देते हैं। इसमें कवि आदि से अन्त तक दो अर्थों के निर्वाह के लिए प्रतिज्ञाबद्ध नहीं होता। जहाँ और जब उसे मौका मिल जाता है

1—द्रष्टव्य पदमावत का काव्य सौंदर्य अध्याय ८ पृ० १३२—३४।

2—समासोक्ति समयत्र कार्य लिंगविशेषण।
व्यवहार समारोप प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः। साहित्यदर्पण (पीवी काणे पृ० ४०) द० परि०, का० ५-६।

नहीं और तब कुछ विशेषणों का ऐसा प्रयोग करता है जिससे पाठक के हृदय में उसका अभिप्रेत अप्रस्तुत अर्थ भी आ उपस्थित होता है। जायसी ने अपने प्रबंध काव्य में इसी समासोक्ति पद्धति का प्रयोग किया है। काव्य के अंत में तन चित उर मन राजा कीन्ह जो संकेत है वह मूल ग्रंथ का नहीं है। पदमावत की प्राचीन प्रतियों से यह बात सिद्ध हो चुकी है। इसलिए जो लोग पद पद पर पदमावत में रूपक निर्वाह की बात मानते है। पदमावत का कवि रूपक निर्वाह के लिए प्रतिज्ञा बद्ध नहीं है। कई बार प्रसंग आने पर उसने जब लौकिक सौंदर्य की ओर इशारा किया है, तो ऐसे स्थलों में अप्रस्तुत इशारा ही प्रधान हो जाता और प्रस्तुत प्रसंग गौण हो जाता है। यह काव्यगत दोष है। सिंहलगढ़ के वर्णन के प्रसंग में जहां नव नौ पौरियां दस दरवाजा और राज परिवार के वर्णन का प्रसंग है वहाँ तक तो समासोक्ति का बहुत सुन्दर निर्वाह हुआ है पर जहाँ कवि का निश्चित माटी के भाव वह पर चेतावनी देने लगता है वहां उसका कवि रूप गौण हो जाता है और संत-रूप प्रधान हो जाता है। यहीं समासोक्ति पद्धति का निर्वाह ठीक नहीं हो पाया है।[1]

अतः पदमावत की रचना अन्योक्ति मूलक नहीं है क्योंकि उसमें वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ दोनों का महत्व है। यद्यपि कवि का लक्ष्य सामान्य लौकिक प्रेम के माध्यम से पाठकों के मन को आध्यात्मिक प्रेम के क्षेत्र में पहुँचाना है। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए ही उसने प्रतीक योजना और साकेतिक-पद्धति का सहारा लिया है और जहाँ इससे भी उसे संतोष नहीं हुआ है वहां उसने सीधे-सीधे उपदेशात्मक ढंग से पारमार्थिक तत्वों का निरूपण किया है। इस तरह (डा० शम्भू नाथसिंह का कथन है कि) पदमावत में चार प्रकार की अभिव्यक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं।

(१) अन्योक्तिमूलक—जिसमें प्रस्तुत महत्वहीन है अप्रस्तुत आध्यात्मिक अर्थ ही कवि के अभिप्रेत है। जैसे—

गढ़ पर नीर खार दुइ नदी। पानी भरहिं जैस दुरपदी ॥
और कुंड एक मोती चूरू। पानी अम्रित कीच कपूरू ॥

(२) समासोक्ति मूलक अभिव्यक्तियाँ—जिसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों का वर्णन करना कवि को अभिप्रेत रहता है। जैसे—

ए रानी मनु देखु विचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी ॥
जौ लहि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जौ खेलहु आजू ॥
पुनि सासुर हम गौनब काली। कित हम कित यह सरवर पाली ॥

१-पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य पृ० ७६।

(३) लौकिक पक्ष का अभिधामूलक वर्णन—जिसमें कोई दूसरा अर्थ नहीं है।

(४) केवल आध्यात्मिक पक्ष का अभिधामूलक और उपदेशात्मक वर्णन जिसकी प्रस्तुत कथा के प्रसंग में कोई उपयोगिता या अर्थ नहीं है, जैसे—

नव दुवार तार क लेखा। उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा॥
तू मन नाथु मारि क स्वासा। जौ प मरहि आपुहि कर नासा॥

डा० शम्भूनाथसिंह का आग्रह है कि पदमावत के अधिकांश कथा प्रसंग और वर्णन इसी प्रकार के सांकेतिक अर्थ ध्वनित करने वाले हैं और पूरी कथा भी अपने समग्र प्रभाव के रूप में इसी संकेत पद्धति के कारण एलीगोरी प्रतीत होती है। एलीगोरी को हिन्दी में प्रतीक कथा कहना अधिक सही प्रतीत होता है क्योंकि अन्योक्ति और समासोक्ति मूलतः अलंकार है। पद्मावत के पात्र और अनेक घटनायें तथा वस्तुएं प्रतीकों के रूप में उपस्थित की गई हैं। अतः उसे प्रतीकात्मक काव्य और उसकी कथा को प्रतीक-कथा, कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।[1]

पदमावत की कथा को प्रतीक कथा कहना और उस काव्य को प्रतीकात्मक काव्य मानना ठीक होते हुए भी ठीक नहीं है। ठीक इसलिए है कि पद्मावत में प्रतीक योजना है और प्रचुर परिमाण में है पर उसकी प्रस्तुत कथा का भी पर्याप्त महत्व है प्रतीक शब्द द्वारा प्रस्तुत से ध्यान हटकर अप्रस्तुत की ओर चला जाता है। पदमावत में प्रतीकों की योजना है और इसी कारण उसे प्रतीकात्मक काव्य नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः न तो पद्मावत एलीगोरी है और न सिम्बालिक या प्रतीकात्मक। उसमें स्थल स्थल पर परोक्ष सत्ता की ओर इंगित अवश्य हैं उसमें प्रतीक अवश्य प्रयुक्त हैं किन्तु मूलतः वह प्रेमगाथा है जिसे जायसी ने 'भाषा चौपाई में लिखकर प्रस्तुत किया है। उसमें समासोक्ति शैली का प्रयोग हुआ है। आचार्य शुक्ल जी ने ठीक ही कहा था कि जहाँ जहाँ प्रबंध में प्रस्तुत वृत्तान्त में अध्यात्म पक्ष का कुछ अर्थ भी व्यंग्य हो वहाँ-वहाँ समासोक्ति ही माननी चाहिए।[2] सचमुच पद्मावत के सारे वाक्यों के दोहरे अर्थ नहीं हैं। सर्वत्र अन्य पक्ष के व्यवहार का आरोप नहीं है। केवल बीच-बीच में कहीं कहीं दूसरे अर्थ की व्यंजना होती है। ये बीच-बीच में आये हुए स्थल, जैसा कि कहा जा चुका है अधिकतर तो कथा-प्रसंग के अंग हैं जैसे सिंहलगढ़ की दुर्गमता और सिंहल द्वीप

१—डा० शम्भूनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ४७२-७३।
२—पं० रामचन्द्र शुक्ल जा०ग्र भूमिका, पृ० ५७-५८।

के भाग का वर्णन, रत्नसेन का तूफान में पड़ना और लंका के राक्षस द्वारा बहकाया जाना। अतः इन स्थलों में वाच्यार्थ से अन्य अर्थ जो साधना पक्ष में व्यंग्य रखा गया है, वह प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से असम्बद्ध ही कहा जा सकता है और समासोक्ति ही माननी पड़ती है।[1]

डा० कमलकुल श्रेष्ठ का कथन है कि इस प्रकार पद्मावती के पहले ग्यारहवें खण्ड तक ही प्रतीत होता है कि मानो यह कथा अपनी आध्यात्मिक समासोक्ति रखती है। सच में परिणाम यह है कि ग्यारहवें खण्ड तक तो कहीं-कहीं प्रेम की अनुभूति दिव्य सी है परन्तु उसके पश्चात वह लौकिकता की ओर झुक चली है। और पूर्वार्द्ध के पश्चात वह एकमात्र लौकिक रह गई है। यदि रहस्यवाद जैसी किसी वस्तु का कुछ भी आभास है तो वह पूर्वार्द्ध के पहले ग्यारह खंडों में है शेष में नहीं। कवि उसका निर्वाह नहीं कर सका। धीरे धीरे वह अन्योक्ति की भावना उसकी मुट्ठी से छूटने लगी और उत्तरार्द्ध में वह बिल्कुल निकल गई है।[2]

इस प्रकार के मतों के विरोध में इतना ही कहा जा सकता है कि 'केवल ग्यारहवें खण्ड तक ही नहीं अपितु सम्पूर्ण पद्मावत में समासोक्ति वाले स्थल मिलते हैं। सम्भवतः कुछ लोगों ने समासोक्ति पद्धति के मूलभूत अर्थ को ठीक से नहीं समझा है। ऊपर कहा जा चुका है कि समासोक्ति-पद्धति में कवि सर्वत्र दो अर्थों के स्पष्टीकरण के लिए प्रयत्न नहीं करता। उसे जहाँ और जब अवसर मिलता है तहाँ और तब विशेषण विच्छित्तिमूलक अलंकार शैली का प्रयोग करता है और इस प्रकार वह प्रस्तुत अर्थ के साथ ही अभिप्रेत अप्रस्तुत अर्थ भी उपस्थित कर देने का प्रयत्न करता है। हम यहाँ यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि पद्मावत में आदि से अन्त तक समासोक्ति पद्धति से स्थल-स्थल पर परोक्ष सत्ता की ओर इंगित करना कवि का एक महत् उद्देश्य है।

रत्नसेन दिल्ली में अलाउद्दीन की कैद में है। रानी पद्मावती चित्तौड़ में विलाप करती है —

सो दिल्ली अस निबहुर देसू। कहि पूछै को कहै सँदेसू॥
जो कोइ जाइ तहाँ कर होई। जो आवै किछु जान न सोई॥
अगम पंथ पिय तहाँ सिधावा। जो रे गयउ सो बहुरि न आवा॥[3]

पद्मावत में ये वाक्य प्रस्तुत प्रसंग का वर्णन करते हैं। इसमें परलोक-यात्रा का अर्थ भी व्यंग्य है। यहाँ वाच्यार्थ को प्रस्तुत और व्यंग्यार्थ को अप्रस्तुत मानकर

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल : जा० ग्रं० भूमिका पृ० ५७।
२—डा० कमलकुल श्रेष्ठ : म० मु० जायसी पृ० १०२—१०३।
३—जा० ग्रं० ना० प्र० सभा, काशी पृ० २६४।

तथा 'काई किछ जान न और बहुरि न आवा' को दिल्ली गमन और परलोक गमन दोनो के सामान्य काम ठहराते हुए दिल्ली गमन में परलोक गमन के व्यवहार का आरोप करके हम समासोक्ति ही कह सकते हैं[1] ये पंक्तियां ४८ वें खंड (पदमावती नागमती विलाप खंड) से ली गई हैं। समासोक्ति के सुन्दर विधान के उदाहरण स्वरूप कतिपय अन्य स्थल भी लिए जा सकते हैं —

सो नहिं आव रूप मुरारी । जासौं पाव सोहाग सुनारी ॥
साझ भए झुरि झुरि पथ हेरा । कौन सो घरी करै पिउ फेरा ॥[2]

ये पंक्तियां नागमती वियोग खण्ड (३० वां खण्ड) मे ली गई हैं। जासो पाव सोहाग सुनारी कौन सो घरी करै पिउ फेरा साँझ भए आदि में प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत अर्थ भी अभिप्रेत हैं। साँझ भए का अर्थ है साधना की पूर्णता या वृद्धावस्था सोहाग सुनारी का अप्रस्तुत अर्थ प्रियतम के साथ सुहागिन कौन सो घरी करै पिउ फेरा का अप्रस्तुत अर्थ है कि प्रियतम (ईश्वर) की कृपा दृष्टि किस क्षण हो जाय।

जिन्ह एहि हाट न लीन्ह बेसाहा । ता कह आन हाट कित लाहा ॥[3]
कोई करै बेसाहनी काहू केर बिकाइ । कोई चलै लाभ सन कोई मूर गवाइ ॥

प्रस्तुत अर्थ सिंहल के हाट का है। यहां अप्रस्तुत अर्थ जो व्यंग रखा गया है स्पष्ट है —

नौ पौरी पर दसव दुआरा । तेहि पर बाज राज घरियारा ॥
घरी सो बैठि गनै घरिआरी । पहर पहर सो आपनि बारी ॥
जबही घरी पूरि तेइ मारा । घरी घरी घरियार पुकारा ॥
परा जो डाड जगत सब डाडा । का निचित माटी क भाडा ॥
कचन बिरिछि एक तेहि पासा । जस कल्पतरु इन्द्र कबिलासा ॥

राजा भए भिखारी सुनि आहि अमृत भोग ।
जेइ पावा सो अमर भा ना किछु व्याधि न रोग ॥

यहाँ सिंहलगढ के प्रस्तुत प्रसग के द्वारा अप्रस्तुत अर्थ की ओर भी इशारा किया गया है। नौ पौरी और दसव दुवार अर्थात नौ छिद्र और दशम ब्रह्म रंध्र। कचन वृक्ष कल्पवृक्ष है। आचार्य द्विवेदी जी का विचार है कि का निचित

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल जा० ग्र० भूमिका पृ० ५७।
२—जा० ग्र० ना० प्र सभा काशी पृ० १५७।
३—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, काशी पृ० १५७।
४—वही, पृ० १५—१६।

माटी क भाडा म कवि का सत रूप प्रधान हो उठा है और कवि रूप गौड और यहा समासोक्ति पद्धति का निर्वाह ठीक नहीं हो पाया है।

इस प्रकार के स्थल पदमावत म आदि स लेकर अत तक आते है। जायसी प्राय अवसर मिलत ही प्रस्तुत अथ म ही एसी व्यञ्जना अनुस्यूत करते हैं कि अप्रस्तुत अथ की ओर भी इशारा स्पष्ट हो जाता है। इस प्रक्रिया म प्राय उनका कवि रूप प्रधान है पर कहीं कहीं उनका सत रूप भी प्रधान हो जाता है और व उपदेश देन लगते है। जैसे — का निचिन्त माटी क भाड़ा।' पर इस प्रकार के स्थल कम हैं।

'इस प्रकार के सवेदनात्मक स्थलो की व्यञ्जकता (सजेस्टिवनेस) अत्यन्त हृदयस्पर्शी है और है उत्कृष्ट-काव्य सौन्दय सम्पन्न।'[१]

रूप-सौंदय-वणन एव अप्रस्तुत-विधान

रूप-सौंदय-वणन —

पदमावत म रूप-सौंदय वणन की योजना मख्यत आठ स्थलो पर की गई है। इनम दो स्थलों पर पदमावती के (अलौकिक सौन्दर्ययुक्त) रूप का वणन अत्यत उल्लसित भाव स किया गया है।

(१) हीरामन शुक द्वारा चित्तौड के राजा रतनसेन से, और

(२) राघव चेतन द्वारा दिल्ली क बादशाह अलाउद्दीन से।

इन दोनों स्थलों क वणन नखशिख' वणन की प्रणाली पर हैं। रूप-सौंदय वणन म प्रयुक्त उपमान अधिकतर परम्परा प्रचलित हैं। ये दीघकाल स इस देश क आलकारिको मे प्रसिद्ध हैं। कुछ उपमान फारसी साहित्य के प्रभाव स भी आए हुए हैं। कुछ उपमान लोक गहीत हैं। कुछ उपमानो को नवीन मौलिक उपमान कह कर समादृत किया जा सकता है।

इन अनेक प्रकार क उपमानो की नियोजना का एक ही लक्ष्य रहा है— स्त्री रूप के आदश सौंदय की कल्पना। रूप-वणन की योजना द्वारा कवि क उद्देश्य की सिद्धि भी हुई है। वह रूप वणन क माध्यम स अलौकिक सौन्दय की ओर इंगित भी करता गया है। अलौकिक सौन्दर्याभिव्यक्ति भी उसका एक उद्देश्य था। लौकिक सौन्दय का वणन करते हुए अवसर पाते ही कवि उसक अलौकिक सृष्टि व्यापी सौन्दय की अभिव्यजना करने लगता है—

१—प० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य, प० २७६।

२—पदमावत का काव्य-सौंदय प० १३६।

जेहि दिन दसन जानि निरमई। बहुत जाति जोति ओहि भई॥
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥
जह जहँ विहसि सुभावहि हसी। तह तह छिटकि जाति परगसी॥

यहाँ पर दाता का वणन करते करते कवि की भावना अनन्त ज्योति की ओर बढ़ गई है।

(१) रूप का मुख्य प्रतीक पारस और उसकी व्यवस्था

जायसी ने पदमावती के अप्रतिम रूप को पारस रूप की संज्ञा दी है। पारस रूप वह रूप है जिसके आभास अर्थात छायास्पर्श से निखिल सृष्टि प्रोदभासित है। उसी की प्रातिभासिक स्पर्श दीप्ति से यह जगत रूपवान है। जगत की अदभुत रूप माधुरी का मूलभूत कारण भी पारस रूप ही है।

पदमावत मे अनेक स्थलो पर पद्मावती के पारस रूप की चर्चा आई है। इसमे (पदमावत म) कवि ने पदमावती का जिस अपूव पारस रूप का वणन किया है वह अपना उपमान आप ही है। कवि जब पदमावती के रूप का वणन करने लगता है तब उसका सम्पूण अन्तर तरल होकर ढरक पडता है। पारस रूप वह रूप है जिसके स्पश से यह सारा ससार रूप ग्रहण कर रहा है। पद्मावती मे यही पारस रूप है। पद्मावती के रूप-वणन के बहाने भक्त कवि ने वस्तुत भगवान के प्रभाव का वणन किया है।— — इस रहस्यमय पारस रूप का आभास देने के लिए जायसी ने अत्यन्त मार्मिक दृश्यो की योजना की है। वे सदा लौकिक दीप्ति और सौंदय का उत्थापन करते हैं। विशेषणो और क्रियाओ के प्रयोग-कौशल स उस अलौकिक दीप्ति की ओर मोड़ते रहते हैं। उन्होन इस प्रकार एक अपूव काव्य की सृष्टि की है।[1]

जायसी ने सवप्रथम सिंहल द्वीप–वण खण्ड म पदमावती के पारस रूप की ओर इंगित किया है। — — औ सो पद्मिनि बरनि सुनावौं।
निरमल दरपन भाँति बिसेखा। जो जहि रूप सो तसइ देखा।[2]

इन पक्तियो म स्पष्ट रूप स पारस रूप की चर्चा नहीं की गई पर उस अलौकिक रूप की ओर इंगित तो कर ही दिया गया है।

जायसी न मानसरोदक खण्ड की अन्तिम पक्तियो म स्पष्ट रूप स पद्मावती के पारस रूप का वणन किया है। पारस रूप वणन क साथ ही उन्होंने तज्जन्य लोकव्यापी, लोकोत्तर प्रभाव का एक सश्लिष्ट चित्र भी प्रस्तुत किया है। पारस

१–आचाय डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी मध्यकालीन धर्मसाधना पृ० २०६ २०७।
२–जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी), पृ० १ ।

रूप वाली पदमावती ना जरा सी हुसी मानसरोवर म विविध रूपो मे छा उठी–

'कहा मानसर चाह सो पाई । पारस रूप इहाँ लगि आई ॥
भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसे । पावा रूप रूप क दरसे ॥
मलय समीर बास तन आई । भा शीतल तन तपनि बुझाई ॥
ततखन हार बेगि उतराना । पावा सखिन्ह चन्द विहसाना ॥
बिगसा कुमुद देखि ससि रेखा । भै तह ओप जहा जाइ देखा ॥
पावा रूप रूप जस चाहा । ससि मुख जस दरपन होइ रहा ॥
नयन जो देखा कवल भा निरमल नीर सरीर ।
हसत जो देखा हस भा दसन जोति नग हीर ॥'[1]

यह है पदमावती क पारस रूप का लोकोत्तर–सृष्टि व्यापी प्रभाव । जिस प्रकार पारस पत्थर स्पश मात्र स कुधातु को स्वण बना देता है उसी प्रकार पदमावती का 'पारस-रूप समस्त सृष्टि को अपन रग म रग सकता है । उसी के आलोक स समग्र सस्तृति आलोकित है । पारस रूप वाली पदमावती सरोवर के पास तक चली आई–तब सरोवर उन चरणो के स्पश करने से निरमल हो गया । पावा रूप रूप के दरस उस पारस रूपा के दशन मात्र स सरोवर रूपवान हो गया । उसकी चद्रकला का देखकर कुमद विगस गय आदि ।

जायसी न राजा-सुआ सवाद खण्ड म भी पद्मावती क 'पारस रूप' के सृष्टि व्यापी प्रभाव की लोकोत्तर कल्पना का है—

सुनि रवि नाव रतन भा राता । पण्डित फरि उहै कहु बाता ॥
अब हौं सुरुज चाद वह छाया । जल बिनु मीन रकत बिनु काया ॥
सहसौ करा रूप मन भूला । जहा जहँ दीठ कवल जनु फूला ॥
तहा भवर जिउ कवला गधी । भइ ससि राहु केरि रिनि बधी ॥
तीनि लोक चौदह खड सबहि परै मोहि सूझि ।
पम छाडि नहि लोन किछु जो देखा मन बूझि ॥[2]

इन पक्तियो म जह–जह दीठि कवल जनु फूला आदि म पारस रूप की अलौकिक–अप्रतिम कल्पना को साकार जीवन रूप म अभिव्यक्त किया गया है ।

जायसी रूप-सौन्दय का वणन करते समय यथावसर प्राय परोक्ष सत्ता की ओर इगित करना नही चूकते । अग प्रत्यगो का वणन करने समय भी वे उस दिव्य रूप–पारस रूप–का वणन करना नही भूलते । नीचे की पक्तियो म विराट

१–जा० ग्र० (ना० प्र सभा काशी) पृ० २४ ।
२–वही पृ० ३१ ।

की कांति का वर्णन करते हुए जायसी ने उसकी लोकोत्तर तथा सृष्टि व्यापी ज्योति का भी वर्णन किया है। वे समस्त विश्व की ज्योति का उसी की ज्योति में द्योतित और प्रोदभासित बताते हैं—

पारस जोति लिलारहिं आती। दिस्टि जो कर होय तेहि जोती॥[1]
ससि औ सूर जो निरमल तेहि लिलाट क ओप।
निसि दिन दौरि न पूजहिं पुनि पुनि होहिं अलोप॥

अलाउद्दीन जस अधम पात्र ने भी उस पारस रूप की प्रातिभासिक सत्ता का आभास मात्र पाया था।

बिहसि झरोखे आइ सरखी। निरखि साह दरपन मह देखी॥
होतहि दरस परस भा लोना। धरती सरग भएउ सब सोना॥[2]

स्पष्ट है कि अलाउद्दीन ने दर्पण में उस पारस रूप वाली–पद्मावती के स्मित आनन का प्रतिबिम्ब मात्र देखा था। उस रूप की झलक से ही अलाउद्दीन अपनी सुधि-बुधि भूल *गया–मूर्छित हो गया।* उस *धरती से स्वर्ग तक सर्वत्र स्वर्ण* ही स्वर्ण दृष्टिगोचर होने लगा।

इस विवेचन में स्पष्ट हो जाता है कि जायसी के रूप सौंदर्य या रूप वर्णन का मुख्य प्रतीक पारस है। पारस रूप में धरती और स्वर्ग को स्पर्श मात्र से स्वर्ण बनाने का महान गुण है।

रूप सौंदर्य का सृष्टिव्यापी प्रभाव और उसकी लोकोत्तर कल्पना

(२) रूप की सार्वभौमिकता

प्रेमाख्यानक काव्य के नखशिख (जिसे शिखनख भी कहा जा सकता है क्योंकि इन कवियों ने शिख से वर्णन प्रारम्भ किया है।) वर्णन में एक प्रवृत्ति समान रूप से दिखाई पड़ती है। ये कवि सौंदर्य की चरम सीमा को दिखाना चाहते हैं। उसके लिये सुन्दरतम उपमान लाना चाहते हैं।

पदमावत में रूप सौन्दर्य ही सम्पूर्ण आख्यायिका[3] का आधार है। अतः पदमावती के सौन्दर्य का बहुत ही विस्तृत वर्णन कराया गया है। यह वर्णन यद्यपि परम्परायुक्त ही है अधिकतर परम्परा से चले आते हुए उपमानों के आधार पर ही है परन्तु कवि की भोली–भाली और प्यारी भाषा के बल से यह श्रोता के हृदय को सौंदर्य की अपरिमित भावना से भर देता है। सृष्टि के जिन जिन पदार्थों में सौंदर्य

१–जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० २११।
२–वही पृ० २५३।
३–वही भूमिका – पृ० ८९ ९०।

की झलक है पद्मावती के रूप राशि की योजना के लिए कवि ने मानो सबको एकत्र कर दिया है। जिस प्रकार कमल चन्द्र हंस आदि अनेक पदार्थों से तिलोत्तमा का रूप संघटित हुआ था उसी प्रकार कवि ने मानो पद्मावती का रूप-विधान किया है। पदमावती का सौंदर्य अपरिमेय अलौकिक और दिव्य है। रत्नसेन की दृष्टि संसार के सारे पदार्थों से फिर जाती है उसका हृदय उसी रूप-सागर में मग्न हो जाता है। वह जोगी होकर निकल पड़ता है।

'नयन जो देखा कवल भा निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा दसन जोति नग हीर'॥

पदमावती के सुमधुर मंद हास के प्रभाव स्वरूप शुभ्र धवल शोभा अनेक रूपों में सरोवर में विकीर्ण हो रही है। उसके हँसते ही चन्द्र किरण सदृश ज्योति विकीर्ण हुई जिससे सरोवर के कुमुद खिल उठे। उसके इन्दुवदन के सम्मुख सारा मानसरोवर दर्पण-सा हो उठा अर्थात उसमें जो जो सुन्दर वस्तुएं दिखाई पड़ती थी वे सब मानो उसी के अंगों की छाया मात्र थी। सरोवर में चतुर्दिक जो कमल दिखाई पड़ रहे थे वे उसके नेत्रों के प्रतिबिम्ब थे जल जो इतना प्राञ्जल और धवल दिखाई पड़ रहा था वह उसके स्वच्छ एवं निर्मल शरीर के प्रतिबिम्ब के ही कारण। उसके हास की शुभ्र कांति की छाया वे हंस थे जो इधर उधर दिखाई पड़ते थे और उस मानसरोवर में जो हीरे थे व उसके दाँतों की उज्वल दीप्ति से उत्पन्न हो गए थे।

जायसी भावना रूप में उस रहस्यमय मूल सत्ता का साक्षात्कार कर चुके थे। अतः सृष्टि के सारे सुंदर पदार्थों में उसी सार्वभौम सत्ता का प्रतिबिम्ब देखते थे।

इसे जायसी की रूप-सौन्दर्य के सृष्टि व्यापी प्रभाव की लोकोत्तर कल्पना की संज्ञा दी गई है। आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने पद्मावती के रूप-वर्णन की विशेषताओं पर विचार करते हुए लिखा है। "केशों की दीघता सघनता और श्यामता के वर्णन के लिए परम्परा से प्रचलित पद्धति के अनुसार केवल सादृश्य पर जोर न देकर कवि ने उसके लोकव्यापी प्रभाव की ओर संकेत किया है। वस्तुतः जहाँ कहीं जायसी को अवसर मिला है वे तरन्त रूपक समासोक्ति आदि के माध्यम से सृष्टि व्यापी — सौन्दर्य की ओर इंगित करने में नहीं चूकते। जैसे —

सरवर तीर पद्मिनी आई। खोपा छोरि केश मुकुलाई॥
ओनई घटा परा जग छाहा। ससि के सरन लीन्ह जनु राहा'॥

१-जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी) भूमिका पृ० ५१।
२-आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य।
३-जा० ग्र० (ना० प्र० सभा, काशी) पृ० २४।

वेनी छोरि झार जौं बारा । सरग पतार होइ उजियारा[1] ॥

(वेनी खोल कर केश झाड़ने से स्वर्ग और पाताल उदभासित हो उठे) ।

घन घटा से केश संसार को अपनी छाया शीलता और माधुरी प्रदान करते हैं। इसी प्रकार पुतलियों का वर्णन करते हुए भी उनके सृष्टि व्यापी प्रभाव की अभिव्यंजना की गई है --

जग डोल डोलत नैनाहा । उलटि अडार जाहिं पल माहाँ ॥

जबहिं फिराहिं गगन गहि बोरा । अस वह भवर चक्र के जोरा[2] ॥ आदि ।

ध्यान देने पर स्पष्ट हो जाता है कि जायसी सादृश्य मूलक उपमानों के माध्यम से केवल साधारण धर्म को ही बताकर विरत नहीं हो जाते अपितु उसके लोक व्यापीप्रभाव को भी स्पष्ट कर देते हैं। निम्नलिखित कतिपय स्थलों से रूप सौंदर्य के सृष्टि व्यापी प्रभाव और उसकी लोकोत्तर कल्पना की बात और अधिक स्पष्ट हो जायगी -- इन पंक्तियों से रूप की सार्वभौमिकता की भावना अधिक स्पष्ट हो जायगी -- इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप से ईश्वरीय सत्ता की ओर इंगित भी किया गया है --

भौंहैं स्याम धनुक जनु ताना । जासहुँ हेर हन विष बाना ।

उहै धनुक किरशुन पर अहा । उहै धनुक राघौ कर गहा ॥

ओहि धनुक रावन संघारा । ओहि धनुक कंसासुर मारा[1] ॥ आदि

(पद्मावती की भृकुटि विलास (भ्रू धनुष) का सृष्टि व्यापी प्रभाव)

बरुनी का बरनौं इमि बनी । साधे बान जान दुइ अनी ।

(बरुनी का बाणों का रूप देकर संसार के रोम-रोम में उसका अस्तित्व घोषित करना वास्तव में उच्च कोटि का संकेत है। -- -- यह कवि की प्रतिभा की महानता है) ।

उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा । बेधि रहा सगरौं संसारा ॥

गगन नखत जो जाहिं न गने । वनत बान ओहि के हने ॥

धरती बान बेधि सब राखी । साखी ठाढ़ देहिं सब साखी ॥

ऊपर उद्धृत चौपाइयों से स्पष्ट है कि पद्मावती के रूप वर्णन में जायसी ने सौंदर्य के सृष्टि व्यापी प्रभाव की साकार कल्पना की है ।

१--ना० प्रा० (न० प्र० सभा काशी), पृ० ४१

२--वही, पृ० ४२ ।

३--जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी) नखशिख खण्ड ।

४--डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ४८८

(३) रूप-वर्णन की अत्युक्तियां और उनका औचित्य—

रूप वर्णन के प्रसंग में जायसी ने अत्युक्तियां भी की हैं और सो भी अत्यन्त प्राचुर्य से, यथा — मकरि क तार ताहि कर चीरू। सो पहिरे छिरि जाइ सरीरू॥ अथवा वह प्रसंग जहाँ पर सखियां पान की नसें निकाल कर इस भय से अत्यन्त सावधानी के साथ पान देती हैं कि क्वचित् कदाचित् पान की नसें पदमावती के अधरों में न धस जाय।

नस पानन्ह कै काढ़हिं हेरी। अधर न गड़ फांस ओहि केरी॥

मकरी के तार सदृश चीर धारण करने से शरीर का छिल जाना तथा पान की नसों का धस जाने के डर से त्याग करने की अत्युक्ति का एक मात्र लक्ष्य है सौकुमार्य दर्शन। किन्तु इन सौकुमार्य दर्शन के लिए कथित अत्युक्तियों में अस्वाभाविकता है। इस प्रकार की ऊहात्मक उक्तियों द्वारा मात्रा या परिमाण का व्यञ्जना के कारण कोई रमणीय चित्र सामने नहीं आ पाता।

ग्रीवा की कोमलता तथा प्रांजलता के निदर्शन के लिए भी जायसी ने इसी प्रकार की विरस अत्युक्ति का आश्रय लिया है—

पुनि तेहि ठांव परी तिनि रेखा। घूंट जो पीक लीक सब देखा॥'

प्राय कवियों में नायिका की सुकुमारता का भी अत्युक्तिपूर्ण वर्णन करने की प्रथा रही है किन्तु जायसी का सौकुमार्य दर्शन की अत्युक्तियाँ अस्वाभाविकता के कारण तथा केवल ऊहा द्वारा मात्रा या परिमाण के आधिक्य की व्यञ्जना के कारण कोई रमणीय चित्र सामने नहीं लाती। नायिका की शय्या पर फूल की पखुरियाँ चुन-चुन कर बिछाई जाती हैं ममव है कि समूचा फूल रह जाने पर उसे रात भर नींद न आय—

पखुरी काढ़ि फूलन्ह सेंता। सोई डासहिं सौंर सपेती॥
फूल समूच रहै जो पावा। व्याकुल होइ नींद नहिं आवा॥

कालिदास के शिरीष पुष्पाधिक सौकुमार्य और शिरीष पुष्पन पुन पत त्रिण का जो प्रभाव हृदय पर पड़ता है वह जायसी द्वारा कथित इन अत्युक्तियों का न।

साधारणत कम प्रतिभाशाली कवियों के हाथों में पड़कर ऐसे अत्युक्तिपूर्ण वर्णन हास्यास्पद हो जाते हैं। किन्तु जायसी का वर्णन दो प्रधान कारणों से हास्यास्पद होने से बच गया है—

(१) पद्मावत में जायसी ने आद्यन्त परोक्ष सत्ता की ओर इंगित किया है। परोक्ष सत्ता की ओर इंगित करने के उत्साह का उनमें इतना प्राबल्य है कि वे मानो ऐसे अवसर खोजते फिरते हैं और अवसर मिलते ही परोक्ष सत्ता की ओर

इ गित करने से चूकते नही। और इस प्रकार वे प्रकृत पर से पाठक की दृष्टि हटा कर अप्रकृत पर बराबर ले जाया करते हैं। जसे दात वणन के इस प्रसग में कवि की भावना अनत ज्योति की ओर बढ़ती जान पडती है —

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥
जह जह विहसि सुभावहि हसी। तह तहँ छिटक जोति परगसी॥

इस रहस्यमय परोक्षाभास के कारण जायसी की अत्युक्तिया नही खटकती। और दूसरे जायसी अधिकाश स्थानो पर उत्प्रेक्षा या अतिशयोक्ति की सहायता से वस्तु की नही अपितु उसकी सवेदना की अभि यजना करते है। सादृश्यमूलक अलकारो के द्वारा जहा केवल वस्तु की मात्रा का आधिक्य सूचित होता है वहाँ पाठक की दृष्टि बाह्य रूप की ओर चली जाती है और आधिक्य यदि बुद्धिग्राह्य नही होता तो सम्पूण वणन हास्यास्पद हो जाता है यथा धूप की मात्रा के आधिक्य की अभि यजना के लिए यदि कोई कहे कि उससे पानी खौलने लगा या लोहा गलने लगा तो स्पष्ट ही ऐसे स्थलो पर केवल मात्राधिक्य की ओर दृष्टि जाती है—

मानहु नाल खड दुइ भए। दुहू बिच लक तार रहि गए॥

इसमे पदमावती की कटि की सूक्ष्मता वस्तूत्प्रेक्षा अलकार के सहारे यजित की गई है। यहाँ भी पाठको की दृष्टि बाह्य रूप की ओर जाती है मात्रा की ओर नहीं।

जायसी का वक्त य इतना ही है कि वह अत्यन क्षीण कटि है। हाँ परम्परा उपमानो म कुछ अवश्य ऐसे है जो प्रसग के अनुकूल भाव को पुष्ट करने म सहायक नही होते जसे—

हाथी की सूड सिहनी और भिड की कमर।

सु दरी नायिका की भावना करते समय सिहनी भिड और हाथी के मनश्चक्षुओ के सामने आ जाने स उस भाव की परिपुष्टि म व्याघात पहुचता है। जहाँ पर फ़ारसी के प्रभाव स्वरूप अत्युक्तियाँ आई हैं उनम तो कुछ निश्चित रूप स कोई रमणीय रुचिकर दृश्य सामने नहीं लाती जसे—

बिरह सरागन्हि भूज मासू। ढरि ढरि पर रक्त क आंसू॥

इसी प्रकार हथेली के वणन की यह हेतूत्प्रेक्षा भी कोई सुन्दर दृश्य सामने नही लाती —

हिया काढ़ि जनु लीन्हसि हाथा। रुहिर भरी अगुरी तहि साथा॥

सब कुछ होते हुए भी ये पक्तिया अपनी व्यजकता म अति उत्कृष्ट हैं। यदि पाठक की दृष्टि सवेदना या अनुभूति के आधिक्य की ओर जाय तो वणन हास्या

स्पद नहीं होता। यद्यपि जायसी में दोनों प्रकार की उक्तियाँ मिल जाती हैं परन्तु दूसरे प्रकार की उक्तियों की प्रचुरता है। प्रथम प्रकार की उक्ति यथा–

"आखर जरइ न काहू छूआ।"

इसमें विरह के पत्र के अक्षरों के वाह्य रूप की ओर ही दृष्टि जाती है। जायसी ने अधिकांश स्थलों पर अनुभूति की तीव्रता बताने के लिए ही अत्युक्तियों का प्रयोग किया है, यथा–

जरत वजागिनि करु पिउ छाहा। आइ बुझाउ अँगारह्न माहाँ॥

या

लागिउ जरै जरै जस भारू। फिरि फिरि भूजसि तजेउ न बारू॥[1]

प्रस्तुत चौपाई में पुनः पुनः भूजने पर बालू न छोड़ने की बात से केवल विरह की तीव्र दाहकता की ही अनुभूति नहीं होती उस दाहकता से प्राप्त होने वाले सुख की ओर ही अधिक ध्यान जाता है। जो उस संताप से हट हट कर फिर उसी में रम जाता है। इस प्रकार जायसी की अत्युक्तियाँ परिमाण निर्देश या मात्रा निर्देश के ही रूप में न रहकर अधिकांश में संवेदना के रूप में हैं।

'रूप वर्णन के प्रसंग में जायसी अत्युक्तियों पर उतर आते हैं परन्तु अधिकांश स्थलों में उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्तियों के द्वारा वस्तु की व्यंजना न होकर संवेदना या अनुभूति की व्यंजना होती है। इसलिए सहृदय का चित्त वस्तु की ओर जाने ही नहीं पाता। फिर कवि बराबर परोक्ष सत्ता की ओर इशारा करता है और इस प्रकार सहृदय का मन प्रस्तुत विषय से हटकर अप्रस्तुत परोक्ष सत्ता की ओर जाता रहता है। इसका फल यह होता है कि अन्यान्य कवियों की अत्युक्तियों में वस्तु पर दृष्टि निबद्ध होने के कारण जिस प्रकार का हास्यास्पद भाव पाया जाता है वैसा जायसी में नहीं पाया जाता।'

(४) अप्रस्तुत–विधान (उपमान रूप)

पदमावत में प्रयुक्त उपमानों को अध्ययन की सुविधा के लिए दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है–

(क) नखशिख वर्णन के उपमान

(ख) अन्य विषयों के वर्णनों से सम्बन्धित उपमान।

इन दो कोटियों के अन्तर्गत जायसी द्वारा गृहीत साहित्यिक परम्परा के रूढ़िगत उपमान, जायसी द्वारा गृहीत लोक परम्परा और लोक जीवन के उपमान तथा जायसी के नवीन मौलिक उपमान सम्मिलित हैं। इसी अप्रस्तुत विधान के

१–जा० ग्र० (ना० प्र० सभा) पृ० १२६।

अन्तर्गत जायसी द्वारा प्रयुक्त भाव वर्णन के उपमान, नखशिख वर्णन के उपमान तथा वस्तु वर्णन के उपमान भी आ जाते है। जायसी ने उत्कृष्ट कोटि के अप्रस्तुत विधान द्वारा पद्मावत के काव्य-सौन्दर्य को अपेक्षाकृत अधिक तीव्र बनाया है।

नखशिख वर्णन और तन्निहित अप्रस्तुत सौंदर्य

नायिका के सौन्दर्य के चित्रण के लिए फारसी के कवि[1] नखशिख वर्णन अवश्य करते हैं। इसके द्वारा वे नायिका के विभिन्न अंगों का चित्रण करते हुए उसकी रूप गरिमा को उभार कर प्रस्तुत करते थे। भारतीय नायक को योगी बनकर निकलने के लिए यह रूप-सौन्दर्य ही विवश करता है। वस्तुतः सूफी सिद्धान्तों के अनुसार सौन्दर्य के द्वारा ही ईश्वर अपने को व्यक्त करता है।

नखशिख वर्णन के आठ स्थल

पदमावत में आठ स्थलों पर नखशिख वर्णन मिलते हैं—

(१) सिंहल की वेश्याओं का अव्यवस्थित नखशिख।[2]
(२) यौवन भार भरिता पदमावती का नखशिख[3] (रूप वर्णन)।
(३) मानसरोवर में स्नान के लिए उद्यत पद्मावती के केश खोलते समय का संक्षिप्त व्यंजनात्मक नखशिख।
(४) हीरामन शुक-कथित रत्नसेन से पद्मावती का नखशिख[4] (रूप वर्णन)
(५) लक्ष्मी-समुद्र खंड में व्यथित, मुरझाई और बेहोश पद्मावती का नखशिख।[5]
(६) नागमती ने पद्मावती आत्मश्लाघा रूप में अपना सौंदर्य-वर्णन करती है।
(७) प्रत्युत्तर में पद्मावती ने नागमती आत्मप्रशंसा रूप में अपना सौन्दर्य वर्णन करती है।[6] और
(८) राघव चेतन कथित अलाउद्दीन से पदमावती का नखशिख।[7]

रूप-सौन्दर्य-वर्णन के इन सभी स्थलों पर जायसी ने साहित्य के परम्परा

१—लैला मजनूं निजामी, पृ० ३३
२—जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० १४।
३—वही, पृ० २०। ४—वही, पृ० २४।
५—वही, पृ० ४८—४८। ६—वही पृ० १७८।
७—वही पृ० १६२—१६७। ८—वही।
९—वही, पृ० २०६—२१७।

प्रचलित उपमानों, लोक गृहीत उपमानों, मौलिक उपमानों तथा अन्य प्रकार के उपमानों की संयोजना अत्यन्त सुन्दर और काव्यात्मक रूप में की है। मंझन ने मधुमालती में २४ में मधुमालती का नखशिख वर्णन किया है। उसमान ने भी चित्रावली का नखशिख दिया है। चन्द्रायन में भी चन्दा का संक्षिप्त नखशिख वर्णित है।

(५) 'यौवन–भार–भरिता' पदमावती का नखशिख

जायसी ने जन्म-खंड में पदमावती के यौवन का अपनी समर्थ तूलिका से चित्रण करते हुए एक संक्षिप्त नखशिख का विलसित भाव से वर्णन किया है—

भै उनंत पदमावति बारी। रचि रचि बिधि सब कला सँवारी॥
जग बेधा तेहि अंग सुबासा। भँवर आइ लुबुध चहुँ पासा॥
बेनी नाग मलय गिरि पैठी। ससि माथे दुइज होइ बैठी॥
भौंह धनुक साधे सर फेरै। नयन कुरंग भूलि जनु हेरै॥
नासिक कीर कँवल मुख सोहा। पदमिनि रूप देखि जग मोहा॥
मानिक अधर दसन जनु हीरा। हिय हुलसे कुच कनक गँभीरा॥[1]
केहरि लंक गवन गज हारे। सुर नर देखि माथ भुइँ धारे॥[2]

उक्त पंक्तियों में निम्नांकित अप्रस्तुत (उपमानों) के आनयन द्वारा पदमावती की अप्रतिम रूप प्रतिमा को जीवंत रूप में चित्रित किया है—

अंग (शरीर)	प्रफुल्ल वल्लरी (या पुष्पित लता)
वेणी	नाग
भाल या ललाट	द्वितीया का चन्द्र
भ्रू	धनुष
(बरुनी)	सर
नयन	कुरंग
नासिका	कीर
मुख	कमल
अधर	माणिक्य
दसन	हीरा
कुच	कनक जंभीर

१—डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित जा० ग्रं० में 'कनक गँभीरा' के स्थान पर "कनक जँभीरा" पाठ आया है जो अधिक शुद्ध और सार्थक है।

२—पं० रामचन्द्र शुक्ल जा० ग्रं० पृ० २०।

कटि केहरि लंक
गति मत्त गज गति

इन पंक्तियों से श्लेष के द्वारा दो अर्थों की निष्पत्ति होती है। एक तो इसमें पदमावती रूपी बाग का चित्रण किया गया है। दूसरे यौवन भार से विनत कुमारी पदमावती के अंग प्रत्यंगों का रूप-वर्णन। यहाँ बारी शब्द श्लिष्ट है। बारी—बाग, बारी बालिका। जायसी ने इस शब्द को लेकर पदमावती के रूप की तुलना बारी से की है।

उक्त अप्रस्तुतों की योजना में —

(१) भारतीय साहित्य की उपमान परम्परा का पालन किया गया है। ये साहित्य के परम्परा प्रचलित उपमान हैं।

(२) इनमें बाह्य प्रकृति से गृहीत उपमानों का ही प्राधान्य है और

(३) ये उपमान रूप वर्ण क्रिया और गुण आदि प्रकार के साम्यों पर आधारित हैं।

इस प्रकार ये उपमान रूप वर्ण क्रिया और गुण से तादात्म्य का उपस्थापन करते हैं।

(६) रूप सौंदर्य के उपमान

ऊपर नखशिख और रूप वर्णन के जिन आठ स्थलों का उल्लेख किया गया है उन स्थलों पर जायसी ने शरीर के विभिन्न अंगों उपांगों के लिए जिन उपमानों का प्रयोग किया है वे समष्टि रूप में निम्नलिखित हैं —

(१) केशराशि

(अ) खुले हुए स्थिर केश के लिए — (क) नाग (ख) नागिन (ग) कस्तूरी
(घ) प्रेम जंजीर (ङ) भ्रमर
(च) राहु
(क) बेनी नाग मलय गिरि पठी (नाग)
(ख) नागिन झाँपि लीन्ह चहुँ पासा (नागिन) तेहि पर अलक भुजंगिनि डसा। केसि नाग कित देखि मैं सवरि सवरि जिय जाय। (नाग नागिन)।
(ग) प्रथम सीस कस्तूरी केसा (कस्तूरी)
(घ) सकरें पेम चहें गिउ परी। (नवीन मौलिक उपमान प्रेम की सांकल)
(च) ससि क सरन लीन्ह जनु राहू। (राहु)

इन उपमानों में नाग राहु, भ्रमर आदि के द्वारा मूर्त का मूर्त विधान किया गया है किन्तु केशों के उपमान 'प्रेम-जंजीर' द्वारा जायसी ने मूर्त का अमूर्त विधान किया है। पदमावत के काव्य-सौन्दर्य का यह एक वैशिष्ट्य है।

(ब) खुले परन्तु हिलते हुए केश--
(ज) आनन लोर्न्हि चन्द भुजगा (सप) (शास्त्रीय उपमान)
(घ) लहरैं देइ जनहु कालिदी (तरगमयी यमुना)।
[२] मस्तक (माग) (अ) मूल उपमान (क) जमुना मांझ सरसुती मगा
(जा०ग्र० २१०)
(ख) बीर बहूटी — बीर बहूटिन का अक्षपौती। (नवीन मौलिक उपमान)
(ग) विद्युत – जनु घन मह दामिनि परगसी
(घ) आरक्त असि — खांड धार रुहिर जनु भरा
(ङ) कचन रेखा – कचन रेख कसौटी कसी
(च) सूर्य किरण – सुरुज किरिन जो गगन विसेखी।
(छ) रात्रि म आलोकित पथ – उजियर पंथ रैनि महँ कीन्हा।
(ब) कल्पित—अमूर्त उपमान—राग रजित मधु ऋतु या राता बसत जनु बसन राता जग देखा।
(इ) ललाट – (क) सूर्य (किरण) सहस किरल जा सुरुज दिपाई।
देखि लिलार सोउ छिप जाई।
(यहा उपमेय के समक्ष उपमानो की हीनता प्रदर्शित की गई है।)
(ख) द्वितीया का चन्द्र – कहाँ लिलार दुइज क जोती।
दुइज जोति कहा अस होती॥
(ग) पारस ज्योति—पारस जोति लिलाटहि ओती॥
[४] भौंह – (क) धनुष – भौंहें साम धनुक जनु चढा (पृ० २११)
(धनुष के उपमानों स कहा तो जायसी ने रूपक की सृष्टि की है और कहीं पर अतिशयोक्ति का आश्रय लिया है। उहै धनुष किरसुन प गहा आदि (पृ० ४२ जा० ग्र०) पक्तियो म समासोक्ति द्वारा म भौंहों म सृष्टि-व्यापी प्रभाव (तथा पराग सत्ता) की ओर इगित किया है।
[५] नैन – (क) रक्तकमल और (ख) भ्रमर–राते कवँल करहिं अलि भवा।
(ग) खजन और (घ) मृग – खजन सरहिं मिरिग जनु भूल।
(ङ) तुरग — – उठहिं तुरँग लेहिं नहिं बागा।
(च) तरग म भरे माणिक्य– सुभर सरोवर नयन वमानिक भरे तरग॥
(छ) कमल पत्र पर भ्रमित भ्रमर — कवल पत्र पर मधुकर फेरा।
(ज) कुरग — नयन कुरग भूलि जनु हर।
[६] बरुनी — (क) राम रावण की सेना — जुरी राम रावन की सना
(ख) सधान किया गया बाण–साध बान जानु दुइ अनी
[७] नासिका — (क) असि – नासिक खरग देउ कह जागू (४३ पृ० जा० ग्र०)

(ख) शुक – नासिक देखि लजानेउ सूआ ।
(ग) सेतुबन्ध–अहु समुद्र मह जनु बिच नीरू
सेतु बान्ध बाधा रघुबीरू । (पृ० २१२)
(घ) तिल पुष्प – तिप के पुहुप अस नासिक तासू ।

[८] अधर (क) दुपहरिया का फूल–फल दुपहरी जानौं राता ।
(ख) विद्रुम – हीरा लेइ सो विद्रुम धारा ।
(ग) माणिक्य – मानिक अधर दसन जनु हीरा ।
(घ) सूय – जन परभात रात रबि देखा
(ङ) रुधिर–भरी तलवार – रुहिर चुव जौ खांड बीरा ।

[९] दांत–(क) हीरा – दसन चौक बटे जनुहीरा (जा० ग्र० प० ४४)
(ख) दाडिम – दारिउ सरि जो न क सका फाटेउ हिया दरकिक ।
(वही प० ४४)
(ग) विद्युत – बीजु चमक जस निसि अँधियारी (वही प० २१३)
(घ) श्याम मकोय – जनु दारिउ जो स्याम मकोई । (वही प २१३)

[१] रसना (क) अमृत कौंप – अमृत कौंर जीभ जन लाई (वही प० २१३)
(ख) सरमुनी की जीभ – जीभ सरसुती काह (वही प० २१३)

[११] कपोल (क) खाड के लडडू – केइ यह सुरग खरौरा साध (४४)
(ख) कमल–कवल कपोल ओप्ति अस छाज (२१८)
(ग) गेंद नारग सुरग गेंद नारग रतनारे । (२१८)
(घ) एक नारग दाइ किए अमोला (४८) ।

[१२] तिल (क) घुघुची का राता मुह — जन घुघची आहि तिल कर मुही(८८)
(ख) भ्रमर – जानहु भवर पदम पर टूटा ।(२१८) ।
(ग) विरह की स्फुलिंग – सो तिल विरह चिनगि क करा (२१४)।
(घ) अग्नि बाण – अगिनि बान जानी तिल सूझा (४५)
(ङ) ध्रुव — सो तिल देखि कपोल पर गगन रहा धुअ गाडि (४५)
(नवीन मौलिक उपमान) ।

(१३) श्रवण–(क) नक्षत्र खचित चन्द्र और (ख) सूय – दह दिसि चाँद सूरज चमकाहीं
नखतन्ह भरे निरखि नहिंजांही
(ग) सीप और (घ) दीपक–स्रवन सीप दुइ दीप सवारे (४५)
(ङ) स्वण सीपी—स्रवन सुनहु जो कुन्दन सीपी (४५)

[१४] मुख – (क) चन्द्रमा (१) ससि मुख अग मलय गिरि बासा
(२) ससि मुख जबहिं कहै किछु बाना
(ख) पद्म नाल—कवन जो बिगसा मानसर बिनुजल गायउ सुखाय

[१५] ग्रीवा (क) कम्बु — बरनौं गीउ कम्बु की रीति (४५)
(ख) सुराही — गीउ सुराही क अस भई (२१४)
(ग) मयूर — गाउ मयूर केरि जस ग ी (२१४)
(घ) तुरग—बाव तुरग जनहु गहि परा (२१४)
(ङ) घिरिन परेवा—घिरिन परेवा गाउ उठावा ॥
(च) तमचर—चहै बोन तमचूर सुनावा (२१४)
[१६] भुजा (क) कनक दण्ड दुइ भुजा कलाई (४२)
(ख) कन्दी गाभ—कदली गाभ क जानौ जोरी (४६)
(ग) पदमनाभ—भुज उपमा पौनार नहिं खीन भएउ एहि चित।
(घ) चन्दन खम्भ—चन्दन खर्महि भुजा सवारी।
[१७] हथनी (क) कमल—औ राती ओहि कवल हथोरी। (पृ० ४६)
एक कवल क दूनी जोरी (प० २१५)।
[१८] स्तन—१–(उरोज) (क) कचन लड्डू—हिया थार कुच कचनलाड़ (४६)
(ख) कनक कचोरी—कनक कचोर उठ जनु चारु (४६)
(ग) कञ्चन बेल—कचन बेल साजि जनु कूद (४६)
(घ) नारंगी—अस नारंग दहु का कह राख (४६)
(ङ) अभीर—उलग अभीर होइ रखवारी (४६)
छुइ को सकै राजा क बारी ॥ (४६)
(च) श्रीफल—जानहु दुनो सिरीफल जोरा (२१५)
(छ) अग्निबाण—अग्निबान दुइ जानो साधे।
जग बधहि जौ होहि नबाधे ॥ (४६)
(ज) तुरग—जानहु बान तहि नहिं बाधा। (४६)
(झ) लट्टू—जानहु दूइ लटू एक साथा (२१५)
(२) कुचाग्र भाग (ज)—श्याम छत्र—साम छत्र दूनहु सिर छाजा (२१५)
[१९] पेट स—पातर पेट आहि जनु पुरी (२१५)
[२०] रामावलि (च)—श्याम सर्पिणी—साम भुअंगिनि रामावली
नाभी निकसि कँवल कह चली।
आइ दुवौ नारंग बिच भई। देखि मयूर ठमकि रहि गई ॥

विशेष द्रष्टव्य—श्याम सर्पिणी उपमान का रामावली के लिए अत्यन्त सार्थक और सजीव प्रयोग हुआ है। सर्पिणी कमल की ओर (मुख की ओर) जा रही है। रामावली रूपी सर्पिणी स्तनों तक आई। सर्प और मयूर का जन्मजात बैर है। इसी कारण वहीं तक आकर ठहर गई।

द—भ्रमरावनि—मनहु चढ़ी भौंरन्ह क पाँती।
ध—विच्छी—रोमावली विछछूक कहाऊ।
न—कालिन्दी—की कालिंदी विरह सताई।
चलि पयाग अरइल विच आई (४६)।

[२१] कटि—(प) भ ग—भ ग लक जनु माझ न तागा
(फ) कमलनाल के रेसे—दुइ-खड नलिन माझ जनु तागा (२१५)
(ब) केहरि लक—लक पुहुमि अस आहि न काहू।
केहरि कहौ न ओहि सरि ताहू (४७)।

[२२] नाभि (नाभ गाम्भीयम) भ—सागर की भवर
समुद भवर जस भव गभीर।

[२३] पीठ (ट)— मलयगिरि—मलयागिरि क पीठि सवारी
वेनी नागिन चढ़ी जो कारी।

[२४] उरु (ठ) कदली स्तम—जुरे जघ सोभा अति पाये।
केरा खभ फेरि जनु लाये॥

[२५] चरण (ड) कमल—कवल चरन अति रात विसखी।

(७) उपमान रूपों का सौंदय एक सर्वेक्षण

सक्षप म नखशिख और रूप वणन म प्रयुक्त उपमाना की यही रूप रेखा है जसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि इन उपमाना का दो कोटिया हैं (१) प्रकृति से गहीत उपमान (२) अन्य सासारिक वस्तुओ से सम्बधित उपमान।

नख शिख वणन म अधिकाशत उपमान प्रकृति से गहीत हैं। कमल भ्रमर चन्द्र, सूय प्रभति उपमान प्रकृति क्षत्र स गृहीत हैं। खभ प्रभति उपमान अन्य सासारिक वस्तुओ से गहीत उपमाना की कोटि म आते हैं। अन्य सासारिक वस्तुआ स गृहीत उपमाना की सख्या अपेक्षाकृत कम है। यथा—माग के लिए असि धार नासिका के लिए सतुवध और तलवार एव उरोज के लिए कचन के लड्डू और लट्टू।

जायसी ने नारी रूप के वणन म भारतीय काव्य परम्परा की उपमान सम्बन्धी शास्त्रीय रूढ़िया का सम्यक रूप स परिपालन किया है। प्राय काव्य परम्परा प्रचलित उपमाना की ही सयाजना स सवत्र चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है यथा—

"भौंर केस वह मालति रानी
वनी नाग मलयगिरि पैठी'
'नागिन नापि लीन्हि चहुँपासा'

लहरें लेइ मनहु कालिंदी

इसमें से सम्बन्धित भ्रमर नाग, नागिन लहरमयी यमुना आदि उपमान भारतीय काव्य परम्परा के उपमान हैं। भारतीय साहित्य में इनका प्रयोग होता आया है।

आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने स्त्री रूप के केश सम्बन्धी भारतीय काव्य परम्परा में प्रयुक्त भारतीय उपमानों पर विचार करते हुए लिखा है—

'गोवर्धन के मत में केशों में दीर्घता, कुटिलता, सघनता, स्निग्धता और नीलिमा आदि गुण वर्णित किए जाने चाहिए। — — देवन कामधेनु के मत में सूक्ष्म और नील रोम सौभाग्य के लक्षण हैं। इन गुणों को बतलाने के लिए कवियों में साधारणतः निम्नलिखित उपमायें रूढ़ हैं अंधकार, शैवाल, मेघ, मयूरपुच्छ, भ्रमर श्रेणी, चमर, यमुना तरंग, नीलमणि, नील कमल, आकाश, धूम या धुआँ इत्यादि केश की वेणी के लिए साधारणतः सर्प, तलवार, भ्रमर पंक्ति और धम्मिल्ल या जूड़े के लिए राहु की उपमायें प्रचलित हैं। केश के बीचोबीच की माँग के लिए रास्ता, दंड, जलधार आदि उपमायें दी जाती हैं।'[1]

उपमानों के चयन में कतिपय स्थलों पर जायसी की मौलिकता तथा स्वतंत्र उन्मुक्त नवीन कल्पना शक्ति ने सौन्दर्य को जीवन्त रूप प्रदान किया है। मौलिक उपमानों के आनयन में जायसी परम्परागत उपमानों की सीमित परिधि से ऊपर उठे हुए तथा मुक्त हैं। जायसी के मौलिक उपमान प्रधानतः प्रकृति से गृहीत न हो करके अन्य सांसारिक पदार्थों से गृहीत हैं—

'घुँघरवार अलकैं विष भरी। सकरैं पेम चहैं गिउ परी॥
(घुँघराली अलका के लिए)
भेंह मह सुरंग तरौरा बाँधे—(कपोल के लिए)
साँठे धार रुहिर जनु भरा—(माँग के लिए)
छुरी राम रसन के सना—(बरुनियों के लिए)
जानहु दोउ लट्टू एक साथा—(कुचों के लिए)
गीउ सुराही के अस भई—(ग्रीवा के लिए)

नखशिख वर्णन में सम्बन्धित उपमानों के विषय में समष्टि रूप में हम कह सकते हैं—

(१) जायसी ने नखशिख वर्णन में प्रायः भारतीय काव्यशास्त्र के परम्परागत उपमानों का सहारा लिया है। प्रायः सभी उपमान साहित्य के घिसे पिटे उपमान

१—आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० २६३।

हैं। परम्परागत उपमानो के माध्यम स किया गया रूप वणन पर्याप्त काव्यात्मक है। कहीं-कहीं अतिशयोक्तिपूर्ण वणन भी हैं घू ट जो पीक लीक सब देखा।'

(२) नखशिख वणन म जायसी पूणत सफल हैं। कहीं-कहीं मौलिक उपमानो के सहारे सौंदयवद्धन किया गया हैं।

(३) सम्पूण नखशिख वणन काव्यात्मक है रत्नसेन से बिछडी पद्मावती का वणन जीवन्त और व्यजनापूण है।

(४) कहीं-कहीं जायसी न नवीन मौलिक उपमानो की योजना भी की है यथा ग्रीवा के लिए सुराही कुच के लिए लटटू। वस्तुत ये फारसी साहित्य के उपमान हैं।

(५) नख शिख वणन म जायसी ने शीप स जाघ तक का ही वणन किया है नीचे के उपागो का नही। वणन क्रम शीष स ही प्रारम्भ होता है।

(६) आत्मश्लाघा रूप म कथित नागमती और पदमावती के अपने-अपने नखशिख वणनो म प्रगल्भता के दशन होते हैं। नारीत्व का सर्वोत्तम रूप शील तथा लज्जा है। इसका तकाजा है कि वे रामाकाति आदि के वणनो की अवहेलना कर जातीं किन्तु जायसी की तूलिका उस वणन के लोभ का सवरण न कर सकी।

(७) नखशिख प्रमुखतया रानी पदमावती का ही दिया गया है।

(८) जायसी के समकालीन हिन्दी साहित्य म सीताराम तथा राधाकृष्ण के नखशिख हम उपल ब होते है।

तुलसीदास ने सीता राम का नखशिख वणन किया है। विद्यापति सूरदास नन्ददास, मीरा प्रभृति भक्त कवियो ने राधा-कृष्ण का नखशिख वर्णन किया है। निर्गुणियों की स त परम्परा मे निराकार का नखशिख वणन सवथा असम्भव था। अत कबीर, दादू आदि ने इस परम्परा की ओर ध्यान नही दिया। सीताराम और राधाकृष्ण के व्यक्तित्वो म आध्यात्मिकता का प्राधान्य है। वे स्वय नख से शिख तक सौंदय म वनित कल्पित तथा स्वाभाविक अलकारो से अलकृत हैं। फिर भी सीता और राधा के प्राप्त नखशिख वणन जायसी की अपेक्षा अत्यल्प और अविशद हैं। अत हिन्दी के मध्ययुगीन साहित्य म नखशिख वणन के काव्य सौंदय की दृष्टि स जायसी मध्ययुगीन कवियो की पक्ति म सवप्रधान रूप स पाठको के समक्ष आते हैं।

(८) अन्य विषयो के वणनो से सम्बन्धित उपमानों का सौंदय

नखशिखेतर विषयों के वणन स सम्बन्धित उपमानो का सुविधा की दृष्टि से दो कोटियो म रखा जा सकता है।

(१) मानवीय भावनाओं के वर्णन में प्रयुक्त उपमान (भाव वर्णन के उपमान)।

(२) वस्तु वर्णन एवं कार्यों के उपमान।

(१) मानवीय भावनाओं के वर्णन में प्रयुक्त उपमानों का सौंदर्य

भाव वर्णन के उपमानों के माध्यम से जायसी ने मानवीय भावनाओं की अत्यंत मार्मिक अभिव्यक्ति की है। इस प्रसंग में उदाहरणों द्वारा हम यह स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे कि जायसी ने अनेक उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं, रूपकों, दृष्टान्तों तथा अन्य सादृश्यमूलक अलंकारों के माध्यम से मानवीय भावों तथा रागात्मक प्रवृत्तियों को सूक्ष्म अंकन द्वारा साकार उपस्थित कर दिया है—

काह हँसौं तुम मोसौं किएउ और सौं नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी मोहि मुख बरसै मेह॥

इसे पद्मावती की प्राप्ति के पश्चात् सद्य आगत हर्षोत्फुल्ल पति के लिए नागमती ने कहा है (क्योंकि वह अवसाद में डूबी हुई थी)। प्रस्तुत दोहे में विद्युत की कौंध तथा मेह वर्षण के अप्रस्तुत विधान-द्वारा व्यंजना को मार्मिकता प्रदान की गई है। इस संयोगकालीन उपालंभ के उत्कृष्ट निदर्शन की सम्पूर्ण मार्मिक सजीवता उपमानों पर ही आश्रित है। नागमती के धारासार अश्रु वर्षण करने वाले नयनों की उपमा मेह से तथा रत्नसेन के प्रसन्न वदन की उपमा विद्युत से दी गई है।

पिउ वियोग अस बाउर जीऊ।
पपिहा निति बोलै पिउ पीऊ॥

प्रस्तुत चौपाई में वियोग तप्ता नागमती के व्यथित हृदय के लिए पपीहा की रटन के उपमान का गुम्फन किया गया है। विरह को अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता प्रदान करने के साथ ही उपमान ने वक्तव्य के सौष्ठव का भी अभिवर्द्धन किया है। पपीहा की रटन का उपमान लौकिक है किन्तु साहित्य में रूढ़िबद्ध हो गया है। नागमती की विरहावस्था का चित्रण करने में जायसी प्रकृति क्षेत्र से गृहीत तथा लोक दृष्ट उपमानों का आश्रय लेते हैं।

(क) प्रकृति क्षेत्र से गृहीत उपमानों का सौंदर्य

सारस सारस जोड़ी— सारस जोरी कौन हरि मारि वियाधा लीन्ह।
झुरि झुरि पींजर हौं भई विरह काल मोहि दीन्ह॥
रकत ढुरा मासू गरा हाड़ भयउ सब संख।

धनि सारस होइ रर मुई पीउ समेटहिं पंख ॥

प्रथम दोहे में नागमती ने अपने और रत्नसेन को सारस की जोड़ी' का उपमान दिया है। दूसरे दोहे में भी सारस का उपमान वक्तव्य की प्रपणीय गुणिता तथा प्रभावापन्नता को सजीव और सशक्त बना रहा है। व्यथा के लिए प्रयुक्त सारस के उपमान को यदि निकाल दिया जाय तो व्यंजना पंगु और अशक्त हो जायगी।

कवल जो विगसा मानसर बिनु जल गयउ सुखाइ।
कबहुँ बेलि फिरि पलुहै जौ पिउ सींचै आइ ॥

प्रस्तुत पद में नागमती की व्यथा को उपमानों के माध्यम से जीवन्त रूप में उपस्थित किया गया है। कमल मानसर जल बेलि आदि उपमानों ने उक्त दोहे को पदमावत का ही नहीं अपितु हिन्दी वाङ्मय का एक अमूल्य हीरा बना दिया है।

नन लागि तेहिं मारग पदमावति जेहि दीप।
जस सेवातिहि सेव बन चातक जल सीप ॥

जायसी ने प्रस्तुत दोहे में चातक तथा सीप एवं स्वाति के उपमानों द्वारा वक्तव्य को अधिक मार्मिक और सजीव बनाया है। उन्होंने साधारण सी बात को भी जीवन्त बना दिया है। रत्नसेन ने गजपति से अपने प्रेम की तीव्रता को स्पष्ट किया।

सरग सीस धर धरती हिया सो प्रेम समुन्द।
नन कौड़िया होइ रह लेइ उठहिं सो बुंद ॥

प्रस्तुत दोहे में रूपक के लिए जायसी ने प्रकृति के ही उपमानों का आश्रय लिया है—

(१) स्वर्ग (२) धरती (३) समुद्र (४) कौड़ी शीश हृदय प्रेम नयन।

प्रकृति से गृहीत इन उपमानों को सजोते हुए लेइ लेइ उठहिं सो बुंद में जायसी की तूलिका का स्वाभाविक उत्कर्ष दर्शनीय है।

पदमावती ने धाय से प्रकृति के उपमानों के माध्यम से कहा—

जोबन चांद उआ जस बिरह भयउ सग राहु।
घटतहिं घटत छीन भइ कहै न पारौं काहु ॥

यौवन रूपी चन्द्र के उदय होते ही विरह रूपी राहु ने उसे ग्रसित कर लिया और अब चन्द्र क्षण-क्षण क्षीण होता जा रहा है। लगता है कि यदि पदमावती इन उपमानों का आश्रय न लेती तब या तो वह इस भाव की व्यंजना ही न कर पाती या यदि करती भी तो वह गद्य होता और उसमें कवितागत उसी तीव्रत्व की सिद्धि न हो पाती।

रत्नसेन नागमती की भेंट पर—कठनाई के नारि मनाई।
जरी जो बेलि साचि पलुहाई ॥

यहाँ भी सूखी लतिका के पल्लवित होने के उपमान द्वारा 'कठ नाह क नारि मनाई' की गद्यात्मक उक्ति म उत्कृष्ट काव्यात्मकता के स्वरो का स्पदन भर दिया गया है।

नागमती न रत्नसेन को प्रकृति के उपमानो के माध्यम से उपालम्भ दिया—

भवर पुरुष अस रहै न राखा। तजै दाख महुआ रस चाखा॥
तजि नागेसर फूल सोहावा। कवल बिसोवहि सौ मन लावा॥

नागमती ने प्रथम चौपाई मे स्वय को दाख और पदमावती को महुआ और रत्नसेन के लिए भ्रमर उपमान लिया है। द्वितीय चौपाई म वह अपने को नागेसर फूल और पदमावती को कमल का फूल मानती है। रत्नसेन के लिए भ्रमर का उपमान देती है। यदि वह प्रकृति क्षेत्र स इन उपमानो को न लेती तो उसके हृदयस्थित की अभिव्यक्ति म वह तीव्रता न आ पाती और वे भाव या तो अव्यक्त रहते या व्यक्त परन्तु अतीव्र। पदमावती भी रात के एकाकीपन की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति क्षेत्र से ही उपमानो का चयन करती है—

सूभर सरावर हस चल घटतइ गए बिछोइ।
कवल न पीतम परिहर सूखि पक बरु होइ॥

यद्यपि इस दोहे म उपमानो के आश्रय स ही धम, वाचक शब्द तथा उपमेय सभी लुप्त कर दिए गए हैं फिर भी प्रस्तुत उपमानो ने उक्ति म शक्ति तथा मार्मिकता का सवद्धन किया है। सरोवर सूखने के अनतर हस तो अन्यत्र चले जाते हैं परन्तु कमल सरोवर को नही त्यागता। भले ही वह सूख जाय सारा। उक्ति-सौन्दय प्रकृति के उपमानो पर ही आश्रित है।

राघव चेतन न भी अपनी व्यथा कथा के लिए उपमानो का चयन प्रकृति क्षेत्र स ही किया है—

बिछुरत मुह तन भए आउ हरा अहि बाट।
सरवर नीर बिछोह जिमि दरकि दरकि हिय फाट॥

पदमावती के सौन्दय रूपी जल की विछुड़न जन्य व्यथा स राघव चेतन का सरोवर रूपी हृदय उसी प्रकार फट गया जिस प्रकार जल सूख जान पर सरोवर म बीच दरारें पड जाती हैं। राघव चेतन न अपने लिए सरोवर का और पदमावती क लिए जल का उपमान प्रकृति क्षेत्र से लिया है। जायसी न लोक जीवन को अत्यन्त सन्निधि तथा सूक्ष्मता स देखा था यह उक्त उक्ति म स्पष्ट है।

पदमावती तथा नागमती दोनो रानियाँ सती होते समय अपने हृदयगत भावोच्छवासो की अभिव्यक्ति क लिए भी उपमानो का चयन प्रकृति क्षेत्र स करती हैं—

आजु सूर दिन अथवा आजु रनि ससि बूड़।
आजु नाचि जिउ दीजिए आजु आगि हम जूड़॥

करुण भावापन्न रानियों के वक्तव्य का आधार प्रकृति क्षेत्र से गृहीत उपमान ही हैं। सूर्य और चन्द्र रूप और सुख के प्रतीक हैं। सूर्य का अस्तमित होना चन्द्रमा का डूबना, *नागमती और पदमावती दोनों के सुखों के अवसान का द्योतन करता है।* रत्नसेन के साथ ही दोनों रानियों के हर्षादि का पर्यवसान हो गया। जब दोनों रानियों के जीवन को आलोकित करने वाला चन्द्र-सूर्य रूपी (रत्नसेन) अस्त हो गया, जीवन अन्धकार से व्याप्त हो गया तो फिर ऐसे जीवन से अच्छा है कि उस अग्नि में जलाकर समाप्त कर दिया जाय। आजु नाचि जीउ दीजिए। यहीं पर यह कह देना समीचीन प्रतीत होता है कि जायसी द्वारा प्रयुक्त प्रकृति क्षेत्र से गृहीत उपमान (जिनके माध्यम से जायसी ने मानवीय रूप विधान की अभिव्यंजना की है)। (१) *कहीं-कहीं उपमान जैसे ज्ञात नहीं होते और* (२) *कहीं-कहीं स्पष्ट* ही उपमान प्रतीत हो जाते हैं। इसके लिए ऊपर उद्धृत प्रायः अनेक पद्यों में उदाहरण मिल जायेंगे—

आज सूर दिन अथवा आजु रनि ससि बूड़। इत्यादि दोहे में चन्द्र सूर्य रात और दिन *किसी उपमेय के लिए प्रस्तुत उपमान सदृश ज्ञात नहीं होते* किन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य चन्द्र रूप और सुख (आनन्द) के उपमान हैं। दिन और रात सुख एवं दुःख के उपमान हैं।

(१०) लोक जीवन से गृहीत उपमानों का सौंदर्य

प्रकृति क्षेत्र से उपमानों का चयन करने में जायसी अत्यन्त कुशल हैं। साथ ही *लोक-उपमानों की नियोजना में भी वे अत्यन्त पटु हैं। यथा—*

पपीहा— पिउ वियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा निति बोलै पिउ पीऊ॥
हिंडोल— हिय हिंडोल अस डोल मोरा। विरह झुलाइ देइ झकझोरा॥
पीतपत्ता—नैन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर विरह देइ झकझोरा॥
भरसाय—लागिउ जरै जरै जस भारू। फिरि फिरि भूंजेसि तजेउ न बारू॥
ओरी—बरस मघा झकोरि झकोरी। मोरि दुइ नैन चुवैं जस ओरी॥

लोक जीवन से गृहीत उपमानों ने इन पंक्तियों में काव्यात्मकता को जो सरस और जीवंत स्पंदन भर दिया है *वह जायसी जैसे कुशल कलाकार से ही सम्भव था।* विरह संतप्त शरीर का उपमान पीले वर्ण का पत्ता अनिमेष रोते हुए तथा अश्रु प्रवाहित करते हुए नेत्रों का उपमान छप्पर की चूती हुई ओरी वियोगिनी के लिए प्रयुक्त भड़भूजे की तप्त भरसाय का वह दाना जो भाड़ के दाह की प्रतप्त बालुका

से उछल कर भी उसी में गिर गिर कर रह जाना है इत्यादि । स्पष्ट है कि नागमती की पुंजीभूत करुणा को मुखरित करने के लिए तथा उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए जायसी ने लोक जीवन से उपमानों का चयन किया है ।

जायसी ने लोक जीवन की अन्य वस्तुओं से भी उपमानों का चयन किया है । जैसे--विरह तप्त पदमावती के शरीर के लिए कड़ाही में जलते हुए घी का उपमान-- दगधि कराह जर जस घीउ । बेगि न आव मलयगिरि पाउ ॥ जायसी ने वियोग वर्णन की ही भांति संयोग कालीन चित्रांकन के लिए भी सादृश्यमूलक उपमानों के द्वारा पद्मावत के काव्य सौंदर्य को अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता प्रदान की है । जैसे--सिंहल से चित्तौड़ में सद्य आगत रत्नसेन को देखकर नागमती के प्रफुल्ल वदन और हर्षातिरेकमय दशा का चित्रण करने के लिए फुलवारी का उपमान

जस भुइं दहि असाढ़ पलुहाई । -- -- --

ओहि भांति पलुही वह बारी । उठी करिल नइ कोंप सवारी ॥

इस पद का सारा सौंदर्य फुलवारी की लताओं में नई आई हुई कोंपलों के उपमान पर ही निर्भर है ।

जायसी ने कहीं-कहीं एक सम्पूर्ण भाव को ही प्रेम का उपमान बनाकर उत्कृष्ट काव्यात्मकता का परिचय दिया है जैसे--

'मुहम्मद बाजी प्रेम की ज्यों भावै त्यों खेल ।

तिल फूलहिं के संग ज्यों होइ फुलायल तेल ॥

प्रस्तुत दोहे में लौकिक दृष्टान्त के माध्यम से प्रेम की स्वभाव व्यंजना की गई है । तिल और फूल के साहचर्य से सुरभिमय स्नेह (तेल) की निष्पत्ति होती है । प्रेम में आलम्बन और आश्रय का सम्बन्ध जब तिल और पुष्प के सदृश होगा, तभी चिर स्थायी सौरभ विकीर्ण करने वाले स्नेह की निष्पत्ति हो सकती है ।

(११) वस्तु--वर्णन एवं कार्यों के उपमानों का सौंदर्य

अन्य विषयों के वर्णनों से सम्बन्धित उपमानों की दूसरी कोटि में वस्तु वर्णन एवं कार्यों से सम्बन्धित उपमानों की गणना की जा चुकी है । इन वर्णनों में भी जायसी ने लोकगृहीत उपमानों प्रकृति क्षेत्र से गृहीत उपमानों तथा अन्य प्रकार के उपमानों का आश्रय लिया है । इन उपमानों के माध्यम से चित्रों में रंग भर कर गहन अनुभूति अति तीव्र मार्मिक तथा अनुभूतिपूर्ण सुन्दर काव्याभिव्यक्ति की गई है जैसे--

(१) 'औनई घटा चहूँ दिसि छाई । छूटहिं बान मेघ झरि लाई ॥

बाणों के लिए मेघ की बूँदें तथा छूटते हुए बाणों के लिए 'धारासार मेघ की झड़ी' के उपमानों के द्वारा एक सुन्दर जीवन्त दृश्य उपस्थित किया गया है ।

सागर की छाती पर मन्द तथा तीव्र गति से भागते हुए जलयानों के लिए क्रमश 'गरियार बल और तुषारदेशीय अश्व' के उपमानों द्वारा सुन्दर अभिव्यंजना की गई है—

'कोई जसभन धाव तुखार। कोई जइस बल गरियार ॥'

उदधि समुद्र के प्रतप्त जल को लौह कटाह में खौलते हुए तेल का उपमान भी अधिक गाढ़ बना देता है—

"तलफ तेल कराह जिमि तिमि तलफ सब नीर ॥'

जायसी ने अनेक लोकोक्तियों और मुहावरों का भी उपमान रूप में प्रयोग किया है, यथा—

"माथे नहिं बसारिय जौ सुठि सुआ सलोन।
कान टूहैं जेहि पहिरे का लेइ करब सो सोन ॥"

भावी सौत की आशंका से नागमती ने हीरामन शुक के लिए वजनी-स्वर्ण कर्णफूल के उपमान का प्रयोग किया है जिसके कान में पहनने से कान टूटने का भय बना रहता है। प्रस्तुत पद में फाटि पर ओहि सोना जेहि से टूट कान वाली कहावत को ही उपमान रूप में रखकर दृष्टांत दिया गया है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि जायसी एक उत्कृष्ट कोटि के रस सिद्ध कवि थे। उनकी कृति की अजस्र धारा में स्वाभाविकत अनेक अलंकारों का समावेश हो गया है। ये अलंकार स्वभावज हैं आरोपित नहीं। अत पद्मावत के काव्य सौन्दर्य के संवर्द्धन की दृष्टि से इन उपमानों का महत्वपूर्ण योग है। मध्ययुगीन तथा रीतिकालीन कवियों के सदृश जायसी को अलंकारों की अनावश्यक और बेमेल ठूँस ठाम नहीं करनी पड़ी है। रससिद्ध इस भारतीय महाकवि के काव्य में मानसरोवर की भाँति सर्वत्र स्वत अलंकार-प्रसून विकसित हुए हैं। इन अलंकार पदमों की नव-नव सुरभि तथा स्वजात सौंदर्य ने पद्मावत को हिन्दी साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थ रत्न बना दिया है।

रस

भावाभिव्यंजना

जायसी, कुतबन आदि सूफी कवियों की रचनाओं का प्रधान विषय प्रेमतत्व का निदर्शन एवं प्रेम व्यापारों का वर्णन होने के कारण उनकी भाव-व्यंजना-पद्धति की सीमा भी स्वभावत वहाँ तक पहुँची है जहाँ तक उसके अनुकूल समर्थ भावों का प्रश्न आ सकता है। सूफियों ने सब कहीं प्रेम के विरह-पक्ष को विशेष महत्व दिया है और इसी कारण जितना ध्यान उन्होंने प्रेमी एवं प्रेमिकाओं के वियोग,

उसकी अवधि म येले जाने वाले विविध कष्टो तथा उसका अंत करने के उद्देश्य से किए गए विभिन्न प्रयत्नो क वणन की ओर दिया है उतना उसके अतिम मिलन को भी नहा दिया है। विरह की दशा वस्तुत वह मन स्थिति है जिसम रहते समय अपने सारे जीवन को ही प्रमपात्र क प्रति नितान्त एक निष्ठ बना देना पडता है। सयोग या मिलन के अनुभव म उतनी तीव्रता नहा रह जाती और न इसी कारण उसम किसी प्रकार की गति लक्षित होती है। विरह क भाव म एक विचित्र अंत प्रेरणा निहित रहती है जो प्रेमी या प्रेमिका को कभी चन की सास नही लेने देती और सतत उद्यागशील बनाकर हा छोडती है। वह आग बढने का प्रयत्न करता है माग म अनेक प्रत्यूह समक्ष आते हैं। वह सघर्षों से जूझता है, घबराता नहा। प्रिय क मिलन की महत्-तीव्र आकाक्षा लकर शूला पर भी वह उत्साहपूर्वक चला जाता है।

मुल्ला दाऊद, जायसी, कुतबन आदि सूफी कवियो ने भाव-व्यजना के क्षेत्र म बारहमासा और प्रकृति वणन का बहुत महत्व दिया है। प्रत्येक मास के ऋतुपरक प्रभाव का निदशन एव नायक-नायिका पर तज्जन्य प्रभावाभिव्यजन का इन कवियो ने सफलतापूर्वक चित्रण किया है। इन वणनो क प्रसग म प्राय सवत्र भारतीय वाता वरण की अवतारणा ही द्रष्टव्य है। जहा फारसी साहित्य की शायरियो का प्रभावातिशय्य हुआ है वहाँ वणन अत्युक्तिपूर्ण किंवा अतिरंजित हो गए हैं। जायसी के पात्रो के नयनो से रक्त के आंसू बुंदि-बुंदि पडत हैं और ऐसे स्थलो पर स्वा भाविकता का स्थान अत्यक्ति लेन लगती है। जायसी क अतिरिक्त प्राय सभी सूफी कवि विरह वणन के प्रसग म भारतीय मर्यादा का ध्यान नही रखते। वहा कही य कवि विरहिणी के भावो म स्वय बह जात हैं और ऐसे स्थलो पर क्वचित कदाचित उच्छृखलता और बीभत्सता भी दष्टिगोचर हाती है। इन कवियो के सयोगावस्था के वणन या तो भोगविलासमय हैं या कहीं कहीं रहस्यपरक। प्रेम तत्व की व्याख्या सौन्दय की लोकोत्तर कल्पना, प्रमतत्व का अपूर्वता-असडता कही कही साम्प्रदायिक सिद्धान्तो का परिचय आदि का भी पूरा पूरा परिचय इनकी रचनाओ म मिलता है। प्रम क प्रसग म ही उत्साह, शोक द्वेष, ईर्ष्या, कपट, दया सहृदयता एव सुजनता परक भावो की व्यजना भी यहाँ प्रचुर मात्रा म दीख पडती है।

मुख्य रूप से पात्रो के द्वारा रति, शोक, क्रोध, और युद्धोत्साह नामक स्थायी भावो की व्यजना कराई जाती है। पद्मावत म भय का आलबन समुद्र मथन क प्रसग म और बीभत्स का आलबन युद्ध वणन के प्रसग म हम पाते हैं। हास का तो अभाव ही अभाव है। जायसी की भाव-व्यजना के सबध म यह स्मरण रखना चाहिए कि उन्होने जबरदस्ती विभाव अनुभाव सचारी आदि को ठूस कर पूर्ण रस की रस

अदा करने की कोशिश नहीं की है। भावोत्कर्ष मात्र ही उनका प्रयोजन रहा है। पदमावत में यद्यपि शृंगार ही प्रधान है पर उसके संयोग पक्ष में स्तंभ, स्वेद रोमांच नहीं मिलते। वियोग में अश्रुओं का बाहुल्य है। भावाभिव्यंजना के प्रसंग में दो बातें विशेष द्रष्टव्य होती हैं—

(१) कितने भावों और गूढ़ मानसिक विकारों तक कवि की दृष्टि पहुंची है।

(२) कोई भाव कितने उत्कर्ष तक पहुंचा है।

जायसी में भावों के भीतर संचारियों का सन्निवेश बहुत कम मिलता है पदमावत में रति भाव का प्राधान्य है पर उसके अंतर्गत भी हम असूया गर्व आदि दो एक संचारियों को छोड़ व्रीड़ा अवहित्था आदि अनेक भावों का कहीं पता नहीं पाते।

भावों के उत्कर्ष के क्षेत्र में जायसी बहुत बढ़े चढ़े हैं किन्तु यह उत्कर्ष मुख्यत विप्रलंभ पक्ष में ही अधिक दिखाई पड़ता है।

पदमावत मूलत एक प्रेम कथा है। अत शृंगार रस के संयोग और वियोग पक्ष का समावेश उसमें विशद रीति से हुआ है। शृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों का भी समावेश कथा प्रसंगों के कारण हो गया है। ये गौण रस करुण वात्सल्य वीर शांत और वीभत्स हैं। वीर शांत और वीभत्स का संबंध प्रधानत उत्तरार्द्ध के युद्धों से है। करुण रस जोगी-खण्ड और सती खण्ड में व्यापक रूप से निरूपित हुआ है। वात्सल्य और शान्त के छोटे छोटे प्रसंग कई बार आए हैं।

शृंगार रस

संयोग पक्ष

यद्यपि पद्मावत वियोग शृंगार प्रधान काव्य है पर इसमें संयोग शृंगार का भी पूरा वर्णन हुआ है। षट ऋतु वर्णन संभोग शृंगार के उद्दीपन की दृष्टि से लिखा गया है। जायसी ने रत्नसेन-नागमती के संयोग का केवल एक चित्र दिया है। रत्नसेन सिंहल से लौटकर आता है। दिनभर तो व्यस्त रहा पर भइ निसि नागमती पहं आवा नागमती में मान का भाव जाग्रत होता है। वह मान करती है और अंत में कहती है कि—

'तू जोगी होइगा बैरागी। हौं जरि छार भएउँ तोहि लागी॥

सपत्नी को दृष्टि में रखती हुई वह कह उठती है —

काह हंसौ तुम मोसौं किएउ और सौं नेह।
तुम्ह मुख चमकै बीजुरी मोहि मुख बरसन मेह॥

इस अवसर पर रत्नसेन की चाटुकारिता द्रष्टव्य है—

भलेहि सेन गगाजल दीठा । जमुन जो साम नीर अनि माठा ॥
थाह भएउ तन दिन दस दहा । मो वरखा सिर ऊपर अहा ॥

अन्त म वह उसे मना लेता है—

कर लाइव नारि मनाई । जरी जो बलि सावि पलुहाइ ॥

रत्नसेन बरात सजा कर आ रहा है पदमावती के हुलास और प्रेमातिशय की कोई सीमा नहीं—

हुलस नैन दरस मदमाते । हुलस अधर रग–रसराते ॥
हुलसा बदन ओप रवि पाई । हुलसि हिया कचुकि न समाई ॥
हुलस कुच कसनी वद टूटे । हुलसी भुजा वलय कर फूटे ॥
आजु चांद घर आवा सूरू । आजु सिंगार होइ सब चूरू ॥
अग-अग सब हुलसे, कोइ कतहू न समाइ ।
ठावहि ठाव विमोही गइ मुरछा तन आइ ॥

रत्नसेन पदमावती की सुहाग रात का आयोजन है । कवि दपति को सतव खड में ले जाता है । समवत सात खड म सूफिया के सात मुकामात निर्दिष्ट हैं । अन्तिम खड म पहुच कर ही प्रिय स मिलन होता है ।

सेज की कोमलता के लिए जायसी की अत्युक्ति द्रष्टव्य है—

अति सुकुमारि सेज सो डासी, छुव न पाव कोई ।
देखत नव सिन्नुहि खिन पाय धरत धस होई ॥

दोना के मन म सकोच चिन्ता है । पदमावती तो और भी संकोचशीला हो गई है—

हौं बारी औ दुलहिन पीव तरुन यह सेज ।
ना जानौं कस होइहि चढ़त कत कै सेज ॥

सभोग चित्रण—

फारसी के कवियों ने कहीं-कहीं प्रेम के मांसल स्वरूप का चित्रण किया है पर उनके काव्यों म सभोग चित्रण का अभाव है । उनके सभोग प्रभति वर्णनों म कभी-कभी तसव्वुफ का दीदार दृष्टी ओर हो जाता है । रूमी का कथन है—

'परदा बरदारो विरहना या कि मन । मो न खस्पम बासनम वा परहन ॥'[1]
(परदा उठा दो और साफ-साफ कह दो कि यार के साथ कुर्ती पहन कर नहीं सोती यार के साथ सोने का सुख कुर्ती उतार कर सोने म है ।)

अमीर खुसरो न भी शीरीं–खुसरो मसनवी म सभोग का चित्रण किया है ।

गिरफ्ता दस्ते उस दीगर चू मस्तान । गुल अज बजम महसूर मबिस्ता ॥

१—मौलाना रूमी, जगदीशचन्द्र वाचस्पति पृ० १२८

'न खुफ्त आ तशनए नब खुश्क बेताब । दहन अज आबे हैवां कद सराब ।।
चू फारिग गूद जे शवत हाय चू नाश । वशीद आसवरा चू गुन दरागोश ।।"
(दोनों ने एक दूसरे का हाथ पकड़ा ; व महफिल स शविस्ता (शयन कक्ष) की ओर चल । सवप्रथम उस प्यासे होंट वाले तथा सूख लव बेताब ने मुह को आबे हयात स सराब किया । और जब मधुपान से फारिग हुआ तो उसको अपनी गोद म खींच लिया ।) इसके अनन्तर खुशरो ने उन दोनों के रमण का यथाथ चित्रण किया है । ईरान के सूफी कवियों म इश्क मजाजी—इश्क हकीकी के चित्रण मिलते हैं पर स्पष्ट रूप स सभोग के चित्रण वहा की मसनवियो म नही मिलते । जामी की मसनवी यूसुफ जुलेखा म इस प्रकार का चित्रण नहीं मिलता । निजामी ने भी इस प्रकार का चित्रण नहीं किया है । खुसरो की यह प्रवृत्ति भारतीय वातावरण के कारण है । इसका मूलस्रोत भारतीय साहित्य म है । फारसी साहित्य की सवप्रथम मसनवी म सभोग चित्रण अमीर खुसरो की शीरी खसरो म ही मिलता है । अकबर कालीन फजी ने भी नल दमन म इस प्रकार का चित्रण किया है— अजदीदा वदीदा राज गुफ्तन्द । बज सीना व सीना बाज गुफ्तन्द ।[2] सम्भव है कि जायसी न अमीर खुसरो या भारतीय परम्परा स ग्रहण करके ही सभोग का विलसित चित्रण किया है ।

सस्कृत के काव्यो म सभोग के अनेक प्रकार के वणन मिलते हैं इस प्रसग म प्राय कवियों ने कामशास्त्र को आधार बनाया है । कालिदास[3] न कुमार सभवम म सभोग का सविस्तार चित्रण किया है । श्री हष न नषध महाकाव्य म नल और दमयन्ती के सभोग का चित्रण किया है । इस महाकाव्य के अठारहवें[4] सग म सभोग का बड़ा विशद चित्रण मिलता है । विल्हण ने[5] चौरपचशिका म चोर कवि की सभोग-स्मृतियों का वणन किया है । गीतगोविन्द म[6] जयदेव न राधा और कृष्ण की भांति भांति की सभोग-केलिक्रीड़ाओं को चित्रित किया है । प्राकृत और अपभ्रश साहित्य म भी सभोग के वणन मिलते हैं ।

वस्तुत भारतीय लक्षणकारो ने महाकाव्य म सभोग चित्रण को एक आवश्यक तत्व के रूप म माना है और सभवत इसी कारण महाकवियो न सभोग चित्रण स

१—खुसरो शीरीं अमीर खुसरो पृ० २८० (अलीगढ़ यूनिवर्सिटी १६२७)
२—नलदमन, फजी पृ० २१६ (नवलकिशोर प्रस लखनऊ १६३० ई०)
३—कुमार सभवम अष्टम सग ।
४—नषधमहाकाव्यम् अष्टादश सग श्लोक ५४–६८
५—श्रीविल्हण कविकृत चौरपचाशिका ओरियटल बुक एजसी पूना ।
६—गीतगोविन्द हिंदी अनु० डा० विनयमोहन शर्मा ।

अपने महाकाव्यों को सजाना शुरू किया। इस प्रकार इस चित्रण की परम्परा ही चल पड़ी। साहित्य दर्पणकार का कथन है कि महाकाव्य में संभोग का चित्रण भी होना चाहिए— संभोग विप्रलंभौच मुनिस्वर्गपुराध्वरा।[1] दण्डी ने भी 'उद्यान सलिल क्रीड़ा मधुपान[2] रतोत्सव के द्वारा महाकाव्य में संभोग चित्रण को एक आवश्यक तत्व माना है। भारतीय महाकाव्यों में धीरे धीरे संभोग-चित्रण एक रूढ़ि बन गया। प्राय: महाकाव्यकारों ने प्रसंग उपस्थित होने पर संभोग के रसमय वर्णन किए हैं।

'ढोलामारू रा दूहा'[3] छिताईवार्ता मदयवत्स सावलिगा, माधवानलकामकंदला, नलदमन रस रतन प्रेम प्रगास पुहुपावती प्रभृति असूफी काव्यों में संभोग चित्रण का कवियों ने रसमय वर्णन किया है। यहां संभोग चित्रण की भारतीय परम्परा प्रदर्शन के लिए कवि पंक्तियां अपेक्षित हैं— छिताईवार्ता में सौरसी और छिताई की रति क्रीड़ा का चित्रण मिलता है। छिताई कोक कला और आसनों कमनबंध की रीतियां विपरीत रति आदि में चतुर थी—

मदनबान तन जाल्न सहा। उठि सुरसी अंचल गहा।
छोरत मन कचुकी लजाई। कूरह दृष्टि दीया बुझाई॥
अधर प्रकार कुच गहन न देई। छुवन न अंग छिताई देई॥[4]
आसन-कमन विध वध। विपरित रतिन कोक अति सध॥

गणपति ने कामकला और माधव के विलास एवं केलि-युद्ध का सविस्तार वर्णन किया है। माधव को कवि ने साक्षात् कामदेव का अवतार कहा है। चूड़ियों का टूटना, मुक्ताहार का टूटना आभरणों का छिटक जाना खाट का भार न सह सकना आदि का माधवानल कामकन्दला[5] में वर्णन हुआ है। बलिकिसन रुकमणीरी में कवि पृथ्वीराज ने रुकमणी के थानों के सुघन, मोतियों के छहरान आदि का सम्भोगकालीन चित्रण किया है।

विद्यापति ने भी अपने पदों[7] में संभोग का चित्रण किया है। अब प्रश्न

१—साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, षष्ठपरिच्छेद, श्लोक ३२३।
२—काव्यादर्श दण्डी, प्रथम परिच्छेद, श्लोक १६।
३—ढोलामारू रा दूहा ना० प्र० सभा, काशी, पृ० १४१ ४२ ४३।
४—छिताईवार्ता ना० प्र० सभा काशी छंद १६२ से २००।
५—माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध पृ० १०६ १०३।
६—बलिकिसन रुकमणी री छंद १७६ ७७ ७८।
७—विद्यापति पदावली, स० रामवृक्ष बेनीपुरी लहरियासराय पटना।

यह है कि जायसी के सभोग वणन का मूल-स्रोत क्या है ? फारसी की सूफी वणनात्मक मसनवियों म सभोग का इस प्रकार का चित्रण नही मिलता। प्रख्यात मसनवीकार निजामी और जामी की कृतिया म कही भी इस प्रकार का सभोग चित्रण नही मिलता है। जायसी मझन आदि के काव्यो म जो सभोग वणन मिलता है उसके मूल म प्रधान रूप से भारतीय प्रभाव और परम्परा है साथ ही गौण रूप से सूफी प्रम इश्क मजाजी—इश्कहक़ीकी का भी प्रभाव है—पर यह सूफी या ईरानी प्रभाव नगण्य सा है।

जायसी ने दम्पति के सभोग का जमकर वणन किया है। यहा कवि ने मूलत लौकिक सभोग का वणन किया है

पिउ पिउ करत जीम धनि सूखी बोली चातक भांति।
परी सो बूद सीप जनु माती हिए परी सुख-साति॥
भई जूझ जस रावन रामा। सेज विधासि विरह सग्रामा।
लीन्ह लक कचन गढ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा॥
औ जोवन ममत विधासा। विचला विरह जीउ जो नासा॥
टूट अग अग सब भसा। छूटी मग भग भ केसा॥
कचुकि चूरि चूरि भइ तान। टूट हार मोति छहराने॥
पुहुम सिंगार सवारि जौ जोवन नवल वसत।
अरगज जेउ हिय लाइ क मरगज कीन्ह वन॥[1]

इस प्रसग म मैमता शब्द द्रष्टव्य है। एक ओर मदमस्त हाथी का अथ और दूसरी ओर अहता या अह का अथ। अह का विध्वस साधना म अपेक्षित है। इस अवसर पर बेचारी बाला पद्मावती विनती करती है कि ह प्रिय तुम्हारी आज्ञा मेरे सिर माथे पर है पर मेरा निवेदन है कि मधु का थोडा थोडा चखो—

जो तुम्ह चाहहु सो करहु नहि जानहु भल मद।
जो भाव सो होइ मोहि तुम्हहि प चहौं अनद॥[2]

रत्नसेन सच्चा साधक है वह मरन जीने स नहीं डरता—

'सुनु धनि पेम सुरा के पिए। मरन जियन डर रहै न हिए॥

इस प्रसग म जामी का कथन उद्धरणीय है— सासारिक प्रम को छोड कर पियो ताकि तुम्हारे ओष्ठ और अधिक शुद्ध सुरा का पान कर सकें।[3] यह सभोग चित्रण स्थूल हो गया है। सुराही प्याला प्रम सुरा आदि क सूक्ष्म स्वरूप दब-से गए हैं।

१–पद्मावत (डा० वासुदेवशरण अग्रवाल) पृ० ३१७
२–वही प ३१८
३–यूसुफ एण्ड जुलखा अनु० रल्फ टी० एच० ग्रिफिथ लन्दन प० २४।

सूफियों में मद्यपान ईश्वरीय प्रेम का प्रतीक है। इसी से सुहाग रात के समय कवि ने इसकी योजना की है। हमारे धर्म-समाज और साहित्य में रति का आत्यंतिक चित्रण वर्जित है। काम भी धर्म अर्थ और मोक्ष की तरह उपास्य है। भारतीय धर्म साधना में काम का भी महत्व है। संभवतः यह तंत्र साधना का प्रभाव है। इस प्रसंग में कोणार्क और जगन्नाथ जी के मन्दिरों पर चौरासी आसनों के चित्र, कालिदास, जयदेव और विद्यापति के संभोग-वर्णनों की ओर भी दृष्टि का चला जाना स्वाभाविक है। कबीर में भी अध्यात्म पक्ष को लौकिक रति प्रसंग का ही सहारा मिला है। आज भी रहस्यवादी कवि जुही की कली और पवन, शेफाली और शिशिर बिंदु की क्रीड़ा व्यक्त करने से नहीं चूके हैं। जायसी ने अन्त में स्पष्ट रूप से इसे अध्यात्म की ओर मोड़ दिया है—

करि सिंगार तापहँ का जाऊँ। ओही देखौं ठावहिं ठाऊँ॥
मन माहँ है उहै समाना। देखौं तहाँ नाहिं कोउ आना॥

रत्नसेन के साथ रहने के कारण पद्मावती को पावस अत्यन्त सुखद प्रतीत होता है—

चमक बीजु बरसै जल सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना॥
रंगराती पीतम सँग जागी। गरजै गगन चौंकि गर लागी॥

विरह स्थिति में नागमती को बूँदें बाण की तरह लगती हैं पर पद्मावती को संयोग दशा में वे ही बूँदें सोने की-सी प्रतीत होती हैं। जायसी का षट् ऋतु वर्णन परंपरागत ही है। पद्मावती शृंगार करके राजा के पास जाती है उस समय का एक मनोहारी चित्र कवि ने खींचा है—

साजन लेइ पठावा आयसु जाइ न मेंट।
तन मन जोबन साजि कै देइ चली लइ भेंट॥

मन का सजना—समागम की उत्कंठा का अभिप्राय है। बिना इस मन की तैयारी के तन की सब तैयारी व्यर्थ हो जाती है।

नायक-नायिका के बीच कुछ वाक् चातुर्य और परिहास भी भारतीय प्रेम-प्रवृत्ति का एक मनोहर अंग है। भारतीय प्रकृति के अनुसार संयोग पक्ष की नाना वृत्तियों का भी वक्र विधान हो जाने से जायसी का प्रेम आलोचकों द्वारा बिल्कुल मुस्लिमी कहे जाने से बाल बाल बच गया है। राजा की सारी कहानी सुनकर पद्मावती कहती है कि तू जोगी और मैं रानी तेरा-मेरा कैसा साथ?

हौं रानी तू जोगि भिखारी। जोगिहि भोगिहि कौनि चिन्हारी॥
एही भाँति सिष्टि सब हारी। एही भेस रावन सिय हरी॥

संभोग शृंगार की परम्परा के अनुसार जायसी ने अभिसार का पूरा वर्णन

किया है। अभिसार मिलन, द्यूत क्रीडा वाकचातुर्य रति आदि की व्यंजना पर्याप्त रसमय है।

वियोग शृंगार का पदमावत में अत्यन्त विशद चित्रण हुआ है। नागमती और पदमावती दोनों के विरह पदमावत में मिलते हैं। दोनों लगभग एक समान हैं। इनमें कोई विशेष भेद नहीं है। कवि प्रेम मात्र में भेद नहीं करता। प्रेम चाहे लौकिक हो चाहे पारमार्थिक प्रकार भेद हो सकता है तत्वभेद नहीं। पदमावत के ५७ खण्डों में पन्द्रह खण्ड नागमती और पदमावती के वियोग का चित्रण करते हैं।

नागमती का वियोग 'नागमती वियोग खण्ड नागमती सन्देश खण्ड चित्तौर आगमन खण्ड पद्मावती नागमती विलाप खण्ड पदमावती-नागमती सती खण्ड आदि प्रसंगों में अभिव्यक्त हुआ है। विद्वानों का विचार है कि नागमती वियोग और सन्देश जैसी वस्तु तो हिन्दी काव्य में अन्यत्र नहीं ही है। केवल इन्हीं दो खण्डों को लिखकर जायसी अमर हो जाते। नागमती का अपना पति एक दूसरी स्त्री के सौंदर्य का वर्णन एक तोते के मुख से सुनकर सात समुद्र पार सिंहल द्वीप की ओर चला जाता है। वह अपना सब कुछ छोड़कर जाता है जोगी बनकर जाता है। नागमती की गोद भी सूनी है--इसी पृष्ठभूमि पर उसका दारुण विरह चित्रित हुआ है। वेदना का इतना मार्मिक, गम्भीर पवित्र एवं प्रभविष्णु वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। जायसी का एक एक दोहा विरह का अगाध सागर है--

सारस जोरी कौन हरि मारि बियाधा लीन्ह।
झुरि झुरि हौं पाजर भई बिरह काल मोहि दीन्ह॥
जिन्ह घर कन्ता ते सुखी तिन गारो औ गर्व।
कन्त पियारा बाहिर हम सुख भूला सर्व॥
परबत समुद अगम बिच, बीहड घन बन ढाख।
किमि के भेटौं कन्त तुम्ह ना मोहि पाँव न पाख॥

वियोग हमारे यहा चार प्रकार का माना गया है पूर्वानुराग मान प्रवास और करुण।[1] (१) पूर्वानुराग को कुछ आचार्यों ने अभिलाष मात्र मानकर गंभीर वियोग के अनुपयुक्त समझा है। पद्मावत में प्रणयमान और ईर्ष्या मान दोनों की सुन्दर योजना की गई है। इन दोनों मानों के वर्णन में जायसी की वित्तवृत्ति अधिक रमी है। प्रवास और विरह के वर्णन में तो जायसी बेजोड़ हैं।

'जायसी का विरह वर्णन अत्युक्तिपूर्ण होने पर भी मजाक की हद तक नहीं पहुंचने पाया है उसमें गांभीर्य भरा हुआ है। इनकी अत्युक्तियाँ बात की करामात नहीं जान पड़तीं हृदय की अत्यन्त तीव्र वेदना के शब्द संकेत प्रतीत होती हैं।

१--रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, ना० प्र० सभा, काशी पृ० १६६ २००।

उनके अन्तर्गत जिन पदार्थों का उल्लेख होता है वे हृदयस्थ ताप की अनुभूति का आभास देने वाले होते हैं, बाहर के ताप की मात्रा नापने वाले मानदण्ड मात्र नहीं। जाड़े के दिनों में पड़ोसियों तक पहुँच उन्हें बेचैन करने वाले शरीर पर रखे हुए कमल के पत्तों को भूनकर पापड़ बना देने वाले बोतल का गुलाबजल सुखा डालने वाले ताप से कम ताप जायसी का नहीं है पर उन्होंने उसके वेदनात्मक और दृश्य अंश पर जितनी दृष्टि रखी है उतनी उसकी बाहरी नाप-जोख पर नहीं जो प्रायः ऊहात्मक हुआ करती है। नाप जोख करने वाली ऊहात्मक पद्धति का जायसी ने कुछ ही स्थानों पर प्रयोग किया है जैसे राजा की प्रेम-पत्रिका के इस वर्णन में—

आखर जरहिं न काहू छूआ। तब दुख देखि चला लेइ सूआ॥

अथवा नागमती के विरह-ताप की इस व्यंजना में—

जेहि पंखी के नियर होइ कहै विरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि तरिवर होहिं निपात॥

इस ऊहात्मक पद्धति का दो चार जगह व्यवहार चाहे जायसी ने किया हो, पर अधिकतर वेदनात्मक स्वरूप की अत्यन्त विशद व्यंजना ही जायसी की विशेषता है। इन्होंने अत्युक्ति की है और खूब की है पर वह अधिकांश संवेदना के स्वरूप में है परिणाम निर्देश के रूप में नहीं है।

जायसी ने जहाँ हेतूत्प्रेक्षा के माध्यम से विरह-ताप की मात्रा का आधिक्य सूचित करने के लिए ऊहात्मक या वस्तु-व्यंजनात्मक पद्धति का सहारा लिया है वहाँ विरह-ताप को सृष्टि भर में व्याप्त भी देखा है—

अस परजरा विरह कर गठा। मेघ साम भए धूम जो उठा॥
दाढ़ा राहु केतु गा दाधा। सूरज जरा चाँद जरि आधा॥
औ सब नखत तराईं जरहीं। टूटहिं लूक, धरति महँ परहीं॥
जरै सो धरती ठावहिं ठाऊँ। दहकि पलास जरै तेहि दाऊँ॥

यहाँ मेघों का श्याम होना, राहु-केतु का काला होना सूर्य का तपना, चन्द्रमा का क्षीण होते जाना पलास के फूलों का लाल होना आदि सत्य हैं। ये विरह ताप के कारण ऐसे हैं यही बात कल्पित है।

ताप के अतिरिक्त विरह के और—और अंगों का भी विन्यास जायसी ने इसी हृदय-हारिणी और व्यापकत्व विधायिनी पद्धति पर बाह्य प्रकृति को मूल-आभ्यन्तर जगत का प्रतिबिम्ब-सा दिखाते हुए किया है। नागमती के विरह और रुदन से समस्त संसार प्रभावित है—

कुहुकि-कुहुकि जस कोइल रोई। रकत आँसु घुँघुची होइ रोई॥
जहँ-जहँ ठाढ़ि होइ बनबासी। तहँ-तहँ होइ घुँघुचि कै रासी॥

तेहि दुख भए परास निपाते । लोहू बूडि उठ होइ राते ॥
राते बिंब भीजि तेहि लोहू । परवर पाक, फाट हिय गोहूँ ॥

सूर की गोपियों ने मधुवन को कोसते हुए कहा था—

मधुबन तुम क्त रहत हरे ।
बिरह-वियोग श्याम सुंदर के काहे न ठाढ़े जरे ?
कौन काज ठाढ़े रहे बन मे काहे न उकठि परे ?

नागमती का विरह-वर्णन हिंदी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है। नागमती उपवन के पेड़ों के नीचे रात रात भर रोती फिरती है। इस दशा में पशु पक्षी पेड़ पल्लव जो कुछ सामने आता है उसे वह अपना दुखड़ा सुनाती है। वह पुण्य दशा धन्य है जिसमें ये सब अपने सगे लगते हैं और यह जान पड़ने लगता है कि इन्हें दुख सुनाने से भी जी हलका होगा। सब जीवों का अधीश्वर मनुष्य और मनुष्यों का अधीश्वर राजा। उसकी पटरानी जो कभी कभी बड़े-बड़े राजाओं और सरदारों की बातों की ओर भी ध्यान न देती थी वह पक्षियों से अपने हृदय की वेदना कह रही है हृदय की इस उदार और व्यापक दशा का कवियों ने केवल प्रेम दशा के भीतर ही वर्णन किया है यह बात ध्यान देने योग्य है।[1]

बाल्मीकि के राम सीता-हरण होने पर वन में वृक्ष-वृक्ष से पूछते फिरे कालिदास का यक्ष मेघ से संदेश देता रहा और नागमती भी उन्माद की स्थिति में पक्षी-दूत की व्यवस्था करती रही—

फिरि फिरि रोव कोइ नहिं डोला । आधी रात-बिहंगम बोला ॥
तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी । केहि दुख रैनि न लावसि आँखी ॥

जायसी ने यहां सामान्य हृदय तत्व की सृष्टि-व्यापिनी भावना द्वारा मनुष्य और पशु-पक्षी सबको एक जीवन सूत्र में बद्ध देखा है।

पदमावती से कहने के लिये नागमती ने विहंगम से जो संदेश कहा है वह अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। उसमें मान गर्व आदि से रहित सुख भोग की लालसा से अलग अत्यन्त नम्र शीतल और विशुद्ध प्रेम की झलक पाई जाती है—

पदमावति सों कहेहु बिहंगम । कंत लोभाइ रही करि संगम ॥
तोहि चैन सुख मिलै सरीरा । मो कहँ हिय दुंद दुख पीरा ॥
हमहुँ बियाही संग ओहि पीऊ । आपुहि पाइ जानु पर-जीऊ ॥
मोहि भोग सों काज न बारी । सौंह दीठि कै चाहनिहारी ॥

विप्रलम्भ शृंगार ही पदमावत में प्रधान है। विरह दशा के वर्णन में जहाँ

1—जा० ग्र० (ना० प्र० सभा) पृ० ४०-४१

कवि ने भारतीय पद्धति का अनुसरण किया है, वहा कोई अरुचिकारक वीभत्स दृश्य नही आया है। कृशता ताप वेदना आदि के वर्णन मे भी उन्होंने शृगार मे उपयुक्त वस्तु सामने रखी है, केवल उसके स्वरूप म कुछ अन्तर दिखा दिया है, जो पदमिनी स्वभावत पद्मिनी के समान विकसित रहा करती थी वह सूखकर मुरझाई हुई लगती है—

कॅवल सूख पखुरी बहरानी। गलि गलि कै मिलि छार हेरानी ॥

विरह-वर्णन के प्रसगो म पदमावत म जहाँ कही भी फारसी साहित्य द्वारा पोषित भाव मिलते हैं वहाँ कभी-कभी वीभत्सता भी आ गई है, जसे

विरह सरागहि भूँजै मासू। गिरि-गिरि परै रकत कै आँसू ॥
कटि-कटि मासु सराग पिरोवा। रकत कै आँसु मासु सब रोवा ॥
खिन एक बार मासु अस भूँजा। खिनहिं चबाइ सिंघ अस गूँजा ॥

वियोग-वर्णन की ही भाँति कहीं-कहीं सयोगवर्णन के प्रसग में भी इसी प्रकार के वीभत्स दृश्यो को उपस्थित किया गया है। बादल की नवागता वधू सोचती है कि कहीं मेरे कटाक्ष तो उसके हृदय को वेधकर पीठ की ओर नहीं जा निकले हैं। यदि ऐसा है तो तू की लगाकर उन्हे खींच लू और जब वह पीडा से चौंक कर मुझे पकडे तो गहरे रस मे उसे धो डालू —

मकु पिउ दिस्टि समानउ सालू। हुलसा पीठि कढावौ सालू ॥
कुच-तूँबी अब पीठि गडोवौं। गहै जो हूकि, गाढ रस धोवौं ॥

विरहजन्य कृशता के भी अत्युक्तिपूर्ण वर्णन दहिकोइला भइ कन्त सनेहा और हाड भए सब किंगरी प्रभृति पदों में मिलते हैं—इन सब स्थलों पर गभीरता और प्रतिपाद्य की प्रभविष्णुता सबल है।

नागमती का बारहमासा वेदना की प्रभविष्णुता, मार्मिकता कोमलता, मधुरता, प्रकृति-व्यापारों के साथ सहचारिता अकृत्रिमता प्राजलता और सर्वोपरि उत्तम व्यञ्जकता के दृष्टिकोणों से हिन्दी साहित्य का एक महार्घ रत्न है। इसका प्रतिमान शायद ही हिन्दी साहित्य में मिले। प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का दिग्दर्शन और साथ ही दुख के नाना रूपों और कारणों की व्यजना के माध्यम से जायसी ने एक सुन्दर संश्लिष्ट भाव प्रवण चित्र प्रस्तुत किया है। इसकी स्वाभाविक व्यजनामयी मर्मस्पर्शिता के लिए एक-दो उदाहरण पर्याप्त होंगे।

'पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह मदिर को छावा ॥'
बरसै मेह चुवै नैनाहा। छपर छपर होइ रहि बिनु नाहा ॥"
जग जल बूडि जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी ॥
'कातिक सरद चद उजियारी। जग सीतल हौं बिरहै जारी ॥'

सखि झूमर गावहिं अंग मोरी । हौं झुराव बिछुरी मोरी जोरी ।।

इन स्थलों पर परिवर्तमान ऋतुओं और प्राकृतिक व्यापारों के साथ विरहिणी के करुणा कातर हृदय का सामंजस्य उपस्थित किया गया है। बरस मघा झकोरि झकोरी । मोरि दुइ नैन चुवै जस ओरी ।। विरहिणी की इस प्रकार की सादृश्य भावना कवि परम्परा सिद्ध है। सूरदास का 'निस दिन बरसत नैन हमारे'। वाला पद इसी प्रकार की सादृश्य भावना से आप्लावित है।

हृदय भावनाओं की तीव्रता, सशक्तता और स्वाभाविकता की दृष्टि से भाव सहज ही उत्कर्ष को पहुँच जाते हैं—

'रात दिवस बस यह जिउ मोरे । लगौं निहोर कंत अब तोरे ।।
यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन उड़ाव ।
मकु तेहि मारग उड़ि परै कंत धरै जेहि पाव ।।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि विरह वर्णन के क्षेत्र में जायसी बेजोड़ हैं, उनका बारहमासा हिन्दी साहित्य में एक अन्यतम वस्तु है। नागमती के अश्रुमय स्वरूप के चित्रण में जायसी पूर्णतः सफल हैं।

करुण

शृंगार के अनन्तर करुणा ही ऐसा रस है जिसमें जायसी की सर्वाधिक आसक्ति है। विप्रलंभ शृंगार के क्रोड़ में भी करुण रस का सुन्दर निरूपण हुआ है। दो स्थलों पर मुख्यरूप से करुण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है (१) रत्नसेन के सिंहल गमन के अवसर पर कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया चित्तौर का दृश्य और (२) रत्नसेन की सिंहल को विदाई के समय का दृश्य।

रत्नसेन सिंहल जाने के लिए जोगी होकर और राज-पाट छोड़ कर जा रहा है। माँ रो रही है कि रत्नसेन जा रहा है अब घर में अँधियारा हो रहा है। रानियाँ रोकर प्राण छोड़े दे रही हैं वे बाल नोच-नोच कर खलिहान कर रही हैं वे मरना चाहती हैं पर मरती नहीं चारों ओर हाहाकार मचा है नौ मन मोती दस मन काँच के आभूषण तोड़-फोड़ कर फेंक डाले गए—

' रोवत माय न बहुरत बारा । रतन चला घर भा अँधियारा ।
रोवहिं रानी तजहिं पराना । नोचहिं बार करहिं खरिहाना ।।'

१—बारहमासा 'षट् ऋतु वर्णन' के प्रसंग में प्रकृति चित्रण वाले अध्याय के अन्त में सविस्तार वर्णन द्रष्टव्य है। विरह की अत्युक्तियों का भी इसी प्रबंध में अन्यत्र वर्णन हुआ है।

२—जा० ग्रं०, पृ० ५५-५६ ।

शैलीगत विवेचन

रत्नसेन की सिंहल से विदाई का दृश्य भी करुणा-प्लावित है। ज्योंही पद्मावती ने चलने की बात सुनी तो उसका हृदय धसक उठा उठा धसकि जिउ औ सिर धुना। सखियों का भेंटना रानियों का रोना माता पिता, भाई आदि का रोना करुण रस के ही परिकर से अभिव्यक्त हुए हैं।

रोवहिं मातु पिता औ भाई। कोउ न टेक जो कन्त चलाई॥
रोवहिं सब नैहर सिंहला। लइ बजाइ कै राजा चला॥
भरी भरी सब भेंटत हेरा। अन्त अंत सौं भएउ गुरेरा॥[1]

पुत्री जब पति-घर जाती है तो सचमुच करुणा का अपार सागर उमड़ ही पड़ता है शकुन्तला की विदाई का प्रसंग भी इसी प्रकार का अत्यन्त करुणा पूरित है।[2]

वात्सल्य

वात्सल्य रस के उद्गार दो स्थलों पर विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं—

(१) रत्नसेन के जोगी होकर घर से निकलने के अवसर पर।

(२) बादल की युद्ध-यात्रा के अवसर पर।

इन दोनों स्थलों पर अभिव्यंजना माता के ही मुख से है। रत्नसेन की माता का वात्सल्य सुख के अनिश्चय द्वारा व्यक्त होता है और बादल की माता का 'शंका संचारी' द्वारा। रत्नसेन की मां कह उठती है —

कस धूप सहब बिनु छाहां। कसे नींद परिहिं भुइं मांहा॥
कस सहब खिनहिं खिन भूखा। कस खाब कुरकुटा रूखा॥

तुलसी और सूर ने कौशल्या और यशोदा के मुख से ऐसे अनिश्चय की बड़ी सुन्दर व्यंजना कराई है। ऐसे स्थलों पर अनिश्चय और शंका के संचारी भाव उपस्थित होते हैं। वात्सल्य के अन्तर्गत शंका का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

बादल राय मोर तुइ बारा। का जानसि कस होइ जुहारा॥
बरिसहिं सेल बान घनघोरा। धीरज धीर न बांधिहिं तोरा॥

उपर्युक्त दोनों स्थलों पर मां के कोमल हृदय की मनोरम झांकी दिखलाई गई है।

वीर रस

जायसी का वीर रस का वर्णन उत्तम कोटि का है। सेना की सजावट

१—जा० ग्र० (ना० प्र० सभा) पृ० १७०।
२—द्रष्टव्य, अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक ४।

और युद्ध की तयारी का वर्णन, चढ़ाई की हलचल का वर्णन घोर घमासान युद्ध का वर्णन-अस्त्रों – शस्त्रों के वर्णन, गोरा – बादल के क्षात्र तेज द्वारा – शौर्य का अभिव्यञ्जन आदि प्रसंगों में जायसी ने वीर रस का जीवंत वर्णन – चित्रण किया है।

बरखा गए अगस्त के दीठीं। पर पलानि तुरगन पीठीं॥
बेधीं राहु छोड़ा वह सूरू। रहै न दुख कर मूल अँकूरू॥

महा उत्साह या आशापूर्ण साहस भी स्पर्शनीय है। रत्नसेन, गन्धर्वसेन, गोरा बादल, आदि क्षत्रिय हैं अलाउद्दीन भी योद्धा है। युद्ध के प्रसगों में वीर रस उमड़ पड़ा है। गोरा का वीर रस प्लावित एक चित्र दर्शनीय है –

सब कटक मिलि गोरहि छेंका। गूंजत सिंघ जाइ नहिं टेका॥[1]
जेहि दिसि उठ सोइ जनु खावा। पलटि सिंघ तेहि ठाव न आवा॥

गोरा के अन्तिम क्षण का वीर – रस पूर्ण चित्र तो और भी मार्मिक हो उठा है –

भाट कहा – धनि गोरा तू भा रावन राव॥
आंति समेटि बांधि कै तुरय देत है पाव।[2]

युद्ध वर्णन के प्रसंग में डाकिनियों का बीभत्स – वर्णन भी हुआ है। युद्ध जन्य बीभत्सता और भयानकता के भी रूप कहीं – कहीं देखने को मिल जाते हैं। रस की दृष्टि से वीर रस का भी सुन्दर परिपाक पद्मावत में हुआ है।

अन्य रस भाव

क्रोध के प्रसंग पद्मावत में कम हैं। अलाउद्दीन की चिट्ठी मिलने पर भी क्रोध का उमड़ित रूप नहीं दिखाया जा सका है। यहाँ क्रोध का वह आवेश नहीं है जिसमें नीति और विचार नहीं रह जाता –

सुनि अस लिखा उठा जरि राजा। जानहु तड़पि दैव घन गाजा॥
का मोहि सिंघ देखावसि आई। कहौं तो सारदूर धरि खाई॥
तुरुक जाइ कहु मरै न धाई। होइहि इसकन्दर की नाईं॥

रौद्र रस के भी स्थल पद्मावत में मिलते हैं –

हौं रनथभउर नाह हमीरू। कलपि माथ जइ दीन्ह सरीरू॥
हौं तो रतनसेन सक बंधी। राहु बेधि जीता सरघी॥
जौ अस लिखा भयउ नहिं ओछा। जियत सिंघ कै गहि को मोछा॥

इतना होने पर भी रौद्र रस का परिपाक नहीं हो सका है। रत्नसेन की मृत्यु के अनन्तर उपस्थित किया गया दृश्य बड़ा ही शान्त — प्रशान्त है। पदमिनी के उस समय के रूप की एक झलक दिखाकर कवि ने परिस्थिति की गम्भीरता की ओर इंगित कर दिया है –

पद्मावति पुनि पहिरि पटोरी। चली साथ पिय के होइ जोरी ॥
छूटे केश मोति सर छूा। जानहु रनि नखत सब टूटा ॥
दोउ सौति चढ़ि खाट बईठी। औ सिवलोक परा तिन्ह दीठी
वे इतर लोक म पति से मिलन की कामना स शान हैं –
एक जो बाजा भएउ बियाहू। अब दूसरे होइ ओर निबाहू ॥
अही जो गाठि कन्त तुम्ह जोरी। आदि अत लइ जाइ न छोरी ॥
दोनो रानिया सती हो जाती हैं। हिन्दू सती नारी का यह चित्र अत्यन्त शात मार्मिक करुण और महत है –
आजु सूर दिन अथवा आजु रनि ससि बूड।
आजु नाचि जिउ दीजिय आजु आगि हम्ह जूड ॥
आजु नाचि जिउ दीजिय आजु आगि हम्ह जूड ॥

लागि कठ आगि हिय होरी। छारि भई जरि अग न मोरी ॥

ममुद्र वणन के प्रसग म भय का सुदर रूप मिलता है। पदमावत म मूलत शृगार वीर और करुण रस का ही सुदर परिपाक हुआ है। लौकिक प्रेम आध्यात्मिक प्रेम क बहाने भक्ति रस की भी अभिव्यक्ति सुदर रूप म हुई है। जायसी के यहाँ हास्य का तो नितात अभाव है। शृगार और करुण रस के सुदर चित्र पद्मावत म व्यापक रूप स मिलत हैं। भावो का उत्कर्ष रस परिपाक की स्वाभाविकता प्रेम भाव और प्रेमानुभूति की तीव्रता पदमावत क रस प्रसग म विशिष्ट आकपण क केन्द्र हैं।

अलकार

अलम का अथ है भूषण। जो अलकृत–भूषित कर वह है अलकार।[1] यह सौंदय भावो का र म अलकारो का उपयोग सौन्दय – सवद्धन क लिए होता है।[2] यह सौं य भावो का हो या उनकी अभिव्यक्ति का। भावो को भूषित करना उन्ह रमणीयता प्रदान करना, अभिव्यक्ति को प्राजल बनाना और उस प्रभविष्णु बनाना अलकारो का काम है। अलकारो की सायकता इसी म है कि रसभाव आदि के तात्पय का आश्रय ग्रहण करके ही उनका सन्निवेश किया जाय।[3] रस सिद्ध कवियो को अलकारो के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता। निरूप्यमाण के व्यजनाओं की कठिनाइयाँ चेतन पर भी प्रतिभाशाली कवियो के समक्ष अलकार प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिए होडा होडी टूट-टूट

१–वामनवृत्ति (अलकृति अलकार)। काव्यालकार।
२– काव्यशोभाकरानधर्मान अलकारान प्रचक्षत। काव्यादश।
३– रसभावादितात्पर्य माश्रित्य विनिवेशनम। अलकृतीनां सर्वासामलकारत्व साधनम ध्वन्यालोक।

पडते है[1] सचमुच जब रस सिद्ध कवि का उद्वलित हृदय अभिव्यक्ति म प्रवत होता है तो अलकार स्वत हाथ जोड–जोड कर आने लगते हैं।

यह द्रष्टव्य है कि अलकार भाव–भाषा के भूषण हैं। यदि ये भाव–भाषा–धारा स सहज सपृक्त नही हैं। यदि उसके अगी बन कर नही आए है तथा यदि भावो को सजीव और प्रभविष्णु नही बनाते हैं, तो एस अलकार प्रयत्न–साध्य ही होंगे और वे रचना म बरोपित–से लगेंगे उनस सौदय–वद्धन नही होगा। यदि रस भाव अर्थात अलकार सजीव हो, तो यही अप्रस्तुत योजना भी उसकी शोभावद्धि कर सकती है। सचमुच भावो का उत्कष दिखाने और वस्तुओ के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने म कभी–कभी सहायक होने वाली युक्ति अलकार है।

काव्य में अलकारो का महत्वपूण स्थान है। दण्डी, भामह उदभट और केशवदास प्रभति अलकारवादियो ने तो यहा तक कहा है कि कविता म अलकार प्राण–स्वरूप है। भूषण के बिना कविता वनिता और मित्र शोभा ही नही देते। अलकार का क्षत्र बडा ही व्यापक है। कहने के ढग निराले और अनत हैं और उनके प्रकार भी अलकार हैं। आचाय वामन का कथन है कि अलकार के कारण ही काव्य ग्राह्य होता है और वह अलकार सौन्दय है। विश्वनाथ ने भी लिखा है कि शब्द और अथ के जो शाभातिशायी धम हैं वे ही अलकार हैं।

इन परिभाषाओ स स्पष्ट है कि काव्य म अलकारो का महत्वपूण स्थान है। सचमुच वे काव्य के शोभाकारक धम है।

पदमावत मे अलकार–विधान

प्राय काव्य म अलकारो का विधान सादृश्य के आधार पर होता है। पदमावत मे स्वरूप बोधन के लिए तथा भावाभिव्यजना को अधिक तीव्र बनाने के लिए जायसी न सादृश्यमूलक अलकारो का प्रभत परिमाण म सफल प्रयोग किया है। पदमावत चित्ररेखा और कहरानामा के आलकारिक प्रसाधनो म उपमा उत्प्रेक्षा तथा रूपक का महत्वपूण स्थान है। इनम भी हेतूत्प्रेक्षा जायसी को बहुत प्रिय थी। जायसी जब उल्लसित भाव स विलसित कल्पनाओ के सहारे रूप–सौंदय की गाढ़ अभिव्यक्ति तथा भावो की अधिक तीव्र व्यजना करने लगते हैं तब उपमाओ की धारासार वर्षा होने लगती है उत्प्रेक्षाओ की झडी लग जाती है, रूपकों से जीवन्त प्रतिमाएँ साकार उपस्थित होने लग जाती हैं और अन्य अलकार भी काव्य प्रसाधन–हेतु मानो स्वत हाथ जोड–जोड कर आने लगते हैं। अलकारो स प्रांजल और प्रभविष्णु बना हुआ

१– अलकारान्तराणि हि निरूप्यमाण दुघटान्यपि रस समाहित चेतस ।
प्रतिभानवत कवे अह पूविकया परापतन्ति ॥ ध्वन्यालोक।

पदमावत लोक और काय की भूमि को अपनी सुरभि से उद्वेलित किए हुए हैं[१]।

१—शब्दालकार

जायसी को शब्दालकारो म अनुप्रास (विशेपत वत्यानुप्रास) यमक और श्लेप विशेष प्रिय थे। उ होने बडे ही सयम के साथ इन अलकारो के प्रयोग किए हैं। परवर्ती रीतिकालीन कवियो की भाति उ होने यमक अनुप्रास आदि को ही लक्ष्य बनाकर खेलवाड नही किया है।

सोरह सहस घाड घोडसारा[२]। (१०) (घोड घोडसारा नादानुप्रास)
कुहू-कुहू करि कोइल राखा[३]। (११) (अनुप्रास)
भूमि जो भीजि भएउ सब गेरू[४]। (६८) ( )
सखी सहस दस सेवा पाई[५]। ( )
भा भादौं दूभर अति भारी[६]। (१३५) ( )
पपिहा पीउ पुकारत पावा[७]। (१५३) ( )
रग रकत रय हिरदय राता। (२७८) ( )

उपयुक्त उदाहरणा की ही भाँति जायसी ने वत्यानुप्रास आदि का प्रयोग सवत्र अत्यत स्वाभाविक रीति से ही किया है।

यमक अलकार के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

जाति सूर औ खाडें सूरा[८]।
गई सो पूजि मन पूजि न आसा[९]।
सु हरि लक हराए केहरि[१०]।
रसनहि रसनहि एको भावा[११]।

इनमे सूर रसनहि पूजि और हरि शब्द म यमक अलकार का सौंदय स्पष्ट है।

श्लेष

जायसी श्लिष्ट शब्द द्वारा अनेक अर्थों का अभिधान (कथन) करने की

१—पदमावत का काव्य सौदय पृ० ८५।
२—ग्रा० प०, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० १०।
३—वही, पृ० ६८।
४—वही पृ० ६८।
५—वही, पृ० १०७।
६—वही, पृ० १५३।
७—वही पृ० १५३।
८—वही पृ० २७८।
९—वही पृ० ५।
१०—वही, पृ० ६३।
११—वही, पृ० १०७।
१२—वही पृ० २६५।

रचना में सिद्धहस्त हैं।

रतन चला घर भा अँधियारा ।[1]
धनि गौ पिउ महँ सीउ सुहागा ।
दुहुँहे अब एक मिलि नागा ।।[2]
हंस जो रहा सरीर महँ पाख जरा गा भागि ।

इन पंक्तियों में रतन (रत्न रत्नसेन) सुहागा (सौभाग्य सुहागा) और हंस (जीव हंस) शब्द श्लिष्ट हैं।

धनि जोवन औ ताकर हीया । ऊँच जगत महँ जाकर दीया ।।
एक दीया तें दसगुन लहा । दिया देखि सब जग मुहँ चहा ।।
दिया कर आगे उजियारा ।
दिया मंदिर निसि कर अँजोरा । दिया नाहिं घर मूसहिं चोरा ।[3]

उपर्युक्त पंक्तियों में दिया शब्द का सुंदर और स्वाभाविक श्लिष्ट प्रयोग बहुत ही सुंदर बन पड़ा है। दान और दीपक के अर्थ यहाँ पर सुलभ हैं। दिया (दीपक दान) दसगुन (दस गुना दशगुण दसगुन (गन बत्तियाँ) आगे (आगे के जन्म भविष्य में समक्ष) आदि श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से ये पंक्तियाँ अधिक अर्थव्यंजक और प्रभविष्णु हो गई हैं।

अर्थालंकार

पहले ही इंगित किया जा चुका है कि सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा उत्प्रेक्षा और रूपक जायसी को विशेष प्रिय हैं।

(१) उपमा— रूप वर्णन के प्रसंग में जायसी की उपमाओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। उससे स्पष्ट है कि जायसी के शिख नख वर्णन में उपमाओं का प्रभूत परिमाण से प्रयोग हुआ है। परम्परानुमोदित लोक-गृहीत और मौलिक उपमाओं के द्वारा जायसी ने रूप वर्णन में अलंकारों की भरमार कर दी है।

(२) उत्प्रेक्षा–जायसी के काव्य में उत्प्रेक्षा के तीनों भेदों (वस्तूत्प्रेक्षा फलोत्प्रेक्षा और हेतूत्प्रेक्षा) का सफल एवं प्रचुर प्रयोग मिलता है। नख शिख वर्णन और अन्य रूप–वर्णनों के प्रसंग में उत्प्रेक्षाओं का अत्यंत सुंदर प्रयोग हुआ है।

(क) वस्तूत्प्रेक्षा–एक वस्तु की दूसरी वस्तु के रूप में सम्भावना की जाने को वस्तूत्प्रेक्षा कहते हैं–

१—जा० ग्र० ना० प्र० सभा काशी पृ० ८५।
२–वही पृ० १५ । ३–वही पृ० १५१।

कचनरेख कसौटी कसी। जनु घन महँ दामिनि परगसी ॥
सुरज किरिन जो गगन विसेखी। जमुना माँह सुरसती देखी ॥[1]

यहा पर श्यामवर्ण केशों के मध्य भाग के लिये स्वरूपोत्प्रेक्षा का विधान किया गया है।

रत्नसेन के साथ सोलह सहस्र राजकुमार जोगी— जोगिया-वेश —धारण करके निकल पड़े। वे ऐसे सुशोभित थे मानो टेसू फूला हो—

चला कटक जोगिन्ह कर क गेरुआ सब भेसु ।
कोस बीस चारिहु दिसि जानो फूला टेसु ॥[2]

पदमावती की बरौनियाँ भी कुछ और ही जान पड़ती हैं—

बरुनी का बरनौं इमि बनी । साधे बान जान दुइ अनी ॥
जुरी राम रावन क सेना । बीच समुद्र भए दुइ नैना ॥[3]

पदमावती की कटि की सूक्ष्मता की अभिव्यक्ति के लिए भी स्वरूपोत्प्रेक्षा का विधान किया गया है।

मानहु नाल खंड दुइ भए । दुहूँ बिच लंक तार रहि गए ॥[4]

सती होने के समय पदमावती ने केशों को छोर दिया है। केश राशि में गुंफित मोतियाँ भी छूट पड़ी है ऐसा लगता है मानो रात्रि में सब नक्षत्र टूट गए हैं। यहा तारों का टूटना और मोतियों का छूटना अमंगल का जनक है—

छोरे केस मोति लर छूटी । जानहु रैनि नखत सब टूटी ॥[5]

(ब) फलोत्प्रेक्षा—रूप-वर्णन के प्रसंग में फलोत्प्रेक्षा के भी सुन्दर उदाहरण मिलते हैं जैसे—

पुहुप सुगंध करहिं एहि आसा । मकु हिरकाइ लेइ हम्ह पासा ॥[6]
बरत तपा लहि होइ चूरू । मकु सो रुहिर लेइ देइ सेंदूरू ॥
कनक दुवादस बानि होइ चह सोहाग ओहि माँग ।
सेवा करहिं नखत सब, उवै गगन जस गाँग ॥[7]

(स) हेतूत्प्रेक्षा—यह अलंकार उत्प्रेक्षा की योजना के लिये बड़ा शक्तिशाली माध्यम है। लोक में कार्य और कारण एक साथ बहुत ही कम देखे जाते हैं। प्राय

१—जा० ग्र० ना० प्र० सभा काशी
२—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा काशी पृ० १८ (दोहा ६)
३—वही पृ० ४३।
४—वही पृ० ४३।
५—वही, पृ० २६६।
६—वही पृ० ४३।
७—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, काशी पृ० ४२।

कारण परोक्ष ही रहता है। अत यदि कोई रूप या क्रिया अपने प्रकृत रूप म हमारे सामने रख दी गई तो वह उस प्रभाव का प्रमाण-स्वरूप लगने लगती है जिसे कवि खूब बढाकर दिखाना चाहता है और हम इस बात की छान बीन मे नहा पडते जाते कि हेतु ठीक है या नहा। जायसी की हेतूत्प्रेक्षाए अधिकतर असिद्धविषया ही मिलती है। ललाट का वणन करता हुआ कवि कहता है–

सहस किरिन जो सुरुज छिपाई। देखि लिलार सोउ छपि जाई॥

सूय छिपता अवश्य है पर उसके छिपने का जो हेतु कहा गया है वह कवि कल्पित है और उस हेतु का आधार 'लज्जित होना सिद्ध नही है।[1]

इसी प्रकार की हेतूत्प्रेक्षा दातो पर की गई है–

हुलत दसन अस चमके पाहन उठ झरक्कि।
दारिउ सरि जो न क सका फाटेउ हिया दरक्कि॥[2]

हेतूत्प्रेक्षा के सहारे जायसी ने विरह की तीव्र दाहकता को भी स्पष्ट किया है। नागमती के विरह म मेघो का श्याम होना राहु केतु का दग्ध होकर काला होना सूय का तपना चद्रमा की कला का खडित होना पलास क फूलो का लाल होना आदि दिखाया गया है। ये सब सत्य हैं। व विरह-ताप के कारण ऐसे हैं केवल यह बात कल्पित है। हेतूत्प्रेक्षा स कवि विरह ताप के प्रभाव की व्यापकता को बढ़ाता बढ़ाता सृष्टि भर म दिखा देता है–

अस परजरा विरह कर गठा। मेघ साम भए धूम जो उठा॥
दाढ़ा राहु केतु गा दाधा। सूरज जरा चाद जरि आधा॥
औ सब नखत तराईं जरहीं। टूटहि लूक धरति महं परहीं॥
जर सो धरती ठावहि ठाऊ। दहकि पलास जर तेहि दाऊ॥
भवर पतग जर औ नागा। कोइल भुजइल डोमा कागा॥
बन-पखी सब जिउ लेइ उड । जल महं मच्छ दुखी होइ बुड ॥[3]

पदमावती के वियोग म रत्नसेन रक्त क आसू रो रहा है। उसके आँसू समग्र सृष्टि को रक्तिम बनाए दे रह हैं–

नैनहि चली रकत क धारा। कथा भीजि भएउ रतनारा॥
सूरज बूडि उठा होइ राता। औ मजीठ टेसू बन राता॥

१–ना० प्र० ना० प्र० सभा काशी भूमिका पृ० १०६।
२–वही पृ० ४४ (दोहा ६)।
३–ना० प्र० ना० प्र० सभा, काशी प० १६३ (दोहा १२)।

भा बसंत रातीं बनसपती । औ राते सब जोगी जती ॥
पुहुमि जो भीजि, भएउ सब गेरू । औ राते तहँ पंखि पखेरू ॥
इ गुर भा पहार जौं भीजा । पै तुम्हार नहिं रोंव पसीजा ॥[1]

इसी प्रकार के और भी अनेकश उदाहरण हेतूत्प्रेक्षाओं के दिए जा सकते हैं। यहाँ विशेष द्रष्टव्य यह है कि इन हेतूत्प्रेक्षाओं वाले स्थलों में कोई न कोई अन्य सुंदर अलंकार भी निहित रहता है।

रूपक

जायसी ने सांग निरंग और परम्परित रूपकों का भी पर्याप्त प्रयोग किया है। सांग रूपक के रूप में वे कहीं कहीं शस्त्रास्त्रों की जानकारी प्रकट करने लगे हैं—

कहौं सिंगार जसि व नारी । दारू पियहिं जसि मतवारी ॥
सेंदुर आगि सीस उपराहीं । पहिया तरिवन चमकत जाहीं ॥
कुच गोला दुइ हिरदय लाई । अचल धुजा रहे छिटकाई ॥
रसना लूक रहहिं मुख खोले । लंका जरै सो उनके बोले ॥
अलक जंजीर बहुत गिउ बाँधे । खींचहिं हस्ती टूटहिं काँधे ॥
बीर सिंगार दोउ एक ठाऊँ । सत्रुसाल गढ़ भंजन नाऊँ ॥[2]

इन पंक्तियों में वीर रस की सामग्री में शृंगार रस की सामग्री का आरोप किया गया है। यह अवश्य है कि इस प्रकार के सांग उदाहरण कम मिलते हैं।

सांग रूपक के कुछ सुंदर उदाहरण लिए जा सकते हैं—

मन मरजिया हिय समुद गुरु सो तेहि महँ आनि ।
मन मरजिया न होइ पर हाथ न आव मानि ॥[3]

यहाँ अप्रस्तुत न तो परम्परा प्राप्त हैं और न रूप-साम्य पर निर्भर।

गगन सरोवर ससि कंवल कुमुद तराइन्ह पास ।
तू रवि ऊआ भौंर होइ पौन मिला लेइ बास ॥[4]

प्रस्तुत सांग रूपक के उदाहरण में रूपकातिशयोक्ति का भी चमत्कार द्रष्टव्य है। गगन, ससि, तराइन्ह और रवि क्रमशः सिंहल, पद्मावती, सखियाँ और रत्नसेन के लिए प्रयुक्त हैं। इनका सादृश्य रूपक के द्वारा क्रमशः सरोवर, कंवल, कुमुद और भौंर से स्पष्ट किया गया है। निस्संदेह प्राचीन शास्त्रकारों के सुमान्य अलंकार संसृष्टि की भी सुंदर सृष्टि द्रष्टव्य है।

1—जा० ग्र० ना० प्र० सभा काशी, पृ० ९८ (दोहा १२)।
2—जा० ग्र० ना० प्र० सभा, काशी पृ० २२२।
3—वही पृ० १२९ (दोहा ३)।
4—वही पृ० ९८ (दोहा २)।

कहीं कहीं रूपक का प्रयोग अन्य अलंकारों के सिलसिले में भी हुआ है। जैसे–

हीरामन जो देखसि नारी। प्रीति-बेलि उपनी हिय बारी॥
कहेसि कस न तुम्ह होहु दुहेली। अरुझी पेम जो पीतम बेली॥
प्रीति बेलि जिनि अरुझ कोई। अरुझे मुए न छूटै सोई॥
प्रीति बेलि ऐस तन डाढ़ा। पलुहत सुख, बाढ़त दुख बाढ़ा॥[1]

इसी प्रकार –

अब जोबन बारी को राखा। कुंजर बिरह बिधांसै साखा॥[2]

और सेज-नागिनी फिरि फिरि डसा॥[3]

बिरह मयूर नाग वह नारी। तू मंजार करु बेगि गुहारी॥

यहाँ नारी के नागिनी बनाने के साथ ही विरह को मयूर और रत्नसेन को मंजार भी बना डाला गया है। पहले में तो सौम्य विद्यमान है पर दूसरे में मंजार नागिनी से महापन आ गया है।

किसी-किसी स्थल पर तो जायसी ने अलंकारों की सहज स्थिति अत्यन्त जटिल और गूढ़ योजना की है। जैसे– देवपाल-दूती के प्रसंग में दूती ने पद्मावती को प्रलोभन दिया और कहा–

जोबन जल दिन-दिन जस घटा। भवर छपान हंस परगटा॥

जैसे जैसे यौवन रूपी जल दिन-दिन घटता है वैसे ही वैसे शरीर रूपी नदी या सरोवर में पानी की बाढ़ के भवर छिपते जाते हैं और हंस (मानसरोवर से आते हैं और) दिखाई पड़ने लगते हैं। इस प्रकार इस पंक्ति में सांग रूपक की योजना की गई है। जल का आरोप जिस पर किया गया है उस यौवन का उल्लेख है दूसरी पंक्ति में रूपकातिशयोक्ति माननी पड़ती है। दोनों पंक्तियों का एक साथ विचार करने पर नदी या सरोवर के ही अंग भ्रमर (पानी के भवर) और हंस उपस्थित है जो शरीर के दृश्य को पूरा करते हैं। अतः दूसरी पंक्ति में अतिशयोक्ति सिद्ध हो जाने पर ही सांग-रूपक होता है। पर अतिशयोक्ति की सिद्धि के लिए श्लेष के द्वारा भवर शब्द का दूसरा अर्थ काला भौंरा लेना पड़ता है। तब जाकर उपमेय अर्थात् काले केश की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार रूपक तो प्रधान या अंगी मानने से श्लेष और अतिशयोक्ति उसके अंग हो जाते हैं। अलंकारों का यह मेल अंगांगि भाव संकर ठहरता है–यौवन-रूपी जल वाले केश रूपी भवर (जलावर्त) और श्वेत केश रूपी हंस। यौवन और जल में उमंग के धर्म को लेकर साधर्म्य मात्र है।

१–जा० ग्र० ना० प्र० सभा काशी पृ० १०८ (दोहा १९)।
२–वही, पृ० ७४।
३–वही पृ० १५३। ४–वही, पृ० १६३।

काले केश का पहले तो अतिशयोक्ति म काले (कमल का नील) भौंरा के साथ वर्ण सादृश्य है फिर श्लेष द्वारा रूपक म पहुँच कर भवर (जलावर्त) के साथ कुछ आकृति-सादृश्य है। इस प्रकार प्रस्तुत चोपाई म अतिशयोक्ति (रूपकातिशयोक्ति) श्लेष अगागिभाव सकर सागरूपक आदि कई अलकार एक दूसरे से उलझे हुए हैं। जायसी के अलकार कौशल के निदर्शन के लिए यह एक पक्ति ही पर्याप्त है।[1]

अतिशयोक्ति

जायसी की अतिशयोक्तिया भी अत्यन्त मनोहर हैं। रूपकातिशयोक्ति-भेद में भी अभेद-के द्वारा उन्होंने ऐसी मनोहर और रमणीय वस्तुए सामने रखी हैं कि हृदय सौंदय की भावना मे मग्न हो जाता है। हेतूत्प्रेक्षा की भाँति यह अलकार भी कवि को बहुत प्रिय है। जायसी के काव्यो म स्थान स्थान पर इसका प्रयोग मिलता है। रतनारे नेत्रो के बीच घूमती हुई पुतलियो की शोभा की ओर कवि इस प्रकार इशारा करता है–

राते कवल करहि अलि भवाँ। घूमहि माति चहहि अपसवाँ॥[2]

इसी कमल और भ्रमर वाले रूपक को अतिशयोक्ति म जायसी और जगह भी बडी सुदरता से लाए हैं। प्रेम-जोगी रत्नसेन के सिहल गढ म पकडे जाने पर पद्मावती विरह म अचेत पडी है आखें नही खोलती है। इतने म कोई सखी आकर कहती है–

कवल कली तू पदमिनि गइ निसि भयउ बिहानु।
अबहु न सपुट खोलसि जब रे उवा जग भानु॥

यह सुनते ही पद्मावती आखें खोलती है जिसकी सूचना रूपकातिशयोक्ति के द्वारा कवि इन शब्दो म देता है–

भानु नाव सुनि कवल बिगासा। फिर कै भवर लीन्ह मधु बासा।

यहाँ भी कवि ने केवल कमल-दल पर बैठे भौंरे का उल्लेख करके आँख खुलने (उसके बीच काली पुतली दिखाई देने) की सूचना दी है।[3]

कहीं-कहीं रूपकातिशयोक्ति बहुत ही दुर्बोध हो गई है जैसे–

जौ लगि कालिंदी होहि बिरासी। पुनि सुरसरि होइ समुद परासी।

पद्मावती से देवपाल की दूती कहती है कि जब तक तू काले केशों वाली

१–पदमावत का काव्य सौन्दर्य पृ० ८६–८७।
२–जा० ग्र० ना० प्र० सभा पृ० ११०।
३–जा० ग्र० (ना० प्र० सभा, काशी) पृ० ११०।

अर्थात युवती है तब तक विलास कर ले फिर जब श्वेत केशा वाली हो जाएगी, तब तो काल के मुह म पडने के लिए जल्दी जल्दी बढ़ने लगेगी। जमुना की काली धारा सीधे समुद्र म नहा गिरती है। जब वह श्वेत धारा वाली गगा के साथ मिलकर श्वेत गगा ही हो जाती है तब समुद्र की ओर जाती है जहा जाकर उसका अलग व्यक्तित्व नहीं रह जाता। यह अतिशयोक्ति दुर्बोध हो गई है। दुर्बोधता का कारण है अप्रसिद्धि। जायसी ने इस पद्य मे यह स्वतत्रता दिखाई है कि परम्परा म व्यवहृत प्रसिद्ध उपमान न लेकर स्वकल्पित अप्रसिद्ध उपमान लिए हैं जिससे एक प्रकार की दुरूहता आ गई है। काले केशो के लिए कालिन्दी नदी की और श्वेत केशो के लिए गगा की उपमा प्रसिद्ध नही है।[1]

अत्युक्ति–अत्युक्ति भी जायसी का एक प्रिय अलकार है। यश वभव आदि की असभवता से सबद्ध वणन पदमावत म मिल जाते हैं। जायसी इस सिलसिले म एक निश्चित सख्या भी बता देते हैं—

सोरह सहस घोड घोड सारा।[2] छप्पन कोटि कटक दल साजा।[3]
सात सहस हस्ती सिंहली।
जनु कलास ऐरावत बली॥
मिलसहु नौ नख नन्दि पियारी।[4]
सती सहस दस सखा पाई।[5]
रतन लागि यहि बत्तिस कारी।[6]
टूटे मन नौ मोती फूटे दस मन काच।[7]
घना कटक जागिह कर क गरजा सब भस।
कास बीरा नारिहु निसि जानो फूना टेसु।[8]
रोव रतन–माल जनु चूरा। जह होइ ठाढ़ होइतह कूरा॥

(इतने आंसू गिर रहे हैं कि वह जहा भी खड़ा होता है वहा रत्नो का कूडा एकत्र हो जाता है) कोमलता सुकुमारता सुन्दरता आदि की व्यजना के लिए लोकोक्तियों का भी अतिशयोक्तिमूलक प्रयोग द्रष्टव्य है—

मलय समीर सोहावन छाहा। जेठ जाड लाग तेहि माहा॥[9]

शमा का छुईमुई पन भी देखने योग्य है—

१–जा० ग्र० ना० प्र० सभा काशी। प० ११३। २–वही प० ११०।
३–जा० ग्र० ना० प्र० सभा काशी। ४–वही प० ५४।
५–वही पृ० १२७। ६–वही प० १७।
७–वही पृ० ५५। ८–वही।
९–वही, प० ८७। १०–वही प० ११।

अति सुकुमार सेज सो डासी छुव न पाव कोइ।
देखत नवहिं खिनहिं खिन पाव धरत कस होइ॥[1]

फारसी मसनवियो म विरह का प्राय अत्युक्ति मूलक एव ऊहात्मक वणन मिलता है। जायसी भी उस पद्धति से पर्याप्त प्रभावित हैं–

जेहि पखी के नियर होइ, कहै विरह क बात।
सोई पखी जाय जरि तरिवर होहिं निपात॥[2]

रोने का विश्वव्यापी प्रभाव दिखाने के लिए भी जायसी ने अत्युक्ति का आश्रय लिया है—

नैनन चली रकत क धारा। कथा भीजि भएउ रतनारा॥
भा बसत राती बनसपती। औ रात सब जोगी जती॥[3]

इस प्रकार के अत्युक्तिमूलक वणनो म उत्प्रेक्षा अलकार या आध्यात्मिकता के भी आश्रय की बात कही जा सकती है।

तदगुण —नयन जो देखा कवल भा निरमल नीर सरीर।
हसत जो देखा हस भा दसन जोति नग हीर॥

प्रस्तुत दोहे म नयन, शरीर दन्त एव मुस्कान के परम्परा प्रचलित उपमानो के माध्यम से जायसी ने गाढ सौंदर्याभिव्यक्ति का अत्यन्त सफल प्रयोग किया है। कहीं-कहीं रूपकातिशयोक्ति की ही भाँति तदगुण अलकार की भी गूढ और अथगर्भित योजना मिलती है। देव पाल की दूती अनेक प्रकार के पकवानो को लाकर पद्मावती के सामने रखती है वह उन्हें हाथों से भी न छूकर कहती है–

'रतन छुवा जिन्ह हाथन्ह सेंती। और न छुवौं सो हाथ सकेती॥
ओहि रग भए हाथ मॅजीठी। मुकुता लेउ तै घुघुची दीठी॥'[4]

अर्थात जिन हाथो से मैंने उस प्रिय रत्न (राजा रत्नसेन) का स्पश किया अब उनसे और वस्तु क्या छुऊ? उस प्रिय रत्न या माणिक्य के प्रभाव से मेरे हाथ इतने लाल हैं कि मोती भी अपने हाथ म लेकर देखती हूँ तो वह गुजा (हाथ की ललाई से गुजा का लाल रग और देखने से पुतली की छाया पडने के कारण गुञ्जा का सा काला दाग हो जाना है अर्थात उसका कुछ भी मूल्य नहीं मिलाई पन्ना। अब हम के अलकारों पर विचार कीजिए। सबसे पहले तो 'रतन पन' म श्लेष मिलता है। फिर दूसरे चरण म वाग्वक्रोक्ति। तीसरे चौथे चरण म जिलता है हुए इसका विचार यदि हम गुण उस रत्न के स्पश से मेरे हाथ लाल

1—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा पृ० १२८।
2—जा० ग्र० ना० प्र० सभा, काशी पृ० १५८ (दोहा १८)।
3—वही पृ० १८।
4—वही पृ०।

की दष्टि से करते हैं तो तदगुण अलकार ठहरता है। फिर जब हम यह विचार करते हैं कि पदिमनी के हाथ तो स्वभावत लाल हैं (उन मे लाली का आरोप नही है) तब हमे रत्न स्पश रूप हेतु का आरोप हेतूत्प्रेक्षा कहनी पडती है। अत यहा इन दोनो अलकारो का सदेह-सकर हुआ। चौथे चरण म तदगुण अलकार स्पष्ट है। पर यह अलकार निणय भी हमे व्यग्य अथ तक नही पहुचाता। अत हम लक्षणा से मुक्ता का अथ लेते है। बहुमूल्य वस्तु और घुघुची का अथ लेते हैं तुच्छ वस्तु। इस प्रकार हम इस व्यग अथ पर पहुचते हैं कि रत्नसेन के सामने मुझ ससार की उत्तम से उत्तम वस्तु तुच्छातितुच्छ दिखाई पडती है।

इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि जायसी न अलकारो से अथ पर अथ भरने का कसा बडा काम किया है। सिंदूर मे लाल माग के इस वणन म भी जायसी ने तदगुण और हेतूत्प्रेक्षा का मेल किया है—

भोर सांझ रबि होइ जो राता। ओहि दखि राता भा गाता॥[1]

कहीं-कहीं जायसी ने उक्ति के द्वारा अत्यन्त रमणीय रूप विधान (इमेजरी) किया है, जसे—

हीरा लेइ सो विद्रम धारा। विहसत जगत होइ उजियारा॥

वण्य विषय इतना ही है कि पद्मावती जब हसती है तब उसके अरुण अधर तथा श्वेत दांतो स ज्योति विकीण होती है। जायसी ने इस उक्ति म एक व्यापक दृश्य और विशाल चित्र का समावेश किया है—हीरे की सी ज्योतिमती वह जब विद्रम वण की द्युति धारा का सप्रसारण करती है तब सारा ससार उदभासित आलोकित हो उठता है। प्रस्तुत चित्र के अन्तर म रूप विधान भी अनुस्यूत है— 'उषा की अरुण श्वेत मधुर ज्योति के उन्मुक्तकालीन दृश्य का।[2]

व्यतिरेक— असमा सूर पुरुष निरमरा। सूर चाहि दस आगर करा॥[3]
सुरुज किरन जस निरमल तेहि ते अधिक सरीर।
सका बुझी आगि जो लागी। यह न बुझाइ आगि बजागी॥[4]
व्यतिरेक के दो और सुन्दर उदाहरण दिये जाते सकते हैं—
का सरिवर तेहि देउ मयकू। चांद कलकी वह निकलकू॥
औ चांदहि पुनि राहु गरासा। वह बिनु राहु सदा परगासा॥[5]

१—जा० ग्र० ना० प्र० सभा काशी पृ० ११३-१८।
२—पद्मावत का काव्य-सौन्दय पृ० ८८।
३—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा काशी पृ० ६।
४—वही पृ० २०६। ५—वही पृ० १०८।
६—वही पृ० ४२।

वह पदिमनि चित उर जो आनी । काया कुन्न द्वादस वानी ॥
कुदन कनक ताहि नहि वासा । वह सुगध जस कवल विगासा ॥
कुदन कनक कठोर सो अगा । वह कोमल रग पुहुप सुरगा ॥[1]

प्रतीप –
वदन देखिघटि चद छपाना । दसन देखि क बीजुल जाना ॥[2]
बलि विक्रम दानी बड कहे । हातिम करन तियागी अहे ॥
सरभाहि सरि पूज न कोऊ । समुद सुमेरु भडारी दोऊ ॥[3]
सदेहालकार–पदमावत म खडित रूप म कुछ स्थलो पर ही यह अलकार मिलता है जसे –
मनहु चढी भौरन्ह क पाँती । चदन खाँभ बास क माती ॥
की कालिन्दी विरह सताई । चलि पयाग अरइल बिच आई ॥
प्रस्तुत चौपाई मे प्रथम दो चरणो म उत्प्रेक्षा है और 'की कालिन्दी' – – – वाले चरणा म खडित रूप मे सदेहालकार है । कुछ अय अलकारो के भी सुदर उदाहरण देख जा सकते हैं —
दृष्टान्त – (दृष्टान्त स्तुस धमस्य वस्तुन प्रतिबिम्बनम ॥ साहित्य दपण अध्याय १०) ।
का भा जोग कथनि क कथे । निकस घिव न बिना दधि मथे ॥[4]
(विनयोक्ति)

मुहमद बाजी प्रेम की ज्या भावे त्यो खेल ।
तिल फलहि के सग ज्यो होय फुलायल तेल ॥[5]

अर्थान्तरन्यास
मिलिन्हि विछुरे साजन अकम भेंटि गहत ।
तपनि मृगसिरा जे सहहि ते अद्रा पलुहत ॥[6]
राती पिउ के नेह गई सरग भएउ रतनार ।
जो रे उवा सो अथवा रहा न कोइ ससार ॥[7]
रकत ढुरा मासू गरा हाड भयउ सब सख ।
धनि सारस होइ ररि मुई पीउ समटहि पख ॥[8]

१–जा० ग्र० ना प्र० सभा, काशी, पृ० २०६ ।
२–वही पृ० २३ ।
३–वही पृ० ७ ।
४–वही पृ० ४६ ।
५–वही पृ० ५१ ।
६–वही पृ० १४२ ।
७–वही पृ० ३०० ।
८–वही पृ० १५४ (दोहा १०) ।
९–वही पृ० ।

निदशना —

घरती बान बेधि सब राखी । साखी ठाढ देहिं सब साखी ॥

यहां पर निदशना के साथ ही 'यमक' का भी सौंदय दशनीय है । इसी प्रकार दातों के वणन मे ततीय निदशना का प्रयोग है —

' हारी जोति सो तेहि परछाहीं ॥

विरोध —

'ना जिउ जिए न दसव अवस्था । कठिन मरनतें पम बेवस्था ॥[1]

धनि सूख भर मासो माहां । अबहु न आएहि सीचेहि नाहा ॥[2]

कातिक सरद चद उजियारो । जग सीतल हों विरहै जारी ॥[3]

प्रत्यनीक —

बसा लक बरन जगझीनी । तेहि ते अधिक लक वह छोनी ॥

परिहस पियर भए तेहिं बसा । लिए डक लोगन्ह कह डसा ॥

सिंघ न जीता लक सरि हारि लीन्ह बनवासु ।

तेहि रिस मानुस रकत पिय खाइ मारि क मासु ॥[4]

सो तिल देखि कपोल प गगन रहा धुव गाडि ।

खिनहिं उठ खिन बूडै डोल नहिं तिन छाडि ॥[5]

भ्रम —

भूलि चकोर दीठि मुह लावा । मघ घटा मह चद देखावा ॥

चकई बिछुरि पुकार, कहा मिलो हो नाह ।

एक चांद निसि सरग मह दिन दूसर जल माह ॥[6]

विभावना —

जीव नाहि प जिए गोसाईं । कर नाही पर कर गुसाईं ॥

सवन नाहिं प सब किछु सुना । हिया नाहिं प सब किछु गुना ॥

नयन नाहिं प सब किछु देखा । कौन भांति अस जाइ बिसेखा ॥[7]

परिकराकुर —

रोवहिं रानी तजहिं पराना । नोचहिं बार करहिं खरिहाना ॥

पदमिनि ठगिनि भई कित साथा । जेहि ते रतन परा पर हाथा ॥[8]

१—जा० प्र० ना० प्र० सभा काशी ।
२—वही, प० १५३ । ३—वही, पृ० १५३ ।
४—वही पृ० ४७ । ५—वही, पृ० ४७ (दोहा १८) ।
६—वही, प० ४५ (दोहा) । ७—वही पृ० २४ ।
८—वही, पृ० २३ । ९—वही, पृ० ३ ।
१० वही, पृ० ५६ ।

रोवत माय न बहुरत बारा । रतन चला घर भा अँधियारा ॥[1]

विनोक्ति —

कहाँ छिपा ऐ चाँद हमारा । जेहि बिनु रैनि जगत अँधियारा ॥[2]

पदमावति बिनु कंत दुहेली ।[3] — — — —

जग जल बूड़ि जहाँ लगि ताकी । मोरि नाव खेवक बिनु थाकी ॥[4]

लोकोक्ति —

उलू न जान दिवस कर भाऊ ॥[5]

मान टूट जेहि पहिरे फाटेउ जरव सो सोन ॥[6]

पदमावत की लोकोक्तियों के सम्बन्ध में परिशिष्ट और भाषा के सिल सिले में इस प्रबन्ध में सविस्तर विचार किया गया है।

चित्ररेखा में भी लोकोक्ति अलंकार के उदाहरण मिलते हैं —

कहाँ चलाई मरन कौं पीछहि परी पैठ।

परनारी के नायक बनज पराए सठ ॥[7]

मुहमद मलिन पम मधु थोरा । काउ बड़ रा दरसन थोरा ॥

मसला (मसलानामा) का तो सम्पूर्ण सौंदर्य ही लोकोक्ति कहावत और मुहावरा पर ही निर्भर है —

बुधि विद्या के धन्क महँ मोहि मन का विस्तार ॥[8]

जेहि घर सासुहि तरणि है बहुअन कौन सिंगार ॥

अन्त न समुझु बरसि का बढ़ । का हिंगि बछिया बाजुहि मठ ॥[9]

पुन पाप एक रूप न जानी । दूध क दूध पानी का पानी ॥[9]

दीपक —

परिमल पम न आछ छपा ।[11] — — —

सिद्धि गिद्ध जिन्ह दिस्ट गगन पर बिनु छर किछु न बसाइ ॥[12]

१—ना० प्र० ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ५५।

२—वही पृ० १२१। ३—वही।

४—वही पृ० ३६। ५—वही पृ० ३९।

६—चित्ररेखा, पृ १०१। ७—वही पृ० ७४।

८—मसला, ना० प्र० सभा काशी की हस्तलिखित प्रति।

९—मसला ना० प्र० सभा काशी की हस्तलिखित प्रति से उद्धृत।

१०—वही। ११—ना० प्र० ना० प्र० सभा काशी पृ ६१।

१२—वही पृ० १०३।

उत्तर—

मुहम्मद बिरिध जो नइ चल काह चल भुय टोइ।
जोबन रतन हिरान है मकु धरती महँ होइ ॥[1]

अनन्वय—

का सिंगार ओहि बरनौं राजा। ओहि क सिंगार ओही प साजा ॥[2]

परिणाम—

नन नीर सौं पोता किया। तस मद चुवा बरा जस दिया ॥[3]
जौ तुम चहहु जूझि पिउ बाजा। कीन्ह सिंगार जूझ मैं साजा।
जोबन आइ सौंह होइ रोपा। पिखना बिरह काम दल कोपा ॥
भौहैं धनक नैन सर साधे। बरुनि बीच काजर विष बाँधे।
अलक फांस गिउ मेलि असूझा। अधर अधर सौं चाहहिं जूझा ॥
कुंभस्थल कुच दोउ मैमंता। पेलौं सौंह सँभारहु कंता ॥[4]

बादल की पत्नी के इस कथन में परिणाम अलंकार की अभिव्यक्ति हुई है।

श्लेष और मुद्रा—जायसी को श्लेष और मुद्रा अलंकार भी बड़े प्रिय हैं। वाग्वदग्ध्य प्रदर्शन-हेतु अनेक स्थलों पर इस प्रकार के प्रयोग द्रष्टव्य हैं—

सिधि गुटिका अब मो सग कहा। भएउ राग सत हिए न रहा ॥
सोन रूप जासौं मुख खोलौं। गएउ भरोस तहां का बोलौं ॥
जहँ लोना बिरवा क जाती। कहि क सन्देस आन को पाती ॥
जो एहि घरी मिलाव माही। सीस देउं बलिहारी ओही ॥

इन पंक्तियों में श्लेष और मुद्रा अलंकार के सौन्दर्य स्पष्ट हैं।

हारिल भई पथ मैं सेवा। अब तहँ पठवौं कौन परेवा ॥
धौरी पडुक कहु पिउनाऊं। जौं चित रोख न दूसर ठाऊं ॥
जाहि बया होइ पिउ कंठ लवा। करै मेराव सोइ गौरवा ॥

हारिल धौरी पाडुक चितराम बया लवा और गौरवा शब्दों में श्लेष का चमत्कार दर्शनीय है।

विपादन और अभावाभाव सकर—

गहै बीन मकु रैनि बिहाई। ससि बाहन तहँ रहै ओनाई ॥
पुनि धनि सिंघ उरेहै लागै। ऐसेहि बिथा रैनि सब जागै ॥

प्रस्तुत उद्धरण की प्रथम पंक्ति में विपादन अलंकार का प्रयोग हुआ है।

१—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा काशी पृ० २६८ (दोहा ३)
२—वही पृ० ४०।　　३—वही पृ ६४ (दोहा ४१६)।
४—वही, पृ० २८४।

ि्तीय पक्ति म ि्तीय पर्यायोक्ति अलकार का प्रयोग हुआ है । इस प्रकार इन दोना के मेल से अगागिभाव सकर का प्रयोग भी कहा जा सकता है । विपाग्न अलकार के इसी प्रकार के प्रयोग विद्यापति, सूरदास तुलसीदास आ ि ने भी किए हैं–

दूरि करहु बीना कर धरिबो ।
मोहे मग होरन रथ नाहीं नाहिन होत चन्द को ढरिबो ।
इत्या ि ।

अप्रस्तुत–प्रशसा ससप्टि सकर–

छूल क जाईहि बान प धनुष छाँि क हाथ ॥

प्रस्तुत पद्य म देवपाल की दूती के मुख स वृद्धावस्था का यह वणन गू अप्रस्तुत प्रशसा द्वारा कवि ने कराया है । बान या तीर यौवन काली ा सीधे शरीर का उपमान है और धनुष वृद्धावस्था के झुके हुए शरीर का । य दोनों क्रमश यौवन और वृद्धावस्था के काय हैं । अत काय द्वारा कारण के नि्श से यहाँ अप्रस्तुत प्रशसा हुई जो रूपकातिशयोक्ति द्वारा सिद्ध हुई है । इस प्रकार दोनो का अगागिभाव सकर है । सचमुच य दोना अलकार यहाँ नीर–क्षीर की भाँति इस प्रकार मिल गए हैं कि दोना का पाथक्य कठिन है । रसास्वादन म स्पष्ट ही मिलावट जान पडती है । बान श्ा का श्लेषात्मक अथ वण (रग या कान्ति या वण) लेने से श्लेष अलकार की समष्टि भी हुई और यहाँ पर तिल–तडुल याय से दोनों को पृथक भी किया जा सकता है ।

विशेष

जायसी का अलकारों के प्रयोग म असामा्य दक्षता प्राप्त थी । उ्होंने कहीं कहीं ऐसी चमत्कार पूण अलकारिक शली का समावेश किया है जिसके प्रभाव या चमत्कार की ओर लोगों का ध्यान भी नहीं गया है जसे—

कवलहि विरह–बिथा जस बाढी । केसर–बरन पीर हिय गाढी ॥

केसर बरन पीर हिय गाढी इस पक्ति का अथ अ्वय भे् से तीन ढग का हो सकता है—

(१) कमल केसर वण हो रहा है हृ्य म गाढी पीर है ।
(२) गाढी पीर स हृ्य कसर—वण हो र्हा है ।
(३) हृदय म कसर–वण गाढी पीर है ।

इनम स पहला अथ तो ठीक नहीं होता क्योंकि कवि की उक्ति का आधार कमल के ्दर हृ्य का पीडा होना है सारे कमल का पीला होना नहीं । दूसरा

अर्थ निश्चयत सीधा और ठीक जचता है पर अन्वय इस प्रकार खींचतान कर करना पड़ता है– गाढ़ी पीर हिय केसर बरन। तीसरा अर्थ यदि लेते हैं, तो पीर का एक असाधारण विशेषण 'केशर–बरन' रखना पड़ता है। इस दशा में केशर बरन का लक्षणा से अर्थ करना होगा। केसर वर्ण करने वाली, पीला करने वाली और पीड़ा का अतिशय लक्षणा का प्रयोजन होगा। पर योरपीय साहित्य में इस प्रकार की शैली अलंकार–रूप से स्वीकृत है और हाईपैलेज कहलाती है। इसमें कोई गुण प्रकृत गुणी से हटाकर दूसरी वस्तु में आरोपित कर दिया जाता है जैसे यहाँ पीलेपन का गुण 'हृदय' से हटाकर 'पीड़ा' पर आरोपित किया गया है।

एक उदाहरण और लीजिए–

जस भुइं दहि असाढ़ पलुहाई।

इस वाक्य में पलुहाइ की संगति के भुइं शब्द का अर्थ उस पर के घास–पौधे अर्थात् आधार के स्थान पर आधेय लक्षणा से लेना पड़ता है। बोल चाल में भी इस प्रकार के रूढ़ प्रयोग आते हैं। जैसे इन दोनों घरों में झगड़ा है। योरोपीय अलंकार शास्त्र में आधेय के स्थान पर आधार के कथन की प्रणाली को मेटानमी अलंकार कहेंगे। इसी प्रकार अंगी के स्थान पर अंग व्यक्ति के स्थान पर जाति आदि का लाक्षणिक प्रयोग (Synecdoche) अलंकार कहा जाता है[1]।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि पदमावत में अलंकारों का अत्यन्त सुन्दर और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि पदमावत समासोक्ति पद्धति पर लिखा हुआ हिन्दी का एक उत्कृष्ट कोटि का प्रबन्ध काव्य है। समासोक्ति भी एक अलंकार है—इसे विशेषण–विच्छित्ति मूलक अलंकार भी कहा जाता है। इसका सारा सौंदर्य विशेषणों के प्रयोगों पर ही निर्भर करता है। कवि कथा प्रसंग में कतिपय ऐसे विशेषणों का प्रयोग कर देता है जिससे प्रस्तुत अर्थ के साथ ही सहृदय के चित्त में दूसरे अर्थ का भी आभास होता चलता है। हिन्दी में कबीर और जायसी तथा बंगला में कबीर से प्रभावित रवीन्द्रनाथ टगौर समासोक्ति अलंकार के अन्यतम कवि माने जा सकते हैं। इन कवियों ने समासोक्ति अलंकार के जैसे सुन्दर प्रयोग किए हैं, वैसे अन्य किसी कवि में शायद ही मिलें।

कबीर—ममता तिण ना चर साल चिता सनेह।
बारि जु बांधा पम क डारि उहा सिर खह॥

1—प० रामचन्द्र शुक्ल जा० ग्र० भूमिका, पृ० ११९–१२०।

जिहि सर घड़ा न डूबता अब मैंगल मलि न्हाइ।
देवल बूड़ा कलस सूँ पंषि तिसाई जाई॥[1]

जायसी—

सो दिल्ली अस निबहुर देसू। कोइ न बहुरा कहै सँदेसू॥
जो गवने सो तहाँ कर होई। जो आवै किछु जान न सोई॥
अगम-पंथ पिय तहाँ सिधावा। जो रे गयउ सो बहुरि न आवा॥[2]

रवीन्द्रनाथ टगोर—

'यावार दिने एइ कथाटि बले येन याइ।
या देखेछि या पेयेछि तुलना तार नाइ।
एइ ज्योति समुद्र माझे ये शतदल पद्म राजे
तारि मधुपान करेछि धन्य आमि ताइ।
यावार दिने एइ कथाटि जानिये येन याइ॥
यावार समय हल विहगेर। एखनि कुलाय रिक्त हबे।
स्तब्ध गीति भ्रष्टनीड पड़िबे धुलाय अरण्येर आन्दोलन॥'[3]

कबीर के विशेषण विच्छित्तिमूलक पदों में उनका संतरूप प्रधान हो उठता है। जायसी के काव्यों में भी कहीं-कहीं माटी के भाँडे जैसे पदों में उनके संत रूप की प्रधानता हो उठी है किन्तु सर्वत्र ऐसी बात नहीं है। सचमुच कबीर, जायसी और रवीन्द्रनाथ समासोक्ति अलंकार के क्षेत्र में भारतीय साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवियों में हैं।

छन्दविधान

जायसी ने पद्मावत की रचना दोहा और चौपाई नामक मात्रिक छन्दों में की है। पदमावत में आदि से अन्त तक—सर्वत्र सात अर्धालियों के पश्चात् एक दोहे का विधान किया गया है। ये छन्द-युग्म कथा प्रधान वर्णनात्मक प्रबन्ध-काव्यों को अपेक्षित गति और प्रवाह का वरदान देने में पूर्ण समर्थ हैं। अपनी इस मूलभूत गुणवत्ता के कारण ये छन्द अवधी के कवियों के कण्ठहार रहे हैं। विक्रमोर्वशीयम् (कालिदास) से कृष्णायन (पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र) तक इस छन्द (युग्म) की एक अविच्छिन्न रूप से चली आती हुई धारा के हम दर्शन करते हैं। समष्टि रूप में कहा जा सकता है कि प्राय अवधी भाषा के काव्य ग्रन्थों में यही छन्द रूप व्यवहृत

१–कबीर ग्रंथावली ना० प्र० सभा, काशी, पृ० १६-१७।
२–जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा काशी, पृ० २६४।
३–विक्रमोर्वशीयम् (४/८)

है। दोहा और चौपाई का प्रारम्भिक अवस्था मे (यद्यपि दोहा छद अपभ्रंश भाषा के कवियो के हाथो से सवर चुका था) जसा सवार जायसी ने अपने मनोभावो के अनुरूप अपनी समर्थ तूलिका से किया है वसा सँवार शृगार सरहपाद से आज तक तुलसीदास के अतिरिक्त कोई इतर कवि नही कर सका है।

पद्मावत म चौपाई की सात अर्द्धालिया के पश्चात एक दोहे की योजना की गई है। आखिरी कलाम म भी छद-योजना का यही रूप है। चित्ररेखा म भी छद योजना का यही रूप है—चित्ररेखा म कुछ स्थलो पर तीन चार पाच चौपाई की अर्द्धालियाँ ही मिलती हैं पर उस्मानिया विश्वविद्यालय के पुस्तकालय म चित्ररेखा की एक हस्तलिखित प्रति है इसम सात अर्द्धालियो के पश्चात एक दोहे का विधान सवत्र मिलता है। अखरावट म एक दोहा पश्चात एक सोरठा और उसके पश्चात चौपाई की सात अर्द्धालियो की योजना हुई है। कहरानामा म कहरवा छद की योजना हुई है। इस ग्रन्थ के प्रत्येक छद म १४ पक्तियाँ है। मसलानामा म भी दोहा चौपाई और चौपाई वाली शैली ही प्रयुक्त है। इस प्रकार दोहा चौपाई सोरठा, कहरवा प्रभृति छद जायसी के काव्यो म प्रयुक्त हुए है।

दोहा—चौपाई

"श्लोक" लौकिक सस्कृत का प्रतीक है। इसका उदय नई साहित्यिक मोड की सूचना है। 'गाथा' का उदय प्राकृत के दूसरे मोड की सूचना है। तीसरे झुकाव और मोड की सूचना लेकर एक दूसरा छद भारतीय साहित्य के प्रागण म प्रवेश करता है यह दोहा है। जसे श्लोक लौकिक सस्कृत का, गाथा प्राकृत का प्रतीक हो गया है उसी प्रकार दोहा अपभ्रंश का। कभी कभी एकाध दोहे प्राकृत के भी बताए जाते हैं। जसे हेमचद्र की समस्यापूर्ति वाला प्रबन्ध चिन्तामणि का यह दोहा—

पहली ताव न अनुहरइ गोरी मुहकमलस्स।
अद्दिट्ठी पुनि उम्मइ पडिपयनी चन्दस्स॥[1]

प० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि विचार किया जाय तो इस दोहे म कोई ऐसा विशेष लक्षण नहीं है जिसस इसे अपभ्रंश का दोहा न कहकर प्राकृत का कहा जाय। मुझ तो यह दोहा अपभ्रंश का ही लगता है और सच बात तो यह है कि जहाँ दोहा है वहाँ सस्कृत नही प्राकृत नही अपभ्रंश है।[2]

दोहा अपभ्रंश का लाडला छन्द है। इस छद का पहला पहल प्रयोग कब हुआ—यह कहना कठिन है। विक्रमोर्वशीयम नाटक म इस छद का अपभ्रंश भाषा म निबद्ध रूप मिलता है—

१—प० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ९०–९१।
२—प० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्यकार आदिकाल, पृ० ९०–९१

मइँ जाणिअँ मिअलोअणी णिसअरु काइ हरेइ।
जाव ण णव जलि सामल धाराहरु बरसेइ॥[1]

(मैंने जाना था कि कोई निशाचर मेरी मृगलोचनी प्रिया को हरण किए जा रहा है यह मेरी भूल थी। इसे मैंने तब जाना जबकि नव विद्युत से संयुक्त काले मेघ बरसने लगे।)

रे रे हंसा कि गोइज्जइ। गई अणुसारें मइ लक्खिज्जइ॥
कइँ पइँ सिक्खिउ ए गइ लालस। सा पइँ दिट्ठी जहण भरालस॥[2]

(हरे हंस तुम क्यों छिप रहे हो? तुम्हारी गति से ही मैंने सब कुछ जान लिया है। तुमने यह सुन्दर गति कहाँ से सीख ली है? तुमने जघन भार से धीरे धीरे चलने वाली उस प्रिया को अवश्य ही देखा है।)

इन छन्दों की भाषा शुद्ध टकसाली अपभ्रंश है। प्रथम उद्धृत छन्द तो स्पष्ट रूप से दोहा है और द्वितीय उद्धरण चौपाई से बिल्कुल मिलता-जुलता है। उसे चौपाई का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है। इन छन्दों में प्रयुक्त शुद्ध-स्टैंडर्ड-या परिनिष्ठित भाषा ने विद्वानों में विवाद प्रस्तुत कर दिया है। कारण भी स्पष्ट है। कालिदास ने अन्यत्र कहीं भी अपभ्रंश भाषा का प्रयोग नहीं किया है। वे संस्कृत के कवि हैं। अतः इन पद्यों की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों को सन्देह है। जकोबी और श्री एस० पी० पंडित[3] इन पद्यों को कालिदास रचित या कालिदासकालीन रचना नहीं मानते।

इन पंडितों के प्रतिकूल उनकी आपत्तियों का तर्कपूर्ण एवं प्रमाण सम्मत समाधान प्रस्तुत करते हुए डा० ए० एन० उपाध्ये[4] डा० ग० वा० तगारे[5] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी[6], डा० पी० एल० वैद्य प्रभृति विद्वानों ने इन पद्यों को प्रामाणिक और कालिदास की रचना माना है। इस सम्बन्ध में पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत उल्लेखनीय है — अपभ्रंश का साहित्य ५वीं-६ठी शताब्दी में काफी मात्रा में

१—विक्रमोर्वशीयम् चतुर्थ अंक (४।८)
२—कालिदास ग्रन्थावली विक्रम-परिषद् काशी द्वितीय खण्ड, पृ० २२३
(विक्रमोर्वशीयम् ४।३२)।
३—श्री एस० पी० पंडित विक्रमोर्वशीयम् भूमिका।
४—डा० ए० एन० उपाध्ये परमात्म-प्रकाश भूमिका पृ० ५६। टिप्पणी १।
५—पुरातत्व पत्रिका जून १६४२।
६—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल ६२।
डा० नामवरसिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग प्रथम संस्करण पृ० १४।

वर्तमान था। दण्डी और भामह ने उस साहित्य को देखा था। एकाध शताब्दी बाद के तो अपभ्रंश काव्य और दोहा ग्रंथ भी मिल गये हैं। यदि जंगल में भटकते हुए प्रिय-विरह से व्याकुल राजा के प्रलाप में कवि ने तत्कालीन प्रचलित ग्राम्यजन के गेय पदों में से एकाध पद्य कहलवा दिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। माइल्ल धवल की उक्ति से स्पष्ट ही है कि अपभ्रंश या दोहाबंध उन दिनों भले आदमियों की हंसी की चीज थी। इस दृष्टि से विक्रमोर्वशीयम वाले दोहे को प्रक्षिप्त मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। -- आधुनिक अहीरों के अत्यन्त प्रिय विरहागान का खाका मूलतः दोहा छन्द ही है। इस प्रकार स्पष्ट है कि विक्रमोर्वशीयम में प्रयुक्त ये छंद अपभ्रंश भाषा के प्राचीन उदाहरण के रूप में गृहीत किए जा सकते हैं। सोरठा का सम्बन्ध सौराष्ट्र से जोड़ा गया है क्योंकि इसे कभी कभी सोरट्ठ दोहा भी कहा गया है और आभीर गुजरों का सौराष्ट्र से पुराना सम्बन्ध है। दोहा अपभ्रंश भाषा की प्रकृति के अनुसार ह्रस्वान्त छन्द के रूप में है। यह छन्द नवीं-दसवीं शताब्दी में बहुत लोकप्रिय हो गया था। इस छन्द में नई बात यह है कि इसमें तुक मिलाये जाते हैं। संस्कृत प्राकृत में तुक मिलाने की प्रथा नहीं थी। दोहा यह पहला छन्द है जिसमें तुक मिलाने का प्रयत्न हुआ। और आगे चलकर एक भी ऐसी अपभ्रंश कविता नहीं लिखी गई जिसमें तुक मिलाने की प्रथा न हो।

ईरान के साहित्य में मुस्लिम-पूर्व काल में भी तुक मिलाने की प्रथा थी और बाद में तो फारसी गद्य में भी तुक मिलाकर लिखने की प्रथा चल पड़ी जिसका निश्चित अनुकरण विद्यापति की कीर्तिलता में मिलता है। छठी सातवीं शताब्दी तक भारतवर्ष में उत्तर-पश्चिम सीमान्त से अनेक नई जातियों का आगमन हुआ और उनके कारण इस देश की भाषा में भी नए-नए तत्त्व प्रविष्ट हुए और कविता भी नवीन कारीगरी से समृद्ध हुई। हो सकता है कि यह तुक मिलाने की नवीन प्रथा भी नवीन जातियों के सम्पर्क का फल हो। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि दोहा नवीन स्वर में बोलता है[1]। अपभ्रंश कविता का मूल स्वर दोहा में ही अभिव्यक्त हुआ है।

दोहा छन्द के माध्यम से मुक्तक और प्रबंध रूप में अपभ्रंश में प्रचुर रचनाएं मिलती हैं। प्रेमाख्यानक परम्परा के कवियों ने प्रेम-पीर की अभिव्यक्ति के लिए इन्हीं छन्दों को माध्यम बनाया है। अतः दोहा-चौपाई को सूफियाना आविष्कार मानना बहुत बड़ी गलती है। आगे इन छन्दों की परम्परा पर विचार किया गया है और स्पष्ट कर दिया गया है कि सरहपाद से लेकर पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र तक दोहे

१—पं०हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ९२-९३।

चौपाई म काय लिखने की एक अविच्छिन्न परम्परा चली आई है। इसी परम्परा के राजमार्ग पर सूफियो न भी अपनी कृतियो के पथ-चिह्न रखे है। ये छन्द उनके निजी आविष्कृत छन्द नही हैं। जायसी के पूववर्ती अनेक चरित काव्यों और प्रबन्ध काव्यो मे दोहे-चौपाई के प्रयोग की प्रचुर सामग्री उपलब्ध है।

दोहा-चौपाई की परम्परा और जायसी —

पूर्वलिखित पक्तियो म कहा जा चुका है कि दोहा-चौपाई छन्दो के माध्यम से प्रबन्ध-काव्य लिखने की परम्परा अपने प्राचीनतम रूप म अपभ्रश साहित्य की है। अपभ्रश के काव्य कडवक-बद्ध हैं। पज्झटिका या अरिल्ल छन्द की कई पक्तियां लिखकर कवि एक घत्ता या ध्रुवक देता है। सहजयानी सिद्धो म से सरह पाद और कृष्णपाद के ग्रन्थो म दो-चार-चार चौपाइयो के बाद दोहा लिखने की प्रथा पाई जाती है।

अरिल्ल चौपाई का ही पूर्व रूप है। कथा-काव्य मे इसका खूब प्रयोग भी हुआ है। अपभ्रश के काव्यो म घत्ता के स्थान पर दोहे का प्रयोग कम होता था। जिन पद्मसूरि के थूलभद्दफागु म इसका उदाहरण मिल जाता है। परन्तु अपभ्रश प्रबन्ध काव्यो म दोहा-चौपाई का क्रम बहुत लोकप्रिय नहा हुआ सम्भवत पूर्वी प्रदेश के कवियो ने प्रबन्ध काव्य में चौपाई और दोहा के बने कडवकों का प्रयोग शुरू किया था। मौलाना दाऊद, जायसी आदि सूफी कवियो ने इसी प्रथा का अवलबन किया था। परन्तु बीज रूप में यह प्रथा बौद्ध सिद्धो की रचनाओ म मिल जाती है। सरहपा ने लिखा है —

अइसें विसन सधि को पइसइ। जो जइ अत्थिणउ जव न दीसइ।
पण्डिअ सअल सत्थ बक्खाणइ। देहहि बुद्ध बसत ण जाणइ॥
गमणागमण न तेन विखण्डिअ। तो वि णिलज्ज भणहि हउ पण्डिअ।
जीवन्तह जो नउमरइ सो अजरामर होइ।
गुरु उवएसें विमल मइ सो पर धण्णा कोइ[1]॥

प० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि दोहे-चौपाई का सबसे पुराना प्रयोग शायद यही है। जो कुछ पुराना साहित्य उपलब्ध है उससे लगता है कि पूर्वी प्रदेश के बौद्ध सिद्धों ने ही इस शली म लिखना शुरू किया था। पश्चिम म पद्धडिया बन्ध अधिक प्रचलित था और पद्धडिया से कभी-कभी चौपाई का अर्थ भी ले लिया जाता था। जसा कि जिनदत्तसूरि की चर्चरी के वक्तव्यकार जिन पाल के वक्तव्य से स्पष्ट होता है। गोरखनाथ की बताई जानेवाली साखियो में भी इस पद्धति को कदाचित

१—प० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ९६ हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० ६६ (जून १९५९)।

खोज लिया जा सकता है और कबीरदास ने तो निश्चित रूप से इस पद्धति का निर्वाह किया था। पृथ्वीराज रासो में इस पद्धति का बहुत ही कम स्थानों में उपयोग हुआ है। रासो के बयालीसवें समय (पृ ११६८) में एक स्थल पर चौपाई-दोहा की पद्धति का प्रयोग मिलता है।[1] बौद्ध और जैन कवियों ने चौपाई-दोहा छन्दों का गठबन्धन बड़े ही सुन्दर रूप में किया है। स्वयम्भू के विशाल महाकाव्य 'पउम चरिउ' में दोहे-चौपाई की शैली का सुन्दर रूप दर्शनीय है। डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि यद्यपि चौपाई छन्द का प्रयोग कुछ सिद्ध कवियों द्वारा भी हुआ है तथापि जैन कवियों ने दोहा छन्द के साथ चौपाई का मेल बड़े सुन्दर ढंग से किया है। स्वयम्भू देव ने अपने 'पउम चरिउ' में तो दोहा और चौपाई का प्रयोग ही अधिकतर किया है। सम्भव है रामकाव्य के महाकवि तुलसीदास ने स्वयम्भूदेव का 'पउमचरिउ' देखा हो और उसी शैली के अनुकरण पर दोहा चौपाई की शैली में अपना 'रामचरितमानस' लिखा हो।[2]

इससे इतना तो स्पष्ट है कि मौलाना दाऊद जायसी और तुलसीदास के समक्ष निश्चित रूप से चौपाई-दोहे वाली पद्धति वर्तमान थी। जायसी के पूर्ववर्ती मुल्ला दाऊद ने भी इसी शैली का अनुगमन किया है।

चौपाई और अरिल्ल छन्द

सूफी प्रबन्ध काव्यों में मुख्यतः दोहा और चौपाई छन्द ही समान रूप से समादृत रहे हैं। अपभ्रंश में अरिल्ल या अडिल्ल नाम का सोलह मात्रा का छन्द प्राप्त होता है। इसे चौपाई का पूर्व रूप कहा जा सकता है। चौपाई छन्द ही कथानक छन्द है। अपभ्रंश के 'पाड़ल' छन्द' दोहा के साथ चौपाई का गठबन्धन अपभ्रंश के प्रारम्भिक काल में ही हो गया था पर कथा काव्य के लिए इसका महत्व बाद में समझा गया। अन्त की मात्राओं की मूल भावना के अतिरिक्त अरिल्ल और चौपाई दोनों छन्दों में एकरूपता है। दोनों मात्रिक छन्द हैं। दोनों में सोलह मात्राएँ होती हैं। अन्तर इतना ही है कि चौपाई के अन्त में दो गुरु का प्रयोग होता है और अरिल्ल के अन्त में दो लघु का जैसे—

> अहो महो अज्जु नाउ सुहयत्तउ। ज एवड्ड महत्तण पत्तउ।।[3]
> सो जग जणमउ सो गुण मतउ। जे पर पर उवआर हसतउ।

१—प० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल प० ९६

२—डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १९९।

३—भविसयत्त कहा १०/३/१३

४—प्रा० मू १६०

'अरिल्ल' छन्द के इन उदाहरणों में सोलह सोलह मात्राएँ हैं और अन्त में दो-दो लघु हैं। तुलसीदास के रामचरितमानस (सं० १६३१) में भी ऐसी चौपाइयाँ मिल जाती हैं जैसे—

कह दसकंध कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर॥

जायसी के पदमावत में भी यह प्रवृत्ति मिल जाती है—

ये पिंगला गए कजरी आरन। ये सिंघल आये तेहि कारन॥[1]

यह सच है कि जायसी की चौपाइयों में मात्राओं की कमी कहीं भी मिलती है पर प्रायः सोलह मात्राएँ ही मिलती हैं। १४, १५, १६ और १७ मात्रा वाली चौपाइयाँ भी मिलती हैं। इससे स्पष्ट है कि या तो जायसी के ग्रंथ का ठीक से सम्पादन नहीं हो सका है अथवा जायसी ने कई प्रकार की चौपाइयों का प्रयोग किया है। प्रायः चौपाइयाँ दीर्घांत हैं।

जायसी ने पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम, चित्ररेखा प्रभृति ग्रंथों में सर्वत्र (चौपाई की) सात पंक्तियों के पश्चात् एक दोहे का विधान किया है। (अग्रवाल स्वरूप शुक्ल जी की जायसी ग्रंथावली पृ० १। दोहा ४ में मात्र ६ पंक्तियाँ ही थी पर डा० गुप्त के संस्करण में उस अभाव की पूर्ति हो गई है)।

दोहे की व्युत्पत्ति और पदमावत

दोहा शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ पण्डितों का कथन है कि दोहा दोधक शब्द से व्युत्पन्न है परन्तु इसके विरोध में यह कहा जाता है कि दोधक वर्णवृत्त है और इसके ठीक विपरीत दोहा मात्रिक छन्द है। दोधक में तीन भगण और दो गुरु आते हैं प्रत्येक चरण में ११ वर्ण होते हैं। दोहा अर्द्धसम छन्द है। मात्रा की दृष्टि से दोहे के प्रथम-तृतीय और द्वितीय चतुर्थ चरण समान होते हैं। दोहे के प्रथम-तृतीय चरणों में १३-१३ मात्राएँ और द्वितीय चतुर्थ चरणों में ११-११ मात्राएँ होती हैं। संस्कृत वर्ण वृत्त प्रधान है। इसके ठीक विपरीत अपभ्रंश हिन्दी तथा अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की प्रवृत्ति मात्रिक छन्दों की रही है। अतः स्पष्ट हो दोहा और दोधक का साम्य या सम्बन्ध निराधार है।

कुछ विद्वान दो पद या दो-पद्य से दोहे को व्युत्पन्न बताते हैं। प्राकृत की 'गाथा' से भी इसकी निरुक्ति की गई है। दो गाथा-दो गाथा दो गाहा दोहा 'दोहा' में हा को प्रत्यय मान कर (दो-हा-दो पंक्तियों वाला) दोहा की निरुक्ति की जाती है। दोहा शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में जो भी कहा जाय, पर यह

1—ना० प्र० ना० प्र० सभा काशी पृ० ८८

निश्चित है कि दा यहाँ सख्या का ही बोध कराता है। साखी सबदी दोहरा आदि म दोहे को 'दोहरा भी कहा गया है। दोहा–डा (स्वार्थक प्रत्यय) दोहडा–दोहरा दोहा भी कहा जा सकता है। इसे दो–सर (सर–स्रज लडी लड) से उत्पन्न भी कहा जा सकता है। दो–हार या दो–घड (घड घडी या परत) स भी दोह की निरुक्ति की सम्भावना की जा सकती है।

वस्तुत दोहा के हा की निरुक्ति सदिग्ध है। अवश्य ही इसका सम्बन्ध पक्ति से होना चाहिए। इस मात्रिक छद म चार चरण होते है। इसम कुल ४८ मात्राए होती हैं। इसम कम से कम २४ और अधिक स अधिक ४६ वर्ण आ सकते हैं। पिंगल शास्त्र म दोहे के हस मयूर आदि २१ भेद भी किए गए हैं।

जायसी के दोहो म कहीं-कहीं मात्राओं की कमी-वेशी बहुत खटकती है। तत्कालीन शुद्ध उच्चारण के ज्ञात न होने के कारण प्रतियो के विभिन्न फारसी लिपि म मिलने के कारण पुन उसे नागरी मे लाने के कारण तथा जायसी के ग्रथो के ठीक से सपादन के अभाव के कारण इस विषय म उपस्थित किए जा सकते हैं।

डा० गुप्त का कथन है कि जायसी के छन्द दोहा और चौपाई है किन्तु इनके विषय मे उन्होने बडी स्वतन्त्रता दिखाई है। अनेक उदाहरणो को देकर वे गुप्तजी ने यह सिद्ध किया है परन्तु यह भली भाति प्रमाणित है कि जायसी दोनो छदो की मात्राओ के सम्बन्ध म पर्याप्त स्वतन्त्रता रखते थे।[1] जायसी ने प्राय मात्राओ का ध्यान रखा है जैसे—

भा बसाख तपन अति लागी। चोवा चीर चदन भा आगी। (१६ १६
कवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गयउ सुखाय। (१३ ११)
कबहु बनि फिरि पलुहै जौ पिउ सीच आइ। (१३ ११)

दाऊद डलमई कुतबन और मझन ने पाँच चौपाइयो के पश्चात एक दोहे का विधान किया है। जायसी ने सात चौपाइयो के पश्चात एक दोहे की योजना की है। तुलसीदास न आठ चौपाइयो के पश्चात एक दोहे की योजना की है।

जायसी ने अपने काव्य के लिए दोहा और चौपाई छद को ही सर्वोत्तम समझ कर अपनाया है। उनके समक्ष इस छद रूप की विशाल परम्परा थी। उनसे पौने दो सौ वर्ष पूर्व चदायन दोहा–चौपाई वाली शैली म ही लिखा गया था। मधुमालती[2] की जो प्रतियाँ मिली हैं(जिनका उल्लेख बनारसीदास जी ने अद्धकथा म किया है –)

१–डा० माताप्रसाद गुप्त जा० ग्र० भूमिका पृ० ४१–४४।

२–मधुमालती की दो हस्तलिखित प्रतियाँ थी भायाणी जी भारतीय विद्या भवन के पास हैं। इस प्रति म लगभग ७०० छन्द (चौपाई-दोहे के विधान से) हैं।

उनमें भी यही शैली प्रयुक्त है। यह स्पष्ट है कि उस काल के साहित्य में इस छंद युग्म का सर्व-सुन्दर प्रयोग जायसी ने ही किया है।"[1]

मसनवी शैली

मूलत मसनवी फारसी साहित्य की एक काव्य शैली है। 'मसनवी' शब्द का व्यवहार बड़े काव्य के लिए किया जाता रहा है। मसनवी के छन्दों में प्रत्येक पद अपने आप में स्वतन्त्र और पूर्ण होते हैं और वे तुकान्त होते हैं। ऐसा नहीं होता कि एक पद के बाद दूसरे में चले जाएं। आकार में बड़ा काव्य होने के कारण कवि को पूरी स्वतन्त्रता बरतने का सुयोग मिलता है। प्रेमाख्यान धार्मिक तथा उपदेशात्मक काव्यों के लिए मसनवी का ही सहारा लिया गया है। मसनवी अपने आप में एक पूर्ण ग्रन्थ होता है। उस ग्रन्थ का एक विशेष नाम होता है। प्रेमाख्यानों में साधारणत कवि अपने ग्रन्थ का नाम नायक-नायिका के नाम पर रखता है। कभी उस ग्रन्थ में वर्णित विषय को भी आधार मानकर नाम दिया जाता है जैसे – साकीनामा। इसमें साकी का ही नाना भाव से वर्णन होता है। शराब के दौर की चर्चा होती। ये ग्रन्थ प्रतीकात्मक हो सकते हैं जिसमें शराब को किसी आध्यात्मिक भाव का प्रतीक माना गया हो। नायक नायिका के नाम पर भी अनेक ग्रन्थों का नामकरण हुआ है जैसे – यूसुफ जुलेखा खुसरो – शीरीं आदि। इन ग्रन्थों में कुछ भी हैं जिनके नाम पूर्ण रूप से काल्पनिक हैं और उनमें धार्मिक उपदेश देने की प्रवृत्ति की प्रधानता है। साधारणत मसनवी सर्गबद्ध होते हैं। पहले सर्ग में परमात्मा का गुणानुवाद रहता है। दूसरे में पैगम्बर की स्तुति किया जाता है। तीसरे में पैगम्बर के मेराज की चर्चा रहती है। उसके बाद साधारणत बादशाह वक्त सुलतान शाह-वक्त की प्रशंसा रहती है अथवा किसी महान व्यक्ति की तारीफ रहती है जिसे कवि उस ग्रन्थ का समर्पण करता है। इसके बाद ही एक ऐसा सर्ग रहता है जिसमें कुछ इस प्रकार का वर्णन रहता है कि किस उद्देश्य से अथवा किस मित्र की प्रेरणा से कवि ने उस काव्य – ग्रन्थ का प्रणयन किया है। उस सर्ग का शीर्षक भी वह कुछ उसी प्रकार का देता है। इसके बाद ही मूल काव्य ग्रन्थ का प्रारम्भ होता है। इस ग्रन्थ के विभाग या सर्ग होते हैं और फिर ये विभाग या सर्ग सर्ग-बद्ध किए जाते हैं। प्रत्येक सर्ग के ऊपर उस सर्ग में वर्णित विषय का संकेत साधारणत फारसी भाषा में दिया हुआ रहता है। अन्त में कवि एक उप

१–पद्मावत का काव्य सौन्दर्य पृ० १८९–१९९।

संहार से ग्रंथ समाप्त करता है।[1] मसनवी के कुछ विशिष्ट लक्षण इस प्रकार हैं —

(१) मसनवी में छंद स्वतः पूर्ण होता है। वाक्य रचना के दृष्टिकोण से उसमें पूर्ण वाक्य आता है।

(२) उसकी दोनों अर्द्धालियाँ समान अन्त्यानुप्रास गण युक्त होती हैं।

(३) यह काव्य शैली प्रबन्ध प्रधान होती है। इसका विषय कथा प्रधान होता है और उस कथा में विविध विषयों के सांगोपांग वर्णन मिलते हैं।

(४) कथा के प्रारम्भ में ईश्वर, पैगम्बर मुहम्मद, मुहम्मद के मित्र, कवि के गुरु और सामयिक राजा की प्रशंसा रहती है।

(५) इसके पश्चात् कवि अपनी रचना के उद्देश्य का स्पष्टीकरण करता है।

(६) साधारणतः छन्दों का परिवर्तन नहीं होता।

(७) पाँच या सात छन्दों के अनन्तर एक बैत रहता है।

(८) उसमें सामी संस्कृति (सेमेटिक कल्चर) का प्राधान्य भी कभी-कभी प्रदर्शित किया जाता है।

प्रारम्भिक काल की फारसी मसनवियों में धार्मिक अथवा रहस्यात्मक विषयों की चर्चा हुआ करती थी। ये प्रायः उपदेश प्रधान हुआ करते थे। कालान्तर में इन मसनवियों के विषय प्रेमाख्यान हो गए। जिनमें संकेतों द्वारा कवि अलौकिकता का परिचय देता जाता है।

इन प्रेमाख्यानों की एक और विशेषता रही है कि इनमें बीच-बीच में गजल लिखे जाते थे। इन गजलों का उपयोग कवि ऐसे मौके पर करता है जब कहानी का कोई पात्र अपने मन के भार को हल्का करना चाहता है। धीरे धीरे लम्बे काव्य ग्रन्थों के लिखने का प्रचलन नहीं रहा लेकिन मसनवियों का लिखा जाना बन्द नहीं हुआ। इसकी सहज शैली के कारण वर्णनात्मक अथवा उपदेशात्मक छोटे छोटे काव्यों के लिए भी इसका प्रयोग होता रहा। प्रारम्भ में कितने कवि ऐसे थे जो एक ही सीरीज में पाँच मसनवियाँ लिख देते थे। इस सीरीज का एक विशेष नाम 'खम्स' था।[3]

हाली का कथन है मसनवी में अलावा उन फरायज के जो गजल या कसीदे में वाजिबुल अदा हैं कुछ और शरायत भी हैं जिनकी मराआत निहायत जरूरी है। अजाँजुमला एक रब्तेकलाम है जो कि मसनवी और हर मुसलसल नजम की जान

१—पं० रामपूजन तिवारी सूफीमत साधना और साहित्य, पृ० ५२७—२८।

२—ब्राउन ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ परशिया (१९१६) पृ० ४७३ तथा इन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम (१९३६), वाल्यूम ३, पृ० ४१०—११।

३—सूफीमत साधना और साहित्य, पं० रामपूजन तिवारी पृ० ५२८।

है। गजल और कसीदा में एक शेर के दूसरे शेर से जैसा कि जाहिर है कुछ रब्त नहीं होता बखिलाफ मसनवी के कि इसमें हरबन्द को दूसरा बंद से ऐसा ताल्लुक होना चाहिए जैसा जंजीर की हर कड़ी का दूसरी कड़ी से होता है।"[1] जामी का कथन है कि मसनवियाँ काव्य में आख्यान, प्रेम प्रबन्ध वीरकाव्य तथा कथात्मक भी होती हैं। इसमें शेर के पहले मिसरे का दूसरे में तुक होता है। मसनवियाँ पाँच बहरों में लिखी जाती हैं। हज्ज रमल सारी खफीफ और मुतकारिब।

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि फारसी की मसनवियों में जिन छन्दों का प्रयोग हुआ है उनका उपयोग हिन्दी के प्रेमाख्यानों में नहीं हुआ है। मसनवी की दो अर्द्धालियाँ परस्पर तुकान्त होती हैं। लम्बाई की कोई सीमा निर्धारित नहीं है और इसमें आदि से अन्त तक एक ही छन्द रहता है। कवि स्वतन्त्र है कि वह या तो सात छन्दों की मसनवी लिखे या वह इसे सात हजार तक बढ़ाये। विषय निर्वाचन में भी कवि स्वतन्त्र है। पौराणिक दार्शनिक रहस्यवादी धार्मिक आदि कोई विषय लिया जा सकता है।[2]

उपर्युक्त कथन से यह धारणा दूर हो जानी चाहिए कि मसनवी कोई फारसी में प्रेमाख्यान काव्य है। यह भ्रम भी दूर हो जाना चाहिए कि मसनवी प्रबन्ध का सामान्य काव्य रूप है। वस्तुतः मसनवीकार अपनी मसनवी के लिए प्रेम, युद्ध दर्शन, धर्म, आदि कोई भी विषय ले सकता है।

यह एक सामान्य नियम है कि मसनवी[3] जो एक पूर्ण पुस्तक के रूप में रहती है। ईश्वर की स्तुति से प्रारम्भ होती है। पुनः उसमें रसूल की वन्दना की जाती है। उसके मेराज का भी वर्णन किया जाता है। पश्चात् शाहवक्त या किसी महान व्यक्ति की प्रशंसा या स्तुति की जाती है। फिर ग्रन्थ निर्माण का कारण भी बतलाया जाता है। प्रेम कथा निरूपण काल कवि बीच बीच में गजल आदि भी दे दिया करते हैं। यद्यपि ये नियम तुर्की मसनवियों के हैं पर ये नियम फारसी मसनवियों में भी मिलते हैं। निजामी (लैला मजनू[4] खुसरो शीरीं[5]) खुसरो (मजनूँ-लैला[6] शीरीं खुसरो) जामी (युसुफ जुलेखा[7]) फैजी (नलदमन[8])

१—मुकद्दमा शेर और शायरी ख्वाजा अलताफ हुसैन हाली पृ० २१५।
२—फारसी साहित्य का इतिहास डा० असगर हिकमत पृ० १५३।
३—ए हिस्ट्री आफ ओटोमन पोइट्री वा० प० ७३।
४—लैला-मजनू निजामी नवल किशोर प्रेस लखनऊ।
५—खुसरो-शीरीं ,, ।
६—मजनूँ-लैला सं० हबीबुर रहमानखाँ अलीगढ़।
७—शीरीं खुसरो मु० मू० अलीगढ़। ८—यूसुफ एण्ड जुलेखा म० टी० एच० ग्रिफिथ।
९—नलदमन, फैजी नवलकिशोर प्रेस लखनऊ।

प्रमनि कवियों की प्रम गाथात्मक मसनवियां म विशेषताएँ स्पष्ट रूप से मिल जाती हैं। प्रेमगाथाओं के साथ ही वीर प्रधान मसनवियां – यथा फिरदौसी कृत शाहनामा म ये तत्व स्पष्ट रूप स मिलते है।

फारसी मे मसनवी लिखने वाले तीन महान कवियों का नाम लिया जाता है। उनमे सनाई प्रथम हैं और अन्य दो फरीदुद्दीन अत्तार और जलालुद्दीन रूमी हैं। कहा जाता है कि मसनवी लिखने वालों म यदि अत्तार रूह थे तो सनाई दोनों आखें उस थे। जलालुद्दीन की सुप्रसिद्ध मसनवी को मसनवी ए मसनवी भी कहते है। इस लोग फारसी भाषा का कुरान कहते हैं। उसे पढ़ने पर लगता है कि उस पर भारतीय ध्यानादि साधना-पद्धति से प्रभावित हैं[1]।

फारसी मसनवियाँ[2] चार वर्गों म विभक्त हो सकती हैं —

(१) विशाल महाकाव्य।

(२) पर्याप्त विस्तार वाले प्रेमाख्यानक काव्य।

(३) पर्याप्त विस्तार वाले साधारण आख्यानक काव्य और

(४) ध्येय विशेष को लक्ष्य लिखी गई कई कथाएं जिनका सम्पादन किसी कच्चे सूत्र के सहारे कर दिया गया है।

फिरदौसी कृत शाहनामा फारसी की सबसे पहली मसनवी है जो ससार के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों मे समादृत है। इसमे केवल छन्द विधान ही मसनवी पद्धति पर है। मसनवी की अन्य विशेषताओं का इसमे प्राय अभाव है[3]। पर्याप्त विस्तार वाले प्रेमाख्यानो म फिरदौसी कृत यूसुफ जुलेखा प्राचीनतम रचना है। इस काव्य म मसनवी-शैली के सभी लक्षण मिल जाते हैं। फारसी प्रेमाख्यानक परम्परा का सब

१—रोज दी दर विदोप पृ० ४८ (सूफीमत साधना और साहित्य प० ८३८ से)

२—परशियन एफ्लुएंस आन हिन्दी डा० हरदेव बाहरी पृ० ७७

मसनवी एज ए फार्म आफ पर्सियन एपिक रिमेंड ए मार्डल फार सूफी पोएट्स इन हिन्दी फ्राम दि अर्लिएस्ट टाइम्स डाउन टू १६१७ ए० डी० इट ओपेंस विथ प्रेज टु गाड ऐण्ड दि प्रेज आफ माहम्मद दि प्राफेट आफ इस्लाम देन आफ दि रूलर आफ दि टाइम पार्टीड बाई पैनारमिक लाइन्स एबाउट दी राण्टग प्रसीप्टर ऐण्ड हिज फेमली एन एन्ट्रोडक्शन टू दी फमिली आफ दी हीरो ऐण्ड दी हीराइन इज दन गिवन बीफोर दी स्टोरी बीगिन्स। इट हैज नो कट्टूज बट दी इवेंट्स आर लिंक्ड अण्डर हेडिंग्ज। दी डिस्क्रिप्शन आफ प्लेसेज एण्ड थिंग्स आर रादर लेंदी। आउट साइड सूफी लिटरेचर, दी मसनवी फार्म इज अबसेन्ट इन दी सेन्चुरीज आफ दी १७थ एण्ड १८थ सेंचुरीज

३—इन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, भाग ३, प० ४११।

श्रेष्ठ कवि निजामी हुआ है। 'शीरीं खुसरो', 'लैला-मजनू' और 'हफ्तपैकर' उसकी अत्यन्त ख्यातिप्राप्त मसनवियाँ हैं। फारसी प्रेमाख्यानक मसनवियों की शैली पर भारतवर्ष में भी रचनाएं हुई हैं। इस क्षेत्र में अमीर खुसरो तथा अबुल फैजी की कृतियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। अमीर खुसरो कृत 'लैला मजनू' और अबुल फैजी कृत 'नल दमन' मसनवी शैली के प्रेमाख्यान हैं। पर्याप्त विस्तार वाले साधारण आख्यानक काव्य के अन्तर्गत अमीर खुसरो की अन्य मसनवियाँ गिनाई जा सकती हैं। चौथे वर्ग के प्रतिनिधि कवि जलालुद्दीन रूमी हैं। इस प्रकार के काव्य प्रायः उपदेश प्रधान हैं। पञ्चम वर्ग में मर्यादित होने का ध्येय उपदेश देने की भावना से सम्बद्ध माना गया है।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ का यह कथन कि हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य का संबंध एकमात्र फारसी की प्रेमाख्यानक मसनवियों से है समीचीन नहीं है। यह अवश्य है कि हिन्दी प्रेमाख्यानक परम्परा के कवियों पर फारसी का प्रभाव पड़ा है, उनकी कृतियों में मसनवी-पद्धति के दर्शन भी होते हैं। उनकी कृतियों में भारतीय प्रबन्ध काव्यों की पद्धति का भी पूर्ण प्रभाव पड़ा है। अतः एकमात्र फारसी मसनवियों से सम्बन्ध जोड़ना उचित नहीं है।

हिन्दी की प्रेमाख्यानक परम्परा में मुसलमान कवियों का ही आधिक्य है। ये लोग फारसी भाषा के भी ज्ञाता होते थे। जायसी को उज्जवल पथ दिखाने वाले सैयद अशरफ इस्फहान से भारतवर्ष में आये थे। उनकी फारसी की रचनाएँ आज भी प्राप्त हैं। जायसी भी फारसी के पण्डित थे। उन्होंने फारसी मसनवियों को अवश्य पढ़ा था। फारसी मसनवी पद्धति के (पूर्वांकित पंक्तियों में) जो लक्षण बताए गए हैं, वे पद्मावत में प्रायः मिल जाते हैं।

चरितकाव्य और मसनवी —

प्रेमाख्यानक मसनवियों की यह रीति भारतीय चरित काव्यों की प्रबन्ध-रूढ़ियों से बहुत मिलती जुलती है। संस्कृत महाकाव्यों में प्रारम्भ में मंगलाचरण वस्तुनिर्देश आदि बातें हुआ करती थीं। परवर्ती चरित काव्यों विशेषकर जैन-चरित काव्यों में तीर्थंकरों की स्तुति भी उसी तरह मिलती है जैसी मसनवियों में पैगम्बर और उनके साथियों की। कुछ चरित काव्यों में प्रारम्भ में ही कवि अपने आश्रयदाता राजा का वर्णन करता और काव्य लिखने का कारण बताता है। चरितकाव्यों की अन्य रूढ़ियाँ जैसे — सज्जन — प्रशंसा दुर्जन-निन्दा, पूर्व-कवि स्मरण विनम्रता — प्रदर्शन कथा का आधार आदि मसनवियों में नहीं होता। चरित काव्यों की तरह प्रेमाख्यानक मसनवियाँ भी रोमांस अलौकिक घटनाओं से युक्त और प्रेम भावना प्रधान होती हैं तथा उनका सर्ग-विभाजन भी शास्त्रीय नियमों के आधार पर नहीं

बल्कि घटनाओं के वर्णन के आधार पर होना है। इस तरह चरित काव्य और मसनवी के रूप-विधान में बहुत अधिक साम्य है। हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में जो प्रबन्ध-रूढ़ियाँ मिलती हैं वे अधिकतर भारतीय चरित काव्यों की हैं। फारसी की मसनवी पद्धति और हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में जो साम्य दिखाई पड़ता है उसको देखते हुए यह कहना उचित नहीं है कि हिन्दी के सूफी कवियों ने फारसी की मसनवी पद्धति का हूबहू अनुसरण किया है। आचार्य शुक्ल ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "इन प्रेमगाथा काव्यों के सम्बन्ध में पहली बात ध्यान देने की यह है कि इनकी रचना बिल्कुल भारतीय चरित काव्यों की सर्गबद्ध शैली पर न होकर फारसी की मसनवियों के ढंग पर हुई है जिनमें कथा सर्गों या अध्यायों में विस्तार के हिसाब से विभक्त नहीं होती बराबर चली चलती है केवल स्थान स्थान पर घटनाओं या प्रसंगों का उल्लेख शीर्षक के रूप में दिया रहता है।"[1] डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि पद्मावत की मूल प्रति में खण्ड विभाजन नहीं था। उनका कहना है कि परवर्ती लेखकों ने प्रतिलिपियों में खण्ड विभाजन की व्यवस्था की है। और सम्भवतः उन्हीं प्रतियों का अनुकरण करके हिन्दी के परवर्ती सूफी कवियों ने खण्डबद्ध शैली में अपने काव्यों की रचना की है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि पद्मावत की रचना न तो फारसी, मसनवियों की खण्डबद्ध शैली में हुई है न अपभ्रंश के अधिकतर चरित काव्यों की सर्गबद्ध शैली में। अपभ्रंश में हरिभद्र का णमिणाह चरिउ सर्ग बद्ध काव्य नहीं है। प्राकृत में वाक्पति राज का 'गउडवहो' भी सर्ग बद्ध नहीं है पर उसमें एक विषय में सर्वाधिक छन्द एक साथ रखे गए हैं। आठवीं शती में उद्योतन सूरि ने कुवलयमाला नाम का बहुत कथा ग्रंथ लिखा था जो सर्गों या उच्छ्वासों में विभक्त नहीं है। उसी तरह प्राकृत में तरंग लोला और लीलावई नामक कथा ग्रंथ सर्गबद्ध नहीं हैं। इन प्रमाणों के आधार पर डा० नेमिनाथ उपाध्ये ने लिखा है कि "यह असंभव नहीं है कि कभी प्राकृत और अपभ्रंश की कथा के रूप में एक का ग्रंथ भी लिखे जाते हों जो सर्गबद्ध या संधिबद्ध नहीं होते थे और बाद में सर्गों या संधियों का जो व्यवहार होने लगा यह संस्कृत के काव्यों के अनुकरण का फल है।"[2] 'पदमावत की रचना भी प्राकृत अपभ्रंश के उपर्युक्त कथा काव्यों की सर्गहीन पद्धति पर हुई है फारसी की मसनवी पद्धति पर नहीं।'[3] फारसी कवियों के जामी निजामी

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल जा० ग्रं० भूमिका पृ० ८।

२—डा० ए० एन० उपाध्ये कौतूहल कृत लीलावई कहा अंग्रेजी भूमिका पृ० ८८ (बंबई १९४९)

३—डा० शम्भूनाथ सिंह हिन्दी के महाकाव्यों का स्वरूप विकास पृ० ४१८, १९।

पजी प्रभृति मसनवीकारो ने प्रसगो के अनुकूल सवत्र सुर्खियाँ दी हैं । चदायन की अब तक प्राप्त सभी प्रतियो म सुर्खियाँ मिलती हैं। अत स्पष्ट है कि भारतीय पद्धति पर सभी प्रेमाख्यानो म खडो म विभाजन नही हुआ है। हिन्दी के सूफी कवियो न इस सबध म फारसी मसनवियो का अनुकरण किया है।

पदमावत के खड विभाजन को डा० माताप्रसाद गुप्त ने परवर्ती प्रतियों का प्रक्षेप माना है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने उसे कविकृत मानते-न मानते हुये पदमावत म स्थान दिया है। जिन प्रतियो के आधार पर डा० माताप्रसाद गुप्त ने सपादन किया है उससे अधिक प्राचीन प्रतियो म खण्ड विभाजन मिलता है। मुल्ला दाऊद कृत चदायन की प्रति म भी खण्ड विभाजन के रूप म प्राय कडवको के शीर्षक दिए हुए हैं। अत यह एक प्रश्न है कि जायसी ने खडो की व्यवस्था की थी या नही। जायसी कृत पदमावत की प्राप्त प्रतियो का पुन सर्वेक्षण और वैज्ञानिक सपादन करके ही निश्चित रूप से कुछ कहा जा सकता है। चदायन की अबतक प्राप्त सभी प्रतियो म शीर्षक या खण्ड विभाजन उपलब्ध है। अय सूफी प्रमाख्यानो की हस्तलिखित प्रतियो म भी खण्ड विभाजन मिलता है। ऐसा लगता है कि पदमावत म खड विभाजन स्वय जायसी द्वारा ही किया गया है। इसे कविकृत न मानने का कोई कारण नही है।

पूर्वांकित पक्तियो म मसनवी के स्वरूप निरूपण के सिलसिले मे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि मसनवी का खण्डो म विभाजन होता है। यह भी लिखा गया है कि ऐसा नही भी होता। अत पदमावतकार न खण्डो या सर्गों म विभाजन किया हो या न किया हो पर इसम मसनवी पद्धति के प्राय सभी लक्षण मिल जाते हैं। हाँ हम डा० शम्भूनाथ सिंह के शब्दो का खण्डन कर यह मानते हैं कि पदमावत की रचना मसनवी पद्धति पर हुई। इसम प्राकृत-अपभ्रंश की सर्गहीन कथा काव्यो की पद्धति के भी दर्शन होते हैं।

डा० शम्भूनाथ सिंह न यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि सूफी काव्यो को पूणतया अपभ्रंश के तथा भारतीय लोककथाओ की ही परपरा में मानना उचित है। यहाँ उनके तर्कों का उल्लेख कर देना समीचीन है—'शुक्ल जी ने प्रमाख्यानक काव्यों की शैली के बारे म यह भी कहा है कि मसनवी के लिए साहित्यिक नियम तो बस इतना ही समझा जाता है कि सारा काव्य एक ही मसनवी छन्द म हो परम्परा के अनुसार उसम कथारम्भ के पहले ईश्वर स्तुति, पैगम्बर की वन्दना और उस समय के राजा (शाहेवक्त) की प्रशसा होनी चाहिए। ये बातें पदमावत इन्द्रावती मृगावती इत्यादि सबम पाई जाती हैं।'[1] भारतीय

1—प० रामचन्द्र शुक्ल जा ग्र० की भूमिका पृ० ४ (डा० शम्भूनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास पृ० १४७ म उद्धत।

चरित काव्यों की अनेक प्रबन्ध रूढ़ियाँ फारसी की रोमांचक मसनवियों में भी मिलती हैं। जिस तरह हिन्दू और जैन कवि चरित काव्यों में अपने धर्म और विश्वासों के अनुसार प्रस्तावना के रूप में ईश्वर देवता अवतार तीर्थंकर आदि की स्तुति तथा अपने आश्रयदाता की प्रशंसा करते थे और काव्य-रचना का कारण बताते हुए वस्तुनिर्देश लिखते थे उसी तरह हिन्दी के मुसलमान प्रेमाख्यानक कवियों ने भी ईश्वर और अवतार की जगह अपने मजहब के अनुसार अल्लाह और पैगम्बर की स्तुति की है। अतः उन्होंने फारसी के रोमांचक मसनवियों की प्रबन्ध रूढ़ियों का अनुकरण किया है या भारतीय चरित काव्यों की प्रबन्धरूढ़ियों का यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है। ये मुसलमान सूफी कवि फारसी काव्यों की विचारधारा और रूढ़ियों से अवश्य परिचित रहे होंगे अतः हो सकता है कि ये प्रबन्ध रूढ़ियाँ उन्हें फारसी-साहित्य से ही प्राप्त हुई हों पर वे भारतीय चरित काव्यों की भी प्रबन्ध रूढ़ियाँ हैं जो फारसी मसनवियों में भी पाई जाती हैं। इस तरह हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों को अपभ्रंश के चरितकाव्यों तथा भारतीय लोक कथाओं की परम्परा में मानना उचित है। इस सम्बन्ध में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बिल्कुल उचित कहा है कि 'जन साधारण का एक और विभाग जिसमें धर्म का स्थान नहीं था जो अपभ्रंश-साहित्य के पश्चिमी आकार में सीधे चला आ रहा था, जो गाँवों की बैठकों में कथानक रूप से और गान रूप से चल रहा था उपेक्षित होने लगा था। इन सूफी साधकों ने पौराणिक आख्यानों के बदले इन लोक प्रचलित कथानकों का आश्रय लेकर ही अपनी बात जनता तक पहुँचाई।'[1] फारसी की सूफी काव्यधारा का भी उन पर कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा है पर इसे फारसी की रोमांचक मसनवियों की काव्यशैली का पूर्णरूप अनुकरण नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में श्री रामपूजन तिवारी का यह मत सर्वथा सही है कि हिन्दी सूफी काव्य इस परम्परा से प्रभावित तो अवश्य है लेकिन उसमें इसकी हूबहू नकल नहीं की गई है। भारतीय वातावरण में सूफी मत का विकास अरब और फारस जैसा न होकर भिन्न रूप में हुआ। भारतीय चिंताधारा से वह बहुत प्रभावित हुआ। हिन्दी का सूफी काव्य जितना भारतीय विचारधारा से प्रभावित मालूम होता है उतना फारसी या अरबी परम्परा से नहीं।[2] पद्मावत अन्य सूफी प्रेमाख्यानकों की अपेक्षा और भी स्पष्टरूप में भारतीय चरित काव्यों लिखित

१—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका पं० सं० पृ० ७८।

डा० शम्भूनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास पृ० ४८।

२—पं० रामपूजन तिवारी सूफी काव्य परम्परा (निबन्ध) अवन्तिका, अक्टूबर १९५४, पृ० ४५।

कथाओं तथा मौलिक लोककथाओं की शैली के निकट हैं।[1] उपर्युक्त मसनवी पद्धति के विवेचन के साम्य पर यहाँ इतना कह देना पर्याप्त है कि पद्मावत की रचना में मसनवी-पद्धति के प्रायः सभी लक्षण मिल जाते हैं। यह भी स्पष्ट है कि जायसी फारसी के महान पंडित भी थे। अतः उनके पद्मावत में मसनवी काव्यों की शैली पूर्णरूप में मिलती है। यह अवश्य है कि उसमें भारतीय अपभ्रंश, प्राकृत के चरित काव्यों और संस्कृत के प्रबंध काव्यों (महाकाव्यों) का भी सुंदर रूप मिलता है। इसीलिए तो विद्वानों ने कहा है कि 'वस्तुतः पदमावत में भारतीय प्रबन्ध काव्य की शैली और मसनवी काव्य शैली का सुंदर सामंजस्य किया गया है।'[1] प्रारम्भ में ईश्वर स्तुति, पैगम्बर प्रशस्ति, उनके चार यारों का गुणगान, शाहेवक्त शेरशाह का उल्लेख अपने कवित्व का उल्लेख, विशाल वर्णन प्रधान काव्य, वर्णनों का वैविध्य एवं उनका सांगोपांग निरूपण, सात (चौपाई की) पंक्तियों के अनन्तर (दोहे का) एक वृत्त आदि से अन्त तक चौपाई-दोहा छन्दों का ही प्रयोग, उनमें भी सर्वत्र तुकान्तता के प्रयोग आदि ने मिलकर पद्मावत को मसनवी शैली का एक सुन्दर प्रबंध काव्य बना दिया है। मसनवी पद्धति पर ही उसमें वर्णन-वैचित्र्य, वैविध्य और कथावस्तु का कुतूहल ही प्रमुख मानना चाहिए।[2] यहाँ पर यह कह देना संगत है कि सूफी हिन्दी के अनेक सूफी काव्य अवधी मसनवियाँ हैं जिनमें भारतीय प्रबंध-काव्यों की शैली का भी सुंदर रूप में समन्वय हुआ है। पद्मावत का काव्य-सौन्दर्य नामक ग्रंथ में हिन्दी तथा फारसी के प्रमाख्यानक मसनवी काव्यों के साम्यासाम्य का निरूपण करते हुए इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि यद्यपि पद्मावत, इन्द्रावती आदि काव्य फारसी की मसनवी-पद्धति पर लिखे गए हैं तथापि उनमें भारतीय प्रबन्ध काव्यों अथवा अपभ्रंश के चरित काव्यों की शैली का भी चरम परिपाक मिलता है।

निष्कर्ष

संक्षेप में उपर्युक्त समस्त विवेचन का यह निष्कर्ष है कि हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानकों की रचना में प्रायः फारसी मसनवी पद्धति को ग्रहण किया गया है पर उसका अन्धानुकरण नहीं किया गया है। हिन्दी के सूफी प्रेमगाथाकारों ने अपने कथानकों के लिए या तो लोकगाथाओं को विशेष महत्व दिया है अथवा पौराणिक या ऐतिहासिक कहानियों को ही चुना है और जहाँ कहीं उन्होंने कोरी

१—डा० शम्भूनाथ सिंह : हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ४१८-४२०।
२—डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २८६ ४४८।
३—डा० रामकुमार वर्मा का एक पत्र १३।१२।१९६४ ई०।

कल्पना से काम लिया है अथवा मुस्लिम धर्मकथाओं का आश्रय ग्रहण किया है वहाँ पर भी उन्होंने उस पर भरसक भारतीय रंग चढ़ाने के प्रयत्न किए हैं। मंगलाचरण जैसे प्रसंगों के विषय में वे केवल मसनवी काव्यों का ही अनुकरण नहीं करते, जैनों के चरितकाव्यों में भी इसी प्रकार का विधान विद्यमान है। यहाँ पर हमें पैगम्बरों और नबियों की स्तुति की जगह तीर्थंकरों की वन्दना मिलती है। शाहेवक्त की प्रशंसा की जगह आश्रयदाता के लिए कहे गए देव भक्ति सूचक शब्द दीख पड़ते हैं तथा प्रायः एक ही प्रकार से बतलाए गए आत्मपरिचय भी उपलब्ध होते हैं जिनमें अपनी विनम्रता सूचित की गई रहती है। सूफी प्रेमाख्यानों के वर्ण्य विषय तथा उनके विकास क्रम को प्रभावित करने वाले आदर्शों की ओर ध्यान देने से पता चलता है कि उनके स्वरूप निर्माण में अनेक प्रकार के कारणों ने सहयोग प्रदान किया होगा और इसी कारण इनका महाकाव्यत्व भी बहुत भिन्न लक्षणों पर आश्रित हो सकता है। सूफी प्रेमाख्यान एक ऐसी रचना है जिसमें किसी प्रबंध काव्य के सभी तत्व वर्तमान हैं किन्तु जिसमें इनके साथ ही कथा आख्यायिका जैन चरित काव्य धर्म कथा महाकाव्य एवं मसनवी की भी विशेषताओं का समन्वय हो गया है और यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। सभी उपलब्ध सूफी प्रेमाख्यानों का आकार प्रकार ठीक एक समान नहीं कहला सकता और न ऐसा एक भेद उसके रचना-कालानुसार भी ठहराया जा सकता है। परन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि उनमें कुछ ऐसी विलक्षणता है जो उन्हें असूफी प्रेमाख्यानों से भी पृथक कर देती है।"[1] निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि शैली की दृष्टि से पदमावत में फारसी मसनवी और भारतीय प्रबन्ध काव्य की पद्धतियों के सुन्दर सामंजस्य के कारण अद्भुत सौन्दर्य आ गया है।

१—प० परशुराम चतुर्वेदी सूफी प्रेमाख्यानक साहित्य (हिन्दी साहित्य) पृ० २७८।

९

जायसी का रहस्यवाद

रहस्यवाद

(रहस्य श- जिस सना से व्युत्पन्न है उसके पाँच अथ होते हैं-(१) एकान्त गुप्तता (२) छिपन का स्थान (३) कोई अनात बात, (४) स्त्री-पुरुष-सभोग, (५) कानून स समत बोह अनुबध।) शानु तल म- रहस्याख्यायीव स्वाहि मृदु कर्णान्तिकचर या रामचरित म रहस्य साधूनामनुपधि विशुद्ध विजयते इसी गोपन आचरण या गुप्त बात के अथ म आया है। साहित्य स भिन्न अथ म आकर रहस्य शब्द कुछ उपदेशात्मक अथ देने लगता है जसे याज्ञवल्क्य स्मनि म धन भिस्यात दोपरतु रहस्य व्रतमाचरेत या भगवदगीता म भक्तोऽसि म सखा चेति रहस्य ह्येतदुत्तमम। (अंगरेजी का शब्द मिस्टिक या मिस्टिसिज्म यूनानी धातु मुस्टीस से बना है जिसका अथ है जीवन और मत्यु की सचाइयों का गुप्त ज्ञान जानने वाला व्यक्ति।)

(मूलत रहस्यवाद शब्द सस्कृत के रहस्य और वाद से बना है किन्तु आधुनिक हिन्दी म यह शब्द अपने वतमान अथ म सस्कृत स गृहीत न होकर आग्ल भाषा के मिस्टिसिज्म के अथ म उसी के तौर पर प्रयुक्त होने लगा है।)

सभ्यता के ऐतिहासिक विकास के साथ-साथ रहस्यवाद की व्याख्या भी बदलती गई है जो हमारे लिये वदिक काल म रहस्यमय था वह आज भी शाश्वत सनातन भाव से रहस्यमय है। ऐसा मानना मनुष्य की बुद्धि के सारे वभव और कृतित्व का अपमान करना है। 'चाहे आसुरी बाबुली मिस्री चीनी भारतीय ईसाई, इस्लामी कोई भी रहस्यवाद हो उसके मूल म दो-चार बातें एक सी मिलती हैं और वे कविता म रहस्यवाद के अध्ययन म बहुत उपयोगी हैं एक सो काल के यन्त्र स

१-प्रभाकर माचवे रहस्यवाद आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रवत्तियाँ पृ० १

२-पद्मावत का काव्य सौन्दय रहस्यवाद।

परे कोई वास्तविकता है यानी वह जन्म मृत्यु के बन्धनों से परे अजन्मा-अमर है। मनुष्य उसे पाना चाहता है। उस अज्ञात अखण्डता के प्रति उसके मन में एक निरंतर अन्वेषण भावना काम करती रहती है और पाप या बुराई कुछ नहीं है केवल भास मात्र है। वह है तो इसीलिए कि विश्व को सदृश स्वयं शासित मानने से अपूर्णता प्रगट होती है। इस दृष्टि से रहस्यवाद की जो दो चार परिभाषाएं हमारे काम की मिलती हैं वे इस प्रकार की हैं

(१) परमोच्च के साथ प्रत्यक्ष मिलन के परम पवित्र आनन्द को उपलब्ध करने का मानवीय मन का प्रयत्न रहस्यवाद है (प्रिंगल पटिसन दि आइडिया आफ गाड)।

(२) प्रेम मार्ग में परमात्मा की प्राप्ति का और उसके लिये आवश्यक सफल सेवा के आदेश से प्रेरित किसी व्यक्ति के आत्म निरपेक्ष आग्रह को रहस्यवाद कहते हैं (टी० एच० ह्यू दि फिनामामिनल बेसिस आफ मिस्टिसिज्म पृ० ६०)।

(३) रहस्यवाद आत्म का परात्म से ऐसा सम्बन्ध है जिसमें अपने वयक्तिक हेतुओं से परे वह महत्तर आदर्शों की प्राप्ति के लिये सामरस्य से या प्रेम से प्रयत्न करे। इस प्रकार रहस्यवाद विश्व की अखण्डता के साथ भाव सम्बन्धों का आनन्दमय सर्जनपण है (हैवलाक एलिस)।

(४) रहस्यवाद एक प्रकार की दिव्य अनुभूति है सिद्धान्त नहीं, वह तो एक प्रकार का आध्यात्मिक वातावरण है कोई दर्शन पद्धति नहीं (स्पर्जियन)।

आज का व्याख्याकार रहस्यवाद को आन्तरिक सामंजस्य स्थापित करने की एक कला मानता है, जिसके द्वारा मनुष्य विश्व-ब्रह्माण्ड को सम्पूर्ण और अखंडित समझता है।[1] एक समय था जब रहस्यवादी से तात्पर्य उस व्यक्ति से था जिसको परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान और रहस्यों का पता हो और इस बात पर जोर दिया जाता था कि वह गुरु द्वारा प्रदत्त उस ज्ञान को स्वयं तक सीमित रखे। सूफिया भी यही अरिफ उस साधक को कहते हैं जो ईश्वर के विशेष कृपापात्र हैं और भगवान उन पर अनुग्रह करके इस रहस्य को साक्षात्कार कराता है।[2] लेकिन ऐसे लोगों की संख्या अवश्य सीमित है जो इस रहस्य के जानने के अधिकारी हैं और जिन्हें इस मुख्य गुह्य ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतएव यह बिलकुल स्पष्ट है कि साधना के क्षेत्र में रहस्यवाद से जो कुछ समझा जाता था ठीक वही आज नहीं समझा जाता है वैसे प्राचीन काल का साधना क्षेत्र वाला रहस्यवाद तथा आधुनिक काल का रहस्यवाद—दोनों एक ही भावना—परमात्मा और आत्मा के अन्तरंग और गहरे

१—राधाकमल मुकर्जी थ्योरी एण्ड आर्ट आफ मिस्टीसिज्म, भूमिका पृ०९ १९३७

२—श्री रामपूजन तिवारी सूफी मत—साधना और साहित्य पृ० ५।

सम्बन्ध पर आधारित है।[1]

हिंदी के विद्वानों ने भी रहस्यवाद की परिभाषाएं दी हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल[2] ने लिखा है कि जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है वहाँ रहस्यवाद होता है। डा० श्यामसुन्दरदास का कथन है कि चिंतन के क्षेत्र का ब्रह्मवाद कविता के क्षेत्र में जाकर कल्पना और भावुकता का आधार पाकर रहस्यवाद का रूप पकड़ता है[3]। डा० रामकुमार वर्मा का मत है कि रहस्यवाद जीवात्मा की अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। जीवात्मा की सारी शक्तियाँ इसी शक्ति के वैभव और प्रभाव से ओतप्रोत हो जाती हैं।[4] प्रसाद जी[5] के मत से अपरोक्ष अनुभूति समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहम् का इदम् से समन्वय कर देना रहस्यवाद है। व्यष्टि दृष्टि को उन्होंने छायावादी कहा है और समष्टि दृष्टि को रहस्यवादी कहा है। महादेवी वर्मा ने अपनी सीमा को असीम तत्व में खो देने को रहस्यवाद कहा है। प्रायः सभी विद्वानों ने दृश्य जगत में व्याप्त उस अज्ञात एवं अगोचर-असीम सत्ता से रागात्मक सम्बन्ध स्थापन की भावना को रहस्यवादी भावना कहा है। रहस्यवाद में अन्तर्गत कवि उस अज्ञात एवं विराट सत्ता के प्रति अपने ऐसे भावोद्गार व्यक्त करता है जिसमें सुख दुःख आनन्द विषाद हास परिहास संयोग-वियोग आदि घुल मिल रहते हैं। वह अपनी ससीमता को अव्यक्त शक्ति की असीमता में लीन करके एक व्यापक आनन्द का अनुभव किया करता है।

साधना या भावना के रूप में रहस्यवाद आध्यात्मिक अनुभूति की वह अवस्था है जिसमें प्रेमी प्रियतम के, भक्त ईश्वर के या साधक साध्य के अपरोक्ष साक्षात्कार का चरम प्रयत्न करता है। इसके अन्तर्गत एक सूक्ष्म आध्यात्मिक दृष्टि और परिपक्व आत्मानुभूति के द्वारा निखिल सृष्टि में परिव्याप्त एक ही दिव्य सत्ता को देखने की चेष्टा की जाती है। रहस्यवाद का क्षेत्र अंतिम सत्य और अनन्त की खोज या व्यक्तिगत अनुभूति (पर्सनल रियलाइजेशन) और फिर उस सत्य को जीवन में अनुभव करने तक ही सीमित है। आत्मा, परमात्मा, जीवन और जगत

१—श्री रामपूजन तिवारी सूफी मत—साधना और साहित्य पृ० ५।
२—पं० रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ६६८।
३—डा० श्यामसुन्दरदास कबीर ग्रंथावली भूमिका पृ० ५६।
४—डा० रामकुमार वर्मा कबीर का रहस्यवाद पृ० ७ १९४४
५—जयशंकरप्रसाद काव्य कला तथा अन्य निबंध पृ० ६९।

के सम्बन्ध में गम्भीर मनन चिन्तन और विचार करना दर्शन का विषय है। रहस्यवाद जीवन में अनेक प्रकार के विराट अनादि और असीम के प्रति महत् रागात्मक अनुभवों अनुभूतियों का फल है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल[1] ने विद्वत्तापूर्ण विचारों और प्रमाणों के आधार पर यह स्पष्ट कर दिया है कि किस प्रकार आर्य जाति के तत्व चिन्तकों द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवादी सिद्धान्त को सामी पैगम्बरी मतों में रहस्य भावना के भीतर स्थान मिला। यहूदी ईसाई और इसलाम मतों के बीच तत्वचिन्तन की पद्धति या ज्ञान का स्थान न होने के कारण अद्वैतवाद का ग्रहण रहस्यवाद के रूप में ही हो सकता था। भारतवर्ष में तो यह ज्ञान क्षेत्र से निकला और अधिकतर ज्ञान क्षेत्र में ही रहा पर अरब फारस आदि में जाकर वह भाव क्षेत्र के बीच मनोहर रहस्य भावना के रूप में फैला। रहस्योन्मुख सूफियों और पुराने कैथोलिक ईसाई भक्तों की साधना समान रूप से माधुर्य भाव की ओर प्रवृत्त रही। जिस प्रकार सूफी ईश्वर की भावना प्रियतम के रूप में करते थे उसी प्रकार स्पेन इटली आदि योरोपीय प्रदेशों के भक्त भी। जिस प्रकार सूफी हाल की दशा में उस माशूक से भीतर ही भीतर मिला करते थे उसी प्रकार पुराने ईसाई भक्त साधक भी दुलहिनें बनकर उस दूल्हे से मिलने के लिए अपने अन्तर्देश में कई खण्डों के रंगमहल तैयार किया करते थे। ईश्वर की पति रूप में उपासना करने वाली सन्त टेरेसा आदि कई भक्तिनें भी योरप में हुई हैं।

अद्वैतवाद अद्वैत भावना पर आश्रित रहस्यवाद

अद्वैतवाद मूलतः एक दार्शनिक सिद्धान्त है। इसके दो पक्ष हैं—(१) आत्मा और परमात्मा की एकता और (२) ब्रह्म और जगत की एकता। इन दोनों का सम्मिलित रूप सर्ववाद है—जिसके लिए सर्व खल्विदं ब्रह्म कहा गया है। गीता के दसवें अध्याय में भगवान ने अपनी विभूतियों का जो सर्ववाद की भावात्मक प्रणाली पर निरूपण किया है वह अत्यन्त रहस्यपूर्ण है। जायसी उसमान आदि सूफी कवियों ने प्रकृति की समस्त विभूतियों में परम प्रिय की प्रतिभासित सत्ता का अनुभव किया है। रहस्यवाद दो प्रकार का होता है—भावात्मक और साधनात्मक। हमारे यहाँ योगमार्ग साधनात्मक रहस्यवाद है। तन्त्र और रसायन भी रहस्यवाद हैं। अद्वैतवाद या ब्रह्मवाद को लेकर चलने वाली भावना से सूक्ष्म और उच्चकोटि के रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है।[2]

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रंथावली भूमिका पृ० १८६-९० ।
२—वही पृ० १९० ।

'अद्वैतवाद का प्रतिपादन सबसे पहले उपनिषदों में मिलता है।[1] उपनिषदों में केवल रहस्य की टोह की भावना ही नहीं, उसे व्यक्त करने में रहस्यवादी कविता शैली भी अपनाई गई है। उपनिषद शांकरमत वेदान्त बौद्धों का शून्यवाद तान्त्रिकों का समाज द्रोह आदि के प्रभाव भी आरम्भिक रहस्यवाद के मूल में हैं।[2] शुक्ल जी का मत है कि 'अवतारवाद का मूल भी रहस्य भावना है।[3] 'पति या प्रियतम के रूप में भगवान की भावना को वैष्णव भक्तिमार्ग में माधुर्य भाव कहते हैं। इस भावना की उपासना में रहस्य का समावेश अनिवार्य और स्वाभाविक है। (भारतीय भक्ति का स्वरूप रहस्यात्मक न होने के कारण इस माधुर्य भाव का अधिक प्रचार नहीं हुआ। आगे चलकर मुसलमानी जमाने में सूफियों की देखा देखी इस भाव की ओर कृष्ण भक्ति शाखा के कुछ भक्त प्रवृत्त हुए। इनमें मुख्य मीराबाई हुईं जो 'लोक लाज खोकर' अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रेम में मतवाली रहा करती थीं। उन्होंने एकबार कहा था कि कृष्ण को छोड़कर और पुरुष है कौन? सारे जीव स्त्री रूप हैं। सूफियों का असर कुछ और कृष्ण भक्तों पर भी पूरा पूरा पाया जाता है। चैतन्य महाप्रभु में सूफियों की प्रवृत्तियाँ साफ झलकती हैं। जैसे सूफी कव्वाल गाते गाते 'हाल' की दशा में हो जाते हैं वैसे ही महाप्रभु की मण्डली भी नाचते-नाचते मूर्च्छित हो जाती थी। यह मूर्च्छा रहस्यवादी सूफियों की रूढ़ि है।

शुक्ल जी ने ठीक ही लक्षित किया था कि मीराबाई के 'लोक-लाज खोने' और श्रीकृष्ण के प्रेम में मतवाली रहने के मूल में सूफियों का भी प्रभाव है। भारतीय सूफी-सन्तों कवियों की परम्परा तो पुरानी है ही साथ ही हिन्दी प्रेमगाथावाली परम्परा भी बड़ी पुरानी है। जायसी से लगभग पौने दो सौ वर्ष पूर्व मौलाना दाऊद दलमई (च नायन १३७९) ने सूफी प्रेम परम्परा का एक महत्व पूर्ण काव्य लिखा है। इस ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर रहस्यवाद के सङ्केतों की सुन्दर योजना हुई है।

'मीराबाई पर तो सूफी प्रभाव है ही, साथ ही 'कबीर दादू आदि सन्तों के पन्थों में प्रेमतत्व बिल्कुल सूफियों का है। इनमें से दादू दरिया साहब तो स्वाभिरस सूफी ही जान पड़ते हैं। कबीर में माधुर्य भाव जगह जगह पाया जाता है। वे कहते हैं —

हरि मोर पिय मैं राम की बहुरिया।'[4]

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली भूमिका, प० १५९-६०।
२—प्रभाकर माचवे हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियां, (रहस्यवाद), प० ५।
३—पं० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, प० १६१।
४—वही पृष्ठ १६२।

'राम की बहुरिया' कभी तो प्रिय से मिलने की उत्कण्ठा और मार्ग की कठिनता प्रकट करती है, जैसे –

मिलना कठिन है, कैसे मिलौंगी पिय जाय ?
समुझि सोचि पग धरौं जतन से बार बार डगि जाय।
ऊँची गैल राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।

और कभी विरह दुःख निवेदन करती है।[1] और इन समस्त स्थलों पर उनमें सूफी प्रभाव द्रष्टव्य है। सचमुच कबीरदास में जो रहस्यवाद पाया जाता है वह अधिकतर सूफियों के प्रभाव के कारण।[2]

जायसी के समय सूफी रहस्य प्रवृत्ति के अतिरिक्त हठयोगियों बौद्ध, शून्य *वादियों तान्त्रिकों रसायनिकों आदि की साधनात्मक रहस्य की प्रवृत्तियाँ भी विद्य*मान थी। उन्होंने हठयोगियों के अन्य साधानात्मक उपादानों के साथ ही उनकी रहस्य की प्रवृत्ति और ईश्वर को मन के भीतर ही ढूंढने और समझने की प्रवृत्ति को भी गृहीत कर लिया है। कहा जा सकता है कि पदमावत का रहस्यवाद मूलतः अद्वैत भावना पर आश्रित रहस्यवाद है।

रहस्यवादी भक्त परमात्मा को अपने परम साध्य एवं प्रियतम के रूप में देखता है। वह उस परम सत्ता के साक्षात्कार और मिलन के लिए वैकल्य का अनुभव करता है जैसे मेघ और सागर के जल में मूलतः कोई भेद नहीं है फिर भी मेघ का पानी नदी रूप में सागर से मिलने को व्याकुल रहता है। ठीक उसी प्रकार की अभेद जन्य व्याकुलता एवं मिलनजन्य विह्वलता भक्त की भी होती है। जायसी की रहस्योन्मुखता भी इसी श्रेणी की है। कबीरदास में जो रहस्यवाद पाया जाता है वह अधिकतर सूफियों के प्रभाव के कारण। रहस्यमयी परोक्षसत्ता की ओर संकेत करने के लिए जिन दृश्यों को वे सामने करते हैं वे अधिकतर वेदान्त और हठयोग की बातों के खड़े किए हुए रूपक मात्र होते हैं। अतः कबीर में जो कुछ रहस्यवाद है वह सर्वत्र एक भावुक या कवि का रहस्यवाद नहीं है। हिन्दी में *कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी* भावुकता बहुत ही ऊँची कोटि की है। वे सूफियों की भक्ति-भावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूप माधुर्य की छाया देखते हैं और कहीं सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों का 'पुरुष' के समागम के हेतु प्रकृति के शृंगार, उत्कण्ठा या विरह विकलता के रूप में अनुभव करते हैं। दूसरे प्रकार की भावना पदमावत में अधिक मिलती है।[3]

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली (भूमिका) पृ० १६०– ३।
२ वही, पृ० १६४। ३ पं० रामचन्द्र शुक्ल, जायसीग्रन्थावली,(भूमिका) पृ० १६४।

उस रहस्यमयी सत्ता का आभास देने के लिए जायसी बहुत ही रमणीय और मर्मस्पर्शी दृश्य सामने उपस्थित करने में समर्थ हुए हैं जैसे पद्मावती के पारस रूप का प्रभाव

'जहँ लगि दसन जोति निरमई । बहुतै जोति जोति ओहि भई ॥
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती । रतन पदारथ मानिक मोती ॥
जहँ जहँ बिहँसि सुभावहि हँसी । तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी ॥
दामिनि दमकि न सरवरि पूजी । पुनि ओहि जोति और को दूजी ॥'[1]
नयन जो देखा कवल भा निरमल नीर सरीर ।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर ॥[2]

प्रस्तुत पंक्तियों में उस परोक्ष ज्योति पुंज की ओर अलौकिक दीप्ति के द्वारा जो संकेत किया गया है उसकी रमणीयता और प्रभाव विदग्धता अनुपम है। पद्मावत में लौकिक सौंदर्य तत्वों के माध्यम से अलौकिक सुंदरतम सत्ता की ओर इंगित करना कवि का एक महत् प्रतिपाद्य था वह अवसर मिलने पर उस सत्ता की ओर इंगित करने से नहीं चूकता।

अन्योक्ति समासोक्ति

पदमावत को अन्योक्तिपरक ग्रंथ सिद्ध करने के अनेक प्रयत्न किए गए हैं। और प्राय इसके लिए 'तन चितउर मन राजा कीन्हा । हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा' वाली पंक्तियाँ पेश की गई हैं और कहा भी गया है पद्मावत के प्रणेता जायसी ने ग्रंथ के अंत में स्पष्ट घोषित किया है कि उनकी रचना एक कथात्मक अन्योक्ति है। कथा के अंत में अन्योक्ति के रूप में ...ज्ञान का मार्टीफिकेट जोड़ दिया है। जायसी की अन्योक्ति के तीन पक्ष हैं— पण्डितों द्वारा किया गया अर्थ, सूफी साधनापरक अर्थ और कथा पक्ष। वास्तव में जायसी की कथा अन्योक्ति ही है। जायसी पर गीता के बुद्धि योग का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है।

इस प्रसंग में इतना कहना पर्याप्त है कि जिन पंक्तियों (तन चितउर मन राजा कीन्हा) के आधार पर जायसी की सम्पूर्ण कथा को अन्योक्ति सिद्ध करने का प्रयास किया गया है और जायसी की अन्योक्ति का विवेचन भी किया गया है— वे पंक्तियाँ जायसीकृत नहीं हैं। वे पंक्तियाँ पद्मावत में प्रक्षिप्त हैं और यदि वे प्रक्षिप्त न भी हों तो भी पद्मावत में समासोक्ति-पद्धति ही सिद्ध होती है।

जायसी का प्रकृतिमूलक रहस्यवाद

प्रकृतिमूलक (नेचुरल) रहस्यवाद में प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा ब्रह्म् का इसमें सम्बन्ध स्थापित करने का चरम प्रयत्न पाया जाता है। मरिकर प्रकृति

1—जायसी ग्रन्थावली, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी पृ० ४४।
2—वही पृ० २५ दोहा ८।

की शक्तियों में किसी अनन्त सत्ता का भान होता है। उसे ऐसा लगता है कि प्रकृति के कण-कण में एक अनन्त सत्ता अनुस्यूत है। प्रकृति के समस्त तत्व उसी अनन्त सत्ता द्वारा चालित अनुशासित और आकर्षित हैं। दृश्य जगत-प्रकृति उसकी सर्जना है (आकर सब जगत यह साजा[1]) उसने ही चाँद सूर्य तारे वन, समुद्र पर्वत इत्यादि की भी सर्जना की है—

सरग साजि कै धरती साजी। बरन बरन सृष्टी उपराजी।
साजे चाँद सुरुज औ तारा। साजे बन कहँ समुद पहारा[2]॥

इस समस्त सृष्टि का परिचालन उसी के इङ्गित पर हो रहा है—

'साजइ सब जग साज चलावा। औ अस पाछैं ताजन लावा।
तिन्ह ताजन डर जाइ न बोला। सरग फिरइ औ धरती डोला॥
चाँद सुरुज कह गहन गरासा। औ मेघन्ह कह बीजु तरासा।
नाचे डोर काठ जस नाचा। खेल खेलाइ फरि गहि खाँचा॥'[3]

यह भावना वेद, उपनिषद[4] कुरान और सूफी[5] कवियों में समान रूप से पाई जाती है।

सूफियों की धारणा है कि सृष्टि के रोम रोम में झलक जो दिखाई दे रही है, वह उसी (परम आलम्बन) की झाँकी है जो हम लुभाने के लिए ही हो रही है। सितारे चमत्कारक ध्याप उसी की ओर खिंच रहे हैं चाँद उसी की ओर बढ़ा जा रहा है, सूरज भी उसी के पर में पड़कर जल रहा है। संक्षेप में उसने चारों ओर प्रेम का बीज बिखेर दिया है। उसने उभरकर सबको आलम्बन से आश्रय बना लिया है और इसी से हम भी उसके वियोग में पड़ गए हैं।[6]

मानव प्रेम की कहानी के भीतर सूफी साधना में मान्य इसी विश्वास के अनुसार आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना ही जायसी का लक्ष्य प्रतीत होता है। जामी ने भी कहा था 'अल्लाह इस परम सौन्दर्य का हेतु है और वह प्रेम चाहता है प्रेम से प्रभावित होकर उसने अपने मुख का आदर्श लिया और उसमें अपना रूप अपने आप व्यक्त करने लगा। देश काल की रचना करके उसने एक उपवन का डौल डाला[7]

१—चित्ररेखा पृ० ६४। २—वही पृ० ६५।
३—वही पृ० ६६।
४—"दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः" ।१२। तस्य वात पृथिवी शरीरम् "ज्योतिष्मयमानि स्तत्सावरस्य।
५—देखिये निकल्सन कृत जलालुद्दीन रूमी की कविता और चन्द्रायन, मुल्ला दाऊद कृत (प्रारम्भिक पंक्तियाँ।)
६—चं० चन्द्रबली पांडेय, तसव्वुफ अथवा सूफीमत पृ० ११६।
७—चं० चन्द्रबली पांडेय तसव्वुफ अथवा सूफीमत पृष्ठ ११८।

जिसका प्रत्येक पक्ष उसके कमाल को प्रत्यक्ष करता है[1]।

भावात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा के लिए प्रकृति में परमात्मा की झाँकी देखना स्वाभाविक ही नहीं अनिवार्य है। यही कारण है कि पाश्चात्य एवं भारतीय सभी रहस्यवादी प्रकृति के पर्दे के पीछे परमात्मा के दर्शन करते रहे हैं। उपनिषदों में इस भावना का प्रतिपादन अत्यन्त भावमय एवं रहस्यात्मक शैली में किया गया है। इस स्थल पर प्रकृति के समस्त पदार्थों को उसी विराट ब्रह्म का अंग रूप कहा गया है-(तस्यैव चाव पृथिवी शरीर आदि[2])। पुरुष सूक्त का तो मूल प्रतिपाद्य ही समस्त प्रकृति का विराट ब्रह्म रूप में वर्णन है। जलालुद्दीन रूमी ने भी प्रकृति के कण कण में परमात्मा की सत्ता की व्यक्तिगत अनुभूति की थी। वर्ड्सवर्थ और शैली की अनेक कविताओं में भी कहीं-कहीं प्रकृति की अन्तरात्मा की ओर रहस्यपूर्ण संकेत मिलते हैं।[3]

जायसी ने प्रायः प्रकृति के माध्यम से परोक्ष सत्ता की ओर संकेत किया है। सिंहलद्वीप की अमराई की अनिर्वचनीय सुखदाई छाया का वर्णन करते हुए कवि ने उस छाया का आध्यात्मिक संकेत भी दिया है —

घन अमराउ लाग चहुँ पासा। उठा भूमि हुत लागि अकासा
तरिवर सब मलय गिरि लाई। भइ जग छाँह रैनि होइ आई॥
मलय-समीर सोहावन छाहाँ। जेठ जाड़ लागै तेहि माहाँ।
ओही छाँह रैन होइ आवै। हरियर सबै अकास देखावै॥
पथिक जो पहुँचै सहिकै घामू। दुख बिसरै सुख होइ बिसरामू।
जेइ वह पाई छाँह अनूपा। फिरि नहिं आइ सहै यह धूपा॥[4]

जायसी ने प्रकृति का चित्रण साधक के रूप में भी किया है। मानव की भाँति समस्त प्रकृति भी उसी परमप्रिय की साधना में निरत रहती है। मानसरोवर भी प्रियतम की साधना में संलग्न है। पद्मावती विराट ब्रह्म-स्वरूप है- सरोवर भक्त या साधक है। भक्त भगवान के अनिर्वचनीय रूप-सौन्दर्य को देखकर विस्मय विमुग्ध है—

'सरवर रूप बिमोहा, हिये हिलोरहि लेइ।
पावँ छुवै मकु पावौं, एहि मिस लहरहिं देइ॥'[5]

सम्पूर्ण सृष्टि उस प्रियतम के अमर धाम तक पहुँचने के लिए प्रगतिमान

१—दी मिस्टिसिज्म आफ इस्लाम, पृ० ८०—८१।

२—ब्रह्माण्डोपनिषद् ३।१२।

३—देखिए जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी पृ० १६५—६६।

४—जायसी ग्रन्थावली, नागरीप्रचारिणी सभा काशी पृ० १०—११।

५—वही पृ० २४।

है, किन्तु वहाँ तक पहुचने के लिए साधना की पूर्णता अत्यंत आवश्यक है अपूर्णता की स्थिति मे वहाँ पहुच पाना अत्यन्त कठिन है—

'धाइ जो बाजा के सर साधा। मारा चक्र भएउ दुइ आधा।
चाँद सुरुज औ नखत तराई। तेहि डर अन्तरिख फिरहिं सबाई॥
पवन जाइ तह पहुँच चाहा। मारा तस लोटि भुइ रहा।
अगिनि उठी उठि जरी नियाना। धुवा उठा उठि बीच बिलाना।
पानि उठा उठि जाइ न छूवा। बहुरा रोइ आइ भइ चूआ॥

साधक सरोवर अपने प्रियतम पदमावती के चरण स्पर्शमात्र से निर्मल एव रूपवान हो जाता है। उसके दर्शन मात्र से ही वह आनन्दातिरेक की लहर से लहर उठता है। उसके युग युग के कल्मष विनष्ट हो जाते हैं। उसकी युग युग की साधना जन्य परितप्तता शीतलता मे परिणत हो जाती है—

कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहा लगि आई।
भा निरमल तिन्ह पायन परसे। पावा रूप रूप के दरसे।
मलय समीर बास तन आई। भा सीतल गै तपनि बुझाई॥

उस परम रूपा पद्मावती के दर्शन एव स्पर्श जन्य प्रभाव की इन पंक्तियों मे सुन्दर रहस्यमय अभिव्यक्ति हुई है। कभी कभी जायसी गूढ दार्शनिक सिद्धान्तो की व्यजना प्रकृतिमूलक अन्योक्तियों एव रूपको के माध्यम से इतने सुन्दर और उत्कृष्ट ढग से करते हैं कि बुद्धि चमत्कृत हो जाती है।

सृष्टि के समस्त महाभूत उसी परम सत्ता तक पहुचने के लिए गतिशील हैं। सृष्टि के पूर्व मे मात्र एक तत्व था। सब कुछ अद्वैत रूप था। न जाने किस निर्मोही ने जीव को प्रियतम से और धरती को स्वर्ग से अलग कर दिया पहले धरती और स्वर्ग दोनो मिले हुए थे—एक थे। न जाने किसने जीव और ईश्वर मे भेदकता की सृष्टि की—

धरती सरग मिले हुत दोऊ। केइ निनार कै कीन्ह बिछोऊ॥

प्रकृति के सश्लिष्ट चित्रण मे भी जायसी ने सुन्दर रहस्यपूर्ण सकेत किए हैं—इस प्रसग मे किलकिला समुद्र का वर्णन दिया जा सकता है —

धरती नइ सरग नहिं बाटा। सकल समुद जानहु आ टाटा।

सातवें सागर के वर्णन मे कवि ने समुद्र के आध्यात्मिक पक्ष का उद्घाटन किया है।

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा।
भा अँधियार रैन मसि छूटी। भा भिनुसार किरिन रवि फूटी॥
अस्ति-अस्ति सब साथी बोले। अंध जो अहे नैन बिधि खोले।
जा अस आव साधि तप जोगू। पूजै आस मान रस भोगू॥[1]

१—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, पृ ६७।

इन पंक्तियों में मानसरोवर के भीतर उस प्रियतम की विकन्ता से उत्पन्न विश्व व्यापी आनन्द और हर्षातिरेक की व्यंजना की गई है। 'उस अंतर्ज्योति का आभास मात्र पाकर मानस (सातवां मानसरोवर और हृदय) ज्योतित हो उठा। पुरइन-पात और फूल घनदल के रूप में उस नाम मानसर में चारों ओर व्याप्त हो गया। इस ज्योति के साक्षात्कार मात्र से अज्ञान नशान्धकार का विनाश हो गया।' स्पष्ट है कि यहां प्रियतम की अवस्थिति के मूलभूत कारण स्वरूप अन्तर्जगत और बाह्य जगत में अद्भुत सामंजस्य और बिम्ब प्रतिबिम्ब स्थिति है। इन पंक्तियों में परोक्ष सत्ता के संकेत उसकी अपार ज्योति एवं तज्जन्य विश्वव्यापी आनन्द और प्रफुल्लता आदि की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। यह सत्ता हृदय में ही है—

'पिउ हिरदय मह भेंट न होई। का रे मिलाव कहौं केहि रोई।

कबीर ने भी— ऐसा लो नहिं तैसा लो मैं केहि बिधि कहा अनूठा लो।
भीतर कहौं तो जगमय लाज, बाहर कहौं तो झूठा लो—
बाहर भीतर सकल निरंतर गुरु परतापैं दीठा लो।'

कहने के बावजूद भी कहा था कि प्रियतम तो पास में ही है मगर लोग जगत में ढूंढने जाते हैं—

मोको कहाँ ढूंढे बंदे मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद ना काबे कैलास में।
खोजी होय, तो तुरत मिलिहौं पलभर की तालास में।
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये। भाग बड़े घर बैठे आए॥

शुक्ल जी ने ठीक ही कहा है कि कबीर के चित्रों में रूपमंजरी की न वह अनेकरूपता है और न मधुरता। जायसी के रूप संकेत अत्यन्त रमणीय और मर्मस्पर्शी हैं।'

प्रकृति के बीच दिखाई देने वाली सम्पूर्ण दीप्ति उसी परोक्ष सत्ता से ही उद्भासित है। निखिल संसृति का आकार और सौन्दर्य उसी की ज्योति का प्रतिभास और छाया स्वरूप मात्र है। इस बात का आभास पद्मावती के प्रति रत्नसेन के ये वाक्य दे रहे हैं—

अनु धनि ! तू निसिअर निसि माहाँ। हौं दिनिअर जेहि के तू छाहाँ।
चाँदहि कहाँ जोति औ करा। सुरुज के जोति चाँद निरमरा॥'

प्रियतम ने समूची प्रकृति और निखिल समृति को प्रेम-बाणों से बेध रखा है—

उन बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा।
गगन नखत जो जाहिं न गने। वे सब बान ओहि के हने॥

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल जा० ग्रं०, ना० प्र० सभा, काशी भूमिका, पृ० १६८।

है, किन्तु वहाँ तक पहुचने के लिए साधना की पूर्णता अत्यत आवश्यक है, अपूर्णता की स्थिति में वहाँ पहुच पाना अत्यन्त कठिन है—

'धाइ जो बाजा के सर साधा। मारा चक्र भएउ दुइ आधा।
चाद सुरुज औ नखत तराई। तेहि डर अन्तरिख फिरहिं सबाई॥
पवन जाइ तह पहुच चाहा। मारा तस लाटि भुइ रहा।
अगिनि उठी उठि जरी नियाना। धुवाँ उठा उठि बीच बिलाना।
पानि उठा उठि जाइ न छूवा। बहुरा रोइ आइ भुइ चूआ॥

साधक सरोवर अपने प्रियतम पदमावती के चरण स्पर्शमात्र से निर्मल एव रूपवान हो जाता है। उसके दर्शन मात्र से ही वह आनन्दातिरेक की लहर से लहर उठता है। उसके युग युग के कल्मष विनष्ट हो जाते हैं। उसकी युग युग की साधना जन्य परितप्तता शीतलता म परिणत हो जाती है—

कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई।
भा निरमल तिन्ह पायन परसे। पावा रूप रूप के दरसे।
मलय समीर बास तन आई। भा सीतल गै तपनि बुझाई॥

उस परम रूपा पदमावती के दर्शन एव स्पर्श जन्य प्रभाव की इन पक्तियो म सुन्दर रहस्यमय अभिव्यक्ति हुई है। कभी कभी जायसी गूढ दार्शनिक सिद्धान्तों की व्यजना प्रकृतिमूलक अन्योक्तियो एव रूपको के माध्यम से इतने सुन्दर और उत्कृष्ट ढग से करते हैं कि बुद्धि चमत्कृत हो जाती है।

सृष्टि के समस्त महाभूत उसी परम सत्ता तक पहुचने के लिए गतिशील है। सृष्टि के पूर्व मे मात्र एक तत्व था। सब कुछ अद्वैत रूप था। न जाने किस निर्मोही ने जीव को प्रियतम से और धरती को स्वर्ग से अलग कर दिया पहले धरती और स्वर्ग दोनों मिले हुए थे—एक थे। न जाने किसने जीव और ईश्वर म भेदकता की सृष्टि की—

धरती सरग मिले हुत दोऊ। केइ निनार कै दीन्ह बिछोऊ॥

प्रकृति के सश्लिष्ट चित्रण म भी जायसी ने सुन्दर रहस्यपूर्ण सकेत किए हैं—इस प्रसग म किलकिला समुद्र का वर्णन दिया जा सकता है—

'धरती लेइ सरग लहि बाढ़ा। सकल समुद जानहु भा ठाढ़ा।

सातवें सागर के वर्णन म कवि ने समुद्र के आध्यात्मिक पक्ष का उद्घाटन किया है।

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा।
भा अँधियार रैन मसि छूटी। भा भिनुसार किरिन रबि फूटी॥
अस्ति-अस्ति सब साथी बोले। अंध जो अहे नैन बिधि खोले।
जो अस आव साधि तप जोगू। पूजै आस मान रस भोगू॥'

१—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा, पृ० ६७।

इन पंक्तियों में मानसरोवर के भीतर उस प्रियतम की विकटता से उत्पन्न विश्व व्यापी आनन्द और हर्षातिरेक की व्यंजना की गई है। 'उस अन्तर्ज्योति का आभास मात्र पाकर मानस (सातवां मानसरोवर और हृदय) ज्योतित हो उठा। पुरइन पात और फुल्ल शतदल के रूप में उल्लास मानसर में चारों ओर व्याप्त हो गया। इस ज्योति के साक्षात्कार मात्र से अज्ञान नशान्धकार का विनाश हो गया।' स्पष्ट है कि ब्रह्म प्रियतम की अवस्थिति के मूलभूत कारण स्वरूप अन्तजगत और बाह्य जगत में अदभुत सामंजस्य और बिम्ब प्रतिबिम्ब स्थिति है। इन पंक्तियों में परोक्ष सत्ता के संकेत उसकी अपार ज्योति एवं तज्जन्य विश्वव्यापी आनन्द और प्रफुल्लता आदि की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। यह सत्ता हृदय में ही है—

पिउ हिरदय मह भेंट न होई। का रे मिलाव कहौं केहि रोई।

कबीर ने भी— एसा लो नहिं तसा लो मैं कहि विधि कहा अनूठा लो।
भीतर कहौं तो जगमय लाज, बाहर कहौं तो भूठा लो—
बाहर भीतर सकल निरन्तर गुरु परतापें दीठा लो।'

कहने के बावजूद भी कहा था कि प्रियतम तो पास में ही है मरख लोग जंगल में ढूंढने जाते हैं—

मोको कहाँ ढूंढ बंद म ता तेरे पास म।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद ना छावे क्लास में।
खोजी होय, दो तुरत मिलिहो पलभर की तालास म।
बहुत दिनन के बिछरे हरि पाय। भाग बड़ घर बठ आए॥

शुक्ल जी ने ठीक ही कहा है कि कबीर के चित्रों में इमजरी की न वह अनेकरूपता है और न मधुरता। जायसी के [illegible] अत्यन्त रमणीय और मर्मस्पर्शी हैं।'

प्रकृति के बीच दिखाई देने वाली सम्पूर्ण दीप्ति उसी परोक्ष सत्ता से ही उदभाषित है। निखिल ससृति का आकार और सौन्दर्य उसी की ज्योति का [illegible] भास और छाया स्पर्श मात्र है। इस बात का आभास पद्मावती के प्रति [illegible] से ये वाक्य दे रहे हैं—

अनु धनि ! तू निसिअर निसि माहीं। हौं [illegible]।
चांदहि कहाँ जोति औ करा। सुरुज क [illegible]।
प्रियतम ने समूची प्रकृति और निखिल [illegible]
उन बानन्ह अस को जो न मारा। [illegible]
गगन नखत जा जाहिं न [illegible]

१—प० रामचन्द्र शुक्ल जा० ग्र० [illegible]

धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहिं सब साखी।।
रोव रोव मानुष तन ठाढे। सूतहिं सूत बेध अस गाढ़।
बरुनि बान अस ओपह बेधे रन बन ढाँख।
सौजहि तन सब रोवाँ, पखिहि तन अस पाँख।।

प्रेममूलक रहस्यवाद

हिन्दी के सूफी कवियों की रहस्य भावना में मूल में राबिया मंसूर रूमी आदि की ही भाँति जायसी के प्रेम की अभिव्यक्ति की लौकिकता में ही अलौकिकता भी अनुस्यूत है।

जायसी का कथन है कि प्रियतम की प्रेम वेदना की अनुभूति अनिर्वचनीय है। इसका मर्म तो वही जानता है जिसके हृदय में प्रेम घाव हो चुका है।

'प्रेम घाव दुख जान कोई। जेहि लागे जान प सोई।।'

जायसी की देन

साधनात्मक रहस्यवाद को जायसी की एक बहुत बड़ी देन यह है कि उन्होंने इस शुष्क और योगमूलक साधनात्मक रहस्य भावना को अत्यन्त सरस और मधुर बनाया है। यह अवश्य है कि प्रसंग उपस्थित होने पर जायसी अपनी बहुज्ञता हठयोग रसायन आदि की सविस्तर चर्चा करते हैं और शायद इसी कारण कतिपय आलोचक इसे 'झूठा रहस्यवाद' घोषित करते हैं और जायसी के 'झूठे' रहस्यवाद में आ फसने के कारण खिन्न भी होते हैं परन्तु यह आलोचना ठीक नहीं है क्योंकि जायसी के मूल रहस्यवाद से इन बातों का कोई विरोध नहीं है। अपनी विलक्षण और अपूर्व प्रतिभा के द्वारा जायसी ने इनके मूलभूत सिद्धान्तों को अत्यंत सरस और काव्यात्मक रूप में उपस्थित करने का सफल प्रयत्न किया है। वे चार प्रकार से अपनी रहस्यदर्शिता की अभिव्यक्ति में सफल हुए हैं–

(१) रूप वर्णन के द्वारा–सूफियों ने प्रेम-तत्व के उदय का मूल कारण सौन्दर्य तत्व कहा है। रूमी[1] इब्नेनिया और जायसी ने जिस सौन्दर्य-तत्व के आध्यात्मिक पक्ष का उद्घाटन किया है वह रहस्यवाद के अन्तर्गत आता है। सूफियों ने आध्यात्मिक सौन्दर्य की व्यंजना के लिए लौकिक सौन्दर्य का आश्रय

१–रूमी, पोएट एण्ड मिस्टिक, पृ० ३०।
लव विल नाट लेट हिज फेथफुल सर्वेंटस टायर
इम्माटल ब्यूटी डाज देम आन एण्ड आन,
फ्राम ग्लोरी इन्टू ग्लोरी डाविंग नियर
ऐट ईच रिसव एण्ड लविंग टू वी ड्रान।

लिया है। जायसी के लिए भी अलौकिक आध्यात्मिक सौंदर्य की व्यंजना के लिए लौकिक सौन्दर्य का वर्णन करना और 'परदे बुता मे नूरे खुदा' देखना अनिवार्य और आवश्यक था।

पद्मावती का रूप-वर्णन करते समय जायसी अवसर पाने पर परोक्ष सत्ता की ओर संकेत करने में नहीं चूकते। जैसे तुलसीदास रामचरितमानस के पाठकों को बारम्बार राम के परब्रह्मपरमेश्वरत्व की याद दिलाते चलते हैं ठीक वैसे ही जायसी अवसर मिलते ही परम सत्ता के रूप सौन्दर्य के सृष्टिव्यापी प्रभाव और लोकोत्तर कल्पना की रमणीय अभिव्यक्ति द्वारा पाठकों को ज्योति रस प्लावित करते चलते हैं। वे 'पारस' के प्रतीक विधान द्वारा भी उस सत्ता के साक्षात्कार की व्यंजना करते हैं—

(क) पारस जोति लिलाटहिं ओती।
दिष्टि जो करै होइ तेहि जोती ॥[1]

(ख) होतहि दरस परस भा लोना।
धरती सरग भएउ सब सोना ॥[2]

(ग) तीनि लोक चौदह खण्ड सब परै मोहिं सूझि ॥[3]

(घ) भा निरमल तिन्ह पायन परसे। पावा रूप रूप के दरसे।
'नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर।।

(ङ) उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा।
गगन नखत जो जाहिं न गने। वै सब बान ओही के हने ॥[4]

(च) जहँ भिन दसन जोति निरमई। बहुत जाति जोति ओहि भई।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती ॥[5]

(छ) बेनी छोरि झार जौं बारा। सरग पतार होइ अँधियारा ॥[6]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि जायसी ने लौकिक सौन्दर्य के द्वारा आध्यात्मिक सौंदर्य की जीवंत अभिव्यक्ति की है। स्पष्ट है कि जायसी का विराट उपास्य शुद्ध सौंदर्य स्वरूपी है। जायसी प्रेम और सौन्दर्य के विशिष्ट रहस्यवादी कवि हैं। अंगरेजी में रोजेटी शैली ब्राउनिंग आदि सभी इसी प्रकार के रहस्यवादी हैं। रोजेटी की रहस्याभिव्यक्ति में प्रेम के वासनात्मक स्वरूप की भी यत्र-तत्र अभिव्यक्ति मिलती है।

१—जा० ग्र० ना० प्र० सभा काशी पृ० २११।
२—वही पृ० २५६। ३—वही पृ० ३६।
४—वही पृ० २८। ५—वही पृ०, ४३ (६१४-५)।
६—वही पृ० ४४। ७—वही, पृ० ४१।

शली को सौंदय म विश्वास था और जायसी भी उसी आदर्श सौंदय के उपासक थे। शली के हिम टू इटेनेक्चुअल ब्यूटी म इसी आदश सौंदय की अभिव्यक्ति की गई है। जायसी के सौंदय चित्रण मे और ब्राउनिंग[1] के सौंदय चित्रण म यह समानता है कि ये दानो कवि विश्व के समस्त पदार्थों म ईश्वर के दशन करते हैं। दोनो ने प्रेम को जीवन का मूलतत्व माना है।

विरह वणन के प्रसगो की उद्भावना के द्वारा भी जायसी ने रहस्यमयी सत्ता की अभिव्यक्ति की है। सूफी साधना म आध्यात्मिक विरह का अत्यन्त महत्व पूण स्थान है। यदि विरह नहीं है तो तप जप धम नम आदि सब व्यथ है—

जब लगि विरह न होइ तन हिये न उपजइ पेम।
तब लगि हाथ न आव तप करम धरम सतनेम॥[2]

समस्त सृष्टि प्रियतम के विरह म जल रही है—

विरह क आगि सूर जरि कापा। राति दिवस जारहि उहि तापा॥
औ सब नखत तराईं जरईं। टूटे नक धरति मह परईं॥
जर सो धरती ठावहि ठाऊ॥

आस्तिकता जागरण की स्थिति आशिक अनुभूति की स्थिति विरहावस्था विघ्नावस्था मिलन के पूव की स्थिति और साक्षात्कार या तादात्म्य की स्थिति के जायसी ने अत्यन्त मनोरम चित्र प्रस्तुत किए है। अनेक रूपको प्रतीकों और अन्योक्तियो न इन चित्रो म प्रभविष्णुता और तीव्र प्रभावाभि यजना शक्ति के आकषण भर दिए हैं। कबीर ने भी ब्रह्म क साक्षात्कार की स्थिति का चित्रण किया है—

हरि सगत सीतल भया मिटी मोह की ताप।
निस वासर सुख निधि लहा अन्तर प्रगटा आप।[3]

जायसी ने परम ब्रह्म रूपा पदमावती और साधक सरोवर के तादात्म्य या साक्षात्कार का एक अत्यन्त मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है—

कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई॥
मलय समीर बास तन आई। भा सीतल ग तपनि बुझाई॥
न जनौं कौन पौन लेइ आवा। पुन्य दसा भ पाप गवावा॥
बिगसा कुमुद देखि ससि रेखा। भ तह ओप जहाँ जोइ देखा॥
पाया रूप रूप जस चहा। ससि मुख जनु दरपन होइ रहा॥

१—मिस्टीसिज्म इन इगलिश लिटरचर प ४१।
२—चित्ररेखा, (स० शिवसहाय पाठक) प ७०।
३—कबीर ग्रथावली नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

नयन जो देखा कवल भा, निरमल नीर सरीर।
हसत जो देखा हस भा दसन जोति नग हीर॥[1]

साधक और साध्य के प्रस्तुत रहस्यात्मक चित्र म समासोक्ति, रूपकातिशयोक्ति एव गौडी लक्षणा जय रमणीय तत्वो ने सम्मिलित रूप म अदभुत सौंदय की सप्टि की है।

कबीर और जायसी के उपयु क्त चित्रणा को देखने से दोनो मे काव्यत्व का अ तर भी स्पष्ट हो जाता है।

जीव प्रियतम को भेंटने के लिये वकल्य का अनुभव करता है—

'परवत समु^ अगम बिच बीहड घन बन ढाख।
किमि क भेटौं क त तुम्ह नामोंहि पाँव न पाख।[2]

यहाँ पर नागमती विरह का प्रस्तत अथ है साथ ही प्रियतम से मिलने के लिए जीव या साधक का परम वकल्य भी अभिव्यजित है।

अस पर जरा विरह कर गठा। मेघ साम भए धुम जो उठा।
दाधा राहु केतु गा दाधा। सूरज जरा चाँद जरि आधा॥
औ सब नखत तराई जरही। टूटहि लूक धरनि मह परही॥
"र सो धरती ठावहि ठाऊ। दहकि प"ास जर तेहि दाऊ॥[3]

अवसरोचित सूक्तियो के द्वारा भी जायसी ने रहस्यात्मक अभि"यक्ति की है जसे—

'बस मीन जल धरती अबा बस अकास।
"ो पिरीन प दुवौ मह अत होहि एक पास॥

मछली–आम क बहाने कवि ने साधक और साध्य के प्रम आर तज्ज"य नकटय–मिलन की ओर इ गित किया है।

सादश्यमूलक अलकारो के माध्यम स भी जायसी ने रहस्यात्मक अभिव्यजना की है। जसे—

सो" रूप जासौं दुख खोलौं। गएउ भरोस तहाँ का बोलौं।
मह सोना जिरवा के जोगी। कहि क सदेस आन को पाती॥
जो एहि घरी मिलावे मोहा। सीस देउँ बलिहारी ओही॥[3]

प्रस्तुत पक्तियो म रत्नसेन-पद्मावती के प्रथम समागम के अवसर पर राजा के रसायनी प्रलाप म धातुआ क नामा के उल्लेख हुए हैं। यहाँ पर श्लेप अलकार के

१–जायसी ग्र"थावली नागरीप्रचारिणी सभा प० २/।
२–जायसी ग्र"थावली, "ागरीप्रचारिणी सभा प० २५।
३–वही, प० १६३।

माध्यम से रहस्य भावना को अभिव्यक्ति मिली है।

वहा सो खोएहु विरवा लोना। जेहि ते अधिक रूप औ सोना।
का हरतार पार नहिं पावा। गधक काहे कुरकटा खावा॥

सवदर्शन सग्रह[1] म बताया गया है कि पारद (पारा) ससार सागर का पार कर देता है—पारद और अभ्रक हर और गौरी के शरीर के रस हैं। इनके मिलने से जरा मरण को जीतने वाले रस की निष्पत्ति होती है।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि जायसी ने अद्वैती साधनात्मक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति के लिए हठयोगियो मे प्रचलित पद्धति को स्वीकार किया है। भावात्मक रहस्यवाद की तो उनके पदमावत म अत्यत सुदर अभिव्यक्ति हुई है। सब मिलाकर निश्चय रूप म कहा जा सकता है कि सचमुच हिन्दी के कवियो मे यदि कहा रमणीय सुदर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी म जिनकी भावकता बहुत ही ऊची कोटि की है।

प्रतीक-योजना

सूफी साधना और साहित्य म प्रतीको का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। सूफियो के रक्षक उनके प्रतीक ही रहे हैं। यो तो किसी भी भक्ति भावना म प्रतीको की प्रतिष्ठा होती है पर वास्तव म तसव्वुफ म उनका परा प्रसार है। प्रतीक ही सूफी साहित्य के राजा हैं— — सूफी प्रम को सब प्रतीको म श्रेष्ठ बताते हैं।[2] सूफी साहित्य प्रतीको से भरा पडा है। उनका सारा वैभव प्रतीको पर अवलम्बित है।[3] फारिज का कहना है कि प्रतीको के प्रयोग से दो लाभ प्रत्यक्ष होते हैं—एक तो प्रतीको की ओट लेने से धर्म-बाधा टल जाती है दूसरे उनके उपयोग से उन बातो की अभिव्यजना भी खूब हो जाती है जिनके निदर्शन म वाणी असमर्थ किंवा मूक होती है। इनके अतिरिक्त प्रतीक पद्धति एक तीसरे प्रकार से भी उपयोगी होती है। इनसे साहित्य मे विचित्र सौंदय आ जाता है। प्रतीको के सहारे प्राय ध्वनित अर्थ की भी व्यजना होती है।

(१) मुट्ठी भर धूल—सूफियो की मान्यता है कि मानव सान्त और अनत

१—प हजारीप्रसाद द्विवेदी नाथ सप्रदाय प १७३
२—प चन्द्रबली पाडेय तसव्वुफ अथवा सूफीमत प ६७
३—वही प ६६
४—स्टडीज इन ऐस्लामिक मिस्टीसिज्म प० २३२
(तसव्वुफ अथवा सूफीमत से उद्धृत)।

का मिश्रित रूप है। उसमें मर्त्य और अमर्त्य दोनों तत्वों का समावेश है।[1] मानव में दैवी और मानव दोनों अंशों का निवास है। प्रेम से पवित्र होकर ही वह अपने स्थूल सीमाभाव से मुक्ति पाता है। प्रेम की साधना से मानवी और दैवी स्वरूपों के बीच का अन्तर समाप्त हो जाता है।

मानुस पेम भएउ बैकुण्ठी। नाहिंत काह छार एक मूठी।[2]

सचमुच प्रत्येक मनुष्य मुट्ठी भर धूल का ही जीवित रूप है। प्रेम तत्व से ही इस धूलि में चिदंश का प्रकाश होता है। प्रेम वह महत् तत्व है जिसके कारण मानव का पार्थिक रूप अंत में अनुस्यूत देवी अंश से मिलने के लिये समाकुल हो उठता है। मानव और दिव्य आत्मभाव में प्रेम के ही कारण सामरस्य की स्थापना होती है।

पिउ हिरदय महं भेंट न होई। को रे मिलाव कहौं केहि रोई॥[3]

यह दिव्य आत्म तत्व ही सूफी परिभाषा में प्रेमिका है।

(२) पदमावती—पदमावती लौकिकतः तो रत्नसेन की प्रेमिका और पत्नी है, परन्तु अलौकिक रूप में वह ब्रह्म है। वह विश्वव्यापी महा ज्योति का ही नाम है। वही ज्योति चन्द्रमा के रूप में आकाश में उदित होती है। वही शिवलोक की मणि है जो सिंहलद्वीप को प्रकाशित करने के लिए प्रकट होती है। उसी महाज्योति की रश्मि पिता के मस्तक का तेज बनाकर माता के घर में अवतरित होती है। परम ज्योति रूपा पद्मावती को जन्म लेने के लिए छाया रूप में परिवर्तित होना पड़ता है—

चम्पावति जो रूप उतिमाहीं। पदुमावति क जोति मन छाहीं।[4]

चम्पावती रानी के मन में पदमावती रूपी महाज्योति की भास्वर छाया पड़ती है। प्रतिबिम्बवाद के अनुसार ईश्वर रूपी परम ज्योति प्रतिबिम्ब या प्रतिरूप है उसी की छाया घट घट में प्रतिबिम्बित है। पदमावती का मानवकुक्षि में आना तो मानो स्वर्ण की सलोनी प्रक्रिया है जो अरूप ज्योति है उसे भौतिक जगत का रूप सौंदर्य प्राप्त करने के लिये माता के उदर में आना ही पड़ता है।[5]

पद्मावती के मुख्य रूप से दो प्रतीक हैं एक अमूर्त और दूसरा मूर्त। दोनों निखिल सौंदर्य के प्रतीक है।

१—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पदमावत प्राक्कथन पृ० ३८
२—जायसी ग्रन्थावली, (हिन्दुस्तानी अकदमी) पृ० २५२।१६६।२
३—जायसी ग्रन्थावली नागरीप्रचारिणी सभा काशी।
४—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पदमावत प्राक्कथन, पृ० ३८।
५—जायसी ग्रन्थावली नागरीप्रचारिणी सभा काशी।
६—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पदमावत प्राक्कथन पृ० ३६।

सूय चद्र — विशुद्ध महाज्योति के रूप म पदमावती सूय थी जो रत्नसेन के हृदय मे भर जाती है। वही पदमावती अपने पचभौतिक सौदय म चद्रमा है— जिससे मिलने के लिए रत्नसेन रूपी सूय व्याकुल होता है। जो सूय को भी प्रकाशित करने वाली निखिल ब्रह्माण्ड-व्यापी महाज्योति है वही पदमावती का अमूत रूप है — जायसी इसी रूप के लिए सूय का प्रतीक प्रस्तुत करते हे। पद्मावती की भौतिक देह उस अमूत ज्योति का मूत रूप है जो सौदय के समस्त तत्वा से अलकृत है जो षोडश श्रृगार मण्डित है और जिसके सोलह कलाओ से पूण सौदय को चद्रमा मानकर सम्पूण काव्य म वणन किया गया है। पदमावती रूप की पारस है। वह रूपो का देने वाली है[1]।

पारस जोति लिलाटहि ओती। दिस्टि जो करे होइ तेहि जोती[2]॥
कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई॥
भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसे। पावा रूप रूपके दरसे[3]।

रूप रूप प्रतिरूपो बभूव (ऋग्वेद ६।४७।१८) वदिक दर्शन के अनुसार प्रकृति की अ यक्त अवस्था दपण है जिसम चतय ज्योति का आभास पडता है। उससे ही प्रथम सष्टि हाती है। जितने मूत रूप हैं व उस रूपया माज्योति के प्रतिबिम्ब हैं—

पाए रूप रूप जस चहे।
ससिमख सब दरपन होइ रहे॥

ससार के समस्त रूप, सौन्द्य और आलोक उसी महाज्योति की छाया ■ द्योतित है। ससार मे —

नयन जो देखा कवल भा निरमल नीर सरीर।
हसत जो देखा हस भा दसन जोति नग हीर॥

पद्मावती के मुख के लिए समस्त पदाथ दपण म सदश्य हैं। उसके नयनो के रूप से कमल शरीर से निमल नीर हसी से श्वेत हस और दशन-ज्योति से नग हीरे बन हैं। रूप-सौन्द्य की भास्वरता के विविध अगो के प्रभाव को यहाँ मार्मिक रूप भी दृष्टव्य है। उसकी प्राप्ति तो साधना माग स हृदय की सम्पूण शक्ति से होती है। रत्नसेन के हृदय म वह ज्योति भर उठती है —

जनु होइ सुरुज आइ मन बसी। सब घट पूरि हिए उरगसी।

पद्मावती रूपी सूय रत्नसेन के शरीर म भरकर उसके हृदय को प्रकाशित कर देता है। फलस्वरूप रत्नसेन स्वयम सूय बन जाता है और पुन पद्मावती की उसी सूय

१—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पदमावत का प्राक्कथन पृ० ३६।
२—जा ग्र ना० प्र० सभा काशी।
३—वही। ४—वही प २८।

की छाया या चन्द्रमा बताता है —

अब हौं सुरुज चाँद वह छाया। जल बिनु मीन रकत बिनु काया।
किरिन करा भा प्रेम अकूरू। जो ससि सरग मिलौं होइ सूरू॥
तहाँ भवर जिउ कवला गंधी। भइ ससि राहु केरि रिनि बंधी[1]॥

सूर्य चन्द्र पुरुष और स्त्री के भी प्रतीक हैं। रत्नसेन सूर्य है और पद्मावती चन्द्रमा कही जाती है। रत्नसेन रूपी सूर्य अशान्त उष्ण और तीव्र आलोक से संयुक्त है पद्मावती रूपी चन्द्रमा शान्त स्निग्ध शीतल और सूर्य को अपनी ओर आकृष्ट करता है। विवाह के पश्चात् इन दोनों की सामरस्य स्थिति दिखाई गई है। उनकी सामरस्य स्थिति को ही हम अद्वय भाव यामलभाव या युगनद्ध होना कह सकते हैं। जायसी ने सूर्य और चन्द्र के इस रूपक को सिद्धों से प्राप्त किया है। पद्मावत में प्रायः सूर्य और चन्द्र के प्रतीकों का प्रयोग हुआ है।

दुहु दिसि चाँद सुरुज चमकाही। नखत ह भरे निरखि नहिं जाहीं[2]।
तुलनीय — चाँद सुरज रावचे दुइ कानेर कुण्डल (गोपीचन्द्रेर गान[3])

चन्द्र-सूर्य इडा-पिंगला वाम-दक्षिण आदि को वश में करना और सिद्धि प्राप्त करना हठयोगियों की साधना का उद्देश्य है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है कि वस्तुतः चन्द्र सूर्य के प्रतीकों में वैदिक अग्नि-सोम का ही उपबृंहण हुआ है। यह जगत अग्नि-सोम का ही रूप है। (अग्नीषोमात्मकं जगत्) प्रेम काव्यों में सूर्य-चन्द्र के प्रतीक को कवियों ने नायक-नायिका के रूप में अभूतपूर्व माधुर्य प्रदान किया है।

गंगा-यमुना के प्रतीक चन्द्र और सूर्य के नामान्तर हैं। उन्हें ही इडा-पिंगला भी कहा जाता है। —

धूप छाह दुइ पिय के रंगा॥ दूनौ मिली रहहु एक संगा।
तुम्ह गंगा जमुना दुइ नारी लिखा मुहम्मद जोग।
सेवा करहु मिलि दूनहु औ मानहु सुख भोग[5]॥[4]

इन्हें ही धूप-छाह दिन-रात, सांवरा-गोरा गंगा यमुना कहा गया है।

रसायन और धातुवाद के अनुयायियों में चन्द्र-सूर्य की ही भांति सोना और रूपा भी विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ के द्योतक थे। सिद्ध आचार्यों ने सोना और

१—जा० ग्र० ना० प्र० सभा काशी पृ० २६ दोहा ५।३।
२—वही पृ० ४८ दो० १७।३।   ३—पद्मावत का प्राक्कथन, पृ० ४०।
४—वही, पृ० ४०–४१।
५—जा० ग्र०, ना० प्र० सभा काशी पृ० १६७ दोहा १३।६।

रूपे की परिभाषा ा को मान लिया था। कम्बनिपा का एक चर्यागीत इस प्रकार है —

सोने भरिती करुणा नावी। रूपा थाई नाहिक गावी ॥'

(बागची चर्यापद ८)

(करुणा की नाव सोने से भरी हुई है उसम रूपा या चा ी रखने के लिए स्थान न ी है।) इस पद के अनुसार सोने को शून्य या वज्रस्थानीय और चाँदी को रूप का भडार या समार कहा गया है जो कि अनित्य और अस्थिर है। पद्मावती स्वर्ण रूप है। चम्पावती रूपा या चादी की प्रतीक है। स्वर्ण के चाँदी सम्पर्क म आते ही मलिन पड़ जाता है और उसे शुद्धि या सजोनी प्रक्रिया की आवश्यकता पड़ती है। शून्य म ही रूप की उत्पत्ति निहित रहती है। रासायनिकों के अनसार पारद की सिद्धि शरीर की अमतत्व एवम जीवनमुक्ति के लिए आवश्यक है। पारद की सहायता से कुधातु स्वर्ण मे परिवर्तित हो जाती है[1]। पारद ही एक ओर शुक्र का रूप है। जिसकी साधना से शरीर अमर हो जाता है दूसरी ओर पारद वह रस या प्रम है जिसके प्रभाव से साधक को सुवर्णमय पद्मावती की प्राप्ति होती है। जायसी ने कितने ही स्थानों पर सोना चाँदी पारा अभरक हरताल सुहागा आदि के प्रतीकों का उपयोग करते हुए जान बूझकर रसायन दर्शन के सकेत अपने काव्य मे रखे है जो अधिकांश म द्वयर्थक है। बारहवानी सोना सोने की शुद्धि का सर्वस ऊचा आदर्श है। साधक के लिए यह आवश्यक है कि बारहवानी सोना बने —

कचन दुआदस बानि होइ चह सुहाग वह माग।

मागसहस्रार चक्र का प्रतीक है। कम्बनिपा की उक्ति है —

वाम दाहिण चापी मिलि मिलि मागा।

बाटत मिलिल महा सुह सागा ॥

(बागची चर्यापद, ८)

स्पष्ट है कि वाम–दक्षिण को वश म करके माग या सहस्रार म ले जाने से ही महासुख का सग प्राप्त होता है। द्वादशवर्ती स्वर्ण ही सहस्रार तक पहुच सकता है।

साधना के साम्प्रदायिक प्रतीक

जायसी ने सूफी प्रम साधना के अन्तर्गत कुण्डली योग की सब परिभाषाओ को अंगीकार कर लिया है। इसके कारण पद्मावत पर भारतीयता का गहरा रग चढ गया है। सूफी साधनात्मक शब्दावली सरल बनकर भारतीय भावनाओ के साथ

१— पारस परसि कुधातु सुहाई॥ (तुलसीदास)

इस प्रकार घुलमिल गई कि पन्ते समय दोनो म कोई विरोध या पार्थक्य दिखाई नही देता[1]। रत्नसेन गोरखपंथी योगी का भेष बदल कर अपनी आध्यात्मिक यात्रा म आगे बढ़ता है। वह हाथ मे किंगरी, सिर पर चक्र गले म जोगपट्ट तथा रुद्राक्ष, कानो म मुद्रा तथा शरीर पर कथा डालकर पदमिनी की खोज म निकलता है। उसके कंध पर बाघंबर और परो म खडाऊ है।[2]

(क) (अनहदनाद के लिए) घडियाल

घरी घरी घरियार पुकारा। पूजी बार सो आपनि मारा।
नौ पौरी पर दसव दुवारा। तेहि पर बाज राज घरियारा।[3]

(ख) (शरीर के नौ द्वार के लिए) नौपौरी

'नौ पौरी पर दसव दुवारा। तेहि पर बाज राज घरियारा॥'
'नव पवरी बाकी नव खडा। नवहु जो चढै जाइ बरह्मंडा॥

(ग) (ब्रह्मारन्ध्र के लिए) दशम द्वार

'दसवें दुआर गुपुत एक नाकी। अगम चढ़ाव बाट सुठि बाकी।
भेदी कोई जाइ ओहि घाटी। जौं लै भेद चढ़ होइ चाटी।
दसव दुवार तारुवा लेखा। उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा॥

नौ पौरी शरीर के नौ द्वार हैं जिनका उल्लेख अथर्ववेद के अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या इस वर्णन से ही मिलने लगता है। जायसी की विशेषता यह है कि इन नौ द्वारों की कल्पना को शरीरस्थ चक्रों के साथ मिला दिया है और उन्ह नव खण्डों के साथ सम्बन्धित करके एक-एक खण्ड का एक एक द्वार कहा है। इन नव के ऊपर दसवा द्वार है। मध्ययुगीन साधना म इसका बडा महत्व रहा है। कहा जाता है कि सहस्रार का अमृत इसी दशम द्वार म होकर नीचे झरता रहता है। इसी प्रदेश भाग को बाँक द्वार भी कहा गया है। इस टेढे भाग को 'बकनाल' की संज्ञा दी गई है।

(घ) (शरीर के लिए) दुर्ग

गढ तस बाक जसि तारि काया। परखि देखि है ओहि की छाया।[5]

१—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल पद्मावत प्राक्कथन पृ० ४२।
२—जा०ग्र० (ना० प्र० सभा) पृ० ५३ दोहा १।
३—जायसी ग्रन्थावली ना० प्र० सभा प० १६ (दोहा १८।१)।
४—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पद्मावत, प्राक्कथन, प० ४२।
५—जा० ग्र० ना० प्र० सभा काशी प० १६ (दोहा १७)।

(ड) चारि बसेरे

'जायसी ने भारतीय परिभाषाओं के साथ ही अत्यन्त कुशलता के साथ बड़ी सरलता म सूफी साधना के चारि बसेरे का भी उल्लेख कर दिया है—

नवौ खण्ड नव पौरी औ तह वज्र कवार।
चारि बसेरे सौं चढ़ सात सौ उतर पार।

मध्ययगीन साहित्य मे नगर – वणन एक अभिप्राय या उस कसौटी पर जायसी का सिंहलगढ़ वणन इतना भरा पुरा उतरता है कि बहुत कम काव्य इस विषय मे उनकी समता कर सकते हैं।[1] एक और सिंहल का आध्यात्मिक वणन और दूसरी ओर उसकी समृद्धि और वभव का वणन दोनो का सुन्दर और पूण निर्वाह जायसी के काव्य की विशेषता है।

सूफी साधना क यात्रा म प्रतीक का बडा महत्व है। फरीउद्दीन[2] अत्तार ने खोज प्रम मारिफत अनासक्ति एकत्व कुतूहल एव परमात्म प्रम के महासागर म निमग्न होने की सात घाटियों की यात्रा का वणन किया है।

सूफी साधना म साधक को प्रम माग का पथिक (सालिक) माना गया है। उसे अपने गतव्य की प्राप्ति के लिए यात्रा की चार अवस्थाओ को पार करना पड़ता है।

जलालुद्दीन का कथन है कि ईश्वर के यहा जाने का यह माग कठिनाइयो से भरपूर है। यहा पथ उनके लिये नही हैं जिनम स्त्रणता है।[3]

यदि साधक के पथ में कठिनाइयाँ आए तो भी उनका भय नही मानना चाहिए। वीर की भांति आगे बढ़ना चाहिए।[4]

(१) शरीअत (धम ग्रथो के विधि निषध का सम्यक परिपालन)।

(२) तरीकत (वाह्य क्रिया कलाप से दूर रहकर हृदय शुद्धि के द्वारा ईश्वर चिन्तन)।

(३) हकीकत–(भक्ति और उपासना के द्वारा सत्य का सम्यक बोध जिससे साधक तत्वदृष्टि सपन्न और त्रिकालज्ञ हो जाता है।

(४) मारिफत (सिद्धावस्था–जिसमे साधक साध्य म लीन होकर प्रममय हो जाता है)।

जायसी ने पद्मावती के माध्यम स ईश्वरी ज्योति को प्रकट करने का प्रयत्न किया है। इसीलिए उसने सौन्दय का विशद चित्रण भी किया है। नायक रत्नसेन

१–डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पदमावत प्राक्कथन प० ४३।

२–मिस्टीसिज्म अडरहिल प० १३१–३२।

३–रूमी पोएट एण्ड मिस्टीसिज्म निकलसन प० ७१।

४–ईरान के सूफी कवि, प० १११।

आत्मा का प्रतीक है। सिंहल-यात्रा आध्यात्मिक यात्रा का प्रतीक है—

रत्नसेन चार बसेरा को पार करते हुए पद्मावती को प्राप्त करता है।

रत्नसेन का पहला पड़ाव सागर तट पर होना है। इसे शरीअत का प्रतीक कहा जा सकता। रत्नसेन का यहाँ तक का मार्ग विशेष कठिन नहीं है जितना कि दूसरी अवस्था-तरीकत-में प्रवेश करते समय समुद्र की भीषणता और भयंकरता का पथ—

पै गोसाइं सन एक बिनाती। मारग कठिन जाब केहि भाँती।
सात समुद्र असूझ अपारा। मारहिं मगर मच्छ घरियारा।
उठै लहरि नहिं जाइ सभारी। भागिहि कोइ निबहै बपारी॥
खार, खीर दधि जल, उदधि सुर किलकिला अकूत।
को चढ़ि नाघ समुद एहै काकर अस बूत॥[1]

रत्नसेन प्रेमपन्थ का एक सत्यनिष्ठ पन्थी है। वह यात्रा के प्रस्तुत प्रत्यवायों का प्रबल प्रत्याख्यान करता हुआ गतिमान होता है। वह छः सागरों को पार करके सातवें सागर के पास पहुँच जाता है। यहाँ से उसकी तीसरी (हकीकत) यात्रा प्रारम्भ होती है—

सतएँ समुद मानसर आए। मन जो कीन्ह साहस सिधि पाए।
देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा।
भा अँधियार रैनि मसि छूटी। भा भिनुसार किरिन रबि फूटी।[2]

चौथी अवस्था मारिफत की है। सूफियों के मतानुसार इसकी दो स्थितियाँ हैं—(१) ज्ञानी और (२) इल्मी। ज्ञानी मारिफत की अवस्था का वर्णन हम निम्न लिखित पंक्तियों में मिलता है—

'जोगी दृष्टि दृष्टि सो लीन्हा। नैन रोपि नैनहिं जिउ दीन्हा॥
जेहि मद चढ़ा परा तेहि पाले। सुधि न रही ओहि एक पियाले॥[3]

जायसी ने इन चार अवस्थाओं का उल्लेख अखरावट में भी किया है—

कही सरीअत चिस्ती पीरू। उधरित असरफ औ जहँगीरू॥
राह हकीकत परै न चूकी। पैठि मारिफत मारि बुड़ूकी॥

जायसी को शरीअत अर्थात् विधि पर पूरी आस्था थी वे इन साधनावस्था का प्रथम सोपान कहते थे—

साँची राह सरीअत जेहि बिसवास न होइ।

१—जा० ग्र० ना० प्र० सभा काशी पृ० ४६ (दोहा २)।
२—वही पृ० ६७, (दोहा १०।१२-२-३)।
३—वही।

पाँव रखे तेहि सीढी निभरम पहुचे सोइ ॥[1]

और काम करे परतु हृदय म निरन्तर अपने (लक्ष्य प्राप्य) भगवान का ध्यान उसे करते ही रहना चाहिए –

परगट लोक चार कहु बाता । गपुत भाउ मन जासो राता ॥

ये चारो अवस्थायें परमात्मा के अनुग्रह से ही कल्ब या हृदय म बीच उपस्थित होती है और अहवाल कहलाती है। इस अहवाल की स्थिति म भक्त अपने को भूलकर *ब्रह्मानन्द म झूलने लगता है –*

कया जो परम तत मन लावा । घूम माति सुनि और न भावा ॥

जस मद पिए घूम कोइ नाद सुन प घूम ॥

तेहि तें बरज नीक हैं चढ रहसि क दूम ॥

उलटा साधन या गगन दृष्टि –

नाथ योगियो मे उलटा साधन का बहुत प्रचार था। इस उजान साधन भी कहा जाता था। चित्त की जो अधोमखी वत्तिया है उनसे उन्हें हटाकर उदयान या उध्वमाग मे लगाना यही उलटी साधना का लक्षण है। वे वष्णव बाउल और सूफी सबने इस परिभाषा को स्वीकार किया है।[1] जायसी ने काया साधन के अतगत अनक स्थलो पर गगन दृष्टि अनुभव या उल्टी दृष्टि का उल्लेख किया है –

उलटि दीढ़ि माया सो रूठी । पलटि न फिरी जानि कै झूठी ॥[2]

दसव दुआर तास का लेखा । उलटि दिस्टि लाव सो देखा ॥

सेंध लगाना चोरी करना –

जायसी ने चोरी करने या सेंध लगाकर चोरी करने के अभिप्राय का उल्लेख किया है। इस अभिप्राय के मम को न जानने वाने इस जायसी का काव्य दोष मानते हैं पर वस्तुत बात ऐसी नही है। नाथो सिद्धो के वणनो मे यह अभिप्राय मिल जाता है। सिद्धो के अनुसार सबसे ऊचा स्थान महासुख चक्र है। उसम जो सर्वोच्च तत्वात्मक सत्य है उसकी सत्ता सवशून्य है। प्रकृति दोष के कारण उस सवशून्य स्थान म अनक रूपो का मिथ्या ससार एकत्र हो जाता है। यह जीव मोहवश उसकी उसी प्रकार रक्षा करता है जिस प्रकार राजा अपन राज भडार की मजूषा के रत्नो की करता है। सवशून्य अवस्था की प्राप्ति के लिये उसी प्रकार के दोषो को दूर करना और लूटा कर रत्नमजूषा को रिक्त कर देना आवश्यक है।[3] रत्नसेन

१–डा० शशिभूषणदास गुप्त ओवस्क्योर रिलिजस कल्टस प० २६५–२६६।

२–जायसी ग्रथावली नागरी प्रचारिणी सभा प ५१ (दोहा ७४)।

३–द्रष्टव्य शशिभूषणदासगुप्त आवस्क्योर रिलीजियस कल्टस प ५४–५५। (पदमावत प्राक्कथन प ४३ से उद्धत)।

को भगवान शिव ने स्वयम उपदेश दिया था —

अब तें सिद्ध भएसि सिधि पाई। दरपन कया छूटि गई काई ।।
कहौं बात अब हौं उपदेसी । लागु पंथ भूत परदेसी ।।
जौ लगि चोर सेंधि नहिं देई । राजा केरि न मूस पई ।।
चढ़ें न जाइ बार ओहि खूंदी । परै त सेंधि सीस बल मूंदी ।।[1]

सहज सुंदरी सिद्ध योगी युगनद्ध महासुख

पदमावत में अध्यात्म और काव्य — दोनों दृष्टिकोणों से पद्मावती — रत्नसेन भेंट खंड शिखर के समान हैं। ज्ञात होता है कि कवि ने अपने काव्य शरीर के मध्य में रखकर उसे बहुत ही परिश्रम से सजाया है और साहित्यगत अभिप्रायों के साथ साथ अध्यात्म अर्थों का एक कोश ही बना डाला है। सहजयान के अनुसार मस्तिष्क में जो सहस्रार चक्र है उसी का नाम उष्णीश कमल है। उस उष्णीश कमल में महासुख का निवास है। महासुख कमल में शक्ति का जो रूप है उसे सहज सुंदरी कहा जाता है। उस सहज सुंदरी के साथ सिद्ध योगी सम्भोग के लिए युगनद्ध होकर महासुख का अनुभव करता है। जायसी की परिभाषा में इसकी संज्ञा कविलास है —

'सात खण्ड ऊपर कविलासू। तहं सोवनारि सेज सुखवासू ।
तेहि महं पंचग सेज सो डासी। का कहं ऐसि रची सुखवासी ।।

शरीरस्थ सात चक्र ही सात खण्ड हैं। उसके ऊपर आठवां चक्र उष्णीश कमल या कविलास है। उसमें जो महासुख का स्थान है वही जायसी का सुखवासी या सुखवास है। कविलास की परिभाषा कवि ने इस प्रकार की है —

साजा राजमंदिर कविलासू।[2] सोने कर सब पुहुमि अकासू ।।
औौर सुपेती फूलन्ह डासी। धनि औ कन्त मिले सुखवासी ।।

डा० वासुदेवशरण[3] अग्रवाल का कथन है —

कविलास नामक भवनगृह के विशेष भाग में शयनागार और सुखवासी की छतों दीवारों और फर्श पर सोने का पानी चढ़ाया जाता था। कवि की यह उक्ति 'सोने कर सब पुहुमि अकासू' भौतिक पक्ष में जीवन का सत्य थी किन्तु आध्यात्मिक पक्ष में सोना और रूपा सकेतवाची शब्द हैं। सोना का अर्थ सुवर्ण और सर्वशून्य स्थिति भी है। सर्वशून्य उष्णीश कमल या सहस्रार में परम सौन्दर्य का मिलन या महासुख का स्थान माना जाता था। वहाँ पहुँच कर साधक सहज सुंदरी के साथ

१—जायसी ग्रंथावली नागरी प्रचारिणी सभा पृ० ६२।
२—द्रष्टव्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत पृ० १७५।
३—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पद्मावत प्राक्कथन, पृ० ४४—४५।

अनन्त विलास करता है। इसे ही शिव या शक्ति का सम्मिलन कहते हैं। यही युगनद्ध भाव या युगलभाव कहा जाता है — जिस प्रकार सहज-सुन्दरी निर्मल वाग्चित्त या वज्रसत्व से मिलने के लिए अपने को सजाती है उसी प्रकार सखियाँ पदमावती का शृंगार करती हैं। जब रत्नसेन की योग साधना समाप्त हुई तो उसे भोग के लिए सखियाँ प्रेरित करती हुई विनोद करती है —

'धातु कमाइ सिखे तैं जोगी। अब कस जस निरधातु वियोगी॥
कहाँ न खोए बीरो लोना। जेहि तें होइ रूप औ सोना॥

प्रेमपथ में आगे बढ़ने वाला ही कविलास को प्राप्त करता है, वहाँ मृत्यु नहीं है सदासुख का वास है —

तिन्ह पावा उत्तम कबिलासू। जहाँ न मीचु सदासुख बासू॥
प्रेमपथ जो पहुँचै पारा। बहुरि न आइ मिलै एहि छारा॥

महासुख कमल के विषय में कहा है कि वहाँ सहज सुन्दरी जागी के साथ सदा विलास करना चाहती है। वहाँ पहुँचे हुए जोगी को सदा सदा के लिए उसके साथ युगनद्ध भाव या नित्य युक्त भाव प्राप्त होता है (शशिभूषणदास गुप्त आब स्क्योर रिलीजस कल्टस पृ० १३)। पदमावती भी रत्नसेन से इस बात की प्रतिज्ञा कराती है कि वह जन्म पर्यन्त उसे कभी अलग न होगा। जो सुखदानी में सदा उसके साथ निवास कर उसके साथ वह सदा प्रेम करेगी —

तासो नेह जो दिढ़ कर थिर आछहि सहनेम। (पद्मावत प्रा० प ४६)

रत्नसेन ने उसकी बात को स्वीकार किया और उसे विश्वास दिला दिया कि वह जन्म भर उससे अलग न होगा —

जेहि उपना सो औटि मरि गयऊ। जरम निनार न कबहूँ भएऊ॥
मिलि कै जुग नहिं होउ निनारा। कहा बीच दुनिया निहारा॥
अब जिउ जरम जरम तोहि पासा। किएउ जोग आयेउ कविलासा॥

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि प्रेममार्ग में प्रेमिका तो प्रतीक मात्र है। उसके साथ स्थूल भोग प्रेम मार्ग की अध्यात्म साधना नहीं बन सकता। प्रेममार्गी साधना का तात्पर्य है अध्यात्म के प्रति वैसा ही तीव्र आकर्षण जैसा कामी को नारी के प्रति होता है। प्रेमी और प्रेमिका के सम्मिलन में अध्यात्म दर्शन के साक्षात आनन्द को देश और काल किसी प्रकार तिरोहित नहीं कर सकते। इसीलिए प्रेमी और प्रेमिका का मिलन स्वयम् में एक पूर्ण प्रतीक है।

सामरस्य सिद्धान्त और जायसी का रहस्यवाद

भारतीय ब्रह्मवाद का एक अत्यन्त प्राचीन सिद्धान्त है कि जो ब्रह्माण्ड में है वही पिंड में है। परम सत्ता तात्विकतः समस्त विश्व में परिव्याप्त है। उसे ही मन

के भीतर ढूँढना या समझना चाहिए। दार्शनिक सहजयानी, हठयोगी नागपंथी निर्गुण मत के सन्त, प्रेममार्गी सूफी – इन सबने इस ठोस सिद्धान्त को एक मत से स्वीकार किया है।[1] कहा गया है कि इन पिण्ड में ही शिव शक्ति का निवास स्थान है। शिव की अवस्थिति ऊपर सहस्रार में है और शक्ति का स्थान कुंडलिनी में नाभि के अधोभाग में। यह रूप शिव और शक्ति का व्यष्टिगत अर्थात पिंडगत रूप है। समष्टि में परि व्याप्त वहत्तर विश्व में भी उनका यही रूप है।

निखिल सृष्टि का मूल कारण शिव शक्ति का यह विश्लेषण वियोग ही है। इसी वियोग के कारण सारी सृष्टि की रचना हुई है। पिंड और ब्रह्माण्ड की भी निर्मिति के मूल में यही कारण है। इसीलिए तो बार-बार कहा गया –

जो पिंड पिण्ड सोइ ब्रह्माण्डे। — — — — — —

'साधक का काय है यौगिक क्रियाओं द्वारा शिव और शक्ति का सामरस्य स्थापन। पारद और अभ्रक कोई मामूली वस्तु नहीं है वे हर और गौरी के शरीर के रस हैं। इनके शुद्ध प्रयोग से मनुष्य शरीर-त्याग किए बिना ही दिव्य देह पाकर मुक्त हो जाता है। — — — पारद और अभ्रक के मिलन से जो रस उत्पन्न होता है वह मृत्यु एवम दरिद्रता का नाश करता है।[2] जायसी ने पदमावत में इस सिद्धान्त को भी स्वीकार किया है।

सातो दीप नवो खंड आठो दिसा जो आहि।
जो बरम्हंड सो पिंड है हेरत अन्त न जाहि॥ (अखरावट ८।१)

रसेश्वर मत के दार्शनिकों और साधकों ने पारद को शिव और अभ्रक या गंधक को शक्ति का प्रतीक कहा है। पारद और गंधक के सामरस्य से ही जरा मरण को जीतने वाला रस प्रस्तुत होता है। हृदय रमन या हृदयाकाश में परम तत्व का दर्शन की जो प्रवृत्ति उपनिषद काल[3] में आरम्भ हुई थी। उसमें और निर्गुण सूफियों के दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं पड़ा। जायसी ने कहा है –

'अहुठ हाथ तनु सरवर हिया कवल तेहि माह।
नैनहिं जानहु निअरें कर पहुँचत अवगाह॥[4]

जायसी से कई सौ वर्ष पहले निर्गुण मत में भी यही भाव व्याप्त हो गया था –

१–डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पदमावत, प्राक्कथन पृ० ५२।
२–आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी नाथ सम्प्रदाय पृ० १७३ (१९५०)।
३–छान्दोग्य उपनिषद ८।१–१॥ ४–पदमावत प्रेम खंड (१२१ दोहा ३)।

हत्थ अहुट्ठह देवली बालह णाहि पवेसु।
सतु सिरञ्जाणु तहिं वसइणिम्मल होइगवेसु॥ (पाहुड दो० सं० ६४)

हिए की जोति दीप वह सूझा। (१२५।४) जायसी का वक्तव्य है। इसी लिए उस परम ज्योति को प्राप्त करने का उपयुक्ततम स्थान मनुष्य का अपना हृदय ही है।

जायसी का वैशिष्ट्य यह है कि उन्होंने इस शुष्क और साधनात्मक रहस्य वाद में अपने अन्तर का समस्त रस उड़ेल कर इसे सरस और मधुर बनाया है। निष्कर्ष कहा जा सकता है कि पदमावत में अवसर मिलने पर जायसी ने उस रहस्यमयी सत्ता की ओर अवश्य ही संकेत किया है।

प्रियतम के प्रति जायसी का चिन्तन विशाल है और मनन अत्यन्त गहन। अन्तर के प्रेम की व्याकुलता अत्यन्त तीव्र है और उसकी अभिव्यक्ति अत्यन्त मार्मिक सशक्त। वे अपनी आध्यात्मिक अनुभूति में ऐसी सत्ता के साक्षात्कार का चरम प्रयत्न करते हैं जिसके साथ प्रकृति और मानवात्मा की लीला निरन्तर चलती रहती है। उसी की प्रतिभासित सत्ता की दीप्ति निखिल संसृति में परिव्याप्त है। इस प्रकार गम्भीर चिन्तन गहन अध्ययन और विशाल एवम पवित्र मनन के माध्यम से वे अपने अन्तर के मनोभावों का सशक्त रहस्यवादी शैली में व्यक्त कर सके हैं। जायसी के समान रूप सौन्दर्य के प्रेमी सन्त ही विरल हैं। लौकिक सौन्दर्य को स्वर्गीय महिमा से मंडित करके प्रकट करने का जायसी जैसा सामर्थ्य तो और किसी में तो शायद ही मिले।[१]

१०

जायसी की काव्यभाषा

ठेठ अवधी जनता की बोली जायसी की भाषा

उत्तरी भारत के हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानों की भाषा प्रायः सर्वत्र अवधी दीख पड़ती है और उसमें भी प्रायः ठेठ रूप का ही प्रयोग हुआ है। उसमान और नसीर पर कुछ भोजपुरी का प्रभाव लक्षित होता है। नूरमुहम्मद की इन्द्रावती में भोजपुरी और ब्रज भाषा दोनों के प्रयोग स्पष्ट रूप में मिलते हैं। इन सूफी कवियों ने प्रायः तद्भवबहुला अवधी भाषा का प्रयोग किया है। यद्यपि सूफी काव्यों में प्रयुक्त अवधी संस्कृत के तत्सम शब्दों और उनकी कोमलकान्त पदावलियों से अलंकृत नहीं है तथापि वह तत्कालीन शिष्टजन समादृत बोलचाल की अवधी भाषा की स्वाभाविक विशेषताओं से मण्डित है। उनकी अवधी स्वाभाविक एवं श्रुति मधुर है। कुछ लोगों का कथन है कि वह सम्यक्‌निष्ठ साहित्यिक और परिष्कृत नहीं है फिर भी अवधी के स्वाभाविक रूप में उसका लालित्य और माधुर्य हृदयग्राही है। इन महान कवियों ने अपनी समर्थ लेखनी से जिस भाषा का एक महान साहित्य भाषा का रूप प्रदान किया है उसे साहित्यिक न मानना अन्याय है। अवधी भाषा का परिष्कृत और स्वाभाविक दोनों रूप गंगा-जमुना संगम की भाँति सूफी काव्यों की भाषा में दर्शनीय है। जायसी, कुतबन आदि सूफियों की विशेषता यह है कि उन्होंने बोलचाल की अवधी में सहज सरल किन्तु गूढ़-गंभीर, अर्थपूर्ण और समर्थ व्यंजनाएँ की हैं।

जायसी हिन्दी के सूफी कवियों के शिरोमणि हैं। वे अवधी भाषा के महाकवि हैं। उनके पद्मावत में सर्वत्र अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है। पदमावत में तत्कालीन अवधी का रूप सुरक्षित है। इसी कारण डा० श्यामसुन्दरदास[1] ने पद्मावत की अवधी को ग्रामीण अवधी भाषा कहना युक्ति संगत माना है। डा० ग्रियर्सन[2]

१–डा० श्यामसुन्दरदास और सत्यजीवन वर्मा संक्षिप्त पदमावत।

२–सर जार्ज ग्रियर्सन, पद्मावती भूमिका।

का कथन है कि पद्मावत में १६वीं शताब्दी में बोली जानेवाली अवधी का जीवित रूप द्रष्टव्य है। इसलिए भाषा शास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन के दृष्टिकोण से भी पदमावत की भाषा अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

'जायसी की अवधी भाषा-शास्त्रियों के लिए स्वर्ग है जहाँ उनकी रुचि की अपरिमित सामग्री सुरक्षित है। मैथिली के लिए जो स्थान विद्यापति का है मराठी के लिए जो महत्व ज्ञानेश्वरी का है वही महत्व अवधी के लिए जायसी की भाषा का है।'[१]

सोलहवीं शती में जब हिन्दी का प्रखर सूर्य अपने मध्याह्न को छूने की तयारी कर रहा था पदमावत की रचना उस उत्थानशील युग में हुई। जैसा कि प्रायः ऐसे काव्यों में होता है उस काल की भाषा और भाव-समृद्धि की सम्पूर्ण छाप इस पर लगी हुई है। जायसी अत्यन्त संवेदनशील कवि थे। संस्कृत के महाकवि बाण की भाँति व शब्दों में चित्र लिखने के धनी हैं चित्र भी ऐसे कि जिनके पीछे अर्थों का अक्षय स्रोत बहता है। अलंकार रस भाव आदि की काव्य-समृद्धि का तो यहाँ कोई अन्त ही नहीं मिलता। किन्तु कवि की सहज प्रतिभा बाहरी वर्णनों में परिसमाप्त नहीं हो जाती। वह अलंकार विधान के माध्यम से रस तक पहुँचने में सफल होती है।[२]

जायसी सचमुच शब्दों में चित्र लिखने की कला के अमर कलाकार हैं। अंग्रेजी के कवि ब्राउनिंग और हिन्दी के कवि जायसी कल्पना-अंकित चित्र की पूरी रेखाओं को मानस में प्रत्यक्ष करते हुए उसका उतना ही अंश शब्द-परिगृहीत करते हैं जितना उनकी दृष्टि में चित्र की व्यंजना के लिए न्यूनतम आवश्यक होता है।

पद्मावत की भाषा की अद्भुत शक्ति जायसी की पहली विशेषता है। अपभ्रंश साहित्य की शब्दार्थ परम्परा जिस प्रकार विकसित होकर हिन्दी को प्राप्त हुई थी उसका पूरा स्वरूप जायसी में देखा जा सकता है। उत्तर भारत की प्रधान साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी का विकास १४वीं शती में हो चुका था। मौलाना दाऊद कृत चन्दायन में यह बात स्पष्ट है। संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश से बहुमुखी उत्तरा-धिकार को अवधी भाषा ने प्राप्त किया था।

सूफी कवियों की यह विशेषता रही है कि वे प्रायः स्थानीय भाषाओं में ही अपने काव्यों की रचना करते रहे हैं। दौलत काजी आलाओल आदि ने जो बंगाल के रहने वाले थे बंगला में लिखा।[३] पंजाब के सूफी कवियों ने पंजाबी में ससिपुन्नो हीररांझा आदि की सर्जना की है।[४] यह सत्य है कि स्थानीय भाषा में संदेश

१–डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पद्मावत प्राक्कथन पृ० २८। २–वही पृ० ५६।
३–इस्लामी बांगला साहित्य सुकुमार सेन।
४–पंजाबी सूफी पोएट्स लाजवन्ती रामकृष्ण।

सुनाकर किसी स्थान की जनता पर अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव डाला जा सकता है। शेख फरीदुद्दीन गंजेशकर अपने शिष्यों से बातचीत करते समय 'हिन्दवी' का उपयोग करते थे। ये उपदेश 'सियातन औलिया' म सुरक्षित हैं। ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया भी अपनी बातचीत के बीच हिन्दवी का प्रयोग करते थे।[1] फारसी के प्रसिद्ध महाकवि अमीर खुसरो की हिन्दी रचनाओं को पर्याप्त प्रसिद्धि मिल चुकी है। जनता म अपना सदेश सुनाने के लिए मुल्ला दाऊद ने अवधी का ही चयन करना सर्वोत्तम समझा होगा। सभवत मुल्ला दाऊद स पूर्व अवधी की काव्य परम्परा विकसित हो चुकी थी। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने ठीक ही लिखा था कि कोसली भाषा बारहवीं शताब्दी के मध्य मे पूर्णरूप स विकसित हो चुकी थी।[2] जिस आजकल हम अवधी कहते हैं उसे डा० चाटुर्ज्या ने पूर्वी हिन्दी की एक बोली कोसली कहा है। यह अवध जनपद और पूर्वी मध्यप्रदेश की भाषा थी। स्पष्ट है कि अवधी के रूप म यह कोसली पूर्वी हिन्दी का एक रूप है। इसी म पीछे चलकर सत्यवती कथा पदमावत रामचरितमानस आदि लिखे गए हैं।[3] डा० मोतीचन्द्र का कथन है कि 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' के लेखक दामोदर स स्पष्ट विदित हो जाता है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश की जनभाषा पूर्वी हिन्दी क सस्कृत के पण्डितों स भी मान्यता प्राप्त हो रही थी और भाषा निर्माणकाल म न थी बल्कि पूर्णरूप से विकसित हो चुकी थी और सम्भवत इस भाषा का अपना साहित्य भी था जो खो चुका है।[4] विग्नानी[5] का विचार है कि पूर्वी हिन्दी का विकास १२वीं शताब्दी के मध्य म हो चुका था। रोडा कवि कृत राउलवल ११वीं शती की कृति है। यह कवि रोडा की ललित कलात्मक अभिव्यक्ति है।[6] डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि इसकी भाषा पुरानी दक्षिण कोसली है। जिस प्रकार 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' की पुरानी कोसली है। सामान्य रूप से इसम पोस्ट अपभ्रंश भाषा द्रष्टव्य है। निश्चय ही यह भाषा अपभ्रंश-तत्वों के पर्याप्त सम्मिश्रण से न्यू इण्डो आयन स्टेज से सम्बद्ध है। इसम उत्तर भारत के छ विभिन्न भाषाओं के प्रदेशों की सुन्दर कन्याओं के वैयक्तिक सौन्दर्य व्यवहार वेश भूषा, आभरण प्रसाधन आदि का

१—ग्लिम्पसेज आफ मडिवल इंडियन कल्चर, यूसुफ हुसेन पृ० १०५
२—उक्तिव्यक्ति प्रकरण (दामोदर पण्डित), भूमिका पृ० ७०
३—वही पृ० २।
४—वही भूमिका पृ० ७४
५—उक्ति व्यक्ति प्रकरण (भूमिका) डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या डा० मोतीचन्द्र।
६—प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम म सुरक्षित शिलालेख।
७—हिन्दी अनुशीलन वर्ष १३, अंक १, २, (१९६० ई०) पृ० २३।

ललित वणन है। इसम वतमान अवधी का पूव रूप भी सुरक्षित है।[1]

इस कृति के प्रकाशन से स्पष्ट हो जाता है कि दाऊद की चन्दायन अवधी की प्रथम कृति नहीं है। अवश्यमेव इसके पूव अवधी काव्य की एक विशाल परम्परा रही है। शोध के आलोक म ११वी से १४वी शती के बीच का अवधी साहित्य भी प्राप्त हो सकेगा— ऐसी सम्भावना रोडा कवि कृत राउलवेल की प्राप्ति के अनन्तर बलवती हो गई है। लिंग्विस्टिक सर्वे से यह ज्ञात होता है कि मुजफ्फरपुर तक बिहारी भाषाओ के क्षेत्र म भी मुसलमान अवधी को ही अपनी बोलचाल की भाषा मानते है। इसलिए अवधी के इन पूववर्ती क्षेत्रो के सूफी और सत मुसलमान कवियो ने यदि अवधी म रचनाए की तो अपनी बोलचाल की भाषा म ही की।[2] धीरे धीरे अवधी यहाँ के सूफियो की साम्प्रदायिक भाषा और प्रेम पीर की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई। यहाँ के सूफी कवियो ने फारसी अरबी के शब्दो का अपेक्षाकृत कम उपयोग किया है। दक्षिण के प्रेमाख्याना की दक्खिनी हिंदी या हिन्दवी भाषा पर फारसी अरबी का गहरा प्रभाव है।

अपभ्रंश की बहुमुखी अभिव्यक्ति से विकसित हुआ देश्य बोली का ज्वलत रूप पदमावत की अवधी में दशनीय है। कछ्रा पूव सुक्ख अरविक दरविक, नक्खत तप्प, कनप्प, भुम्मि नित्त कित्त खग्गि अग्गि जग्गि अक्थथ हत्थ आदि शब्दरूप अपभ्रंश परम्परा में निकटतर हैं। जायसी के शब्दो का अन्य काव्यो के साथ तुलनात्मक अध्ययन हिन्दी के अनेक प्राचीन काव्यो से उसका सम्बन्ध जोड देता है।[3]

जायसी के काव्यो म तत्सम शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। तत्सम शब्दो के प्रयोग प्राय वही हुए हैं जहाँ नामो का प्रश्न आया है। जायसी अरबी और फारसी के भी विद्वान थे। इस कारण तत्सम शब्दो मे सस्कृत, अरबी फारसी के शब्द मुख्य है।

जायसी न अपनी प्रेम पीर की मार्मिक अभिव्यजना और काव्याभिव्यक्ति के लिए अवध जनपद की ही बोली को चुना है। यह बोली पूरबी अवध के गाँवो के बोलचाल की बोली है। इस बोली का थोडा विकसित रूप आज भी इस प्रदेश म बोला जाता है। यद्यपि चार सौ वर्षों म उसम पर्याप्त परिवतन आ गया है तथापि विद्वानो का कथन है कि उसम कोई बहुत बडा परिवतन नहीं हुआ है जो

१—भारतीय विद्या वा० १७ पृ० १३२ (भा वि० भवन, बम्बई) लेखक डा० एच भायाणी

२—लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया (वा ६, पृ० ६)

३—वही, पृ० ६।

उसे पदमावत की भाषा से दूसरी ठहरा सके।[1] ए० जी० शिरफ ने जायसी की भाषा पर विचार करते हुए लिखा है कि 'जायसी की भाषा वह स्थानीय बानी है जो आज भी वहाँ बोली जाती है[2]।' हिन्दी में मुल्लादाऊद कृत 'चन्दायन' (१३७६ ई०) से लेकर नसीरकृत 'प्रेमदर्पण' (१९१७ ई०)तक लगभग छ सौ वर्षों की सूफी काव्यसाधनाधारा की एक अविच्छिन्न परम्परा मिलती है। इस बीच अनेक सुन्दर प्रेमाख्यानक काव्यों की रचनाएं हुईं किन्तु उनमें सर्वाधिक काव्य गुण-सम्पन्न, समर्थ भाषा-सम्पन्न तथा लोकप्रिय ग्रन्थ पदमावत ही है। इस ग्रन्थ रत्न की अक्षय कीर्ति और महान सफलता के अनेक उपादानों में इसकी भाषा का सारल्य एवं लोकाकर्षण रूप प्रमुख है। अत्यन्त सहजता और उसी के अन्तराल में अर्थ गाम्भीर्य और भाषा समर्थता के कारण यह ग्रन्थ प्रायः विद्वानों को अत्यन्त प्रिय रहा है। डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि 'पदमावत का महत्व उसके सुरक्षित रूप में है। अतः जायसी की रचना में तत्कालीन अवधी का रूप बच सका है। हिन्दी साहित्य के जायसी ही ऐसे पुराने लेखक हैं जिनकी कृति वास्तविक रूप में हमारे सामने है। जायसी ने तत्कालीन बोलचाल को अवधी में अपनी रचना की है। इनकी कृति स्वाभाविक बोलचाल के यथातथ्य शब्दों से पूर्ण है।[3] भाषा की स्वाभाविकता, सरसता और मनोगत भावों के प्रकाशन की सामग्री के रूप में जायसी ने अवधी को साहित्य क्षेत्र में मान्य बना दिया। मलिक मुहम्मद जायसी ने अवधी को साहित्य-क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने का सफल प्रयत्न किया है।[4]

पदमावत का शब्दकोष उसमें प्रयुक्त मुहावरे, लोकोक्तियाँ सूक्तियाँ आदि सामूहिक रूप से १६वीं शताब्दी में प्रचलित बोलचाल की अवधी का ही रूप प्रकट करती हैं। उसमें संस्कृतनिष्ठ भाषा का आग्रह नहीं है। उसमें लोकवाणी की ताजगी (फ्रेशनेस), स्वाभाविकता तथा मिठास पूर्ण मात्रा में है। यदि तुलसीदास और केशवदास की भाँति जायसी ने भी संस्कृत भाषा के पदों और शब्दों के प्रयोग किए होते तो पदमावत की भाषा कुछ दूसरे प्रकार की ही होती। तत्कालीन अवधी भाषा के अविकल लौकिक रूप को उस प्रारम्भिक अवस्था में जैसा सवार शृंगार युग पुरुष जायसी ने अपनी समर्थ तूलिका से किया, वैसा गोस्वामी तुलसीदास को छोड़कर हिन्दी का कोई अन्य कवि नहीं कर सका है। भाषा की समर्थता भी पदमावत के उत्कृष्ट काव्य-सौन्दर्य का एक गुण है। सचमुच जायसी हिन्दी साहित्य

१—ए० जी० शिरेफ पद्मावती भूमिका।

२—वही।

३—डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३०६।

४—वही पृ० ३११।

के महान कलाकारों में से हैं।[१]

डा० कमलकुल श्रेष्ठ का कथन है कि वे अपने उपदेशों को साधारण जनता के बीच फैलाने का प्रयत्न कर रहे थे। इस कारण उनकी भाषा जनसाधारण की परिष्कृत भाषा थी। इनका यही महत्व है।[२] इस मत में उचित इतना ही है कि पदमावत की भाषा जनसाधारण की परिष्कृत भाषा है।

अवधी भाषा और पदमावत

डा० बाबूराम सक्सेना ने अपने ग्रन्थ 'इवाल्यूशन आफ अवधी' में अवधी भाषा का सुन्दर भाषा वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है कि हिन्दी भाषा की चार प्रधान उपभाषाएं हैं। इनमें पूर्वी हिन्दी भी एक उपभाषा है। पूर्वी हिन्दी का विकास प्राचीन अर्द्धमागधी प्राकृत से हुआ है। पूर्वी हिन्दी की दो प्रमुख बोलियां हैं—अवधी और छत्तीसगढ़ी।[३]

डा० धीरेन्द्र वर्मा ने पूर्वी हिन्दी की बोलियों में अन्तर्गत अवधी बघेली और छत्तीसगढ़ी की गणना की है। हरदोई जिले को छोड़कर शेष अवध की बोली अवधी है। यह लखनऊ उन्नाव, रायबरेली सीतापुर खीरी फैजाबाद, गोंडा बहराइच, सुल्तानपुर प्रतापगढ बाराबंकी में बोली जाती है किन्तु इन जिलों के अतिरिक्त दक्षिण में गंगापार इलाहाबाद फतहपुर, कानपुर मिर्जापुर तथा जौनपुर के कुछ भागों में भी बोली जाती है। मिश्रित अवधी का विस्तार बिहार के मुजफ्फरपुर जिले तक है। पद्मावत चित्ररेखा रामचरितमानस और कृष्णायन अवधी के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ रत्न हैं।[४]

पदमावत की भाषा पूरबी अवधी है उसमें पश्चिमी हिन्दी फारसी, अरबी संस्कृत के शब्दों के भी प्रयोग भी प्राप्त होते हैं। श्री सूर्यकान्त शास्त्री का कथन है कि जायसी की कृतियों से भी हमें १६वीं शताब्दी के उत्तर भारत की जनभाषा का यथार्थ प्रमाण मिलता है[५] सचमुच पदमावत तत्कालीन अवध की जनभाषा का जीवन्त और व्यञ्जनात्मक रूप प्रस्तुत करता है। आगे के पृष्ठों में हम देखेंगे कि यह भाषा अत्यन्त श्रुतिमधुर व्यञ्जनापूर्ण समर्थ सशक्त एवं माधुर्यपूरित है। यह

१—डा० माताप्रसाद गुप्त जायसी ग्रन्थावली वक्तव्य, पृ० ३।

२—डा० कमलकुल श्रेष्ठ हिन्दी प्रमाख्यानक काव्य पृ० ३६८।

३—विशेष विवरण के लिए देखिए—डा० बाबूराम सक्सेना इवाल्यूशन आफ अवधी।

४—डा० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा और लिपि पृ० ५०।

५—श्री सूर्यकान्त शास्त्री पद्मावति (१९३४) प्रीफेस पृ० ६।
हिज वर्क्स, देअरफोर इज ए वेल्यूएबल विटनेस टू दी ऐक्चुअल कंडीशन आफ दी वर्नाक्यूलर लेंग्वेज आफ नार्दर्न इण्डिया इन दी सिक्स्टीन्थ सेंचुरी।

पदमावत के काव्य-सौंदय का एक रहस्य है।

सूक्तियाँ, लोकोक्तियाँ, कहावतें, मुहावरे और जायसी

जायसी के काव्यों म सौंदय संवद्धन करने वाले प्रसाधनों म सूक्तियों, लोकोक्तियों कहावतों और मुहावरों के भी महत्वपूर्ण स्थान है। ये सौंदय-वद्धक तत्व सवत्र भाषा भाव धारा से प्रकृत्या जल तरंगवत संपक्त हैं कहीं भी ये आरोपित से नहीं लगते।

हिंदी साहित्य म घाघ, भड्डरी आदि की कहावतें काफी लोकप्रिय हैं, पर उन्हें साहित्य म समादर नहीं मिला है। सम्पूर्ण हिंदी साहित्य मे सम्भवत जायसी ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने कहावतों और लोकोक्तियों को गृहीत करके 'मसला नामक एक सुंदर काव्य लिखा है।[1] हिंदी के अन्य सूफी कवियों म भी लोकोक्तियों के प्रयोग की प्रवृत्ति मिलती है–

'जाके गोड़न फटी बेवाई। सो का जाने पीर पराई॥[2]
'रहे न एको अंत वह, नारंग दाडिम दाख।
दिवस चारि की चांदनी फिर अंधियारी पाख॥[3]
'दिवस चारि की चाँदनी फिर अंधियारी पाख।'
'कुछ तो अहै दार मह कारा।'
'अंग अंग सब व्याकुल पात वियोग।
आँसू नदी बहावा पतन लोग॥[4]
सुन सम्पति सब दीन्हा दाता।
मारु न छोर भात मो नाता॥[5]
पट बाहर जेइ पाँव पसारा।
जाड़ा कठिन अंत तहि मारा।
बातहि हाथी पाइयो बातहि हाथी पाँव।[6]
'जा जहि के जस लिखा लिलारा।

---

[1]–देखिए प्रथम खंड अध्याय ३ 'मसला या मसलानामा।
[2]–नूरमुहम्मद, इन्द्रावती पृ० ७९ (१९०६ ई०)।
[3]–वही, पृ० ३८।
[4]–नूरमुहम्मद अनुराग बांसुरी प० ६३।
[5]–नूरमुहम्मद अनुराग बांसुरी पृ० १३६।
[6]–नूरमुहम्मद इन्द्रावती।
[7]–नूर मुहम्मद इन्द्रावती।
[8]–नासिमशाह, हंस जवाहिर।

सो मो भय को मेटनहारा ॥[1]
'आजु सिरान हिया दुख जरा ।
मुए धान जनु पानी मरा ॥

हिन्दी के सूफी सतो की भाषा म लोकोक्तियाँ सहज और सरल भाषा मे स्वाभाविक्त अभियक्त हुई हैं । मार्मिकता और स ज ही हृदय स्पश करने की शक्ति के कारण ये उक्तियाँ महत्वपण हो उठी हैं । जायसी के कायो म लोकोक्तियो मुहाविरों आदि का परम सौन्दय दशनीय है ।

(क) सूक्तियो से भाषा की व्यजकता (सजेस्टिवनेस)

पदमावत की सक्तियो म सहज चमत्कार और वाग्वदग्य के साथ जायसी की भावुकता का सौन्दय भी दशनीय है । सूक्तियां[2] से तात्पय वचित्र्यपूण सुदर उक्तिया से है जिसम वाक्चातय ही प्रधान होता है । कोई बात यदि नए अनूठ ढग से कही जाय तो उससे बहुत कुछ लोगो का मनोरजन हो जाता है इससे कवि लाग वाग्वदग्य से कम काम लिया करते हैं । नीति सम्बन्धी पद्यो म चमत्कार की योजना अवसर देखत म आती है । जम बिहारी के 'कनक कनक त सौगुनी मादकता अधि काय वाले दोह म अथवा रहीम के इस प्रकार के दोह म—

बड पेट के भरन मे है रहीम दख बाढि ।
याते हाथी हहरि क दिय दाँत द्व काढि ॥
ज्यो रहीम गति दीप की कुल कपूत की सोइ ।
बारे उजियारो लग बढे अधरो होइ ॥

इस प्रकार के कथनो म आकर्षित करने वाली वस्तु जो होती है वणन क ढग का चमत्कार । इस प्रकार का चमत्कार चित्त को आकर्षित करता है । यह अवश्य अपेक्षित है कि इस प्रकार के वाग्वदग्ध्यपूण कथनो म मन को भिन्न भिन्न भावो म लीन करने की पूण क्षमता है— वाग्वदग्ध्यप्रधानऽपि रस एवात्र जीवितम ।[3]

भाव व्यजना वस्तु वणन और तथ्य प्रकाश सबके अ तगत चमत्कारपूण कथन हो सकता है । रहीम के ऊपर दिए गए दोहो म तथ्य प्रकाश क उदाहरण हैं । भाव व्यजना क उदाहरण के लिए निम्नलिखित दोहा लिया जा सकता है—

यह तन जारौं छार क कहौ कि पवन उडाव ।
मकु तेहि मारग उडि पर कत धर जह पाँव ॥

१—उसमान चित्रावली ।
२—आचाय रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली (भूमिका) पृ० १६८ ।
३—अग्निपुराण (बी आई एडीशन),साहित्य दपण(पी०वी०काणे),पृ ४ से उद्धत ।
४—आचाय रामचन्द्र शक्ल, जायसी ग्रन्थावली पृ १५४ ।

जायसी ने वस्तु चित्रण की वैचित्र्यपूर्ण सूक्तियों का प्रयोग भी सुन्दरता से किया है। जैसे—

'चकई बिछुरि पुकारे कहाँ मिलौं, हो नाह।
एक चाँद निसि सरग मह दिन दूसर जल माँह॥'[१]

कवि समय की बात है कि चकवा चकवी रात्रि में एक दूसरे से अलग रहते हैं, दिन में उनका मिलाप हो जाता है। जायसी का कथन है कि पदमावती के मुखचन्द्र के कारण दिन में भी रात का भान होता है और चकवा चकवी का बिछोह हो जाता है। प्रस्तुत उक्ति में तीव्र भाव व्यंजना है आलम्बन के सौन्दर्य की अनुभूति में एक चमत्कार है और है जायसी की भावुकता का उत्कृष्ट निदर्शन।

'बस मीन जल धरती, अंबा बस आकास।
जो पिरीत पै दुवौ महं अंत होहिं एक पास॥'[२]

प्रस्तुत दोहे में भाषा की उच्चकोटि की व्यंजकता सहज रूप से मुखरित हुई है। 'जेहिकर जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥' (तुलसीदास) वाली बात की तीव्र व्यंजना के लिए दूर स्थित दो वस्तुओं का सान्निध्य प्रदर्शित किया गया है—

'जावर पीउ बस जेहि, तेहि पुनि ताकर टेक।
कनक सोहाग न बिछुर आटि मिल होइ एक॥'[३]

प्रेम का घाव स्वतः अनुभूत वस्तु है—

प्रेम घाव दुख जान न कोई। जेहि लाग जान प सोई॥[४]

प्रियतम के साहचर्य से वियुक्त प्रेमिका की दशा अत्यन्त दयनीय होती है—

आवा पवन बिछोह कर, पाट परी बेकरार।
तरिवर तजा जा चूरि के लागौं केहि के डार॥[५]

पदमावत में फारसी कहावतों की भी छाया कहीं कहीं दिखाई पड़ती है जैसे—

नियरहिं दूर फूल जस काँटा। दूरहिं नियर जइस गुर चाँटा॥[६]

फारसी—दूरी बावसर नजदीक व नजदीकी बेबसर दूर। दूरस्थित रसिक के लिए पास है और निकटस्थ अरसिक के लिए दूर है। निकट वाले के लिए दूर ऐसे जैसे फूल के संग के काँटे के लिए फूल का रस और सौन्दर्य दूर रहता है। दूर वाले के लिए ऐसे, जैसे चींटे के लिए गुड़। फारसी उक्ति में भी यही बात है कि दृष्टि

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रंथावली, पृ० २४ (दोहा ५)।
२—वही, पृ० १७१ (भूमिका)।
३—जा० ग्र० ना० प्रा० सभा, काशी पृ० १३७।
४—वही प० ४६। ५—वही, प० १७७।
६—वही, ।

थाने के लिए दूर भी निकट है और बिना दृष्टि वाले के लिए नजदीक भी दूर है। प्रेम और कस्तूरी छिपाए नहीं छिपते।'

परिमल पेम न आछ छपा।'

फारसी– इश्क व मुश्क रा नतवाँ नहुफनन।

कहीं-कहीं तो फारसी शायरों की उक्तियाँ पदमावत में ज्यों की त्यों आई हैं। अलाउद्दीन की चढ़ाई का वर्णन करते हुए घोड़ों की टापों से उठी धूलि के आकाश में छा जाने पर जायसी कहते हैं–

सत खंड धरती भइ षट खंडा। ऊपर अस्ट भार बरम्हंडा।

यह फिरदौसी के शाहनामे का ज्यों का त्यों अनुवाद है–

जे सुम्म सितोंरा दरा पहने दश्त। जमी शश शुदो अस्मां गश्त हश्त।

अर्थात उस लम्बे चौड़े मैदान में घोड़े की टाप से जमीन सात खण्ड के स्थान पर छ ही खण्ड की रह गई और आसमान (तबक) के स्थान पर आठ खण्ड का हो गया।

जायसी का फारसी साहित्य का अध्ययन बड़ा गम्भीर था। अपनी ग्राहिका शक्ति का परिचय देते हुए उन भावों या उक्तियों को जायसी ने अधिक सौंदर्य प्रदान किया है—यह उनकी विशेषता है।

कुछ सूक्तियाँ जीवन के आचार-व्यवहार से भी सबद्ध हैं जैसे—

जौ न कंत के आयसु माहीं। कौन भरोस नारि कै बाहीं॥'

अर्थात स्त्री की शोभा पति की आज्ञा का पालन है। यदि नारी पति की आज्ञानुवर्तिनी नहीं है तो उसका क्या भरोसा? जिस प्रेमी चाहे वही सुन्दरी है–

लोन बिलोन तहाँ को कहै। लोनी सोइ कन्त जेहि चहै।'

यौवन के प्रति मनुष्य का राग स्वाभाविक है–

मुहमद बिरिध जो नइ चलै काह चलै भुइं टोइ।
जोबन रतन हेरान है मकु धरती पर होइ॥'
'बिरिध जो सीस डोलावै सीस धुनै तेहि रीस।
बूढ़ै आड़ होहु तुम्ह केइ यह दीन्ह असीस॥'

इन दोनों उदाहरणों में तथ्य प्रकाशन के साथ चमत्कार और भावुकता भी है। बुढ़ापे में कमर झुक जाने और सिर हिलने तथा यौवन-अवस्था के प्रति राग से सबद्ध सूक्तियों के रूप में ये उदाहरण दिए जा सकते हैं।

१–जा० ग्र० ना० प्रा० सभा काशी पृ० ३५। २–वही, पृ० ३४।
३–वही, पृ० २६८ (दोहा ३)
४–जा० ग्र० हिंदुस्तानी अकेडमी पृ० ५५६

जायसी ने सस्कृत की भी सूक्तियो के द्वारा सहज ही गाढ़ ‌यजना का प्रयत्न किया है। कहीं-कहीं तो सस्कृत की उक्तियाँ ज्यों की त्यों ले ली गई हैं। जैसे–

थल थल नग न होहि जेहि जोती। जल जल सीप न उपजहि मोती ॥
बन बन "बिरिछ न चदन होही। तन तन बिरह न उपन सोई ॥

जायसी की प्रस्तुत सूक्ति चाणक्य के निम्नलिखित श्लोक का अवधी रूपांतर है–

शले शले न माणिक्य मोत्तिक न गजे-गजे।
साधवो नहि सवत्र चदन न वने-वने ॥

मझन कृत मधुमालती में भी प्रस्तुत उक्ति मिलती है–

'रतन कि सागर सागरहि गजमोती गज कोय।
चदन कि बन-बन उपजइ बिरह कि तन-तन होय ॥'

इसी प्रकार की और भी बहुत सी उक्तियाँ पदमावत म मिल जाती हैं। जसे–

'भँवर जो पावा कवल कह मन चीता बहु केलि।
आइ परा कोइ हस्ति तह, चूर किएउ सो बेलि।'

यह इस श्लोक का अनुवाद जान पड़ता है–

रात्रिगमिष्यति भविष्यति सुप्रभात, भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पकजश्री।
इत्थ विचिन्तयति कोशगते द्विरफ हा हन्त! हन्त! नलिनीगजउज्जहार ॥

इन सूक्तियो के प्रकाश म कहा जा सकता है कि जायसी का सस्कृत भाषा का भी अच्छा ज्ञान था। श्री टेकचन्द जी का तो यहाँ तक कहना है कि हिन्दू पौराणिक और लौकिक कथाओ के लिए एवम हिन्दू सस्कृति और धर्म के तत्वो के ज्ञानार्जन के लिए भी जायसी ने प्रख्यात हिन्दू पडितो से अनेक वर्षों तक सस्कृत भाषा का अध्ययन किया था।[1] चित्ररेखा म भी सूक्तियो के सुष्ठु प्रयोग द्रष्टव्य हैं–

'कत नहर पुनि आइब कत ससुर यह खेल।
आपु-आपु कहँ होइहै ज्यो पखिन महँ केन ॥'[2]
'मन इच्छा क लाख दम नियन मरउजिनि कोइ।
जो लिखि धरा विसभर सो फिर आन न होइ ॥'[3]
राजपाट धन याहँ जग महँ पूत पियार।
जो दीपक घर नाही आनत जग अँधियार ॥[4]

जायसी द्वारा सूक्तियाँ प्राय अत्यन्त स्वाभाविक रूप म ही प्रयुक्त हुई हैं।

१–श्री टेकचन्द पद्मावति (फोरवर्ड), श्री सूर्यकान्त शास्त्री द्वारा सपादित पृ० २
२–चित्ररेखा, पृ० ८४।
३–वही पृ० ८५।
४–वही, पृ० ८६

मुहावरों से चुस्त और अर्थपूर्ण बनी भाषा

जायसी ने पदमावत चित्ररेखा कहरानामा प्रभृति ग्रन्थों की भाषा में अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता तथा भाव व्यंजकता लाने के लिए सूक्तियों के साथ ही मुहावरों का प्रयोग भी अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया है। इस कार्य में वे पूर्णत सिद्ध हस्त हैं। मुहावरों के प्रयोग से उनकी भाषा में चुस्ती आ गई है और वह भाव-व्यंजना में अधिक सशक्त हो गई है। मुहावरों से सबलित उनकी उक्तियाँ सीधे हृदय को स्पर्श कर लेती हैं। जैसे—(नीर घटना हृदय फटना)—

जोबन नीर घटे का घटा। सत्त के बर जो नहिं हिय फटा।

यहाँ पर हृदय को सरोवर माना गया है। जल घट जाने पर ताल या सरोवर सूख जाता है उसमें दरारें पड़ जाती हैं। कवि का प्रतिपाद्य है कि जैसे ताल या सरोवर का जल घटने पर उसका हृदय फट जाता है वैसे यदि यौवन क्षय से प्रिय का हृदय न फटे और उसकी प्रीति पूर्ववत् बनी रहे तो सुन्दर और यदि प्रीति टूट गई—हृदय फट गया तो उसका क्या अर्थ ?

कवि प्रायः मुहावरों के प्रयोग से भाषा को सशक्त बनाते हैं और उसकी व्यंजना शक्ति में तीव्रता लाने का प्रयत्न करते हैं। जो लेखक मुहावरों का प्रयोग जितनी ही स्वाभाविकता और सफलता से कर सकता है, उसकी भाषा उतनी ही चुस्त स्वच्छ और ओजपूर्ण मानी जाती है। कहीं-कहीं तो जायसी ने उल्लसित भाव से वर्णन करते हुए मुहावरों की झड़ी लगा दी है। जैसे—

परी नाथ कोइ छुव न पारा। मारग मानुष सोन उछारा।
गऊ सिंह रेंगहिं एक बाटा। दूनो पानि पियहिं एक घाटा।
नीर खीर छाने दरबारा। दूध पानि सब कर निनारा।।
धरम नियाव चलै सत भाखा। दूबर बली एक सम राखा।।
सब पृथवी सीसहिं नई जोरि जोरि कै हाथ।
गंग जमुन जौ लगि जल तौ लगि अम्मर नाथ।।[1]

तत्कालीन बादशाह शेरशाह की प्रशंसा और उसके शासन का गुणगान करते हुए जायसी ने प्रस्तुत उद्धरण में मुहावरों की झड़ी ही लगा दी है—'परी नाथ न छूना' 'मार्ग में सोना उछालना' 'गाय और सिंह का एक घाट पर पानी पीना' 'नीर-क्षीर विवेक', 'दूध का दूध और पानी का पानी' 'धर्म-न्याय पर चलना' 'सत्य बोलना' 'दुर्बल और बली की एक समान रक्षा करना' 'सिर नवाना', 'शीश झुकाना' 'हाथ जोड़ना' 'जब लगि गंग जमुन की धारा' प्रभृति मुहावरों का यहाँ पर सगुम्फन द्रष्टव्य है।

१—जायसी ग्रन्थावली, नागरीप्रचारिणी सभा काशी पृ० ६।

कुछ और पद्य उदाहरणार्थ दिऐ जा सकते हैं–

'जोवन वान लेहि नहि बागा।
देश-देश के वर मोहि आवहि। पिता हमार न आँख नगावहि।।'
राजा सुना दीठि भ आना।
राजा वहुत मुए तपि लाइ–लाइ मुँह माथ।
'काहू छुव न पाए गए मरोरत हाथ।'
को अस हाथ सिंघ मुख घाल।

इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि जायसी ने मुहावरो का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक रीति से किया है।

कहावतो से सजीव बनी भाषा

कहावतों के प्रयोग के क्षेत्र म जायसी हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कलाकार के रूप म उपस्थित होते हैं। इनका मसला नामक ग्रंथ अवधी कहावतों और मुहावरो का आकर ग्रन्थ कहा जा सकता है। इस ग्रंथ जैसा कहावतो स भरा कोई अन्य ग्रंथ हिन्दी म नहीं दिखाई देता। कतिपय उदाहरणों द्वारा यह बात स्पष्ट हो जायगी—

सासु यदि तरुणी हो तो मना बहुएँ क्या शृंगार करेंगी ? 'बुद्धि विद्या के कटक म एक मनुष्य की क्या गणना ? इन दो कहावतो का अत्यन्त स्वाभाविक और मार्मिक प्रयोग अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है–

बुधि विद्या के कटक महँ मोहि मन का विस्तार।
जेहि घर सासुहि तरुणि है बहुअन कौन सिंगार।'

चित्ररेखा म भी कहावतो का अत्यन्त सजीव प्रयोग हुआ है–

कहाँ चनाई मरन की, पीठहि पकरी पठ।
परनारी के नायक, कनज पराए सठ।'
पुर वह सोइ जो घर्महि घर। मरती वार सब छाहँन मरै।
मनहि कलपि रोवहि हिय फाटा। मरी नाउ को लावइ घाटा।'
दिया बुझाइ होइ अँधियारा। को अब नसि करइ उजियारा।'

१—जायसी कृत मसला नागरीप्रचारिणी सभा की पोथी अखरोती और मसला की हस्तलिखित प्रति, पृ० ६२।

२—चित्ररेखा (हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय), पृ० १०।

३—वही, पृ० ६५।

४—वही पृ० ६४।

'दोष ताहि जेहि सूझ न आगू।
उलू न जान दिवस कर भाऊ।
'जहर चुव जो जो कह वाता।
तुरय रोग हरि माथे जाए।
साहस जहाँ सिद्धि तह होई।
मेटि न जाइ लिखा पुरबिला।'
'निकसे घिउ न बिना दधि मथे।
घर के भेद लंक अस टूटी।
बिरवा लाइ न सूखन दीज।
'मेटि न जाइ काल क घरी।

इन कहावतो का प्रयोग बड़े कौशल से किया गया है। स्पष्ट है कि कहावतो के प्रयोग के कारण इनकी भाषा बड़ी ही हृदयस्पर्शिनी और सजीव हो उठी है।

प्रत्येक भाषा म अपने मुहावरो और लोकोक्तियो का एक विशाल कोष होता है। साहित्य की श्रीसम्पन्नता के लिए इनका होना आवश्यक है। साहित्य जीवन के अंचल से सबद्ध रहता है—चाहे वह लोक साहित्य हो या अभिजात साहित्य (क्लासिकल)। मुहावरे लोकोक्तियाँ और सूक्तियाँ जनकंठ से निःसृत होकर साहित्य के अभिन्न अगरूप मे ही काव्य प्रसाधन बनती हैं। इनके प्रयोग से कवियो की उक्ति म तीव्रता सशक्तता स्पष्टता मार्मिकता प्रभावोत्पादकता आदि गुण आ जाते हैं। साथ ही भाषा भाव धारा म स्वाभाविक प्रवाह और गति आ जाती है। वक्तव्य में निखार आ जाता है। यही इन सबके प्रयोग की महत्वपूर्ण विशेषताए है। मुहावरे, कहावतें आदि के प्रयोग के विषय मे शुक्ल जी के विचार उल्लेखनीय हैं—'मुहावरो को अधिक प्राधान्य देने से रूढ पद समूहो मे भाषा बधी सी रहती है। उसकी शक्तियो का नवीन विकास नही हो पाता। कवि अपने विचारो को ढालने के लिए नए-नए साँचे न तयार करके बने बनाए साँचे मे ढलने वाले विचारों को ही बाहर करता है।'[1]

जायसी के काव्यो मे मुहावरे और कहावतें सवत्र स्वाभाविक रूप म प्रयुक्त हैं। यदि जायसी ने इनके प्रयोग न किये होते तो सभवत, उनकी भाषा म वह चुस्ती चलतापन और सरलता न आ पाती जो किसी लोकभाषा या साहित्य भाषा की जीवत विशेषता है। जायसी की विशेषता यह भी है कि उन्होने अपने काव्य म इनका एक विशाल कोश एकत्र करके रख दिया है। इनके प्रयोग से पद्मावत की भाषा सशक्त और जीवत हो उठी है।

१—प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रथावली (भूमिका) पृ० २०१।

भाषा–शक्ति

पदमावत की भाषा म समथ भाषा के प्राय सभी गुण उपलब्ध हो जाते है। इस सम्बन्ध म पदमावत के भाष्यकार डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन उल्लेखनीय है – 'मलिक मुहम्मद जायसी कृत पदमावत की भाषा ऊपर से देखने पर बोलचाल की देहाती अवधी कही जाती है, किन्तु वस्तुत वह अत्यन्त प्रौढ, अथ-सम्पत्ति से समथ शैली है। अनेक स्थानो पर जायसी ने ऐसी श्लेषात्मक भाषा का प्रयोग किया है जिसके अथ लगातार कई दोहो तक एक से अधिक पक्षो मे पूरे उतरते हैं। डा० अग्रवाल ने इस प्रकार के पाँच दोहो के उदाहरणो द्वारा इस बात के स्पष्टीकरण का प्रयत्न किया है।[1] उनकी सजीवनी टीका के अध्ययन से भी स्पष्ट हो जाता है कि सचमुच जायसी की भाषा शक्ति अभूतपूव है। ठठ अवधी के बोलचाल के शब्दो मे श्लेष के द्वारा जो समथता और चमत्कार शक्ति भर दी गई है वह प्रभविष्णु और हृदयस्पर्शी है –

'बरस मेह चुवहि ननाहा। छपर छपर होइ रहि बिनु नाहा।'
'बरस नन चुव घर माहा।

प्रस्तुत पक्ति में 'नन' का अथ नेत्र के अतिरिक्त छप्पर म धुआँ निकलने का प्रकाश आने वाला छेद भी है। जायसी का यह भी आशय है कि टूटे हुए छप्पर मे से इन छिद्रो के रास्ते से घर के भीतर पानी टपक रहा है।

काह हसौ, तुम मो सौं किएउ और सो नेह।
तुम मुख चमक बीजुरी हम मुख बरस मेह॥[2]

नागमती का यह वक्तव्य अत्यन्त सहज और सरल भाषा म व्यक्त किया गया है किन्तु यह अपनी मार्मिकता के कारण सीधे हृदय को स्पर्श कर लेता है। इन पक्तियो म लोक-व्यवहार की अवधी भाषा की व्यजना और प्रभविष्णुता दर्शनीय है। ऐसे सकडो उदाहरण पदमावत म भरे पडे हैं। पदमावत की भाषा म जायसी के मनोभावो की पूण अभिव्यक्ति हुई है। उनकी भाषा अपने देश, काल, समाज और वक्तव्य-वस्तु की अभिव्यक्ति म पूण समथ है।

तुलसीदास का काव्य सवजन सवेद्य है। उनकी भाषा सस्कृतनिष्ठ साहित्यिक भाषा है। उन्होने पण्डित वग को भी दृष्टिपथ में रखा था। सूर का सागर भी भागवतादि सस्कृत ग्रथों की प्रेरणा और आधारशिला पर बना है किन्तु जायसी

१–देखिए नागरी प्रचारिणी पत्रिका हीरक जयन्ती अक स० २०१०, वष ५
अक ३, पृ० १५५, (१५५ से १८६ तक)।

२–जायसी ग्रथावली, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी पृ० १५७।

की परिस्थिति ही दूसरी थी। इनके सामने न भागवत जैसा कोई ग्रंथ था और न अध्यात्म एवम् बाल्मीकि रामायण जैसा। लोक प्रचलित कहानियाँ इन्होंने ली। इनका लक्ष्य जनता के हृदय को छूना था। इनके सामने न तो पण्डित वर्ग था और न मुल्ला वर्ग। वे अपने उपदेशों को साधारण जनता के बीच फैलाने की कोशिश कर रहे थे। इस कारण उनकी भाषा जनसाधारण की परिष्कृत भाषा थी। इनका यही महत्व है।[1]

'यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन! उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परौं कंत धरै जहँ पाँव॥

इस पद्य में भावों की तीव्रता, भाषा की सुबोधता और अलङ्कृत व्यञ्जना कला का उत्कृष्ट सौंदर्य दर्शनीय है।

विरहिणी के मनोभावों का एक सुबोध चित्रण देखिए —

रकत ढरा माँसू गरा हाड़ भयउ सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई पीउ समेटहि पंख॥

कई लोगों ने फारसी प्रभाव कहकर इन पंक्तियों की निन्दा की है किन्तु वे यह विचार करना भूल गए कि जायसी अपने कथन की प्रेषणीयता में सफल हैं या नहीं। फारसी प्रभाव हो या अन्य कोई यदि कवि अपने वक्तव्य की व्यञ्जना में सफल है तो उसे यों ही नहीं टाला जा सकता। इन पंक्तियों की व्यञ्जना द्रष्टव्य है। कहीं-कहीं जायसी अपने अभिप्रेत को घुमा फिरा कर इस कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं जिसमें भाव एवं व्यञ्जना को आश्चर्यजनक मार्मिकता प्राप्त हो जाती है —

जोबन जल दिन दिन जस घटा। भँवर छपान हंस परगटा।

इस पद्य में भ्रमर द्वारा काले केश और हंस द्वारा श्वेत केशों की व्यञ्जना का सौंदर्य द्रष्टव्य है।

भाषा की एकरूपता और उसकी कतिपय अन्य विशेषतायें

जायसी के भाषा सौंदर्य में उसकी एकरूपता का भी बड़ा महत्व है। पद्मावत, चित्ररेखा और कहरानामा में आदि से अन्त तक एक जैसी भाषा का प्रयोग हुआ है। यह भाषा सर्वत्र श्रुतिमधुर और नादित है। इसमें सहज उच्चार्यता का महान गुण विद्यमान है। जैसे —

पदमावति भइ पूनिउँ कला। चौदसि चाँद उई सिंघला।
नयन जो देखा कवँल भा निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा दसन जोति नग हीर॥[2]

१—डा० कमलकुल श्रेष्ठ हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य पृ० ३६८।
२—जायसी ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा काशी पृ० २५।

जायसी की काव्य भाषा

खडी बोली और राजस्थानी (डिंगल आदि) की अपेक्षा जायसी की भाषा में अधिक कोमलता और मृदुता भरी हुई है। उसमें डिंगल जैसा बोझीलापन नहीं है। कबीर की भाषा में भी जायसी की भाषा के इस गुण का अभाव है। यह अवश्य है कि जायसी के काव्य में ऐसे स्थल कम हैं जहाँ संस्कृतोन्मुखी भाषा का रूप देखने को मिलता है —

बरनौं सूर भूमिपति राजा। भूमि न भार सहै जेहि साजा।
हय गय सेन चल जगपूरी। परवत टूटि उड़हिं होइ धूरी॥
मुइँ उडि अंतरिक्ख मत मंडा। खड मड धरनीबरम्हंडा।
डोल गगन इन्द्र डरि काँपा। बासुकि धाइ पतारहि चाँपा॥[1]

जिन स्थलों पर संस्कृतोन्मुख भाषा मिलती भी है वहाँ लोक भाषा का अविकल रूप भी सुरक्षित रूप में प्राप्त होता है —

स्रवन सीप दुइ दीप सँवारे। कुंडल कनक रचे उजियारे।
मनि कुंडल झलकै अति लोने। जनु कौंधा लोकहि दुइ कोन॥
दुहु दिसि चाँद सुरुज चमकाही। नखतन्ह भरे निरखि नहिं जाही॥[2]

प्रस्तुत पद्य में स्रवन (संस्कृत श्रवण) दीप (सं० द्वीप) कुंडल (सं० कुंडल), कनक (सं० कनक) मनि (सं० मणि), लोने (सं० लावण्य), लोकहिं (लोक) चाँद-सुरुज (सं० चन्द्र सूर्य), नखतन्ह (नक्षत्र) आए हुए संस्कृत शब्द अपने तत्सम रूप में न आकर अवधी की प्रवृत्ति के अनुरूप तद्भव रूप में लोकोन्मुख होकर आए हैं। इस प्रकार जायसी की भाषा को हम ठेठ अवधी का साहित्यिक या परिष्कृत रूप कह सकते हैं।

चित्ररेखा में यही रहा जायसी की भाषा का मसृणता युक्त रूप भी मुखर हो उठा है जैसे

सुनउ कथा जग अमरानी। जहाँ चित्ररेखा कह रानी॥
नगर चन्द्रपुर उत्तम ठाऊँ। चन्द्रभानु राजा कर नाऊँ॥
नगर अनूप इन्द्र अस छावा। बसै गोमती तीर सुहावा॥
जिन यह नगर आइ कर देखा। तिन पावा कबिलास बिसेखा॥
राइ रंक मनि मन्दिर सँवार। धरे कनक रचि सोनद द्वारे॥
भाँति भाँति निसर सब नारी। बरन बरन पहिरैं सब सारी॥
जनु कबिलासक अछरी आई। चित्रमूर्ति चित्र चित्र सुहाई॥
दिन बसन्त अस दीसे रैन सोरती होय।
होहिं अनंद अस घर घर निसि को जान न कोय॥[3]

१—जायसी ग्रंथावली नागरी प्रचारिणी सभा काशी पृ० ५।
२—वही पृ० ४१।
३—चित्ररेखा, (हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय) पृ० ७८।

गोस्वामी तुलसीदास की भाषा भी इसी प्रकार की संस्कृतनिष्ठ अवधी भाषा है –

कहरानामा में कहीं कहीं जायसी की भाषा का अत्यन्त प्रवाहमय, सशक्त और रमणीय रूप देखने को मिलता है। जैसे –

भा भिनुसारा चल कहारा होनहि पाछिन पहरा रे।
सखी जो गावहिं हुड़क बजावहिं हँसि क बोला महरारे ॥
सबद सुनावा सखियन्ह गावा, घर घर महरी साज रे।
पूजा पानी दुलहिन आनी दूलह भा असवारा रे।
बाजन बाजे केवट साज भा बसत ससारा रे ॥
मगलचारा होइ झनकारा औ सग सन सहेली रे।
जनु फलवारी फूलीं बारी जिन्हकर नहिं रस केली रे ॥
सेंदर लल मारहिं धध राति भांति सुभ डोरी रे।
भा सुभ भेसू फूले टेसू जनहु फाग होइ हारी रे ॥
कहै मुहम्मद जे दिन अनन्दा सो दिन आगे आव रे।
है आगे नग रनि सबहिं जग, दिनहि सोहाग को पाव रे ॥[1]

भाषा का यह उद्दाम प्रवाह और उत्तम कोटि की व्यञ्जना जायसी की अपनी विशेषता है। सहज उच्चायता के साथ प्रवाहमयता भी उनकी भाषा का गुण है। उसमें कृत्रिमता के दर्शन तक नहीं होते। इस कारण उसमें भारग्रस्तता का नितान्त अभाव है। ठेठ भाषा के कारण सर्वत्र स्वाभाविकता विद्यमान है। 'जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है पर उसका माधुर्य निराला है। वह माधुर्य भाषा का माधुर्य है संस्कृत का माधुर्य नहीं। वह संस्कृत की कोमलकान्त पदावली पर अवलम्बित नहीं। उसमें अवधी अपनी निज की स्वाभाविक मिठास लिए हुए है।'[2]

जायसी और तुलसीदास की भाषा

सगुण भक्तिधारा के कवियों में से केवल गोस्वामी तुलसीदास जी की भाषा के साथ ही जायसी की भाषा की चर्चा किसी प्रकार की जा सकती है। ये दोनों अवधी भाषा के अमर रत्न हैं। दोनों ने महाकाव्यों का निर्माण किया है। दोनों ने महाकाव्यों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ भी लिखे हैं। इन दोनों के महाकाव्य– रामचरित मानस और पद्मावत हिन्दी के सर्वोत्तम प्रबन्ध काव्य के रूप में समादृत हैं। रामचरितमानस परवर्ती कृति है। पद्मावत की रचना के ३५ वर्ष पश्चात

१–जायसीकृत महरीनामा (मनेर शरीफ की प्रति), हस्तलिखित प्रति से।
२–पं० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रंथावली पृ० २०५।

गोस्वामी तुलसीदास ने १६३१ वि० म इसका प्रणयन किया था । आख्यानक काव्यो के लिए पहले से ही चली आती हुई अवधी भाषा और दोहा चौपाई की शैली का दोनो महाकाव्यो म प्रयोग हुआ है ।

इन दोनों कवियों ने भाषा की महत्ता को स्वीकार किया था । इनके पहले विद्यापति कह चुके थे—

सक्कय वाणी बहुअन भावइ । पाइय रस को मम्म न पावइ ।
देसिल बअना सब जन मिट्ठा । तैं तैसन जपजों अवहट्ठा ।
ऊ परमेसर हर सिर सोहइ । ई णिच्चइ नाअर मन मोहइ ।[1]

कबीरदास ने भी कहा था संस्कीरत है कूप जल भाखा बहता नीर । 'सूरदास ने भी भागवत की कथा को भाषा (व्रजभाषा) म कहा है—

'व्यास कहे सुकदेव सों द्वादस स्कंध बनाइ ।
सूरदास सोई कहै पद भाषा करिगाइ ॥'

जायसी के परवर्ती कवि केशवदास ने भी भाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुना था—

भाषा बोलि न जानही जिनके कुल के दास ।
तेहि कुल मह मति मद सो कवि केशवदास ॥

जायसी ने भी कहा था—

आदि अंत जस गाथा अहै । लिखि भाखा चौपाई कहै ।

इसी प्रकार की बात अपनी भाषा के विषय म तुलसीदास न भी कही है—

'नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषा निबन्धमति मजुलमातनोति ।'[2]
भाषा भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कर हित होई ।

स्पष्ट है कि लोक भाषा के ही माध्यम से इन दोनो कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति की है । कहा जा सकता है कि जायसी ने कूपजल की भांति बधी हुई शास्त्रीय भाषा का प्रयोग नहीं किया है । उनकी भाषा अवध प्रदेश के जनकंठ की अजस्र सलिला वाणी के तत्कालीन बहता नीर का सर्वोत्तम निदर्शन है । रामचरितमानस की अवधी परिनिष्ठित, परिमार्जित और संस्कृतगर्भित है । उसम संस्कृत की कोमलकान्तता पूर्ण मात्रा में है और पदमावत की भाषा ठेठ अवधी की उत्कृष्ट माधुरी मे आप्लावित है । उसम अवधी अपनी निज की मिठास लिए हुए है ।

१—विद्यापति कीर्तिलता प्रथम पल्लव पृ० २ ।
२—रामचरित मानस, काशिराज सस्करण पृ० १

दोनो महाकवियो की भाषा के स्पष्टीकरण के लिये एक एक उदाहरण पर्याप्त होंगे—

जब हुत कहिगा पखि सदेसी । सुनिउ की आवा है परदेसी ।
तबहुत तुम्ह बिनु रहै न जीऊ । चातक भएउ कहत पिउ पीऊ ।।'
भइउ चकोर सो पथ निहारी । समुद सीप जस ननद पसारी ।
भएउ बिरह जरि कोइनि कारी । डार डार जिमि कूकि पुकारी ।
बन्दौं गुरुपद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा
अमिय मूरिमय चूरन चारू । समन सकल भवरुज परिवारू ।
सुकृत सभु तन बिमल बिभूती । मजुल मगल मोद प्रसूती ।।
जन मन मजु मकुर मल हरनी । किये तिलक गुन गन बस करनी ।
श्री गुर पद नख मनिगन जोती । सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती ।। [१]

इन दोनो उद्धरणों की तुलना से स्पष्ट है कि पद्मावत मे 'सदेसी सुनिउ पसारी कारी पखि' प्रभृति ठेठ अवधी के शब्दों मे सहज माधुर्य, सहज उच्चार्यता प्रवाहमयता स्वाभाविकता और व्यजनात्मकता है तो दूसरे छोर पर रामचरितमानस की भाषा म सुबास सरस अमिय मय भव-रज सुकृत तन बिमल मजुल मगल मोद जनमन-मजु मुकुल-मल श्री गुर पद-नख दिव्य-दृष्टि प्रभृति सस्कृत तत्सम शब्दो का प्राचुर्य है । इसी कारण रामचरितमानस की भाषा सस्कृतगर्भित और शास्त्रीय हो गई है ।

यदि गोस्वामी जी ने अपने 'रामचरित मानस की रचना ऐसी ही भाषा मे की होती जसी कि इन चौपाइयो की है—

काउ नप होइ हम का हानी । चेरि छाडि अब होब कि रानी ।'
जार जोग सुभाउ हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ।

तो उनकी भाषा पदमावत की ही भाषा होती और यदि जायसी ने सारी पदमावत की रचना ऐसी भाषा म की होती जसा कि इस चौपाई की है—

उदधि आइ तेइ बधन कीन्हा । हति दसमाथ अमरपद दीन्हा ।

तो उसकी और रामचरितमानस की एक भाषा होती पर जायसी म इस प्रकार की भाषा कही ढूढने से एकाध जगह मिल सकती है ।' चित्ररेखा की भाषा पदमावत की अपेक्षा अधिक सस्कृतनिष्ठ किवा सस्कृतोन्मुख है । जसे—

सुनउ कथा जस अमृतबानी । जहा चित्ररेखा वह रानी ।

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रथावली नागरीप्रचारणी सभा काशी पृ० २०५–६ ।

२—रामचरितमानस काशीराज सस्करण प १ ।

नगर चन्द्रपुर उत्तम ठाऊँ। चन्द्रभानु राजाकर नाऊ।
नगर अनूप इन्द्र जस छावा। बसे गोमती तीर सुहावा।
जनु कबिलास क अछरी आई। चित्रमूर्ति चित चित्र सुहाई॥
दिन बसंत अस दीखे रैन सोरती हाय।
होहि अनंद बस घर-घर निसि मो जान न काय।[1]

"अवधी में इतनी बड़ी और व्यापक प्रबन्ध-रचना पहले इन्हीं की मिलती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस की रचना के समय इनकी पदमावती को बहुत सी बातों में आदर्श बनाया होगा। कम से कम मानस का वाह्य रूप और विशेषत उसकी भाषा तो पदमावती से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं अतर केवल इतना ही है कि मानस में हम अवधी का परिमार्जित सुसंस्कृत और सर्वथा साहित्यिक रूप देखते हैं पर पदमावत में यह अपने ठेठ रूप में है। जिस भाषा का प्रयोग जायसी ने किया है उस पर उन्हें पूरा अधिकार था। अवधी का स्वाभाविक माधुर्य जायसी की ही भाषा में प्रस्फुटित हो पाया है।"[2]

जायसी शब्दों से चित्र प्रस्तुत करने वाले हिन्दी के अन्यतम कलाकार हैं। चित्ररेखा में भी भाषा बड़ी ही अर्थपूर्ण हो उठी है—

कहै चित्ररेखा जु कहानी। लिखे चित्र करि कंचन बानी।
कंचन-कंचन हीरा मोती। पिरवा हार हुई तस जोती।
कविता औ गुन आगर सोई लै पिरई दुहुँ कहँ जिह होई।

पदमावत की अवधी लोकोन्मुखी है और मानस की अवधी संस्कृतोन्मुखी है। चित्ररेखा की भाषा और मानस की भाषा के आदर्श एक हैं। सचमुच अवधी के इन दोनों महाकवियों की भाषा के समस्त गुणों से अलंकृत सुंदर भाषा का आदर्श रूप है।

जायसी की अवधी और उनके प्रयोग का औचित्य

प० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का कथन है कि 'ग्रामीणता के दोष से तो इनका (जायसी का) ग्रन्थ भरा पड़ा है। इन्होंने इतने ठेठ ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया है जो किसी प्रकार बोध-सुलभ नहीं। ग्रामीण शब्दों का प्रयोग इसलिए सदोष माना गया है कि उनमें न तो व्यापकता होती है और न तो वे उतना उपयोगी होते हैं जितना कविता की भाषा के लिए उन्हें होना चाहिए।

१—चित्ररेखा प० ७८।
२—गणेशप्रसाद द्विवेदी हिन्दी प्रेम गाथा संग्रह पृ ४२।

कहीं-कहीं उसकी भाषा बहुत गवारी हो गई है जो उनके पद्यों में अरुचि उत्पन्न करने का कारण होती है।[1]

अपने इस वक्तव्य के लिए उन्होंने कई पद्य भी उद्धृत किए हैं। इनमें से एक दो पद्यों के औचित्य पर विचार कर लेना उपयुक्त होगा।

दीठि दवगरा मेरवहु एका।

प्रस्तुत उद्धरण में हरिऔध जी ने 'दवगरा मरवहु' शब्द को 'गवारी भाषा' के रूप में कहा है। स्पष्ट है कि इन्हीं शब्दों के सौन्दर्य की प्रशंसा आचार्य शुक्ल, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल तथा जायसी के अन्य अध्येता करने में अघाते नहीं। वस्तुत 'दीठि दवगरा मेरवहु एका' की अभिव्यंजना अत्यन्त तीव्र है—

बिहरत हिया करहु पिउटेका। दीठि दवगरा मेरवहु एका।

विरहिणी के मार्मिक मनोभावों की जो अत्यन्त चित्रात्मक और प्रभविष्णु व्यंजना की गई है वह 'बिहरत दवगरा मेरवहु' शब्दों द्वारा ही संभव थी। प्रिय-प्रवास के पाठकों को ज्ञात है कि हरिऔध जी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के पुजारी थे। यदि वे जायसी की इन पंक्तियों में ग्रामीणता और गवारी होने का दोष देखें तो स्वाभाविक है। खेद है कि जायसी की भाषा के अत्यंत व्यंजनात्मक वास्तविक सौंदर्य का वे सही मूल्यांकन नहीं कर सके।

भाषा—भावाभिव्यक्ति और जायसी

काव्य की भाषा केवल अर्थ बोध कराने के लिए ही नहीं होती वह भावोन्मेष के साथ चमत्कारपूर्ण अनुरंजन भी कराती है। अन्य वाङ्मयों विज्ञान ज्योतिष दर्शन आदि की भाषा नियत अर्थ के अतिरिक्त कोई इतर अर्थ का बोध नहीं कराती परन्तु कवि की वाणी जितने ही अधिक से अधिक अर्थों की व्यंजना करेगी उतने ही उत्कर्ष को प्राप्त होगी। नियत अर्थ तक पहुँचने के लिए अन्य वाङ्मय अभिधा शक्ति से ही काम लेते हैं। किन्तु काव्य प्रस्तुत के अतिरिक्त अन्य अर्थों की व्यंजना के लिए अभिधा के अतिरिक्त लक्षणा और व्यंजना का भी सहारा लेता है। कविता की भाषा कलात्मक होती है और विज्ञान की कला-रहित। कविता की भाषा में हृदय-रंजकता सरलता तथा मार्मिकता होती है और विज्ञान की भाषा में तथ्यात्मकता कोरी सैद्धांतिकता और शुष्कता होती है। भाषा मात्र शैली का प्रधान उपकरण ही नहीं कवि से परम साध्य भावाभिव्यंजना का प्रधान भी है। वह शब्दगत सौंदर्य वर्द्धन ही नहीं करती भावों के सौन्दर्य में तीव्रता भी लाती है। भावाभिव्यंजना की दृष्टि से भाषा के दो पक्ष होते हैं— (१) सांकेतिक और (२) बिम्बाधायक (सिम्बालिक एंड प्रजेन्टेटिव)। सांकेतिक भाषा में नियत

१—प० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० १७२।

सम्बन्ध द्वारा अर्थ-बोध मात्र लक्ष्य होता है। दूसरे प्रकार की भाषा में बिम्ब ग्रहण कराना लक्ष्य होता है। इससे वस्तु या प्रतिपाद्य का बिम्ब (इमेज) या चित्र का अन्तःकरण में उपस्थित होता है। प्रायः महान कवि बिम्बाधायक भाषा का ही माध्यम गृहीत करते हैं। रसात्मक वर्णना में यह आवश्यक है कि ऐसी वस्तुओं का बिम्बग्रहण कराया जाय जो प्रस्तुत रस के अनुकूल हो, प्रतिकूल या बाधक न हो। जायसी प्रायः बिम्बाधायक पक्ष का ही आश्रय लेते हैं। वे सर्वत्र बिम्ब (इमेज) ग्रहण कराते चलते हैं। उन्होंने लिखा भी है —

'कहै चित्ररेखा जु कहानी। लिखै चित्रकरि बचन बानी।'

(चित्ररेखा प० ७७)

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का भी कथन है कि जायसी बाणभट्ट की भाँति शब्दों में चित्र लिखने के धनी हैं। चित्र भी ऐसे जिनके पीछे अर्थों का अक्षय्य रस-स्रोत बहता है।[1] कहीं-कहीं फारसी परम्परा से प्रभावित होकर जायसी ऐसा बिम्बग्रहण कराते हैं जो अरुचि-सा उत्पन्न कर देता है —

हिया काढ़ि जनु लीन्हसि हाथा। रुहिर भरी अंगुरी तेहि साथा।'

प्रस्तुत पद्य पदमावती के नख शिख-वर्णन के प्रसंग का है। कवि एक सुन्दरी का चित्र उपस्थित करना चाहता है जिसमें उसकी हथेलियाँ और अंगुलियाँ लाल हैं। यहाँ हेतूत्प्रेक्षा के माध्यम से कल्पना की गई है कि हृदय काढ़ लेने के कारण ये लाल हैं। यह बिम्ब-ग्रहण अवश्य कराया गया है किन्तु प्रस्तुत रस के प्रतिकूलत्व के कारण कोई रुचिकर दृश्य सामने नहीं आता।

जायसी की भाषा (एक संक्षिप्त सिंहावलोकन)

जायसी की भाषा अधिकांश पूरबी या ठेठ अवधी है। जायसी की अवधी अर्द्धमागधी का ही रूपान्तर है। और अर्द्धमागधी पर शौरसेनी का बहुत कुछ प्रभाव है। शौरसेनी का ही रूपान्तर ब्रजभाषा है। इस लिए इटावा इत्यादि के पास जहाँ अवधी ब्रजभाषा से मिलती है वहाँ की अवधी यदि ब्रजभाषा से प्रभावित हो तो यह स्वाभाविक है[2]। जायसी की भाषा में बीच-बीच में पुराने अपभ्रंश शब्द-प्रयोग और पश्चिमी प्रयोग भी आ जाते हैं। अतः भाषा ऊपर से कुछ अव्यवस्थित सी ज्ञात होती है किन्तु उन रूपों का विवेचन कर लेने पर यह अव्यवस्था नहीं रह जाती। केशव अनुयायी भूषण देव आदि फुटकलिए कवियों की भाषा से इनकी भाषा कहीं स्वच्छ और व्यवस्थित है। चरणों की पूर्ति के लिए अर्थ-सम्बन्ध और व्याकरण-सम्बन्ध रहित शब्दों की भरती कहीं नहीं है। शब्दों व व्याकरण विरुद्ध-

---

१—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पदमावत प्राक्कथन, पृ० ५।

२—जायसी ग्रन्थावली, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ४६।

रूप अवश्य कहीं कहीं मिल जाते हैं जैसे —

दसन देखि कै बीजु लजाना ।

यहाँ लजाना के स्थान पर 'लजानी' चाहिए। पूरबी अवधी में भी लजानी रूप होगा जिसे छंद के विचार से यदि दीर्घांत करेंगे तो 'लजानि' होगी ।[1] किंतु ऐसे व्याकरण-विरुद्ध स्थल बहुत ही कम हैं। प्रायः सर्वत्र व्याकरण सम्मत ठेठ अवधी भाषा का सौंदर्य दर्शनीय है।

तुलसीदास और जायसी की भाषा में चरण के अंत में आए हुए किसी पद के लिंग का निर्णय करते समय यह विचार लेना चाहिए कि यह छंद की दृष्टि से ह्रस्वान्त से दीर्घान्त तो नहीं कर लिया है। कुछ लोग जायसी के 'देखि चरित पदमावति हंसा' और तुलसीदास के 'मरम बचन सीता जब बोला' को व्याकरण विरुद्ध मानते हैं और अपनी सुबुद्धि का आरोप करके वे 'मम बचन सीता जब बोली । हरि प्रेरित लछिमन मति डोली ।' पाठ भी गढ़ लेते हैं। वस्तुतः ऐसे लोग भूल जाते हैं कि हंसा और बोला अवधी के वर्तमानकालिक हंस और बोल के पदांत दीर्घ रूप हैं। इस प्रकार के दीर्घ रूप और संक्षिप्त रूप पदमावत में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। यहाँ कहने की आवश्यकता नहीं है कि इन संक्षिप्त रूपों का व्यवहार दोनों लिंगों में समानरूप से हो सकता है। 'सो अंधा जेहि सूझ न पीठी' में 'सूझ' शब्द सूझइ का संक्षिप्त रूप है। वस्तुतः ऐसा प्रयोग १२वीं १३वीं और १४वीं शती की अवधी में होता था। उक्ति व्यक्तिप्रकरण (दामोदर भट्ट) १२वीं शती और चन्दायन[2] (मुल्ला दाऊद १३७९ ई०) नामक ग्रंथों में ऐसे प्रयोग मिल जाते हैं।

जायसी की भाषा में मिलने वाले न्यूनपदत्व दोष के विषय में विद्वानों की राय है कि इसका कारण है कि हमें उस काल का ठीक उच्चारण ज्ञान नहीं है। विभक्तियों का लोप, सम्बन्ध वाचक सर्वनामों का लोप तथा अव्यय पदों का लोप जायसी के यहाँ काफी संख्या में मिल जाता है। परवर्ती काल के कवियों की भाँति शब्दों के अंग भंग करके छंदानुकूल तथा रसानुकूल बना लेने की प्रवृत्ति जायसी में नहीं है। वे केवल पदान्त में ह्रस्व का दीर्घ कर देते हैं जो अपभ्रंश काल से चला आता हुआ परम्परानुमोदित तथा स्वीकृत नियम है।

जायसी की भाषा में समस्त पदों के प्रयोग कम ही हुए हैं। जहाँ ऐसे प्रयोग हैं भी वहाँ दो से अधिक पदों के समास का नहीं। दो पदों के समास भी प्रायः तत्पुरुष हैं। वे भी प्रायः संस्कृत की रीति पर न होकर फारसी-परम्परा के अनु

१—जायसी ग्रंथावली नागरीप्रचारिणी सभा काशी, भूमिका पृ० २०१।

२—चन्दायन की रीलैंड लाइब्रेरी इंग्लैंड की ३०५ पृष्ठों की सचित्र प्रति।

सूफ से हुई है फारसी रहस्यवादी साधकों को 'पश्मीना पोश' (ऊनधारण करने वाला) कहा गया है इससे भी इस मत की पुष्टि होती है।[1]

वास्तव में सूफीमत की साधना प्रेम पर आधारित है। अबुल हसन अल हुज्वरी का कथन है कि "वह शख्स जो मुहब्बत के वास्ता से मुसफ्फा होता है, वह साफी है और जो शख्स दोस्त की मुहब्बत में गर्क हो गर दोस्त से बरी हो वह सूफी होता है।"[2] वस्तुतः सूफीमत का इतिहास मुहम्मद साहब के मक्का से मदीना भागने के समय से प्रारम्भ होता है।[3] अतः हम कह सकते हैं कि इस मत का इतिहास 623ई० के आस पास से शुरू होता है। इस पर ईसाई नव अफलातूनी भारतीय वेदान्त आदि के गहरे प्रभाव पड़े हैं। मंसूर हल्लाज[4] भारत वर्ष में रह चुके थे। उसने वेदान्त का अध्ययन किया था। उन्होंने गुजरात की भी यात्रा की थी। कट्टर इस्लामिक पंथियों का उसके अनल हक ने क्रुद्ध कर दिया था। उसे 922 ई० में कत्ल कर दिया गया।

सोफिया सफी और स्वभाव (प्रकृति) शब्द में अद्भुत सामंजस्य है। वस्तुतः सूफी' शब्द सूफ (ऊन) से ही व्युत्पन्न है। व्याकरण की दृष्टि से भी सूफी शब्द की 'सूफ' शब्द से व्युत्पत्ति शुद्ध है। आरबरी निकलसन ब्राउन मारगोलियथ मीर वली उद्दीन प्रभृति विद्वानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि वास्तव में सूफी शब्द सूफ से ही बना है।[5] अब जो विद्वान 'सूफ' शब्द से सूफी शब्द की व्युत्पत्ति मानते हैं उनके मत से सूफी वह मर्मी साधक है जो ऊनी वस्त्र का व्यवहार करता है और परम प्रिय रूप में परमात्मा की उपासना करता है तथा इसे अपने जीवन का परम लक्ष्य मानता है।

सूफीमत या तसव्वुफ और उसका आविर्भाव

प्रायः विद्वान इस मत से सहमत हैं कि इस्लाम के रहस्यवादी सूफी नाम से प्रख्यात हैं और इस्लाम का रहस्यवाद या सूफी-दर्शन ही तसव्वुफ है। प्रारंभ काल से ही 'सूफी और सूफी मत' शब्दों की व्याख्याएं की जाती रही हैं, इन व्याख्याओं ने इस शब्द का अर्थ और अधिक जटिल बना दिया है। फरीदुद्दीन अत्तार ने (1230

1—ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ परशिया, भाग 1, पृ० 417

2—कश्फुल महजूब हुज्वरी (उर्दू अनुवाद) पृ० 41

3—माहम्मडनिज्म एच० ए० आर० गिब, पृ० 100, 101

4—अमृत बाजार पत्रिका, पूजा अंक 1957 ई० पृ० 18 (इण्डिया एण्ड दी अरब वर्ल्ड)।

5—ब्राउन, इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स वाल्यूम 12 पृ० 10। (निकलसन ने भाषाशास्त्र की दृष्टि से इसे ठीक नहीं माना है)।

ई०) 'तजकिरातुल औलिया' नामक ग्रंथ में 'सूफी-मसलक' की सत्तर परिभाषाओं का उल्लेख किया है। कहा जाता है कि सूफी मत इस्लाम के अंतर्गत कोई ऐसा संघटित सम्प्रदाय नहीं है कि उसके मतों और सिद्धान्तों को एक सुसंगठित और नियमित प्रणाली के अंतर्गत रखा जाय। यानी धर्म की भाँति यह किसी सम्प्रदाय विशेष की प्रणाली में बँधा हुआ नहीं है। हुजविरी (मृ० १०८२ ई०) का कथन है कि सूफियों के लिए सूफी सिद्धान्त सूर्य से भी अधिक स्पष्ट हैं। अतः स्पष्ट है कि वे सिद्धान्त व्याख्या सापेक्ष नहीं हैं। सच्चा सूफी वह है जो अपवित्रता को पीछे छोड़ आया है।[1]

संत मारूफ अल करखी का कथन है कि परमात्मा संबंधी सत्य को जानना और मानव जीवन से संबद्ध वस्तुओं से संन्यास लेना ही सूफी का धर्म है। ए० निकल्सन ने इस परिभाषा को प्राचीनतम कहकर समाप्त किया है। अबुल हुसेन अल नूरी ने सूफी और सूफी धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है कि सूफी को संसार से घृणा होती है और ईश्वर से प्रेम।[2] जुनेद का कथन है कि सूफी मत वह ईश्वरीय प्रेम का मत है जिसमें ईश्वर पुरुष की निजी स्वार्थों के लिए जीवन धारण करने दे। ईश्वर ऐसा कर देता है कि जीव उसी में लीन रहकर उसी के लिए जीता है। अबू अली कुजवीनी के अनुसार सूफी मत सुन्दर व्यवहार है। अबू सहर सालूकी के मत से विधि निषेधों से बचना ही सूफी मत है। बिश्र अलहाफी ने बतलाया है कि सूफी वह है जो परमात्मा के सहारे अपने हृदय को पवित्र रखता है। अबू सईद फजलुल्ला[3] ने सूफीमत की परिभाषा देते हुए बतलाया है कि एकाग्र चित्त से परमात्मा का ध्यान लगाना ही सूफीमत है। अबू बकर शिबली ने कहा है कि यह परम त्याग अर्थात इस संसार में अथवा आने वाले जीवन में परमात्मा के सिवाय अन्य किसी ओर ध्यान नहीं जाने देना ही इसकी विशेषता है। जुन नून मिस्री ने सूफी के लक्षणों को बतलाते हुए लिखा है कि सूफी वह है जो वचन और कर्म में सामंजस्य बनाए रखता है और उसका मौन ही उस अवस्था का परिचय देता है और जो सांसारिक बंधनों को दूर कर देता है। कुछ लोगों का यह मत है कि सूफी की विशेषता यह है कि उसका हृदय पवित्र है उसका कर्तव्य भी पवित्र है।

इन समस्त परिभाषाओं में इस बात पर जोर दिया गया है कि बाहर और भीतर की शुद्धि और पवित्रता बनाये रखना सूफी साधक का कर्तव्य है। उसके लिए

१—अल हुजविरी, दी कश्फ अल-महजब अनुवादक — ए० निकल्सन १९११ पृ० ३५।

२—लिटरेरी हिस्ट्री आफ दी अरब्स पृ० ३८५—३९२।

३—स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टीसिज्म, पृ० ४९।

४—इस्लामिक सूफीज्म पृ० २०।

आवश्यक है कि वह अपनी समस्त इच्छाओं, समस्त वासनाओं को मिटाकर परमात्मा की इच्छा पर ही अपने को छोड़ दे। सूफी मत की विशद रूप में विवेचना करनेवाले अल कुरशी ने बाह्य और आभ्यंतरिक जीवन की पवित्रता को ही सूफी धर्म माना है। उसका कहना है कि पवित्रता एक श्रेष्ठ वस्तु है चाहे जिस प्रकार की भाषा के द्वारा उसे क्यों न व्यक्त किया जाय और उसके विपरीत अपवित्रता है जिसका परित्याग करना चाहिए।"[1] विधि विधानों से मुख मोड़ निखिल विश्व में व्याप्त इस शाश्वत तथा अमूर्त शक्ति की झलक सर्वत्र पाकर मुस्लिम साधकों ने जो रहस्य अभिव्यक्त किए उन्हीं के सामंजस्य का नाम सूफी मत है। अतः सूफी मत या तसव्वुफ भी रहस्यवाद ही है जो अन्तर्निहित भावना के सार्वकालिक एवं सार्वभौम होते हुए भी मूलतः मुस्लिम सम्प्रदाय के साथ संबद्ध है।[2]

अरबी के प्राचीन साहित्य में नबीमुर सूफ का प्रयोग उन साधकों के लिए किया गया है जो संसार को त्याग चुके हैं और जिन्होंने संन्यास व्रत ले रखा है। कालान्तर में उनका ही प्रयोग इस प्रकार किया जाने लगा कि वह सूफी हो गया है।[3]

यह भी कहा जाता है कि ऊनी वस्त्रों का प्रयोग मुसलमानों में ईसाई संतों से आया है। 'इसका प्रमाण मिलता है कि ७१६ ई० में उनका व्यवहार ईसाइयों से लिया हुआ माना गया है। हसन अल बसरी के एक शिष्य फरकद साबखी को इस ऊनी वस्त्र के व्यवहार के लिए बुरा भला कहा गया है। ७८४ ई० में हम्माद बिन सलमा बसरा में आया तो उसने फरकद अल सन्जी को समझाया कि उसे ऊनी वस्त्र नहीं पहनना चाहिए क्योंकि वह ईसाइयों का वस्त्र है। कालान्तर में ऊनी वस्त्र का व्यवहार करना गया। सूफी साधकों ने इसे अपना लिया। ऊनी वस्त्रों को इस्लाम सम्मत सिद्ध करने के लिए हदीसों का हवाला दिया गया। यहाँ तक कहा गया कि संन्यास लेने के पश्चात जब अबू बकर ऊनी चोगा पहन कर पैगम्बर से मिलने गए तो उन्होंने पूछा कि तुमने परिवार वालों के लिए क्या छोड़ा है तो उन्होंने कहा था कि परमात्मा और उसके पैगम्बर को। इस प्रकार की कथाओं से भी स्पष्ट है कि ऊनी वस्त्र संन्यासियों साधकों या परमात्मा के प्रेम में मस्त रहनेवाले मर्मियों के लिए स्वीकृत हो चुका था।

'सूफ' (ऊनी वस्त्र) के साथ ही सूफी शब्द के सिलसिले में सफा का भी बड़ा महत्व है। 'सफा सर्वत्र प्रशंसनीय है। पवित्रता परमात्मा के प्रेमियों का

१—श्री रामपूजन तिवारी सूफीमत—साधना और साहित्य पृ० १६८ ६९।
२—डा० विमलकुमार जैन, सूफीमत और हिन्दी साहित्य पृ० ४।
३—ब्राउन, इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स, वा० १२ पृ० १०।
४—श्री रामपूजन तिवारी, सूफीमत साधना और साहित्य, पृ० १७२।

विशिष्ट गुण है। व मेघमुक्त सूर्यों की तरह हैं। अत्तार ने जो सूफी शब्द की सत्तर परिभाषायें की हैं उनमें १३ में सफा शब्द का प्रयोग है। जब कि सूफ शब्द का प्रयोग केवल दो बार किया गया है।[1]

यह बात ठीक ठीक ज्ञात नही है कि सर्वप्रथम किसके नाम के साथ उपाधि रूप मे 'सूफी' शब्द का प्रयोग किया गया।

जामी[2] का कथन है कि सूफी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग कूफा के अल हाशिम (ई० ७७७) के नाम के साथ हुआ। मासिनो[3] का कथन है कि सूफी शब्द का प्रथम प्रथम प्रयोग करने वालो में इब्न हैयान मुख्य हैं। उसने लिखा है कि ८१४ई० के आस पास कूफा मे मुस्लिम रहस्यवादियो का सम्प्रदाय विद्यमान था। इसके अंतिम प्रधान अब्दअल सूफी की मृत्यु ८२५ ई० मे हुई। निकल्सन[4] के मतानुसार बसरा के जाहिज ने (८६९ ई० मे) सर्वप्रथम सूफी शब्द का प्रयोग किया था।

प्रारम्भ मे यह शब्द व्यक्तियो के नामों के साथ सतत्व की उपाधि के रूप में जुड़ा रहता था, किन्तु पचास वर्षों के ही भीतर इसका प्रयोग समस्त ईराक के रहस्यवादी साधकों के लिए होने लगा और दो सौ वर्षों के अन्दर ही सम्पूर्ण इस्लाम के रहस्यवादी साधकों के लिए होने लगा। तब से लेकर आज तक इस्लाम के संत रहस्यवादियों के ही लिए इसका प्रयोग होता है।

सूफीमत का आविर्भाव प्रारम्भिक इतिहास

सूफीमत का इतिहास तब से प्रारम्भ होता है जब मुहम्मदसाहब मक्का से मदीना गए थे।[5] अतः ६२३ ई० के आसपास इसका प्रारम्भ मानना चाहिए। प्रवृत्तिमूलक इस्लामी धर्म में पहली बार कतिपय ऐसे व्यक्ति सामने आये जिनमें भक्ति का सन्निवेश हुआ। आत्मा का शुद्धीकरण आरम्भ हुआ। इनमें बसरा के अलहसन (६४३ से ७२८ ई०) इब्राहिम बिन अधम (म० ७८३ ई०), अयाज (म० ८ १ ई०) राबिया (८१ ई०) आदि हैं। राबिया बसरा की रहने वाली थी। उसमें सर्वप्रथम प्रेम दर्शन का उदात्त और प्रखर रूप सामने आता है। एक स्थान पर उसने कहा है— खुदा के प्रेम ने मुझे इतना अभिभूत कर दिया है कि मेरे

१—श्री रामपूजन तिवारी सफीमत साधना और साहित्य पृ० १७३।

२—जामी नफहातुल उन्स नसाऊ लीज द्वारा सपादित कलकत्ता, १८५९ ई० पृ ३४ और ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ दी अरब्स पृ० २२९।

३—इन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम वाल्यूम ८ १९३४ पृ ६८१।

४—इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, वाल्यूम १२, पृ० १०।

५—मोहम्मडनिज्म एच० ए आर० गिब्स पृ० १० १०१।

मार हैं। 'सन्देस रासक' (अद्दहमाण) आदि अपभ्रंश ग्रन्थों में समासपद का व्यतिक्रम देखा जा सकता है जैसे णवर चरण विलग्गिया। यही बात जायसी के लीक परवान में दर्शनीय है —

(१) लीक परवान पुरुष कर बोला। (—परवान लीक)

(२) भा भिनुसार किरिन-रबि फूटी। (—रबि-किरिन)

इसी प्रकार अन्वय-दोष का भाव भी अपभ्रंश काल में ही प्रारम्भ हो गया था। इतना तो स्पष्ट है कि परवर्ती ब्रजभाषा के कवियों के समान बड़ा तोड़-मरोड़ जायसी में नहीं है।

तुलसीदास तत्समात्मक संस्कृत परम्परा के जानकर थे। अत उनकी भाषा में प्राचीनता के अनेक लक्षण और संस्कृत पदावलियों के विन्यास मिल जाते हैं परन्तु जायसी की पहुँच उतनी दूर तक नहीं थी। अतः वे संस्कृतनिष्ठ भाषा नहीं लिख सके हैं। उनमें ठेठ अवधी का ही निराला माधुर्य है। पुरानी अपभ्रंश परम्परा के प्रयोग उनकी भाषा में मिल जाते हैं ये प्रयोग सम्भवतः तत्कालीन प्रचलित बोलचाल की परम्परा में उठ चुके थे। पद्मावत में कई पुरानी विभक्तियों के प्रयोग भी पाए जाते हैं। जैसे— अपभ्रंश की सम्बन्धवाचक 'ह' या 'हि' विभक्ति सभी कारकों में प्रयुक्त हुई है। सम्बन्धवाचक तन का रूप भी जायसी में मिल जाता है। पंचमी में प्रयुक्त प्राकृत की 'हुन्तो' और अपभ्रंश की 'हुन्तो' विभक्तियाँ जायसी में हुत होकर आई हैं —

जब हुत कब्रिया पंखि सँदेसी। सुनिउँ कि आवा है परदेसी॥

'तब हुँत तुम बिनु रहै न जीऊ। चातक भइउँ कहत पिउ पीऊ॥

तुलसीदास और जायसी दोनों कवियों ने कतिपय प्राचीन अपभ्रंश शब्दों का भी प्रयोग किए हैं। जैसे— निसिअर समहर अहुट्ठ पुरुषी सिमन्र सरह आदि। पद्मावत की भाषा मूलतः अवधी है परन्तु उसमें कहीं कहीं पुरुष-भेद-सूचक पश्चिमी रूप भी मिल जाते हैं। सकर्मक भूतकालिक क्रिया-रूपों के लिंग और वचन अधिकतर पश्चिमी हिन्दी के ढंग पर कर्मानुसार प्रयुक्त हुए हैं। जैसे — बसिठन्ह आइ कही यह बाता।

साधारण क्रिया के 'आउब' 'जाब' आदि बकारान्त रूपों के अतिरिक्त उनके 'आवन', 'जान' आदि नकारान्त रूप भी मिल जाते हैं। खड़ी बोली की भाँति जायसी की अवधी में अकर्मक कृदन्त (जो कभी-कभी उपवाक्य भी होते हैं) प्रयोग भी मिलते हैं। जैसे —

बड़ महाजन सिंघलदीपी।

रहा न आवन आव बुढ़ापा।

जायसी ने 'अछ' 'बार' आदि धातुओं का भी प्रयोग किया गया है। ये बंगला और

मथिली में अब भी चलती हैं --

'आज हिनन अकाश।
कवल न आछै आपनि बारी।

सम्भव है तत्कालीन ठठ अवधी मे यह प्रयोग प्रचलित रहा हो।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पदमावती की भाषा ठेठ अवधी है तथापि उसम पूरबी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी तथा प्राचीन अपभ्रंश के चिह्न मिल जाते हैं। मसला की भाषा ठेठ अवधी है। चित्ररेखा की भाषा कहीं-कही सस्कृतनिष्ठ अवधी है।

समष्टि रूप मे कहा जा सकता है कि लोकभा का जायसी जसा पुष्ट और सायक प्रयोग हिन्दी के किसी कवि ने नही किया है। प्राय सभी नष्ठ कवि सस्कृतनिष्ठ भाषा सस्कृत पदावली और सस्कृत के काव्यशास्त्र का पग-पग आश्रय लते हैं किन्तु धरती पर प्रवाहित होने वाली सब सुलभ सामान्य लोक-भाषा की जनगगा को काव्यतीय कि छाया-तले लाने का भागीरथ प्रयत्न किसी श्रेष्ठ कवि ने नहीं किया। इस दृष्टि से जायसी की भाषा का बडा महत्व है।

११

सूफीमत : जायसी की प्रेम-साधना

'सूफी' : व्युत्पत्तिमूलक अर्थ

'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में बड़ा मतभेद है। विविध तर्कों एवं युक्तियों के द्वारा इस शब्द की विभिन्न व्युत्पत्तियों को संगत एवं समीचीन ठहराने के प्रयत्न किए गए हैं। प्रायः ये व्युत्पत्तियाँ सूफी साधकों के जीवन को लक्ष्य में रखकर दी गई हैं। अबू नस्र अल सर्राज ने 'किताब अल-लुमा' में इस शब्द के विषय में लिखा है कि मूलतः सूफी शब्द अरबी के 'सूफ' शब्द से व्युत्पन्न है। इसका अर्थ ऊन है। भाषाशास्त्री इस व्युत्पत्ति को ठीक मानते हैं। अल-सर्राज का इसके विषय में कथन है कि ऊन का व्यवहार संत, साधक एवं पैगम्बर लोग करते आए हैं, विभिन्न हदीसों और विवरणों से यह बात स्पष्ट है। अतः 'ऊनी लिबास' धारण करके एकान्तिक जीवन व्यतीत करने वाले साधकों को दृष्टि में रखकर यह नाम रख दिया गया हो इसमें कुछ असंगति नहीं मालूम होती। नोल्डके ने भी इस व्युत्पत्ति का समर्थन करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि इस्लाम की प्रथम दो शताब्दियों में प्रायः लोग ऊनी वस्त्रों का प्रयोग करते थे। संन्यास जीवन व्यतीत करनेवाले साधक तो इस प्रकार के 'ऊनी चोगा विशेष' का व्यवहार करते ही थे।[1] अनेक सूफियों, भाषा वैज्ञानिकों और अध्यात्मशास्त्रियों ने इसी मत के समर्थन में अपने मत प्रकट किए हैं। ब्राउन ने इसी मत का समर्थन किया है। मासूदी को मूल आधार मानते हुए उसने लिखा है कि प्रारम्भिक काल से ही लोगों ने ऊनी वस्त्र धारण करने को जीवन की सहज सादगी, सरलता और विलासिता से दूर रहने का

१—सं० जेम्स हेस्टिंग्स, इन्साइक्लोपीडिया आव रिलिजन एण्ड एथिक्स, वाल्यूम १२ १९२१।

२—ई० जी० ब्राउन, लिटरेरी हिस्ट्री आव पर्शिया (१९०९), पृ० ४१६।

प्रतीक मान लिया था।[१] हजरत मुहम्मद और उनके बाद के चार खलीफों ने भी इसी बात पर बल दिया था। अब बकर अल क्लाबधी[२] एवं इब्न खल्दन ने भी सूफी शब्द को सूफ से ही व्युत्पन्न बताया है। नुई मासियो ने भी इसी व्युत्पत्ति को सर्वोत्तम माना है।[३]

कतिपय विद्वान सूफी शब्द की व्युत्पत्ति 'सफा' शब्द से मानते हैं। सफा अर्थात पवित्र। कुछ लोगों का कथन है कि व्याकरण में सफा शब्द से सफवी रूप होगा 'सूफी' नहीं। हुज्विरी का कथन है कि मूलतः सफा शब्द से ही सूफी शब्द बना है। उसका कहना है कि जो लोग पवित्र थे वे सूफी कहलाए। कुछ विद्वानों का विचार है कि पैगम्बर मुहम्मद साहब के समय में मदीने की मस्जिद के सामने बेंच पर बैठने वाले संतों— 'अहल अल सुफ्फाह' के सुफ्फाह शब्द से ही 'सूफी' शब्द बना है। इस प्रकार जो लोग उस चबूतरे (सुफ्फ) पर बैठते थे वे सूफी कहलाए। इस व्युत्पत्ति में भी वही दोष है— सुफ्फाह शब्द से सुफ्फी बन सकता है 'सूफी' नहीं। कुछ विद्वानों के अनुसार सफ्फे-अव्वल के सफ्फ शब्द से 'सूफी' शब्द बना है। सफ्फे अव्वल अर्थात प्रार्थना मे निरत ईमान लाने वालों की पहली पंक्ति। इस व्युत्पत्ति के विषय में भी यही बात है कि सफ्फ शब्द से सफ्फी बनेगा सूफी नहीं। कुछ लोग बनू सूफा नामक एक यायावर जाति के 'सूफा' शब्द से इसकी व्युत्पत्ति बताते हैं। सूफी संत भी अपने शिष्यों के साथ स्थान स्थान पर घूमा करते थे। कतिपय विद्वानों ने ग्रीक शब्द सोफिस्ता में सूफी और थियोसोफिया शब्द से तत्सरूप की उत्पत्ति करने के प्रयत्न किये हैं। सोफिया का अर्थ है ज्ञान। इस विषय में कहा जाता है कि सूफी साधक अनुभव सिद्ध ज्ञान को महत्वपूर्ण मानते है। अलबरूनी (जन्मकाल ९७३ ई०) के समय में भी यह मान्यता थी कि सूफ (ऊन के अर्थ में) शब्द मे सूफी शब्द बना। पर उसने यह मत प्रकट किया है कि उच्चारण में विकृति के कारण सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सूफ से की जाने लगी।[५] उसका कथन है कि इसका अर्थ वह युवक है जो साफी (पवित्र) है। उनके अनुसार यह साफी ही सूफी हो गया है। सूफी अर्थात विचारकों का दल।[६] ब्राउन का कहना है कि यह निश्चित है कि सूफी शब्द की व्युत्पत्ति

१—इ० जी० ब्राउन, लिटरेरी हिस्ट्री आव परशिया (१९०९) पृ० ४१७।
२—ए० एम० शुश्तरी, आउट लाइन्स आव इस्लामिक कल्चर वाल्यूम २०, (१९३८) पृ० ३७४।
३—इन्साइक्लोपीडिया आव इस्लाम, वाल्यूम ८ (१९३४) पृ० ६८१।
४—शुश्तरी आउट लाइन्स आव इस्लामिक कल्चर वाल्यूम २ स० ४ पृ० ३७४।
५—अलबरूनीज इण्डिया, अनु० सचाऊ पृ०३३। ६—वही पृ० ३३।

हृदय में अन्य किसी के प्रति न तो प्रेम शेष रहा, न घृणा शेष रही।''

भारत में सूफीमत का प्रवेश

भारत में सूफी मत के प्रवेश की एक निश्चित तिथि बताना कठिन है लेकिन इसमें संदेह नहीं कि यह प्रवेश मुसलमानों के आक्रमण के बाद ही प्रारम्भ हुआ। मुलाहिब ने ६६४ ई० में भारतवर्ष पर आक्रमण किया था। उसने मुल्तान, लाहौर और बन्नू तक के प्रदेश को लूटा था।[१] ७११ ई० में मुहम्मद बिन कासिम ने बसरा के शासक हजाज बिन युसूफ के आदेश से भारतवर्ष पर चढ़ाई की। उसने सिन्ध में मुल्तान तक के प्रदेश को जीत लिया। एक ओर तो इस प्रकार के लुटेरे और देश को जीतने वाले आक्रमणकारी आते रहे और दूसरी ओर व्यापारी। इसी समय से आस-पास दक्षिण भारत में अरब व्यापारियों के दलों के आने-जाने का उल्लेख मिलता है। इन दलों के साथ आने वाले सईद नथरशाह और बाबा फखर अलदीन (फखरुद्दीन) के नाम इस्लाम धर्म प्रचारकों में मुख्य हैं। मुसलमानों की सैनिक विजय के साथ इस्लाम का प्रचार तीव्रतर होता गया। कहा जाता है कि 'जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन करने वालों का प्रभाव हिन्दुओं पर नहीं पड़ा, लेकिन शान्त और उदार सूफी साधकों ने उनके हृदय पर विजय प्राप्त करना आरम्भ कर दिया। ईसा की तेरहवीं शताब्दी में तथा उसके बाद बड़े-बड़े धर्म प्रचारकों पीरों और सूफी साधकों के नाम सुनने को मिलते हैं। ईसा की चौदहवीं शताब्दी में इनका पूरा जोर रहा। धर्म प्रचारकों का यह जोर ईसा की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में बहुत कम हो गया और सत्रहवीं शताब्दी में प्रायः लुप्त हो गया।[३]

शाह इस्माइल (१००५ ई०) नथरशाह (१०३९ ई०), शाह सुल्तान रूमी (१०३५ बंगाल में आए थे) अबु दाऊद (१०५८ ई० में) दाताराजबख्श (१०७२ ई०) आदि सूफी दरवेश भारतवर्ष में धर्म प्रचार करने आते थे। अल हुज्वीरी ने 'कश्फ अल महजूब' में सूफीमत का सुन्दर विवरण किया है। वह एक महान सूफी साधक था। वह बन्दी के रूप में भारत में आया था। वह दातागंजबख्श नाम से प्रख्यात है। उसकी मृत्यु लाहौर में १०७६ ई० में हुई। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (११६० ई०) के आगमन के पश्चात् से भारत में सूफीमत का क्रमबद्ध इतिहास मिलने लगता है।

ईसा की तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में सूफियों का पूरा जोर देश के कई भागों में रहा। पंजाब कश्मीर दक्खिन, तथा देश के पूर्वी भाग में इन दो

१–मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डा० श्याममनोहर पाण्डेय पृ० ४८।
२–गजेटियर आफ पंजाब डि० व एण्ड कास्ट्स (१९१९), वाल्यूम १ पृ० ४८६।
३–श्री रामपूजन तिवारी, सूफीमत साधना और साहित्य पृ० ४०७।

शताब्दियों में इनका कार्य पूरे जोश के साथ हुआ।

यद्यपि सूफी सन्तों को इस्लाम प्रचारक कहा जाता है, तथापि इन्हें केवल इस्लाम का प्रचारक कहना ठीक नहीं है। वस्तुतः ये अत्यन्त उदार दृष्टिकोण के संत थे। लोग इनसे प्रभावित होकर मुसलमान बन जाते थे, फिर भी इनका धार्मिक दृष्टिकोण बड़ा व्यापक और उदार था। वे इस्लाम को अवश्य मानते थे पर विचार धारा की स्वतन्त्रता और धार्मिक विधि विधानों के क्षेत्र में स्वतन्त्रता के पक्षपाती थे। विधि विधानों का उल्लंघन करने के ही कारण धुल नून मिस्त्री एवं मंसूर अल हल्लाज को कठोरतम दण्ड भोगने पड़े थे।

इमी तक जिस उदात्त भावना के साथ सूफी मत का प्रचार हुआ था वह धीरे धीरे जन साधारण के लिए दुरूह होता गया। धार्मिक विधि विधान प्रमाद पूर्ण जीवन भिक्षा के साधन अशिक्षित जनों की प्रवचना प्रभृति अनेक मार्गों ने इसमें प्रवेश पा लिया। अन्त में शिया सुन्नी विरोध ने सूफीमत को फारस से सदैव के लिए उखाड़ फेंका। विद्वानों का कथन है कि शिया मत द्वारा ही सूफी मत का फारस से अंत हो गया।[1]

औरंगजेब के पूर्ववर्ती मुगल सम्राटों के शासनकाल में भारत में सूफीमत की बड़ी उन्नति हुई। कहा जाता है कि फारस अरब तथा पश्चिमी एशिया के दूसरे देशों में बौद्धमत का पर्याप्त प्रचार हुआ था। सूफियों ने माला जपने की क्रिया बौद्धधर्म से ली है।[2] सूफियों में शहद खाने का निषेध और अहिंसा पालन के सिद्धान्त जैनधर्म से लिए गए हैं।[3] मंसूर भारतीय चमत्कार विद्या इन्द्रजाल के अध्ययन के लिए भारतवर्ष में आया था।

भारतवर्ष के योगमत का भी सूफियों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। आसन प्राणायाम आदि के लिए सूफी योगियों के ऋणी हैं। अबू सईद (मृत्यु १०४९ ई०) ने योगियों से ही ध्यान धारणा की बातें सीखी थीं।[4] फरीदुद्दीन अत्तार शेख सादी प्रभृति अनेक प्रख्यात सूफी भारतवर्ष में आए थे।[5] इनके साथ ही फरीदुद्दीन शकरगंज, हुज्वीरी आदि सूफी साधक धर्म प्रचारार्थ आए थे। धीरे धीरे सूफी साधकों ने धर्म प्रचार

१–विशेष के लिए देखिए, ए हिस्टरी आफ परशियन लिटरेचर इन माडर्न टाइम्स, पृ० २७।

२–दि मिस्टिक आफ इस्लाम इन्ट्रोडक्शन पृ० १७।

३–स्टडीज इन इस्लामिक पोइट्री पृ० १३७।

४–दी स्पिरिट आफ इस्लाम पृ० ४५६।

५–ए लिटरेरी हिस्टरी आफ परशिया वा० २ पृ० ५०० से ५३०।

की ओर और हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की ओर ध्यान नहीं दिया।[1] सूफियों को पहली बार एक ऐसी संस्कृति, एक ऐसी सभ्यता और एक ऐसे धर्म से पाला पड़ा कि वे उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके। उन पर भारतीय वातावरण का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। मूलत सूफी साधक और ज्ञान पिपासु थे। उन्होंने भारत वर्ष के अनेक धर्मों और विचारों का अध्ययन किया। धीरे धीरे एक ऐसा समय आया जब इस्लाम को सर्वश्रेष्ठ मानने की हठधर्मिता उनमें नहीं रही। मूलत सूफियों में हठधर्मिता कभी नहीं रही। इसीलिए फारस और भारत में (औरंगजेब के काल में) उन्हें अनेकानेक यातनाएं सहनी पड़ीं।

ईश्वराराधन उनका ध्येय था, प्रेम उनका मूलमन्त्र था। एकेश्वरवाद में उनकी आस्था थी। उनके लिए हिन्दू मुस्लिम एक अल्लाह की ही सन्तान थे, उनकी दृष्टि में जाति भेद निस्सार था। अनेक हिन्दू भी इसी प्रेम-व्यवहार के कारण उन पर श्रद्धा रखते थे।

१४ सूफी सम्प्रदायों का उल्लेख

विद्वानों का कथन है कि अकबर भी वैचारिक एवं सूफी था। अबुल फजल ने 'आईन-ए-अकबरी' में तत्कालीन चौदह सूफी सम्प्रदायों का उल्लेख किया है- चिश्ती सुहारावर्दी हबीबी, तफूरी करखी, सक्ती, जुनेदी, काजरूनी तसी फिरदौसी जदी इयाज, अदमी और हुबरी।

१—चिश्ती सम्प्रदाय

भारतवर्ष के चार प्रमुख सूफी सम्प्रदायों में चिश्ती सम्प्रदाय का स्थान बड़े महत्व का है।[2] कुछ विद्वानों का विचार है कि इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक ख्वाजा इसहाक सामी चिश्ती हैं।[3] बहुत से विद्वानों की राय में ख्वाजा अबू अब्दाल चिश्ती ही इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। कहा जाता है कि ख्वाजा अबू-अब्दाल ख्वाजा इसहाक सामी के शिष्य थे। जब इसहाक सामी एशिया माइनर से आकर चिश्त (खुरासान) में रहने लगे इसीलिए इस सम्प्रदाय को लोग चिश्ती कहने लगे।

भारतवर्ष में चिश्ती सम्प्रदाय के प्रवर्तक ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (११४२ ई० से १२३६ ई०) हैं। इनका जन्म सीस्तान के सजर शहर में ११४२ ई० में हुआ था। इन्होंने नीशापुर, मक्का, मदीना और खुरासान की यात्रायें की थीं। तत्कालीन

१—ऐन एक्जामिनेशन आफ दी मिस्टिक टेन्डेन्सीज इन इस्लाम, (१९३२) पृ० १४२।
२—इस्लामिक सूफीज्म, पृ० २८५।
३—जान ए० सुभान, सूफीज्म इट्स सेन्ट्स एण्ड श्राइन्स, पृ० १७४।
४—ग्लोसरी आफ ट्राइब्स एण्ड कास्टस आफ पंजाब, १९१९ ई०, पृ० ५२८।

अनेक सतों से इनका सम्बन्ध था। अन्त में ये गजनी चले आए और ११९२ ई० में शहाबुद्दीन गौरी की सेना के साथ दिल्ली आए। ये ११९५ ई० में अजमेर गए और वहीं स्थायी रूप से रहने लगे। अजमेर में ही १२३६ ई० में ९३ वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हो गई।[1] ये बहुत बड़े सूफी सन्त माने जाते हैं। इनके शिष्यों में कुतुबुद्दीन बख्तियार शेख फरीदुद्दीन शकरगंज निजामुद्दीन औलिया अलीअहमद साबिर और शेख सलीम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इन शिष्यों के भी अनेक शिष्य प्रशिष्य हुए। इन शिष्यों ने चिश्ती सम्प्रदाय का सन्देश सम्पूर्ण भारत में पहुँचाया। अमीर खुसरो को निजामुद्दीन औलिया का शिष्य कहा जाता है। निजामुद्दीन औलिया ने औलिया' नामक एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय चलाया, जिसका केन्द्र बदायूँ बना। कहा जाता है कि शेख सलीम चिश्ती के ही आशीष से अकबर को पुत्रोत्पन्न हुआ था जिसका नाम अकबर ने उसी के नाम पर सलीम रखा था। चिश्तिया सम्प्रदाय के सयद अशरफ जहाँगीर का नाम जायसी ने बड़े आदर के साथ लिया है। उसमान के गुरु चिश्ती सम्प्रदाय के थे।

२—सुहरावर्दी सम्प्रदाय

ख्वाजा हसन निजामी[2] जैसे कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो मानते हैं कि सुहरावर्दी सूफी ही सर्वप्रथम भारत में आए थे और वे सिंध में आकर बस गए थे।

सुहरावर्दी सम्प्रदाय के प्रवर्तक या तो शहाबुद्दीन सुहरावर्दी थे या शेख जियाउद्दीन अथवा जियाउद्दीन के पिता अबुल नजीब।[3] शहाबुद्दीन के लिए कहा जाता है कि इनकी कब्र मुल्तान के किले में है, पर यह गलत है। इनकी कब्र बगदाद में है। ये कभी भी भारतवर्ष में नहीं आए थे।

भारतवर्ष में इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं बहाउद्दीन जकारिया (मृत्युकाल १२६७ ई०)।[5] डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि भारत में सर्वप्रथम इस सम्प्रदाय को प्रचारित करने का श्रेय सयद जलाउद्दीन सुर्खपोश (सन ११९९ १२९१ ई०) को है जो बुखारा में उत्पन्न हुए और स्थाई रूप से ऊच (सिंध) में रहे।[6]

१—इनके विषय में विशेष जानकारी के लिए देखिये—(क) ग्लिम्पसेज आफ मेडिवल इण्डियन कल्चर पृ० ३६ ३७ ३८ (ख) लाइफ एण्ड टाइम्स आफ शेख फरीदुद्दीन गंजेशकर खालिक अहमद निजामी पृ० ८०

२—ऐन इन्ट्राडक्शन टू दी हिस्ट्री आफ सूफीज्म इन्ट्रोडक्शन पृ० ८।

३—ग्लोसरी आफ पंजाब कास्टस ऐण्ड ट्राइब्स प्रथम खण्ड, पृ० ५४४।

४—वही पृ० ५४४।

५—श्री रामपूजन तिवारी सूफीमत साधना और साहित्य, पृ० ४६६।

६—डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ३०४।

न्होंने भारत के अनेक स्थानों में प्रचार किया। सिंध, गुजरात पंजाब आदि स्थानों में इनके केन्द्र स्थापित हो गए थे। जलालुद्दीन तबरीजी सयद जलालुद्दीन मख्दूमे जहानिया बरहानुद्दीन कुतुबे-आलम आदि संतों ने बंगाल, सिंध, बिहार गुजरात आदि स्थानों में इस सम्प्रदाय का प्रचार किया। १५वीं शताब्दी तक सम्प्रदाय ने संपूर्ण भारतवर्ष में अच्छा प्रचार किया[1]। इस सम्प्रदाय वालों ने कई राजाओं को भी अपने धर्म में दाखिल किया। हैदराबाद का वर्तमान राजवंश भी इसी सम्प्रदाय की परम्परा में है। फिरदौसिया भी सुहारवर्दी सम्प्रदाय की एक शाखा है। मृगावती के रचयिता कुतबन इसी सम्प्रदाय के थे।

३—कादरी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं अब्दुल कादिर अल जीलानी (१०७८–११६६ ई०)। भारतवर्ष में इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक महम्मद गौस थे। आज भी पेशावर से दिल्ली तक के लोग इनका नाम बड़े आदर से लेते हैं। दिल्ली का सुल्तान सिकन्दर लोदी[2] इनका ही शिष्य था। मुल्तान ने अपनी लड़की की शादी इनसे कर दी थी। ये १४२८ ई० में भारतवर्ष में आए थे। गौस ने सिंध (ऊँच) को अपना केन्द्र बनाया था। वहीं पर १५१७ ई० में इनकी मृत्यु हुई। इस सम्प्रदाय के सत्ता में भावोन्मेष की प्रधानता थी। इस सम्प्रदाय वाले प्रायः अपनी टोपी में गुलाब का फूल लगाए रहते हैं। यह फूल इस सम्प्रदाय में अत्यन्त पवित्र माना जाता है। इसे पैगंबर का प्रतीक भी माना जाता है।[3] कादरी सम्प्रदाय के दो प्रमुख उपसम्प्रदाय हैं—१—रजाकिया और २—वहाबिया। इसी सम्प्रदाय में प्रसिद्ध संत शेख मीर मुहम्मद मियाँमीर हुए हैं। ये दाराशिकोह के दीक्षा गुरु थे। मियाँमीर के प्रिय शिष्य मुल्ला शाह मियाँ की भी बड़ी ख्याति है।

४—नक्शबन्दी सम्प्रदाय

रश्हात ऐन अल-हयात के अनुसार इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक ख्वाजा उबदुल्ला हैं।[4] साधारणतः ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबन्द (मृत्यु १३८९ ई०) को ही इस सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। इस सम्प्रदाय की बड़ी व्यापक प्रतिष्ठा रही है। टर्की, चीन, भारत, जावा आदि देशों में भी इस सम्प्रदाय के अनुयायी पाए जाते हैं। भारतवर्ष में इस सम्प्रदाय का प्रचार करने वाले ख्वाजा बाकी बिल्लाह् बरंग माने

१—विशेष विवरण के लिए देखिए, इंडियन कल्चर, वा० १ पृ० ३६६–६७।
२—सूफीज्म इट्स सेंटस एण्ड श्राइन्स, पृ० ५३८।
३—दी दरविशेस, पृ० ९९।
४—वही पृ० ४३५।

जाते हैं। वे अपने शेख के आदेश पर भारत में आये थे। वे दिल्ली में आकर बस गए थे। यहीं पर आने के तीन वर्ष पश्चात उनकी मृत्यु हुई। भारतवर्ष में इस सम्प्रदाय का प्रभाव विस्तार अहमद फारूकी के द्वारा हुआ। इनका जन्म सरहिन्द में १५६३ ई० में हुआ था। जहाँगीर के शासनकाल में इस सम्प्रदाय वालों का बड़ा जोर था, पर स्वयं जहाँगीर इनसे अप्रसन्न था। जहाँगीर ने इन्हें कैद भी कर लिया था और इसी कारण इन्होंने अपने परिवार वालों को अफगानिस्तान भेज दिया था। डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि जनसाधारण की रुचि इस सम्प्रदाय की ओर आकर्षित नहीं हुई। सूफी सम्प्रदाय के अन्तर्गत नक्शबन्दी सम्प्रदाय सबसे अधिक निर्बल और प्रभावहीन रहा।

५—शत्तारी सम्प्रदाय

भारतवर्ष के प्रमुख सूफी सम्प्रदायों में यह भी एक है। भारतवर्ष में इसके प्रवर्तक फारस के अब्दुल्ला शत्तारी हैं।[1] इनकी मृत्यु मानवा में १४०६ ई० में हुई। मुहम्मद गौस इसी सम्प्रदाय के संत हुए हैं। ये हुमायूं के दीक्षा गुरु थे।[2] इस सम्प्रदाय वाले 'मैं हूं और मैं एक हूं' का सिद्धान्त मानते हैं। ये 'फना' की अवस्था को नहीं मानते। शाहपीर बहाउद्दीन जौनपुरी मीर सैयद अली कौसाम इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध संत हुए हैं।[3]

६—मदारी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय का भारत में प्रवर्तन करने वाले हैं शाह मदार बदीउद्दीन। यह मूलतः उवैसी सम्प्रदाय ही है। उत्तर भारत विशेषकर उत्तर प्रदेश में इसका १६वीं शती में बड़ा प्रचार हुआ था। अब्दुल कद्दूस गंगोही और शाह मदार महान संतों में गिने जाते हैं। कहा जाता है कि जायसी की माँ ने शाह मदार की मनौती की थी और शीतला या अर्द्धांग रोग से जायसी तो बच गए, पर इनकी एक आँख जाती रही।

विशेष-

इन सम्प्रदायों का अपनी सरल ईश्वरोन्मुखी भावना के कारण जन-समुदाय में विशेष रूप से प्रभाव पड़ता रहा और समाज के निम्न धरातल के व्यक्ति जिन्हें हिन्दू समाज में विशेष सुविधाएं नहीं थीं इन सम्प्रदायों में दीक्षित होते रहे।[5]

१—इण्डियन कल्चर भाग १ पृ० ३३८।

२—वही पृ० ३३९ तथा इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, वा०११ पृ० ६९।

३—इण्डियन कल्चर भाग १ पृ० ३३८। ४—वही पृ० ३४०—४१।

५—डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३०६।

डा० विमलकुमार जैन का कथन है कि उपयुक्त सप्रदायों के सूक्ष्म विवेचन से प्रतीत होता है कि इनका पूण उत्थान मुगल काल म ही हुआ। अकबर, जहांगीर आदि अनेक मुगल सम्राट पीरों के परम भक्त थ । शाहजहां का पुत्र दाराशिकोह तो मुसलिम और हिंदू रहस्य ज्ञान का अच्छा वेत्ता था। उसने सूफी मत और वेदान्त का गम्भीर अध्ययन किया। तदुपरात उसने दोनों मतो के गूढ़ सिद्धान्तों की तुलनात्मक विवेचना की और बतलाया कि इसम कोई तात्विक अतर नहीं है। केवल भिन्न अवश्य है, परन्तु आत्मा एक ही है। बहादरशाह भी शाह होते हुए एक सत से कम न था। उसकी अनेक कविताओं म सूफी मत के उच्च सिद्धान्तो की बड़ी विशद व्याख्या है।[1] प्रस्तुत वक्तव्य म इतना जोड़ देना आवश्यक है कि उपयुक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि भारत म सूफी मत का उत्थान १४वी १५वीं शताब्दी म खूब हुआ। मुगलकाल म यह उत्थान पूर्णता को प्राप्त हुआ। इन समस्त सूफी सप्रदायों में गुरु परम्परा और विशिष्ट बाह्याचारों का ही अन्तर था। इन सप्रदायों म आध्यात्मिक नेता को शेख मुरशिद या पीर कहते थ। मुसलमानों से स्वाभाविकतः इन्हें सम्मान मिलता था। हिन्दू भी इनका सम्मान देते थे। कहा जाता है कि हिन्दुओं ने तलवार के आगे गरदन झुका दी थी, परन्तु तलवार से जो विश्वास नहीं उत्पन्न किया जा सकता, उस काय को इन सूफी सतो ने पूर्ण किया। इन सूफी सतों ने आध्यात्मिक राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों म बड़ा महत्वपूर्ण काय किया। मृत्यु के अनन्तर इन सतो के समाधिस्थान, दरगाह या मकबरे बने। दिल्ली, आगरा, अजमेर फतेहपुर सीकरी मुल्तान हैदराबाद आदि स्थानो पर अनेक पीरों के समाधि स्थल और दरगाह दर्शनीय तीथ बन गए हैं। इन स्थानों पर प्राय उर्स हुआ करते हैं।

हिन्दुओं म मूर्तिपूजा का प्रचार था। मुसलमानो पर भी इसका प्रभाव पड़ा। वे समाधि-स्थानों की यात्रा करने लगे। इन स्थानो पर, दीप, चढ़ावे आदि के द्वारा उन्होंने भी पीरों की पूजा शुरू की।

सूफियों मे कुछ सत पूर्णत सयासी का जीवन बिताते थे। सयद अशरफ जहांगीर को ससार से विराग हो गया तो उन्होंने इस्फहान की बादशाहत का त्याग करके सूफीमत म दीक्षा ले ली।[2] एक मुहाविरा है कि 'आवे तो रहे तो बेहतर दरवेशी तो रहे तो बहतर।' ये मत भी ईश्वर के पक्के भक्त होते थे ये प्राय विरक्त जीवन व्यतीत करते थे। ज्ञान प्रेम और ईश्वरीय विरह की अनुभूति

१—डा० विमलकुमार जैन सूफीमत और हिन्दी साहित्य पृ० ८६।
२—एन इन्ट्रोडक्शन टु दी हिस्टरी आफ सूफीज्म, इन्ट्रोडक्शन पृ० ८।

इनके लिए सवस्व थी। इनम ज्ञान की उत्कट पिपासा थी अध्ययनशीलता विद्वत्ता और कभी कभी आश्चयजनक जादू आदि के कार्यों के कारण इनकी कीर्ति और विस्तार पाती गई। इन दरवेशो के करामातो की कथायें भी बडी रोचक हैं। इन करामातो ने भी साधारण जनता को आकृष्ट करन म पर्याप्त योग दिया होगा।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ[1] का कथन है कि भारतवष म सूफी सिद्धान्तों म कोई विशष उन्नति न हो सकी। परन्तु ऐसी बात नही है। यह सत्य है कि भारतीय सूफी सतो ने प्राय फारस के सूफी सिद्धान्तो का ही विशष विश्लेषण किया, किन्तु भारतीय सूफी सतो ने सूफी घम का अनक महत्तम तत्व भी दिए हैं। दाराशिकोह और दातागज उपनिषदो क प्रकाड पडित हुए है। दाराशिकोह न उपनिषदिक धम और सूफी धम म सामजस्य स्थापन का सफल प्रयत्न किया है। सूफिया के तापसी जीवन म भारतीय सूफियो ने योग का महत्तम तत्व जोड दिया है।[2] दातागज ने भारतीय सिद्धान्तो क प्रकाश म सूफी सिद्धान्तो की व्याख्या की है। उन्हे बहुत बडा सिद्धान्त--निर्माता भी कहा जाता है। गोरखपथी साधुओ की भांति चमत्कार प्रदशन की वस्तु भी सफियो म प्रबल हो उठी थी। जो कछु पिंडे सो ब्रह्मण्ड का सिद्धान्त सूफियो को योगियो से ही मिला।[3]

भारतवष म अद्वतवादी दशन तो अत्यत प्राचीन है। शकराचाय ने दसवी शताब्दी म इसमे पुन प्राण प्रतिष्ठा का महान अनुष्ठान किया। शकराचाय के ब्रह्म सूत्र क भाष्य क भी अनक भाष्य लिखे गए। विद्वानो का कथन है कि मध्ययुगीन समस्त भारतीय दाशनिक सिद्धान्ता पर इस दशन की छाप अवश्य लगी है। एकेश्वरवाद और अद्वतवाद म साधारण लोग विभद नहा मानते। मध्य युग म उत्तरी भारत म गोरखपथी योगियो क योग सिद्धात की बडी घूम थी। योगमत की प्रबलता का अनुमान इसी बात स लगाया जा सकता है कि मध्ययुगीन कवि सूरदास नन्ददास आदि न अपन भ्रमरगीतो म योगमत और प्रमभक्ति मत का द्वन्द्व दिखात हुए भक्ति को श्रेष्ठतर प्रतिपादित किया है। तुलसीदास न भी खीझ कर कहा था गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग।[5] कबीर पर योग सप्रदाय की पूरी छाप पडी थी। योग उनकी साधना का एक महत्वपूर्ण अग था। योगियो म ध्यान धारणा प्राणायाम सहज समाधि आदि का प्रचार था। गोरखनाथ न हठयोग को एक प्रमुख

१—द्रष्टव्य कमलकुल श्रेष्ठ हिन्दी क प्रमाख्यानक काव्य।
२—अलबदायूनी मुतखबुत्तवारीख भाग ३ अनुवादक रकिंग।
३—देखिय गोरखबानी (स० १९९९) प १३५।
४—बणीप्रसाद हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता (१९३१) प ३३१–३५।
५—तुलसीदास कवितावली उत्तरकाण्ड पद ८४।

साधन माना था। इडा पिंगला और सुषुम्ना को क्रमशः गंगा, यमुना और सरस्वती की संज्ञायें दी गई थीं। इस प्रकार योगी शरीर में ही त्रिवेणी की स्थिति मानते थे। शरीर में ही विभिन्न चक्रों की स्थिति अमृत, सहस्रार, त्रिपुटी अनहदनाद ब्रह्मरंध्र आदि की साधनामूलक बातें योगमत में अपना पूर्ण प्रभाव किए हुए थीं।

मध्ययुग में शैव धर्म का प्रचार था। नाथपंथियों का बोलबाला था, तान्त्रिक मान्त्रिक सिद्धों का भी खूब प्रचार था। ये सब प्रायः शिव के भक्त हुआ करते थे। शंकराचार्य के अद्वैत के प्रचार और प्रबल प्रतिपादन के बावजूद भी योगियों ने शिव की महत्ता को ही स्वीकृत किया।

मध्ययुगीन हिन्दू साधनाओं में सब धर्मों में रागात्मिका वृत्ति का प्राधान्य था। शैवों और वैष्णवों तक की धार्मिक भावनाओं में समन्वय के भाव प्रबल हो उठे थे। शिव को विष्णुभक्त और विष्णु को शिवभक्त तक बना दिया गया। राम और कृष्ण के भेद भी मिट रहे थे। इन दोनों को एक न माना जाने लगा था। भक्त और भगवान का व्यक्तिगत सम्बन्ध ज्ञान और प्रेम का समन्वय, ज्ञान के द्वारा या प्रेम के द्वारा चिन्मय में लीन होने की साधना, सृष्टि के कण कण में परमात्मा की लीला, प्रेमा भक्ति की महत्ता नाम महत्ता, नाम-स्मरण, भक्त की दीनता और आत्मसमर्पण की भावना प्रभृति कतिपय सामान्य विश्वास मध्ययुगीन सन्तों में दर्शनीय हैं। कबीर ने भक्ति और ज्ञान दोनों की महत्ता को स्वीकार किया है। रहस्यवादी प्रणयमूलक भक्ति भी उस समय के हिन्दू धर्म में विद्यमान थी। ग्यारह आसक्तियों में कान्ता शक्ति भी एक थी। गोपियाँ कृष्ण की भक्ति इसी भाव से करती थीं। वल्लभाचार्य ने गोपी बनना मानव जीवन का परम लक्ष्य माना है।[1]

भारतवर्ष के सूफी कवियों का आध्यात्मिक मूल स्रोत फारस का प्रेम काव्य रहा हो परन्तु यहाँ के वातावरण, काव्य और मतों से वे पूर्णतः प्रभावित हैं। सूफी साधना पर बड़ा प्रभाव योगियों का है। सूफी संतों के पद्मावत, मृगावती, मधुमालती, चित्रावली आदि समस्त प्रेमाख्यानकों में नायक को योगाचार का संपादन करना ही पड़ता है—यह अवश्य है कि केवल योग से ही सब कुछ नहीं होता—उसके अंतर में प्रेम-भाव का होना अत्यन्त आवश्यक माना गया है। इन सभी काव्यों में गोरखनाथ, भर्तृहरि और गोपीनाथ के उल्लेख मिलते हैं। वेश-भूषा तथा आसन भी योगियों के ही ग्रहण किए गए हैं। प्रायः इन प्रेमाख्यानों में शिव की अवतारणा की गई है। इस प्रकार स्पष्ट है कि योग

१—डा० कमलकुल श्रेष्ठ हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य पृ० १३६।
'मन्वन्तु मे गोपीनां नन्दादीनां च गोकुले।
गोपिकानां च यद् दुःखं स्यात् मम क्वचित्॥'

सम्प्रदाय ने सूफियो को सम्यक रूप से प्रभावित किया है। जायसी के पदमावत म योगमत अपने पूण वभववत रूप मे उपस्थित है। सहजयानी सिद्धो की परम्परा और नाथ–योगियो की परम्परा इन दोनो के सम्पक म आकर जायसी ने जीवन मे उनका प्रत्यक्ष अनुभव किया था उन्होने दोनो की विशेषताओं को स्वीकार करके अपने काव्य मे स्थान दिया।[1] इतना ही नही जायसी कृत पदमावत तो जसे नाथ सिद्ध परम्परा का ही एक प्रतिनिधि आकर ग्रथ हो गया है—'उसका पूर्वार्द्ध भाग तो सहजयान मार्ग और नाथ–योगियो के माग का जसे प्रतिनिधि ग्रन्थ ही बन गया है। इसम इन दोनो धाराओ के अधिक से अधिक सकेत कौशल से यथास्थान पिरोए हुए हैं।[2]

'सूफी साधना मे भी अद्व तवादी दशन था। दाराशिकोह ने भी अद्व तवादी दशन की महत्ता का स्पष्टीकरण किया है। जायसी ने भी अखरावट मे अद्वतवादी दशन के सिद्धांत की बातें लिखी हैं। इस्लाम के एकेश्वरवाद का भी सूफी समथन करते हैं। योगियो से प्रभावित होकर दाराशिकोह ने समाधि प्राणायाम आदि की क्रियाए दी हैं। धार्मिक सहिष्णता एव सामजस्य की भावना भारतीय सूफियों की विशेषता है। प्रसिद्ध सन निजामुद्दीन औलिया ने कहा था, हर कौम रास्त आहे, दीन व किबला गाहे[3] (प्रत्येक कौम अपना रास्ता अपना धम और अपना मदिर होता है)। जायसी ने भी इसी बात को स्पष्ट शब्दो म कहा था–विधिना के मारग हैं ते ते। सरगनखत तन रोवां जेते॥ (अखरावट)। रहस्यवादी प्रणयमूला भक्ति सूफी धम की रीढ है।

तत्कालीन मुस्लिम आक्रमणकारियो और शासको क अत्याचारो से जनता का मन अवश्य ही खिन्न था। सगण निगु ण धाराओ म भक्ति की मदाकिनी प्रवहमान थी। वेदान्त का प्रतिपादन विशिष्टाद्व त द्व त शुद्धाद्वत और द्वताद्वत रूपो मे हो रहा था।

प्राय मध्यकालीन धर्मों म गुरु की महत्ता का प्रतिपादन मिलता है। सूफियो म यहां गुरु को ईश्वर की ही तरह महत्व दिया गया है। उसे पथ–प्रदशक माना गया है। रामानदी वल्लभी आदि सम्प्रदाया मे भी गुरु की महत्ता पर जोर दिया गया है। कबीरदास और उनके अनुयायियो क यहां भी गुरु की महत्ता का जमकर प्रतिपादन किया गया है। गोरखनाथ सूरदास, तुलसीदास आदि ने भी गुरु की महत्ता को स्वीकार किया है। ईश्वर की कृपा पर सूफी और भारतीय दोनो सत

१—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पदमावत प्राक्कथन, पृ० ४४।
२—वही पृ० ४४।
३—हिन्दुस्तानी भाग १ पृ० १०१।

विश्वास करते हैं। दाराशिकोह ने लिखा है —

'वास्तव में अपने गुरु एवं ईश्वर को पाना उसी की कृपा पर है मानव के प्रयत्न पर नहीं।'

तुलसीदास भी 'मूक की वाचलता, पंगु की गतिमानता उसी की कृपा का फल' मानते हैं। सूरदास के पुष्टिमार्ग में तो भगवान का अनुग्रह ही सब कुछ है। सूफियों का भी विश्वास है कि परमात्मा ही अनुग्रहपूर्वक प्रेम के बाण मारता है। ।उसने ही धरती, गगन आदि सबको प्रेम-अनुग्रह से अपनी ओर खींचा है। जायसी ने पदमावत, अखरावट, चित्र रेखा आदि में गुरु-परम्परा और गुरु महिमा का सविस्तार गुणगान किया गया है। उसकी मान्यता है कि बिन गुरु पथ न पाइय भूल सो जो मेंट। (पदमावत पृ० ६३) स्पष्ट है कि सूफी साधक का लक्ष्य है प्रियतम का साक्षात्कार और इस प्रेम पथ पर गुरु साधन है मार्ग दर्शक है। 'पेम पियाला पंथ लखावा। आपु चाखि मोहिं बूंद चखावा। (चित्ररेखा)। गुरु की कृपा से समस्त पाप धुल जाते हैं। — धोवा पाप पानि सिर मला। (चित्र-रेखा, पृ० ७४)। कबीर ने गुरु गोविंद तो एक है कह कर दोनों में अन्तर नहीं माना है। जायसी ने भी इसी बात की पुष्टि की है— 'आपुहिं गुरू आपु ही चेला। (अखरावट पृ० ३३४)।

जायसी की प्रेम–भक्ति साधना

सूफीमत में प्रेम का महत्व और जायसी

सूफी-साधना और साहित्य में प्रेम का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी साधना प्रेम की साधना है उनका साधना मार्ग प्रेम पथ है उनका साध्य प्रेम-प्रभु है, उनका एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास प्रेम ही है। यदि सूफी साधकों को प्रेमी-साधक कहा जाय तो असंगत न होगा। प्रेम उनके काव्य के समस्त प्रतीकों में सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है। रति का जो आलंबन है वही प्रियतम का प्रतीक है। सूफी चाहे जिस किसी को प्रेम का पात्र कहें परन्तु उनका प्रियतम परमात्मा ही है। उसी प्रियतम को वे अपने प्रेम का आलंबन मानते हैं। उसी के प्रेम में वे समस्त संसार को निमग्न देखते हैं। प्रेम के पुल पर चलकर ही सूफी साधक भवसागर पार करते हैं। प्रेम ही उनका अमोघ अस्त्र है वही उनका परम साधन है।[1] 'प्रेम ज्ञान मारिफ की भाँति ईश्वरीय देन है यदि संपूर्ण संसार भी प्रेम को अर्जित करना चाहे तो वह संभव नहीं है। ईश्वर के प्रेमी वे हैं जिनमें ईश्वर

१—पदमावत का काव्य सौंदर्य पृ० २२१।

२—मिस्टिक्स आफ इस्लाम, निकलसन पृ० ११२।

नय प्रेम करता है। मैं सोचता रहा कि ईश्वर से प्रम करता हूँ। पर विचार करने पर ज्ञात हुआ कि प्रम जो मेरे ऊपर छाया हुआ है उसका है।'[1]

मानव स्वय परमात्मा का अश है। उसम प्रम भी दिय स्रोत से ही आया है और वह दवी विभूति स्वय प्रेम रूप है। इनुल अरबी[2] के अनुसार प्रेम का मूल कारण सौंदय ही है परमात्मा सर्वाधिक सौदय रूप है और सौन्दय की अनिवाय प्रकृति है कि वह प्रेम किए जाने के लिए अपने को प्रकट करता है। ईश्वर ने अपने ही सौन्दय को देखने के लिए दपण रूपी विश्व का निर्माण किया है।

आपु आपु चाहसि जो देखा। जगत साजि दरपन क लेखा।
घट घट जस दरपन परछाही। नाहे मिना दूर फुनि नाही॥[3]

अल्फराबी ने कहा है ईश्वर स्वय प्रम है। सृष्टि का कारण भी प्रम है। प्रेम के माध्यम से सृष्टि की इकाइयाँ जो प्रेम क महास्रोत म जो पूण सौंदय और सर्वोत्तम भी हैं निमग्न हो जाने के लिए जुडी हुई हैं।

विद्वानो की राय है कि बाह्य-सौंदय की कोई निश्चित परिभाषा नही दी जा सकती। जिस पदाथ विशेष की ओर जिसका मन आकर्षित हो जाय वही सुदर है। यो समय समय पर सभी सुन्दर लगते हैं कोई रूप-कुरूप नही होता पर जिसकी जिधर रुचि हो उसके लिए वही सुदर है। क्षण क्षणे यन्नवतामुपति तदेव रूप रणीय मताया भी कहा जाता है। वह अवश्य सत्य है कि मानव निसगत सौंदय प्रेमी है। अत सौन्दय स तात्पय समरव और पूणता से है। मानव के समस्त प्रयत्नों के मूल मे सुन्दर और पूण होने का लक्ष्य है। परम सौन्दय रूप ईश्वर ही है अत विश्व मे एक मात्र वही पूण है, अत वही मानस का काय और आदश भी है। उस पूणता को प्राप्त करने के लिए मानव ईश्वर म अनुरक्त होता है। वह उसके साक्षात्कार की अभिलाषा करता है। सचमच प्रम के लक्षणो मे प्रियतम के साक्षात्कार की कामना महत्वपूण है।[5] सौन्दय वह है जो वास्तव म प्रेम को जन्म देता है। अत आत्मा की दृष्टि सासारिक सौन्दय स गुजरते हुए अन्यत्र लगी रहती है। पूण सौन्दय ईश्वर मे है। अत वही सच्चे प्रम का अधिकारी भी है।'[6]

१—इन ऐन ईस्टन रोज गार्डेन।

२—चित्ररेखा स० शिवसहाय पाठक पृ० ६६।

३—आउट लाइन आफ इस्लामिक कल्चर ए एम० ए० शुस्तरी, पृ० ३११।

४—स्टडीज इन अरली मिस्टीसिज्म इन दी नीयर एड मिडिल इस्ट पृ० २०३।

५—अलगज्जाली दि मिस्टिक मागरेट स्मिथ प० १ ६।

६—आवारिफुल मारिफ (शेख शहाबुद्दीन उमर बिन सहरवर्दी) अनुवादक एच० विल्टर फोर्स क्लार्क प० १ १।

(अलगज्जाली)।

वस्तुत सुन्दरता में एक जादू है जो मानव चित्त को अभिभूत कर लेता है। सौन्दर्य और प्रेम में अन्योन्य सम्बन्ध है। सौंदर्य जितना ही अधिक होगा प्रेम की मात्रा उतनी ही तीव्र होगी। ईश्वर सुन्दरतम है अत उसका प्रेम ही वास्तविक और पूर्ण प्रेम है। वदों में ईश्वर की उपासना का भाव वर्तमान है उसके मूल में एक यह भी कारण है। प्रारम्भ में सौन्दर्य की स्तुति या प्रशंसा की भावना रहती है यही भावना विकसित होकर तल्लीनता के रूप में परिणत हो जाती है। हसन सुहरवर्दी ने ठीक ही कहा है कि सौन्दर्य के गहरे चिंतन के लिए हृदय का झुकाव ही प्रेम है।।[१]

ईश्वरीय प्रेम ज्ञान जन्य होता है अत प्राप्त आनन्द अनिर्वचनीय होता है। ईश्वरीय सौन्दर्य ही वास्तविक सौन्दर्य है। अत उससे प्राप्त सौंदर्यानन्द का कोई आरपार ही नहीं होता भक्त या प्रेमी विस्मय से अभिभूत होकर निर्वाक् रह जाता है।

प्रेमानुरागी मर भी जाए तो अमर हो जाता है। प्रेमी केवल प्रेमी ही नहीं रहना चाहता है वह प्रियतम से मिलकर तादात्मता का अनुभव करना चाहता है। वह प्रेम पथ पर चलने के लिए अपना सवस्व त्याग देने को प्रस्तुत रहता है। शलभ दीपकमय हो जाना चाहता है कमल जल के सूखने के साथ ही सूख जाता है। मछली जल के वियोग में तड़प-तड़प कर प्राण दे देती है। वास्तव में प्रेमी प्रेम की अग्नि में झुलस झुलस कर सदैव प्राण दे देने को उद्यत रहता है। अलहल्लाज ने अपने वध के समय शिबली से कहा था ओ शिबली प्रेम का प्रारम्भ दाध-कारक अग्नि है और अंत मृत्यु है।[२] ऐसा होने पर भी प्रेमी साधक अमरता को ही प्राप्त करता है। मसूर ने कहा था कि ईश्वर से मिलन तभी सम्भव है जब हम कष्टों के बीच से होकर गुजरें।[३] इसीलिए सूफी साहित्य में प्रेमी को भयावह कष्टों का सामना करना पड़ता है।

यह अवश्य द्रष्टव्य है कि सूफियों की दृष्टि सम्यक् इस तथ्य की ओर रही है कि वासना का उन्नयन और परिमार्जन किया जाए। सूफी संसार से अपना सम्बन्ध बनाए रखते हुए भी वासना को उपस्थित नहीं होने देना चाहता। ईरान के अनेक सूफी महात्माओं (यथा-अलगज्जाली बाबा फरीद आदि) ने वैवा-

१—अलगजाली दी मिस्टिक पृ० १७७, (सूफी मत साधना और साहित्य पृ० ६५ से उद्धृत)।

२—आउट लाइन आफ इस्लामिक कल्चर, पृ० ३५०।

३—अलगजाली दी मिस्टिक मार्गरेट स्मिथ अध्याय ४।

हिक जीवन का समथन किया है। मात्र सतानोत्पत्ति के लिए ही नहीं, अपितु ताजगी और और सतोप के लिए भी ववाहिक जीवन आवश्यक है । पत्नी के साहचय से हृदय को सताव का अनुभव होता है । इससे ईश्वर की सेवा करने के लिए शक्ति मिलती है।

वासना के परिष्कार के साथ ही लौकिक प्रेम ईश्वरीय प्रेम मे परिणत होने लगता है। सूफ़ियो के अनपार सासारिक प्रेम (इश्क मजाजी) ईश्वरीय प्रेम (इश्क हकीकी) का प्रथम सोपान है। सपूण सूफी प्रम काव्य इसी आधारशिला पर अलकृत हैं। जब प्रेमी म पूण स्फुरण हो जाता है तब उसम सम दष्टि आ जाती ह। वह सभी मजहबो से ऊपर उठ जाता ह। उसका धम केवल खुदा का प्र म ह। रूमी का कथन ह। इश्क का मजहब सभी मजहब से अलग ह। खुदा के आशिकों के लिए खुदा के अलावा कोई मजहब नहीं ह।[१]

सच्चा प्रेमी सदा प्रणय की मदिरा से मतवाला रहना चाहता ह—

मैं कुवते जिस्मो कुवते जानस्त मरा।
मैं काशिफ असरारे निहानस्त मरा॥
दीगर तलवे दीनवो उक्वा न कुनम।
यक जुरआ पुर अज हर दो जहानस्त मरा॥[२]

सचमुच प्रम की मदिरा अपार गुणकारी है। उससे शरीर और प्राणो का शक्ति प्राप्त होती है। उसके पीने से रहस्य का उदघाटन होता है अत मैं उस मदिरा का एक घूट पीना चाहता हू। पीने के बाद मुझे जीवन और मत्यु की चिन्ताए न सताएगी। ईश्वर के प्रमी से यदि प्रश्न किया जाए कि तुम कहां स आए तो उसका उत्तर होगा प्रियतम के पास से?

तुम क्या चाहते हो ?
प्रियतम।
/तुम्हें कहां जाना है?
प्रियतम के पास।
कब तक प्रियतम प्रियतम-करते रहोगे ?
'जबतक मिलन न होगा।

— —

उसने कहा क्या नाम है ?
मैंने कहा आशिक तेरा।

१–रूमी पोस्ट एण्ड मिस्टक ए० निकल्सन प १७१।
२–ईरान के सूफ़ी कवि प० ५१ (उमर खयाम)।

उसने कहा क्या नाम है?
'मैंने कहा सौदा तेरा।
उसने कहा आए कहाँ?
मैंने कहा 'कूचा तेरा।
कब तलक ये फेरा–फाके मस्ती?'
'जाने मन दीदारे तक।'

अल हुज्विरी[1] ने ठीक ही कहा है कि प्रेम प्रियतम की प्राप्ति के लिए विकलता का ही नाम है।'

यह ईश्वरीय प्रेम कुछ ऐसा निराला है कि इसमें एक बार गिरफ्तार हुआ व्यक्ति बंधन मोक्ष की कामना ही नहीं करता। इस प्रेम-बंधन में बँधा हुआ व्यक्ति छूटना ही नहीं चाहता–

असीरी रस न ख्वाहद रिहाई जे बन्द।
शिकारश न ख्वाहद खलास अज कमन्द॥[2]

इस प्रेम माधुर्य के कारण कटु भी मिष्ट हो जाता है। प्रेमी शूल को फूल समझ लेता है। इसी प्रेमोन्माद में शूली–सिंहासन और कारागार उद्यान बन जाता है। मंसूर इसी तरंग में हँसते-हँसते सूली पर चढ़ गया था। निस्सन्देह प्रेम स्वर्गीय गुणों का स्रोत है।

स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद ने ठीक ही कहा था– इस शिथिल सुरभि से खिंच–कर तुम आओगे–आओगे!' प्रेम की इस बेबसी को जानकर प्रणय पात्र का मन भी गल ही जाता है। यदि कोई सच्चा प्रेमी है, सच्चे प्रेम में व्याकुल है तो उसका प्यार अवश्य उससे मिलेगा–

आशिक कि शुद कि यार बहालश नजर न कर्द।[3]

जब इश्क मजाजी इश्क हकीकी में परिणत हो जाता है, तब साधक आत्मानन्द पाता है वह ध्यान द्वारा ईश्वरीय सौन्दर्य पर विस्मय विमुग्ध होता हुआ चरम साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील रहता है। एक ऐसी स्थिति आती है जब कि प्रेमी स्वयम प्रेमरूप हो जाता है। प्रेम एक ऐसी रागिनी छेड़ देता है जिसके प्रभाव से प्रेमी का संपूर्ण व्यक्तित्व प्रेममय हो जाता है–

बसके दिलम नवाख्त यक जमजमा इश्क।
जाँ जमजमा अमजे पाए ता सर हम इश्क॥

1–आउट लाइन आफ इस्लामिक कल्चर, भा० २ पृ० ५०२।
2–ईरान के सूफी कवि, पृ० २२४ (दाऊद शाही)।
3–वही पृ० ३३८ हाफिज)।
4–वही पृ० ४०० (जामी)।

सूफियों की रति में माधुर्य के साथ साथ मादक भाव भी रहता है, परन्तु उसमें निहित वासना को पवित्र कामना ही कहना उचित है क्योंकि ईश्वरीय रति का आनन्द नित्य और शान्तिप्रद होता है। पूर्वांकित पंक्तियों में कहा जा चुका है कि ईश्वर से प्रेम करना उसकी प्रेमानुभूति द्वारा उसका साक्षात्कार एवं उसकी सत्ता में अपनी सत्ता का विलयन ही सूफी साधना का चरम उद्देश्य है। साधक की उत्कट प्रेमानुभूति अनिर्वचनीय होती है। उसकी अभिव्यक्ति अत्यन्त कठिन है। यही कारण है कि सूफी कवि प्रायः प्रतीकों या रूपकों का माध्यम ग्रहण करते हैं। सनाई फरीदुद्दीन अत्तार रूमी फिरदौसी निजामी उमर खैयाम हाफिज जामी आदि सूफी कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों संकेतों और तर्कों का आश्रय लिया है।

अलगज्जाली की यहाँ दो कथाएं दी जा रही हैं। इनमें सूफी प्रेम साधना का अच्छा परिचय मिल सकेगा।

जुलेखा का यूसुफ से प्रेम हो गया है। उसका प्रेम इतना घना है कि जब कोई आकर कह देता था कि मैंने यूसफ को देखा है तो वह उसे अपने गले का हार दे देती थी। उसके पास सत्तर हीरे थे। धीरे धीरे इसी प्रकार देते सब चुक गए। वह यूसुफ को याद किया करती थी। उसे तारों में यूसुफ का नाम दिखाई देता था। विवाह के पश्चात उसके प्रेम में अधिक घनत्व आ गया था। उसने यूसुफ के साथ रहने से इनकार कर दिया। उसने यूसुफ से कहा — मैं तुमसे उस समय तक प्रेम करती थी जब तक ईश्वर को नहीं जानती थी। अब ईश्वरीय प्रेम मेरे हृदय में व्याप्त हो उठा है उस स्थान में अब मैं ईश्वर के अतिरिक्त किसी को नहीं रख सकती[1]। इसी प्रकार की एक और कथा अलगज्जाली ने दी है मजनू लैला के प्रेम में पागल हो गया। जब कोई उससे उसका नाम पूछता तब वह कहता था— लैला। यह पूछने पर कि क्या लैला मर गई। वह उत्तर देता था — लैला मेरे हृदय में है मैं लैला हूं। उसकी मृत्यु नहीं हुई है। एक दिन जब वह लैला के घर के पास से जा रहा था तब किसी ने कहा कि तुम आकाश की ओर न देखो। लैला के घर की दीवालों की ओर देखो। शायद वह दिखाई पड़ जाय। मजनू ने उत्तर दिया — मैं तो आकाश के उन तारों से ही सन्तुष्ट हूं जिनका प्रतिबिम्ब लैला के घर पर पड़ रहा है। और यही कारण है कि मजनू लैला में ही खुदा का नूर देखता था। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने कहा है — ऐ मुईन। अक्ल की आँख से दोस्त का हुस्न न देख। तू मजनू की आँख से लैला के हुस्न को

1—मार्गरेट स्मिथ अलगज्जाली दी मिस्टिक अध्याय १२।

देख।[1]

स्पष्ट है कि लौकिक प्रेम जब उच्च पवित्र और व्यापक भाव भूमि पर पहुँच जाता है तब वह ईश्वरीय प्रेम म परिणत हो जाता है। भारतवष का सूफी काव्य भी इसी प्रकार की विचारधारा से आप्लावित है।

इस्लाम क इतिहास से ज्ञात होता है कि हसन की मत्यु के पश्चात सूफी मतवाद के प्रेम प्रवाह की मनोमुग्धकारी तरगो म समस्त मुस्लिम ससार तरगित होने लगा। इस प्रेम धारा को प्रवाहित करने का श्रय बहलश म राबिया तथा उसकी सहेलियो को है साथ ही मसूर को भी। तत्कालीन अय सूफी सन्तो ने इस काय म महत्वपूण योग दिया। राधा मीरा तथा अदाल के सदृश राबिया[2] तथा उसकी सहेलियाँ अपने को अल्लाह की दुलहिन समझती थी। राबिया कहती है —

हे नाथ! तारे चमक रहे हैं। लोगो की आँखें मुद चुकी हैं। सम्राटो के द्वार की अगलाएं बद हैं। प्रत्येक प्रेमी अपनी प्रिया के साथ एकान्त सेवन कर रहा है और मैं यहाँ अकेली साथ हूँ[3]। उसने निवेदन किया है हे नाथ! मैं तुमसे द्विधा प्रेम करती हूँ। एक तो यह मेरा स्वाथ है कि मैं आपके अतिरिक्त किसी अन्य की कामना नही करती। दूसरे यह मेरा परमाथ है कि आप मेरे परदे को मेरी आँखो से हटा देते हैं ताकि मैं आपका साक्षात्कार करके आपकी सुरति म निमग्न रहूँ। किसी भी दशा म उसका श्रेय मुझे नहीं मिल सकता। यह तो आपकी कृपाकोर का प्रसाद है[4]।

अन्य सूफी कवियो के सदृश राबिया भी रसूल की प्राथना करती है। 'हे रसूल भला ऐसा कौन-सा प्राणी होगा जिसे आप प्रिय न हो, पर मेरी तो दशा ही कुछ और है। — — — उसम उसके अतिरिक्त किसी और के लिए स्थान ही नहीं है। इन सत महिलाओ तथा मसूर आदि के समय म सूफीमत अपनी प्रारम्भिक अवस्था म था। फिर भी इनकी रचनाओ तथा वाणियो म अल्लाह के पुनीत प्रेम के दर्शन होते हैं। प० चन्द्रबली पाडेय का कथन है कि कबीर आदि साधको की तरह सूफी सन्त महिलायें भी अपने को अल्लाह की बहुरिया मानकर अपने प्रणय निवेदन को उस तक निवेदित करना चाहती थी। सूफियो का परम प्रिय से प्रेम मीरा और अण्डाल की भांति है। मीरा का गिरधरगोपाल के प्रेम म लोक-लाज

१—मुईन बचश्मे सिरे हुस्ने दोस्त न नुमायद। बजी वजहे मजनू जमाले सलारा। दीवान ख्वाजागरी वनेवाज प० २४।

२—राबिया दी मिस्टिक पृ० २७।

३—ए लिटररी हिस्टी आफ दी अरब्स प० २३४।

४—स्टडीज इन तामिल लिटरेचर पृ० ११३।

खोनी पडी और सत मत म आ जाने के कारण कुछ अधिक स्वच्छन्द होना पडा। दवन्दासी नन्दलाल माधव — मूर्ति पर आसक्त थी। वह कृष्ण के प्रणय की प्यासी थी। कहा जाता है कि अन्त म मीरा की ही तरह वह उसी मे समा गई। भगवान श्रीकृष्ण ने उसके प्रणय को स्वीकार किया[1]। यहाँ पर यह कथन असगत न होगा मीरा पर सूफी प्रभाव पडा है। इसी प्रबन्ध म अन्यत्र यह सप्रमाण सिद्ध किया गया है। वस्तुत सूफियो के अनुसार सौंदय वह है जो वास्तव म प्रम को जन्म देता है अत आत्मा सासारिक सौन्दय से गुजरते हुए सर्वोत्तम की ओर झक जाती है। वही ईश्वरीय सौन्दय है। यही ससार के सौन्दय का कारण है। पूण सौन्दय ईश्वर मे है। अत वह सच्चे प्रम का अधिकारी है[2]।

सूफी साफ-साफ कह देते हैं कि इश्कमजाजी इश्क हकीकी की सीढी है और इसी के द्वारा इन्सान खुदी को मिटाकर खुदी बन जाता है। सूफियो के प्रेम का उदय देवदास और देवदासियो म हुआ। कमकाण्डी नजिया के घार विरोध के कारण उसका परम प्रम की परछी मिली। सूफी साधको को अनक कष्टो का सामना करना पडा। प्रमोन्मत्त मसूर को अनलहक कहने के अपराध मे फासी दी गई। राबिया को दु खो के सागर का सतरण करना पडा। इस प्रकार क अनेक प्रत्यूहों का प्रत्याख्यान करत हुए प्रम–वीर के ये सच्च साधक अपन प्रेम पथ पर प्रगतिमान रहे। यह द्रष्टव्य है कि अपन मूल रूप म यह प्रम भावना इस्लाम की नही है। ईसा के पूव से ही अनवारो शवो तथा बौद्धो म इस प्रकार की प्रम–साधना की परम्परा चली आती थी। ईरान अरब आदि देशो म इस साधना का प्रचार हुआ था। आठवी–नौवी शताब्दी म इसी प्रम–साधना ने इस्लाम के अन्तगत सूफी प्रम–भावना का रूप ग्रहण किया। राबिया उसके पश्चात मसूर (मत्यु सन ७८४) के समय स अलगज्जाली (सन १११३) क समय तक अविच्छिन्न रूप के इस्लाम के साथ ही प्रम या माशूक–भाव की सूफी साधना भी चलती रही। सूफियों की साधना का मूलमन्त्र है प्रम। सूफी साधक परम प्रममय ईश्वर के जिक्र (नाम–स्मरण) एवम फिक्र (ध्यान) म दीवाने बने रहते हैं और ससार के समस्त ऐश्वय को वे प्रम–रूप की मुहब्बत मे पाते है वे हर जर्रे म प्रियतम का जलवा देखते हैं —

बेहिजाबी यह कि हर जर्रे म जलवा आशिकार।
फिर भी पर्दा यह कि सूरत आज तक देखी नहीं॥

१—प० चन्द्रावली पाडेय तसव्वुफ अथवा सूफीमत प० ११।
२—अलगज्जाली दी मिस्टिक मार्गरेट स्मिथ प० १०६।

जुनैदी[1] का कथन है कि प्रेम की विशेषता यह है कि अपने निजी व्यक्तित्व को समाप्त कर लिया जाय। इस आनन्द पर नियन्त्रण नहीं है। यह ईश्वरीय कृपा निरन्तर विनय करने और आकांक्षा करते रहने से प्राप्त होती है।

वस्तुतः सूफी-साधकों का प्रधान लक्ष्य है कि सृष्टि के कण-कण में प्रियतम का जलवा देखना उसके प्रेम-विरह में तड़पन प्रलपन का आनन्द उठाना, साक्षात्कार का आनन्द उठाना और अन्ततः चिर मिलन का आनन्द प्राप्त करना।

जायसी, कुतबन, मंझन आदि कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने पारलौकिक प्रेम का वर्णन किया है।

जायसी अपनी साधना द्वारा निराकार प्रेम-प्रभु की आरती उतारते हुए अपना सब कुछ उसी में निमग्न कर देते हैं। पद्मावत में प्रेम-मार्ग, उसका महत्व प्रेम की गरिमा उसका सौन्दर्य उस पथ की कठिनाई का स्थान-स्थान पर अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है। जिसका हृदय प्रेम-बाणों से विद्ध है वही इसके मर्म को जानता है —

'प्रेम घाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पै सोई॥

मंसूर ने ठीक ही कहा था — 'ईश्वर से मिलन तभी सम्भव है जब हम कष्टों के बीच से होकर गुजरें।'[2] प्रेम की अवस्था मृत्यु से भी कठिन है — कठिन मरन तें प्रेम अवस्था। भारतवर्ष में कबीरदास पर भी सूफियों के प्रेम भाव का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। उनके प्रेम के आदर्श और शूर हैं। उनके अनुसार प्रेम के पथ पर चलना असिधारा पर चलना है। यह कोई खाला के घर की राह नहीं है यह कोई खाला का घर नहीं है कि जब जी में आया चल पड़े। इसमें प्रवेश पाने के लिए शीश को उतार लेना पड़ता है—

सीस उतार भुइँ धरै तापर राखै पावँ।
दास कबीरा यों कहै ऐसा होय तो आव॥
सीस उतारै भुइँ धरै सो पैठे घर माहिं।'

जायसी ने भी प्रेम पंथ पर चलने की बात को कुछ इसी प्रकार से स्पष्ट किया है—

ज्ञान दिस्टि सौं जाइ पहूँचा। पेम अदिस्ट गगन तें ऊँचा॥
धुव तें ऊँच पेम धुव ऊआ। सिर देइ पाँव देइ सो छूआ॥

प्रेम खाला का घर समझने वालों को कबीर ने सावधान किया था। जायसी ने भी कहा है कि वहाँ पहुँचने के लिए सिर काटकर उस पर पैर रखना पड़ता। कितना विपरीत कठिन है यह काज। प्रेम के पहाड़ पर वही चढ़ सकेगा जो सिर (अभिमान-

1—आउटलाइन्स आफ इस्लामिक कल्चर, ए० एम० ए० शुस्तरी पृ० ३११।
2—आउटलाइन्स आफ इस्लामिक कल्चर पृ० ३५०।

अहंभाव देकर चढ़ना चाहे। उस पथ पर काम क्रोध तृष्णा आदि चोर बटमारी करते हैं। पथिक को उनसे क्षण-क्षण सावधान रहने की आवश्यकता है। यह प्रेम-पीर 'प्रबोध' से सर्वद्धित होती है—

'उपजी प्रेम पीर जेहि आई। परबोधत होइ अधिक सो आई॥

अलफराबी का कथन है कि ईश्वर स्वयं प्रेम है। सृष्टि रचना का मूल प्रेम है। सृष्टि की इकाइयाँ प्रेम के सहारे प्रेम के महास्रोत मे जो पूर्ण और सर्वोत्तम है। डूब जाने के लिए पूर्ण रूप से जुडी हुई हैं।[१]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सूफियो के यहाँ प्रेम का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। प्रेम ही कर्म है और प्रेम ही धर्म है प्रेम ही पथ है और परमात्मा भी प्रेममय ही है। इसी प्रेम से हिन्दी सूफी काव्य पोषित हुआ है। हिन्दी सूफी काव्य की प्रत्येक कहानी का मूलाधार प्रेम है। इसका बीज और अन्त प्रेम की ही विजय है। फारसी के जितने कवि हैं वे मानो कविता म प्रेम के अतिरिक्त कुछ जानते ही नही। प्रमाणस्वरूप जलालुद्दीन रूमी, जामी फरीदुद्दीन अत्तार अनगज्जाली आदि के उदाहरण दिए जा सकते है। जायसी ने भी पदमावत म लिखा है—

मानुष पेम भयउ बकुंठी। नाहित काह छारि भरि मूठी॥
विक्रम धसा प्रेम के बारा। सपनावति कह गयउ पतारा॥
मधू पाछ मुगधावति लागा। गगन पूर होइगा बरागा॥ आदि

जायसी ने पदमावत म सविस्तर प्रेम पीर की विशद और प्राजल अभिव्यञ्जना की है।

परम सत्ता की प्रेममय कल्पना

(जायसी की कान्ता रति या मधुर भाव की साधना)

उपर्युक्त विवेचन स स्पष्ट है कि सूफी ईश्वर को ही प्रियतम रूप मे देखते हैं। वे सारे ससार को इसी की ज्योति स प्रोदभासित बताते हैं। उन्होंने सवत्र लौकिक प्रेम के बहाने अलौकिक प्रेम का वणन किया है। जायसी ने भी ईश्वर की कान्तारति को ही प्रधानता दी है। यहा उनका साध्य है। प्रेम प्रभु से बदा (जीव या साधक) दूर है परन्तु यह दूरी नगण्य है (उससे मिलने की उत्कण्ठा और उसके दीदार की लालसा कभी कम नही होती है।[२]

१—आउटलाइन्स इस्लामिक कल्चर ए एम० शुस्तरी पृ० ३११।
२—आवारिफुल मारिफ पृ १०४।

बस मीन जल धरती अम्बा बस अकास।
जो जाही का भावता सो ताही के पास।

उस प्रेम सत्ता के दर्शन सबको सहज नहीं हैं। वह जिसे दर्शन देना चाहता है उसके हृदय में प्रेम के डोरे डाल देता है प्रेम-बाणों से बेध देता है या प्रेम की चिनगारी से उसके हृदय को जगा देता है –

लागिन पेम चिनगी विधि मेला।[1]

संसार का कण कण उसके प्रेम बाणों से बिंधा हुआ है। (राबिया ने कहा है मेरे रोग का निराकरण तब होगा जब प्रिय से मिलन होगा)। बिना प्रियतम से मिले निस्तार नहीं –

उन बानन्ह अस को जो न मारा।
बेधि रहा सगरौ संसारा।
धरती गगन बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहिं सब साखी॥
गगन-नखत जो जाहिं न गने। वै सब बान ओहि के हने॥

जायसी ने इस जागतिक सौन्दर्य को उस रहस्यमय ईश्वरीय सौन्दर्य के प्रेम सूत्र में बंधा हुआ माना है। इसी का अवलम्बन पाकर जीव उस प्रेममय तक पहुंच सकता है। सूफी ही क्यों? सभी भारतीय मनीषी उस सत्ता को सर्वत्र व्याप्त देखते हैं। इसीलिए वे सकल संसार को प्रणाम करते हैं –

सियाराम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥
(तुलसीदास)

मैथिल कोकिल विद्यापति भी उसके साथ अपना जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध मानते हैं –

जनम जनम हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल॥ (विद्यापति पदावली)

रूमी[2] ने कहा है कि स्त्री ईश्वर की किरन है। वह केवल सांसारिक प्रेमिका नहीं है। वह निर्माता है निर्मिति नहीं।' इसीलिए 'अलमजा जो कंतरतुल हकीका अर्थात् मजाज हकीकत का पुल है। इसीलिए सूफी कवि सांसारिक प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम की व्यञ्जना कल्पना और वर्णन करते हैं। मध्य युगीन हिन्दी साहित्य की प्रधान प्रेरणा धर्म-भावना ही रही है। धर्म-साधना के परिणामस्वरूप धर्म ग्रन्थों के आवरण में सुन्दर कवित्व का विकास हुआ है। पद्मा

१–राबिया दि मिस्टिक मार्गरेट स्मिथ, पृ० ११० (तुलनीय मीराबाई का भवरोग भी तभी मिटेगा जब बैद संवरिया होय)।

२–रूमी दी पोएट एण्ड मिस्टिक, निकल्सन, पृ० ४४।

वत और रामचरितमानस के सभी सौंदय का मूल प्ररणा स्रोत यही है। बौद्ध योगियो सूफिया निगु णियो तथा सगुणमार्गी भक्ता के साहित्य का केन्द्र बिंदु ईश्वर या या प्रियतम के साथ लीना या उसी की साधना है। तटस्थ दृष्टि से देखने पर लगता है कि इन सबकी साधना प्रम मूलक है और है भक्त हृदय की रागात्मिका वृति का प्रसाद।[1]

पदमावत और चित्ररेखा जायसी की सवश्रेष्ठ काव्यात्मक रचनाए हैं। इनमे उन्होने अपनी प्रेम साधना का सविस्तर विवेचन किया है। चित्ररेखा म उन्होने स्पष्ट कहा है —

जब लगि विरह न होइ तन हिये न उपजइ पेम।
तब लगि हाथ न आव तप करम धरम सत, नेम॥[2]

अर्थात विरह का हृदय म उत्पन्न होना अत्यन्त आवश्यक है। पदमावत की समस्त कथा का केन्द्र प्रेम-भावना ही है।

उन्होंने प्रमत्यात्मा पथ को दिखाया था —

दास बुरहान महदी गुरु ने ही उन्हे प्रम-त्याना पथ को दिखाया था —
पेम पियाला पथ लखावा। आपु चाखि मोहि बूंद चखावा।
पेम पियाला जिन्ह पिया लिया पेम चित बंध।
साचा मारग जिन्ह लिया, तजि झूठा जग धंध॥[3]

जायसी ने अपने को प्रम मधु भौरा कहा है —

मुहमद मलिक पेम मधु भौरा॥

उन्होने प्रेम प्रीति का अत तक निर्वाह किया है —

हाथ पियाला साथ सुराही। पेम पीति लइ ओर निवाही॥

प्यारे पीर सयद अशरफ की कृपा से उनके हृदय म प्रम दीप प्रज्वलित हुआ था —

नेसा हिये पेम कर दिया। उठी जोति भा निरमल हिया॥

हीरामन शुक द्वारा वर्णित पदमावती के नखशिख वर्णन के अनतर राजा रत्नसेन के हृदय मे प्रम भाव का उदय होता है। वह अपना राज पाट, सुख वैभव, भोग आदि का परित्याग करके जोगी बन जाता है और तब तक प्रयत्न करता है जब तक उसे प्राप्त नही कर लेता। चित्तौड से सिंहल तक का माग एक प्रकार से

१—पदमावत का काव्य सौन्दय पृ० २२४ २२५।
२—चित्ररेखा पृ० ७०।
३—वही पृ० ७४।
४—चित्ररेखा पृ० ७८।
५—जायसी ग्रथावली छद १८।

प्रेम-पथ ही है। इस पर वह विघ्नों, अवरोधों और नाना विध प्रत्यूहों का प्रत्याख्यान करता हुआ गतिमान होता है —

हीरामन ने रत्नसेन को समझाया था—

पेम सुनत मन भूल न राजा। कठिन पेम सिर देइ तौ छाजा।
पेम फाँद सो परा न छूटा। जीउ दीन्ह बहु फाँद न छूटा॥[1]

पद्मावती का रूप-वर्णन सुनकर राजा मूर्छित हो गया। इस प्रेम भाव को भला कौन जान सकता है—

प्रेम घाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जान पै सोई॥
परा सो पेम समुद अपारा। लहरहिं लहर होइ बिसभारा॥

प्रेम मार्ग निश्चयमय दुर्गम है। दुःख के भीतर भी प्रेम और सुख का अमृत स्रोत रहता है। इसको वही पाता है जो मृत्यु की पीड़ा सहने को उद्यत हो, फिर तो प्रियतम का मिलन और अनन्त सुख ही सुख मिलता है—

भलेहि पेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा पेम जेइँ खेला।
दुख भीतर जो पेम मधु राखा। जग नहिं मरन सहै जो चाखा।
जो नहिं सीस पेम पथ लावा। सो प्रिथिमी महँ काहे क आवा।
अब मैं पंथ पेम सिर मेला। पाँव न ठेलु राखि कै चेला।
पेम-बार सो कहै जो देखा। जो न देख का जान बिसेखा।
तौ लगि दुख पीतम नहिं भेंटा। मिलै, तौ जाइ जनम दुख मेटा।[2]

मानव प्रेम के ही कारण अमर होता है अन्यथा वह एक मुट्ठी राख ही है—

मानुष पेम भएउ बैकुंठी। नाहिं त काह छार भरि मूठी।
पेमहिं माह बिरह रस रसा। मैन के घर मधु अमृत बसा।[3]

प्रेम प्रायः सौन्दर्य जन्य होता है। पद्मावती भी अप्रतिम-सौन्दर्य सम्पन्न है। उसके सौन्दर्य की मार्मिकता ईश्वरीय सौन्दर्य की ही मार्मिकता है इसीलिए तो रत्नसेन उसके लिए जोगी भिखारी तक हो जाता है।

प्रारम्भ में प्रेम प्रायः वासनात्मक होता है। विरह की तपाग्नि में प्रज्वलित होकर प्रेमी द्वादशवर्णी कंचन की तरह कान्तिमान हो जाता है। हीरामन से पद्मावती ने कहा कि यदि मैं चाहूँ तो उससे आज ही मिल सकती हूँ, परन्तु अभी तक उसे मेरा मर्म ज्ञात नहीं है। मुझे अभी पूर्ण ज्ञान नहीं है कि वह प्रेम के रंग में रंग उठा है या नहीं—

पै सो मरमु न जान भोरा। जानै प्रीति जो मरि कै जोरा।
हौं जानति हौं अबहीं काँचा। ना वह प्रीति रंग थिर राँचा।

१—जायसी ग्रन्थावली, दोहा ६७। २—वही, पृ० ४० (दो० १७)।
३—वही पृ० ७१ (दोहा ११२-२)।

ना वह भएउ मलयगिरि बासा । ना व‍ रबि होइ च‍ अकासा ।
ना वह भयउ भौर क रसू । ना वह दीपक भएउ पतगू ।
ना वह करा भ ग क होई । ना वह आपु मरा जिउ सोई ॥

इस प्रकार जब दोनो का मिलना होता है तो प्रमी मर कर भी अमर हो जाता है । वे पुन कभी अलग नही होते ।

रत्नसेन देवपाल के साथ द्वद्व युद्ध करते समय घायल हो जाता है । सांग की साधातिक चोट के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है । उसकी दोना रानियाँ सती हो जाती हैं । चिता मे जलते हुए व कहती हैं कि हे कान्त जीते जी तुमने हमे जिस कठ स लगाया था मरने पर भी हे स्वामिन हम उस कठ को न छोड़ेंगी । हे प्रियतम जो गाँठ तुमने हमारे साथ जोड़ी थी आरम्भ से लेकर जीवन के अन्त तक के लिए लगाई थी वह छूट नही सकती—

एक जो भाँवरि भई बियाही । अब दुसरे होइ गोहन जाही ।
जियत कत ! तुम हम्ह गर लाई । मुए कठ नहिं छाडहि साई ।
औ जो गाँठ कन्त तुम्ह जोरी । आदि अन्त लइ जाइ न छोरी ।
यह जग काह जो अछहि न आथी । हम तुम नाह ! दहू जग साथी ।
लागी कठ अगि देइ होरी । छार भई जरि अग न मोरी ।
रानी पिउ के नेह गइ मरग भएउ रतनार ।
जो रे उवा सो अथवा रहा न कोइ ससार ।[1]

जायसी का कथन है कि जो कोई भी इस ससार में उदय होता है वह अवश्यमेव अस्त भी होता है । प्रम एक ऐसा अमर एवम शाश्वत सत्य है जिसका कभी अस्त नही होता । अलाउद्दीन और राघव कहा हैं ? वह सुरूपा रानी पद्मावती कहा है ? रत्नसेन और हीरामन कहां है ? य सब नही रहे पर उनकी प्रम कहानी जगत म है—

वह सुरूप पदमावति रानी । कोइ न रहा जग रही कहानी ।
धन सोई जस कीरति जासू । फूल मर प मर न बासू ॥[2]

अलाउद्दीन भी पदमावती का प्रमी है पर उसका प्रम सच्चा नही है । उसकी वासना का पर्युत्थान नही हुआ है । वह पदमावती का शरीर चाहता है अत वह वाह्य सौन्दर्य पर प्रलुब्ध कामी पुरुष है । उसमे एक सच्चे साधक की-सी तपस्या लगन और त्याग नही है । उसम शक्ति जन्य अहकार तृष्णा और वासना का प्राधान्य

१—जायसी ग्रन्थावली प० ३० दोहा ३
२—वही प० ३०१

है। इसीलिए उसके हाथ में चिता की राखमात्र आती है–

छार उठाइ लीन्हि एक मूठी। दीन्हि उड़ाइ पिरथिमी झूठी।[1]

प्रेम मार्ग के पथिक के लिए हृदय की पवित्रता आवश्यक है। कल्मषयुक्त हृदय से प्रेमप्रभु का मिलन असम्भव है। महादेव जी ने रत्नसेन को उपदेश दिया था कि दुःख सहो पर प्रेम पंथ पर गतिमान रहो–

कहेसि न रोव, बहुत तैं रोवा। अब ईसर भा दारिद खोवा।
अब तैं सिद्ध भएसि सिधि पाई। दरपन कया छूटि गई काई।
कहौं बात अब हौं उपदेसी। लागु पंथ भूले परदेसी।

प्रेम-पथ के पथिक के हृदय में क्रोध, ईर्ष्या आदि के लिए स्थान नहीं रहता। वह सहिष्णु उदार और तपस्वी हो जाता है–

गुरू कहा चेला सिद्ध होहु। पेम-बार होइ करहु न कोहू।
जाकहँ सीस नाइ कै दीजै। रंग न होइ ऊभ जौ कीजै।
जेहि जिउ पेम पानि भा सोई। जेहि रंग मिलै ओहि रंग होई।
जो पै जाइ पेम सौं जूझा। कित तप मरहि सिद्ध जो बूझा।
सीस दीन्ह मैं अगमन पेम पानि सिर मेलि।
अब सो प्रीति निबाहौं चलौं सिद्ध होइ खेलि।[2]

राजकुंवर रत्नसेन एक उत्कृष्ट प्रेम पथिक के रूप में चित्रित किया गया है। बन्दी रत्नसेन को सूली पर चढ़ाए जाने की आज्ञा होती है, उसका हृदय अपने परम प्रिय में पूर्णतः निमग्न है।

राजपुरुषों ने कहा जिसका स्मरण करना चाहते हो उसे सुमिर लो। अब हम तुम्हें केतकी का भ्रमर बना देंगे (सूली से बींध देंगे)। उस समय रत्नसेन ने कहा है मैं हर श्वास में उसी का स्मरण करता हूं—मरते और जीते दोनों अवस्थाओं में जिसका हो चुका हूं। मैं उस पदमावती का स्मरण करता हूं जिसके नाम पर मेरा यह जीव निछावर है। मेरी काया में जितनी रक्त की बूंदें हैं, वे सब पद्मावती पद्मावती कहती हैं। यदि मैं जीवित रहूं तो मेरे एक-एक बूंद रक्त में उसी पदमावती का स्थान है। यदि सूली पर चढूंगा तो उसी का नाम लेकर मरूंगा। मेरे शरीर का रोम-रोम उसी से बिंधा है। प्रत्येक रोमकूप बेधकर जीव उसके द्वारा रुद्ध किया गया है। मेरी हड्डी-हड्डी में वही-पद्मावती-पद्मावती शब्द हो रहा है। मेरी नस-नस में उसी की ध्वनि हो रही है। वस्तुतः उत्कृष्ट प्रेम का यह

१–जायसी ग्रंथावली पृ० ३००
२–वही, पृ० १०४, दोहा ९

एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है—

कहेसि सँवरू जेहि चाहसि सँवरा । हम तोहि करहिं केत कर भँवरा ।
कहेसि ओहि सवरौ हरि फेरा । मुए जियत आहौं जेहि केरा ।
रक्त क बूँद कया जस अहही । पद्मावति पद्मावति कहही ।
हाडहि हाड सबद भो होई । नस-नस माह उठै धनि सोई ॥[1]

प्रेमी के मन में लोभ और अहंकार नहीं रहना चाहिए। रत्नसेन जब सिंहल से लौट रहा था, तो उसके मन में लोभ और अहंकार दोनो थे और वे रत्नसेन को ले डूबे।[2] वह रो रोकर कहता है कि आह घमण्ड मुझे ले डूबा।

पूर्वोक्त पंक्तियो में चित्ररेखा के उदाहरणों (जब लगि विरह न होइ तन हिय न उपजइ प्रेम) द्वारा स्पष्ट किया गया है कि प्रेम साधना में विरह का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। गुरु विरह की चिनगारी डाल देता है—

गुरु विरह चिनगी जो मेला । जो सुलगाइ लेइ सो चेला ।

ज्ञान ही भूले हुए साधक को प्रभु का स्मरण कराता है। साधक को सुधि आती है कि इस दुःख स्थिति के पूर्व वह ईश्वर के साथ एक था। यहाँ धरती और स्वर्ग मिले हुए थे? वहाँ से इन्हे किसने वियुक्त कर दिया?

धरती सरग मिले हत दोऊ । केइ निनार कै दीन्ह बिछोऊ ।[3]

मृत्यु तो एक ही बार प्राण लेती है पर विरह में अनेक बार प्राणान्त पर प्राणान्त का सामना करना पड़ता है। विरही अपने को संभाल नहीं पाता उसे शरीर और परिधान की सुधि-बुधि नहीं रहती। प्रिय को रटते रटते उसका मुख सूख जाता है।[4] विरह वज्राग्नि से भी भयंकर है। अग्नि तो जल पड़ने पर शान्त हो जाती है पर विरह सान्त्वना के जलसीकर पाकर और भी अधिक उत्तप्त होता है। सूर्य भी विरहाग्नि के ही कारण जल रहा है। विरही की वियोगाग्नि प्रिय की प्राप्ति पर ही शान्त होती है।

बिरह बजागि बीच का कोई । आगि जो छूट जाइ जरि सोई ।
बिरहि कै आगि सूर नहिं टिका । रातिहु दिवस जरा ओ धिका ।[5]

१—जायसी ग्रन्थावली पृ० १११-११२ दोहा ३
२—वही पृ० १७२-७३
३—वही, खंड २२ दोहा ७।३
४—वही खंड २२ पृ० ९८
५—वही
६—वही पृ० ७८, दोहा ६

प्रभु विरह का अनुभव करने वाला साधक धन्य है। वियोग की चिनगारी का नाम सुनते ही पृथ्वी और आकाश काँप जाते हैं, पर धन्य है विरही और धन्य है उसका हृदय जहाँ विरह की वह चिनगारी ही नहीं उसकी सम्पूर्ण ज्वाला भी समा जाती है

मुहमद चिनगी पेम कै, सुनि महि गगन डराइ।
धनि विरही औ धनि हिया जहँ अस अगिनि समाइ।[1]

जिसके हृदय में विरह की निष्पत्ति होती है वह धन्य धन्य हो जाता है। प्रत्येक स्थान पर ज्योतिमय नग उत्पन्न नहीं होते। सबके जल में मोती नहीं मिलती। प्रत्येक वन में चन्दन के वृक्ष नहीं होते—वैसे ही प्रत्येक प्राणी के हृदय में ईश्वर के विरह की भावना भी उत्पन्न नहीं होती। विरले अध्यात्म के पथिक ही इस विरह भाव का अनुभव करते हैं—

पाहन पाहन नग न होहिं जेहि जोती। जल-जल सीप न उपनहिं मोती।
बन-बन बिरिछ न चंदन होई। तन-तन बिरह न उपने सोई॥[2]

जब प्रिय निकटतम होते हुए भी दूर रहे तब प्रेमी के विरह संताप की धारा सहन शक्ति के चरम बिन्दु का स्पर्श करने लगता है। पुष्प में सौरभ और दुग्ध में घृत की भाँति यह सत्ता का तत्व सब में ओतप्रोत है। वह प्यारा प्रभु इस घट का ही अपना घट बनाकर रमण करता है। आत्मा के ही अन्दर परमात्मा विद्यमान है। देशकाल की किंचितमात्र भी दूरी दोनों में नहीं है परन्तु भावना की दृष्टि से परमात्मा जीव से कितना दूर है। साधक प्रभु का सामीप्य चाहता है वह उसके विरह में अतीव कष्ट सहता है अग्नि के कौर खाकर जीवन धारण करता है—

कन्त बास पिउ हीर जिमि नियर मिल एक ठाइ।
तस कंता घट घर कै, जियउ अगिनि कहँ खाइ।[3]

विरह की ज्वाला बड़ी दारुण होती है—

जग महँ कठिन खरग कै धारा।
तेहि तें अधिक बिरह कै झारा।[4]

पद्मावती भी विरह की अग्नि में तप रही है। उसे भी नींद नहीं आती मानो कोई सेज पर 'केवाँछ' रख गया हो।[5]

१—जायसी ग्रन्थावली पृ० ८८, दोहा ७
२—वही, पृ० १३६ दोहा २२।१२
३—डा० मुन्शीराम शर्मा भक्ति का विकास पृ० ५९३
४—जायसी ग्रंथावली, नागरीप्रचारिणी सभा काशी पृ० ६५ (४।५)
५—वही पृ० ७३ (१।२)

जब तक जीव ईश्वर से मिल नहीं जाता, यह तडपन बनी ही रहती है और मिलन के पूर्व विरह का जगाना अत्यन्त आवश्यक है। सच तो यह है कि विरह के बिना प्रेम होता ही नहीं।[1]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि यद्यपि पदमावत की कथा मूलतः एक लौकिक कथा है किन्तु इस लौकिक कथा के माध्यम से जायसी ने ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यंजना की है। प्रेम-पीर के साधनात्मक जीवन-दर्शन का जैसा काव्यात्मक निरूपण पदमावत में हुआ है वैसा हिन्दी के शायद ही किसी काव्य में हुआ हो।

४-चित्ररेखा, पृ० ७

१२

प्रेमाख्यानक परम्परा

प्रेमाख्यानों का महत्व और जायसी

प्रेमाख्यान का अर्थ

प्रेमाख्यान का आख्यान शब्द मूलतः आख्यायिका का ही भाषान्तर-सा प्रतीत होता है और इसके ही अर्थ में कथा शब्द का भी प्रयोग होता है। परन्तु आख्यायिका के लिए जहाँ कहा गया है कि वह केवल नायक द्वारा ही वर्णित गद्य के रूप में होती है वहाँ कथा स्वयं नायक या किसी अन्य पात्र द्वारा भी कथित हो सकती है और साहित्यशास्त्र के पण्डितों ने आख्यानादि को इन दोनों के ही अन्तर्गत मान लिया है।[1] फिर भी जैसा 'पुराणमाख्यानम्' से प्रकट होता है 'आख्यान' शब्द का प्रयोग किसी समय पुराणों के लिए भी किया जाता था और उसके अन्तर्गत पाई जानेवाली अन्तर्कथाओं को 'उपाख्यान' की संज्ञा दे दी जाती थी। महाभारत को कदाचित् इसी कारण कहीं-कहीं 'भारताख्यान' कहा गया मिलता है और उसकी कतिपय अन्तर्कथाओं को 'शकुन्तलोपाख्यानम्' 'नलोपाख्यानम्' आदि कहा गया है। आख्यानों का स्वरूप स्वभावतः वर्णनात्मक हुआ करता है और उसमें आई हुई कथा को इतिवृत्तात्मक रूप में दिया जाता है। उनके कथानकों का किसी रचयिता द्वारा कल्पित कर लिया जाना ही पर्याप्त नहीं क्योंकि वे साधारणतः लोकप्रचलित या ऐतिहासिक भी हो सकते हैं। इसमें मुख्य अन्तर केवल इसी बात का रहता है कि प्रथम वर्गवालों के पात्र कल्पनाप्रसूत होते हैं तथा उनसे सम्बन्धित घटनाओं के परिवर्तन या विकास में जहाँ कवि को किसी प्रकार के बन्धन का अनुभव नहीं करना पड़ता वहाँ दूसरे वर्गवाली रचनाओं में ऐसी गुंजाइश रहा करती है। प्रेमाख्यानों

१—दण्डी, काव्यादर्श १।२३—८ तथा विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद ३२५-६।

मे प्रधानत किसी पुरुष का किसी स्त्री के प्रति या किसी स्त्री का किसी पुरुष के प्रति प्रमासक्त होना दिखलाया जाता है।[1] इस प्रकार की घटनाओ के मूल मे प्रत्यक्ष दशन चित्र दशन स्वप्न दशन गुण श्रवण-अथवा किसी आभूषणादि की प्राप्ति जसी बातें हुआ करती हैं। इस प्रकार प्रमाभिभूति होने पर प्रेमी व प्रमिका अपने प्रेम-पात्र को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। उनके प्रेम म एकात निष्ठा आ जाती है। वे अपने समक्ष के समस्त प्रयूहो, अतरायो और विघटन-बाधाओ को तणवत मानते हैं। जोगी बनना विकट यात्राओ के लिए निकल पडना सात सात सागरा को पार करना युद्ध करना आदि म स कोई न कोई उनका धम हो जाता है। भारतीय प्रमकथाओ का अत बहुधा प्रेमी और प्रेमपात्री के बीच विरह सम्बध के घटित हो जाने पर ही अवलम्बित रहता है और इसके सम्बध म कम विपाक और पुनज म की कथायें तक जोड दी जाती हैं किन्तु कभी कभी प्रेमाख्यानो का रूप दुखात भी बन जाया करता है जिनके अधिक उदाहरण ऐसी सूफी रच नाओं मे ही मिलते हैं। सूफी प्रमाख्यनों म और विशेषकर उनम जिनके कथानक अभारतीय स्रोतो से लिए गए रहते हैं ऐसे प्रेम सम्बध की कहानी प्रचुर मात्रा मे मिलती है जिसके लिए वध या अवध का कोई प्रश्न नही उठा करता और जहाँ प्राय प्रत्येक काय पूण स्वच्छदता के साथ किया जाता है। परतु भारतीय कथानकों मे अधिकतर ऐसी नारियो का ही समावेश रहा करता है जो पातिव्रत धम का पालन अत्यत आवश्यक समझती हैं तथा जो पति के अभाव मे प्राय सती भी हो जाती हैं।[2] पद्मावत और चित्ररेखा की कथाए मूलत भारतीय ही हैं। पदमावत मे तो महत्वपूर्ण रानियो का सती होना ही है। चित्ररेखा म भी पति के अभाव मे रानी चित्ररेखा चिता म जल मरने को प्रस्तुत है। वह कहती है कि हे प्रिय जो तुमने मुझ भुला दिया है तो मैं भी अपने को जलाकर तुमसे मिलूंगी —

जो तुम पिउ हौं अइस बिसारी। आपहि जारि मिलौं तौ नारी।[3]

भारतीय प्रेमाख्यानो की परम्परा

भारतीय प्रेमाख्यानो की परम्परा अत्यत प्राचीन है। वस्तुत प्रेम एक ऐसी सहज मानवीय प्रवृत्ति है जो मनु और श्रद्धा म भी विद्यमान थी। ऋग्वेद के दशम मण्डल[4] म अप्सरा उवशी की प्रेमकथा का मूल मिलता है। इस उवशी और पुरुरवा

१–प० परशुराम चतुर्वेदी सूफी प्रेमाख्यानक साहित्य, प० २४५–४६ से उद्धत।
२–वही पृ० १–३।
३–चित्ररेखा पृ० १०६–७।
४–ऋग्वेद १०।९५।

के प्रेमाख्यान के विषय में पेंजर ने लिखा है कि अभी तक प्राप्त हुई भारत यूरो-पीय प्रेम-कहानियों में यह सर्वप्रथम प्रेम-कहानी है, बहुत सम्भव है कि समस्त विश्व के प्रेमाख्यानों में भी यह प्राचीनतम समझा जा सके।[1] पुरूरवा और उर्वशी से सम्बद्ध अनेक काव्य नाटक संस्कृत साहित्य में विद्यमान हैं और वे सब इसी मूलकथा के स्फीत-पीन रूप हैं। ऋग्वेद में ही ऋषि श्यवाश्व और मनोरमा[2] की प्रेमकथा भी मिलती है। वैदिक कहानियाँ देवता और मानवी अप्सरा और मानव, ऋषि और राजकन्या के प्रेम से सम्बन्धित हैं।

उपनिषदों में अनेक छोटी-बड़ी प्रेमकथाएँ मिलती हैं। याज्ञवल्क्य और गार्गी सत्यकाम और जाबालि, अहल्या और इन्द्र प्रभृति अनेक सुमधुर कथा प्रसंगों से उपनिषदों के ज्ञान भंडार को मनोमय बनाया गया है। रामायण और महाभारत तो कथाओं के अक्षय भंडार ही बन गए हैं। महाभारत के सम्भव-पर्व में अर्जुन सुभद्रा दुष्यंत शकुंतला भीम हिडिम्बा आदि के प्रेमाख्यान मिलते हैं। कहानियों का एक बृहत और प्राचीन संग्रह गुणाढ्य कृत बृहत्कथा है। इसे उस समय में प्रचलित कहानियों का कोश कहा जाता है।[3] आज यह अपने मूलरूप में उपलब्ध नहीं है तथापि क्षेमेन्द्र, सोमदेव प्रभृति कवियों द्वारा बृहत-कथामंजरी और कथा सरित्सागर के नाम से संस्कृत साहित्य में रूपान्तरित होकर सुरक्षित रह सका है। विक्रमीय शताब्दी के प्रारम्भ के पूर्व सम्भवतः में कुछ ऐसी कथाएँ लिखी जा चुकी थी जिनका पता महाभाष्यकार को था। अधिकृत्य कृते ग्रन्थे सूत्र की व्याख्या में भैमरथी सुमनोत्तरा और वासवदत्ता की प्रेमकथाओं का उल्लेख पतंजलि ने किया है। सुबन्धु की 'वासवदत्ता' की ही भाँति पतंजलि कथित 'वासवदत्ता' भी रही होगी बाणभट्ट की कादम्बरी जन्म जन्मान्तर में चलने वाले प्रेम की चमत्कारपूर्ण गाथा है। कालिदास कृत मेघदूत कुमारसंभव 'अभिज्ञान शाकुन्तल' 'विक्रमोर्वशीयम' प्रेमा ख्यानों के उत्तम उदाहरण हैं। बृहत्कथा बेतालपंचविंशति और पंचतंत्र भी आख्यानों के अक्षय भंडार हैं। इनमें पशु पक्षियों की पात्ररूप में बहुलता है।[4]

पौराणिक प्रेमाख्यानों में पुरूरवा उर्वशी नल दमयंती दुष्यंत शकुंतला

1—एन० एम० पेंजर दी ओशन आफ स्टोरी पृ० २४५

2—ऋग्वेद १०।६१

3—ए० बी० कीथ, क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, (१६२३)

4—डा० हरिकान्त श्रीवास्तव भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० १०

5—विष्णु पुराण अध्याय ६।४, श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अध्याय १४, वायु पुराण अध्याय ६१ ब्रह्मपुराण १०, विष्णुधर्मोत्तर प्रथम खंड १३०६ (भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा से उद्धृत)।

उषा-अनिरुद्ध, श्रीकृष्ण रुक्मिणी, प्रद्युम्न मायावती अर्जुन–सुभद्रा भीम हिडिम्बा प्रभृति कथाओं ने परवर्ती साहित्य को बहुत प्रभावित किया है। स्वयंवर और सुन्दरी हरण इन कथाओं म पाये मिलते हैं। पृथ्वीराज रासो की कथाओं मे इस पौरा–णिकता की छाप द्रष्टव्य है।

बौद्ध जातकों और जैन धर्म की कथाओं मे भी प्रमाख्यानों के दर्शन होते हैं। कट्ठहारिजातक मणिचोर जातक [1] असी जातक कथाओं म भी प्रेम के प्रसग मिलते हैं पर उनमें प्रेमाख्यान वाले अंश गौण हैं उपदेशांश प्रमुख हैं।

थेरी गाथा मे सुभा नाम की एक भिक्षुणी और एक नवयुवक के प्रेम की कथा है। जैनों की कथाओं म प्रमुख नाम के सेठ और वनमाला नाम की स्त्री की प्रेमकथा के साथ ही वज्रमुष्टि और मगी की कथा [2] की भी पर्याप्त चर्चा है। इन जैन चरितकाव्यों म स्त्रियों के बनावटी प्रेम सम्बन्धी विविध प्रसग एवं निवृत्ति मार्ग की बातें ही प्रधान होती हैं।

प्राकृत की बहुचर्चित रयणसेहरी कथा का भी सिंहल और चित्तौड की कथाओं के साथ उल्लेख किया जाता है। संक्षेप म यहा उसकी रूपरेखा दी जा रही है।

रयणसेहरी कहा (रत्नशेखरी कथा)

जयचन्द्रसूरि के शिष्य जिनहर्षगणि [3] इस प्राकृत ग्रंथ के लेखक हैं जो पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त म हुए हैं। इस ग्रंथ की रचना चित्तौड म हुई है। ये संस्कृत और प्राकृत के बड़े भारी पंडित थे। इन्होंने बडी सरस और प्रौढ शैली म इस कथा की रचना की है।

गौतम गणधर भगवान महावीर से पर्वों के फल के सम्बन्ध म प्रश्न करते हैं और उसके उत्तर स्वरूप महावीर राजा रत्नशेखर और रत्नवती की कथा सुनाते हैं।

रत्नशेखर रत्नपुर का राजा था। उसके मन्त्री का नाम मतिसागर था। रत्नशेखर राजकुमारी रत्नवती के रूप की कथा सुनकर व्याकुल हो उठता है।

१–जातक कथा, (द्वितीय खंड) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग पृ० २८५–८

२–प० परशुराम चतुर्वेदी भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा प० ३२–३३

३—आत्मानन्द जैन ग्रंथमाला में सं० १९७४ वि म निर्णयसागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित।

द्रष्टव्य— प्राकृत साहित्य का इतिहास (चौखम्भा)।

मतिसागर ने जोगिनी का वेश धारण करके सिंहलद्वीप[1] की ओर प्रस्थान किया। सिंहल में पहुँचकर उस जोगिनी ने कहा कि कायारूपी नगरी में हंस रूपी राजा रहता है वहीं पवन रूपी नगर-रक्षक है उस नगरी में जोगी बसता है।

तत्पश्चात रत्नवती ने अपने वर की प्राप्ति के विषय में प्रश्न किया। जोगिनी ने उत्तर दिया कि कोई द्यूत क्रीडा रत राजा कामदेव के मन्दिर में तुम्हारा प्रथम दर्शन देगा—वही तुम्हारा पति होगा।

जब मतिसागर ने लौटकर राजा से सभी बातें कहीं तो राजा उसके साथ सिंहलद्वीप की ओर चल पड़ा। अनेक विपत्तियों को पार करने के पश्चात वह वहां पहुँच गया। उसने कामदेव के मन्दिर में मन्त्री के साथ जुआ खेलना शुरू किया।

रत्नवती अपनी सखियों के साथ कामदेव की पूजा करने आई। रत्नवती की सखी ने उन लोगों से कहा कि हमारी स्वामिनी राजकुमारी किसी पुरुष का मुख नहीं देखती, अतः आप लोग हट जायं जिससे वह पूजा कर सकें। मन्त्री ने कहा कि हमारा राजा रत्नशेखर बहुत दूर से आया है वह किसी नारी का मुंह नहीं देखता अतः तुम अपनी स्वामिनी से कहो कि मन्दिर में प्रवेश न करें जिससे हमारे राजा की द्यूत-क्रीडा में विघ्न न आए।

सखी ने राजा के रूप की भूरि भूरि प्रशंसा की। राजकुमारी को जोगिनी की बात याद हो आई। हृदय में पुलकित होकर उसने मन्दिर में प्रवेश किया। इतने में राजा ने वस्त्र से अपना मुंह ढँक लिया। कारण पूछने पर मन्त्री ने कहा कि हमारे राजा किसी स्त्री का मुख नहीं देखते। अन्त में रत्नवती और रत्नशेखर का बड़ी धूमधाम से विवाह होता है। दोनों रत्नपुर लौट आते हैं और वह गज ध्वज के साथ नगर में प्रवेश करते हैं।[2]

एक बार कलिंग देश के राजा ने उसके राज्य पर चढ़ाई कर दी। सामन्तों ने यह समाचार राजा रत्नशेखर से कहा। किन्तु राजा ने अपना आत्म धर्म और पौरुष को प्रधान माना। विजय उसे ही मिली। अन्त में दिखाया गया है कि राजा और रानी धार्मिक प्रवृत्तियों में अपना समय बिताते हैं।

इस कथा में भी सिंहलद्वीप मन्दिर द्यूतक्रीडा युद्ध आदि कथानक रूढ़ियों के प्रयोग द्रष्टव्य हैं।

१—शिव कथाकार का सम्बन्ध (मकथानक रूढ़ि) और गौराबादर हीराचन्द ओझा कृत निबन्ध संग्रह पृ० २८१ (चित्तौड़ से करीब ४० मील पूर्व में सिंगोली नामक स्थान)।

२—मिलाइए पद्मावत और गोरा बादल की बात (जटमल) की कथाओं के साथ।

अपभ्रंश के प्रेमाख्यान

अपभ्रंश की रचनायें विक्रमोर्वशीयम्[1] से ही प्राप्त होने लगती हैं। अपभ्रंश के सिद्ध साहित्य में कण्ह या कण्हपा की रहस्यमयी अनुभूतियों की बड़ी चर्चा है। सिद्धों की कविता में गुरु-महिमा, रूढ़ि-खण्डन, जाति भेद पर प्रहार, सहज क्षण की महिमा का बखान आदि के साथ डोंमिनि, ब्राह्मणी आदि का गुह्य साधना के प्रतीक के रूप में प्रयोग हुआ है। वाममार्गीय पंचमकारों में मैथुन का भी एक प्रमुख स्थान रहा है। उनकी कविताओं में वासनाजन्य साधना की बातें मिल जाती हैं। हेमचन्द्र के सिद्धहेम में उदाहरण रूप में आए हुए दोहों में नारी की दर्पोक्ति सुन्दर ललित शृंगारमूलक अभिव्यक्ति के साथ ही मुंज मृणालवती, कृष्ण राधा से संबद्ध दोहे भी मिलते हैं—ये दोहे निश्चित रूप से किसी प्रचलित कथा के अंश हैं। संयोग और वियोग से संबद्ध दोहे भी बड़े ही मार्मिक हैं। अद्दहमाण कृत संदेश रासक इसी प्रकार का एक विरह-काव्य है। विरह निवेदन के अंतराल में षड्ऋतु वर्णन और विरहिणी के भावों का अत्यन्त मार्मिक किन्तु सहज चित्रण इस काव्य में हुआ है। कुमारपाल प्रतिबोध (१२४१ वि०) नामक चम्पू काव्य में नल, प्रद्योत तारा और रुक्मिणी के प्रेमाख्यान मिलते हैं।[2] जीवमन करण संलाप कथा और मयण पराजय दो छोटे रूपकात्मक खंड काव्य हैं। अपभ्रंश के चरितकाव्यों को प्रेमाख्यानों के ढंग का काव्य कहा जा सकता है। पउमचरिउ, जसहरचरिउ, णय कुमार चरिउ, करकण्डु चरिउ, सनत्कुमार चरिउ, सुपासणाह चरिउ, नेमिनाहचरिउ, भविसयत्त कहा, महापुराण प्रभृति प्रबंध काव्यों में—सबमें—एक प्रेमकथा अवश्य है। इनमें प्रेम का प्रारम्भ रूप गुण श्रवण, चित्रदर्शन, स्वप्न दर्शन आदि में से किसी एक के द्वारा होता है। नायक को नायिका की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील होना पड़ता है। दोनों का विवाह भी हो जाता है। पदमावती और करकण्ड चरिउ के नायकों को सिंहल की यात्रा भी करनी पड़ी है। प्राकृत की रयणसेहरी कथा में भी नायक की सिंहल यात्रा का उल्लेख है। यह अवश्य है कि जैनाचार्यों ने प्रेम की इन मधुर कथाओं में उपदेश और धर्मतत्वों का मिलाकर धर्म कथा बना देने का प्रयत्न किया है। प्रतिनायक, आश्चर्य-तत्व (गंधर्व, मुनि, राक्षस आदि) मंगलाचरण, देश, नगर, प्रासाद आदि के वर्णन, कडवकात्मक छंद योजना, अध्याय या संधि आदि के साथ ही काव्य गुण, अलंकृति आदि की बातें भी इनमें मिल जाती हैं।

१—विक्रमोर्वशीयम् चतुर्थ अंक (मइं जाणिउ मिअ लोअणी। आदि)
२—ज्ञानशिखा लखनऊ विश्वविद्यालय अक्टूबर १९५१ पृ० ८१
(डा० विपिनविहारी त्रिवेदी का लेख)।

स्वयम्भू का रामायण नब्बे संधियों का एक वृहत प्रबन्ध प्रधान महाकाव्य या 'पुराण' है। इसमें आदर्श चरित्र-स्थापन स्वयम्भू का लक्ष्य रहा है। स्त्रियों का सौन्दर्य-वर्णन इस काव्य में अत्यन्त सजीव रूप में हुआ है। राम-सीता की कथा में अलौकिकता के संकेत भी यत्र-तत्र द्रष्टव्य हैं। इन काव्यों का महत्व, छन्द विधान कथा-संघटन, अलंकृति आदि की दृष्टियों से भी है क्योंकि परवर्ती हिन्दी आख्यानक काव्यों में इन्हीं चरित काव्य की परम्परा को बहुलांश में गृहीत किया गया है। कथानक रूढ़ियों के प्रयोग और लौकिक कथाओं में अलौकिकता विधायक तत्वों का समावेश भी इन काव्यों में प्रभूत परिमाण में मिलता है और हिन्दू और मुसलमान प्रेमाख्यान लेखकों की कथाओं पर इनका व्यापक प्रभाव पड़ा है।

— — — —

अध्ययन की सुविधा के लिए हम प्रेमाख्यानों को दो विभागों में बाँट सकते हैं—

(१) शुद्ध भारतीय प्रेमाख्यानों की परम्परा

(२) सूफी प्रेमाख्यानों की परम्परा।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हिन्दी के अनेक सूफी प्रेमाख्यानों में भी भारतीय प्रेमाख्यानों के गुण मिलते हैं और कतिपय सूफी प्रेम गाथाएँ तो मूलतः शुद्ध भारतीय प्रेमगाथाएँ ही हैं और अनेक भारतीय प्रेमाख्यानों में सूफी प्रेमगाथाओं के गुण भी मिलते हैं अतः यह विभाजन मात्र अध्ययन की सुविधा के लिए ही किया गया है।

हिन्दी-साहित्य में प्रेमाख्यानकों का विकास — सन्देश रासक, हम्मीर रासो और बीसलदेव रासो मूलतः प्रेमाख्यान ही हैं प्रोषितपतिका सन्देश विरह निवेदन षड्ऋतु वर्णन प्रभृति तत्व इन काव्यों में मुख्यरूप से मिलते हैं। मध्य युग में हिन्दू प्रेमाख्यानों की यह परम्परा सं० १००० (ढोला मारू रा दूहा) से प्रारम्भ होकर सं० १९१२ (प्रेम पयोनिधि) तक चलती हुई मिलती है। हिन्दी साहित्य में सूफी कवियों के समानान्तर हिन्दू कवियों की प्रेमाख्यान धारा भी सतत प्रवाहित होती रही है। जिस प्रकार मुसलमान कवियों का कथा-साहित्य पौराणिक, काल्पनिक एवं लोक प्रचलित तथा ऐतिहासिक कथाओं पर अवलम्बित मिलता है उसी प्रकार हिन्दुओं ने भी जायसी के पूर्व और उनके पश्चात आख्यानक काव्यों का विपुल साहित्य निर्मित किया है। नलदमयन्ती की कथा, रुक्मिणी मंगल, नल दमन, नल चरित्र, नलदमयन्ती चरित्र, ऊषा की कथा, बलि कृष्ण रुक्मिणी री आदि हिन्दुओं के रचित पौराणिक प्रेमाख्यान मिलते हैं।

लोक प्रचलित और कल्पना प्रसूत कहानियों में प्रमुख हैं प्रेमकथा ढोला मारू रा दूहा, माधवानल कामकन्दला की कहानी, रमणशाह छबीली भटियारी की कथा

कामरूप की कथा मगावती की कथा राजा चित्रमुकुट की कथा मधुमालती चन्दन मलय गिरि वार्ता बात सयाणी चारिणी री आदि आती हैं।

ऐतिहासिक कहानियो म माधवानल काम कदला और रूपमजरी भी रखी जा सकती है[1]। इन भारतीय प्रमाख्यानकों को डा० हरिकात श्रीवास्तव ने तीन भागों (१–शुद्ध प्रेमाख्यान २–आयापदेशिक काव्य और ३–नीति प्रधान प्रेमाख्यान) म विभाजित किया है। इनम स प्राप्य ग्र थो की सूची इस प्रकार है[2] –

(१) शुद्ध प्रेमाख्यान –

(१) ढोला मारू रा दूहा – इसके मूल कवि का नाम ज्ञात नही है। कुशल लाभ नामक कवि ने जसलमेर रावल की आज्ञा से चौपाइयाँ जोडकर इसे ठीक ठाक किया है। इसे एक विकसनशील काव्य कहा जा सकता है। इसका रचनाकाल स० १ ० से १६१८ वि० तक है। अन्य प्र माख्यानो की सूची इस प्रकार है।

ग्रथ–नाम	कवि	रचना काल
(२) वेलि कृष्ण रुक्मिणी री	(महाराजा पृथ्वीराज)	स १६४७ प्रकाशित
(३) रसरतन	पहकर	स १६७५ न प्र सभा से प्रकाशित होने जा रहा है।
(४) छिताईवार्ता	नारायण दास	रचना काल के विषय मे मत भेद प्रकाशित।
(५) माधवानलकामकदला	विरहवारीश बोधाकत	स १८०६ से १५ के मध्य प्रकाशित।
(६)	गणपति	
(७)	दामोदर	स० १७३७ प्रकाशित।
(८)	राजकविशेश (नाटक)	स १७१७ अप्रकाशित।
(६)	—	सस्कत हिंदी मिश्रित।
(१) बीसलदेव रास	नरपतिनाल्ह	स० १२१२ ? (१४वी शती) प्रकाशित।
(११) प्रमविलास प्रमलता कथा	जटमल नाहर	अप्रकाशित।
(१२) चदकुवरि री बात	हस	स० १७४० प्रकाशित।

१–डा० हरिकात श्रीवास्तव भारतीय प्रमाख्यानक काव्य प० ३ –३१।
२–द्रष्टव्य भारतीय प्रमाख्यानक काव्य।

(१३) राजचित्र मुकुट रानी चन्द्रकिरन की कथा		अप्रकाशित।
(१४) उषा की कथा	रामदास	१८९४ अप्रकाशित।
(१५) उषा चरित	मुरलीदास	सं० १८१८, अप्रकाशित।
(१६) उषाहरण	जीवनलाल नागर	सं० १८८६ प्रकाशित।
(१७) उषाचरित	जनकुंज	सं० १८३१ अप्रकाशित।
(१८) रमणशाह छबीली भटियारी की कथा	अज्ञात	सं० १९०५ के पूर्व। प्रकाशित।
(१९) बात समाणी चारिणी री		
(२०) नल दमयन्ती कथा		
(२१) प्रेम पयोनिधि	मर्गेन्द्र	सं० १९१२, अप्रकाशित।
(२२) रुक्मिणी परिणय	महाराज रघुराज सिंह जू देव	सं० १९०७ अप्रकाशित।
(ख) अन्यापदेशिक प्रेमाख्यान —		
(२३) पुहुपावती		सं० १७२६, अप्रकाशित।
(२४) नल चरित	मुकुन्दसिंह	सं० १७६८, अप्रकाशित।
(२५) नल दमन	सूरदास	सं० १७१४ अप्रकाशित।
(२६) नल दमयन्ती चरित	सेवाराम	सं० १८५३ अप्रकाशित।
(२७) लैला मजनूं	सेवाराम ? राम जी सहाय कृत	अज्ञात अप्रकाशित।
(२८) रूपमंजरी	नन्ददास	सं० १६२५ प्रकाशित।
(ग) नीतिप्रधान प्रेमकाव्य —		
(२९) मधुमालती	चतुर्भुजदास कायस्थ	सं० १८३७ अप्रकाशित।
(३०) माधवानल काम कन्दला चौपाई	कुशललाभ	सं० १६१३, अप्रकाशित।
(३१) सत्यवती की कथा	ईश्वरदास	सं० १५५८ प्रकाशित।
अन्य		
(३२) माधवानल आख्यान	आनन्दधर	प्रकाशित।
(३३) माधवानलकाम कन्दला आलम		सं० १६४० अप्रकाशित।

'आलम' का माधवानलकामकन्दला और श्यामसनेही, 'गुलाम मुहम्मद' का प्रेमरसाल सुन्दरकली की सुन्दरकली कहानी दुली कुतुबशाह की कुतुबमुशतरी नुसरती का गुलशने इश्क इब्नेनिशाती का फूलबन, निसार का युसुफ जुलेखा,

कामरूप की कथा, मृगावती की कथा, राजा चित्रमुकुट की कथा, मधुमालती, चन्दन मलय गिरि वार्ता, बात सयाणी चारिणी री आदि आती हैं।

ऐतिहासिक कहानियों में माधवानल कामकन्दला और रूपमंजरी भी रखी जा सकती हैं[1]। इन भारतीय प्रेमाख्यानकों को डा० हरिकान्त श्रीवास्तव ने तीन भागों (१-शुद्ध प्रेमाख्यान २-आध्यात्मोपदेशिक काव्य और ३-नीति प्रधान प्रेमाख्यान) में विभाजित किया है। इनमें से प्राप्य ग्रंथों की सूची इस प्रकार है[2] –

(१) शुद्ध प्रेमाख्यान –

(१) ढोला मारू रा दूहा – इसके मूल कवि का नाम ज्ञात नहीं है। कुशल लाभ नामक कवि ने जैसलमेर रावल की आज्ञा से चौपाइयाँ जोड़कर इसे ठीक ठाक किया है। इसे एक विकसनशील काव्य कहा जा सकता है। इसका रचनाकाल सं० १००० से १६१८ वि० तक है। अन्य प्रेमाख्यानों की सूची इस प्रकार है।

ग्रंथ–नाम	कवि	रचना काल
(२) वेलि क्रिसन रुक्मिणी री	(महाराजा पृथ्वीराज)	सं० १६४७ प्रकाशित
(३) रसरतन	पुहकर	सं० १६७५ ना०प्र० सभा से प्रकाशित होने जा रहा है।
(४) छिताईवार्ता	नारायण दास	रचनाकाल के विषय में मत भेद प्रकाशित।
(५) माधवानलकामकन्दला	विरहवारीश बोधाकृत	सं० १८०६ से १५ के मध्य प्रकाशित।
(६)	गणपति	
(७)	दामोदर	सं० १७३७ प्रकाशित।
(८)	गजकविवेश (नाटक)	सं० १७१७ अप्रकाशित।
(९)	—	संस्कृत हिन्दी मिश्रित।
(१०) बीसलदेव रास	नरपतिनाल्ह	सं० १२१२ ? (१४वीं शती) प्रकाशित।
(११) प्रेमविलास प्रेमलता कथा	जटमल नाहर	अप्रकाशित।
(१२) चंदकुँवरि री बात	हंस	सं० १७४० प्रकाशित।

१—डा० हरिकान्त श्रीवास्तव भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य पृ० ३०–३१।

२—द्रष्टव्य भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य।

(१३) राजाचित्र मुकुट रानी चन्द्रकिरन की कथा — — अप्रकाशित।
(१४) उषा की कथा — रामदास — १८६४, अप्रकाशित।
(१५) उषा चरित — मुरलीदास — स० १८१८, अप्रकाशित।
(१६) उषाहरण — जीवनलाल नागर — स० १८८६ प्रकाशित।
(१७) उषाचरित — जनकुंज — स० १८३१ अप्रकाशित।
(१८) रमणशाह छबीली भटियारी की कथा — अज्ञात — स० १९०४ से पूर्व।
(१९) बात सयाणी चारिणी री — — प्रकाशित।
(२०) नल दमयती कथा — — स० १९१२, अप्रकाशित।
(२१) प्रेम पयोनिधि — मगेंद्र — स० १९०७ अप्रकाशित।
(२२) रुक्मिणी परिणय — महाराज रघुराज सिंह जू देव

(अ) अन्यापदेशिक प्रेमाख्यान —
(२३) पुहुपावती — मुकुन्दसिंह — स० १७२६ अप्रकाशित।
(२४) नल चरित — सूरदास — स० १७६८ अप्रकाशित।
(२५) नल दमन — सेवाराम — स० १७१४ अप्रकाशित।
(२६) नल दमयती चरित — सेवाराम ? राम — स० १८५३ अप्रकाशित।
(२७) लैला मजनू — जी सहाय कृत — अज्ञात अप्रकाशित।
(२८) रूपमंजरी — नन्ददास — स० १६२५ प्रकाशित।
(न) नीतिप्रधान प्रेमकाव्य —
(२९) मधुमालती — चतुर्भुजदास कायस्थ — स० १८३७ अप्रकाशित।
(३०) माधवानलकाम कदला चौपाई — कुशललाभ — स० १६१३, अप्रकाशित।
(३१) सत्यवती की कथा — ईश्वरदास — स० १५५८ प्रकाशित।
अन्य
(३२) माधवानल आख्यानम — आनन्दधर — प्रकाशित।
(३३) माधवानलकाम कदला — आलम — स० १६४० अप्रकाशित।

'आलम का 'माधवानलकामकन्दला और 'श्यामसनेही', गुनाम मुहम्मद का प्रेमरसाल सुन्दरकली की सुन्दरकली कहानी दुली कुतुबशाह की कुतुबमुशतरी, इब्नेनिशाती का फूलबन' निसार का युसुफ जुलेखा, नुसरती का गुलशने इश्क

गवासी का किस्सा सेफुलमुल्क वदी उज्जम तसीनुद्दीन का कामरूप और कला किस्सा फाजिलशाह का प्र मरतन तथा रज्जन का प्रेम जोवन निरञ्जन मुल्ला गाजी बकम का उषा चरित आदि कितने स्वतन्त्र आख्यानक भी मिलते हैं। इनके अतिरिक्त अकेले जान कवि ने रत्नावली नना मजनू नल दमयन्ती पुहुपवरिखा कनकावती छबि सागर मोहनी खिजरखाँ व दवल दे की कहानी कामलता, रूपमञ्जरी छीता कनकावती मधुकर मालती आदि अट्ठारह प्रेम कथाएं लिखी हैं इनमें कुछ सूफी ढंग की हैं और कुछ शुद्ध प्रेमाख्यान है।[1]

शुद्ध भारतीय प्रेमाख्यानों में 'बीसलदेव रासो' बहुचर्चित है। यहां संक्षेप में उसका परिचय दिया जा रहा है। इससे सूफी प्रेमाख्यानों से उसकी तुलना का अनुमान लगाया जा सकेगा।

नरपति नाल्हकृत बीसलदेव रास

(शुद्ध भारतीय प्रेमाख्यानक परम्परा का ग्रन्थ)

महत्व—गीत प्रबन्ध के रूप मे लिखा हुआ बीसलदेव रासो नरपति नाल्ह की रचना है। यह हिंदी का गौरव ग्रन्थ माना जाता रहा है क्योंकि इसमें एक स्वस्थ प्रणय की सुन्दर गाथा कही गई है और सामान्यतः इसके संबन्ध में विश्वास यह रहा है कि यह हिन्दी का सबसे प्राचीन ग्रन्थों में से है। कुछ इतिहासकारों ने तो इसे हिन्दी का सर्वप्रथम ग्रन्थ तक कहा है।[2] पं रामचन्द्र शुक्ल का मत था कि वीर गीत के रूप में हम सबसे पुरानी पुस्तक बीसलदेव रासो मिलती है।[3] इसीलिए उन्होंने इस ग्रन्थ को वीरगाथा काल के द्वितीय ग्रन्थ के रूप में स्थान दिया था। उनका कथन था कि इस ग्रन्थ में न तो उक्त वीर राजा की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है न उसके शौर्य पराक्रम का। श्रृंगार रस की दृष्टि से विवाह और रूठकर विदेश जाने का (प्रोषितपतिका के वर्णन के लिए) मनमाना वर्णन है। इस ग्रन्थ में शृङ्गार की ही प्रधानता है वीर रस का किंचित आभास मात्र है। संयोग और वियोग के गीत कवि ने गाए हैं।[4] इस प्रकार स्पष्ट है कि यह एक शृङ्गार रस प्रधान प्रेम काव्य है न कि वीर गाथा।

हस्तलिखित प्रतियाँ और संपादन—डा० माताप्रसाद गुप्त ने श्री अगरचन्द नाहटा से प्राप्त १६ हस्तलिखित प्रतियों की सहायता से बीसलदेवरास का संपादन

१—डा० हरिकान्त श्रीवास्तव भारतीय प्रेमाख्यानक परम्परा, पृ० ३ ।
२—बीसलदेव रास सं० डा० माताप्रसाद गुप्त भूमिका पृ० १।
३—हिन्दी साहित्य का इतिहास पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ ३२।
४—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ३/।
५—वही पृ० ३७।

किया है।[1] कहा जाता है कि यह काव्य २००० चरणों में समाप्त हुआ है।[2] और कुल मिला कर लगभग पौने पाँच सौ छन्द आते हैं।[3] किन्तु डा० गुप्त ने १२८ छन्दों को ही प्रमाणित माना है। इस संस्करण के पूर्व नागरीप्रचारिणी सभा काशी द्वारा बीसलदेवरासो का प्रकाशन हुआ था। इस संस्करण में कुल चार खण्ड हैं—

सर्ग (खण्ड) १—इसमें ८५ कड़वक हैं। इसका मुख्य प्रतिपाद्य है मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमती से साँभर के बीसलदेव का विवाह होना।

सर्ग (खण्ड) २—इसमें ८६ कड़वक हैं। बीसलदेव का रानी से रूठना और हीरे की खान उड़ीसा देश की ओर प्रस्थान इस सर्ग के विषय हैं।

सर्ग (खण्ड) ३—इसमें १०३ कड़वक हैं। राजमती का विरह और बीसलदेव का उड़ीसा से लौटना इस सर्ग की कथा है। और

सर्ग (खण्ड) ४—इसमें ४२ कड़वक हैं। भोज की अपनी पुत्री का लिया जाना और बीसलदेव का वहाँ जाकर राजमती को चित्तौड़ लाना और राजमती का सुख भोगना इस सर्ग के प्रतिपाद्य हैं। इस प्रकार सभावाले संस्करण में कुल मिला कर ३१६ कड़वक हैं।

छन्द—

यह एक गेय प्रबन्ध काव्य है। १२८ छन्दों में कथा का सुन्दर निर्वाह हुआ है। इसके प्रत्येक छन्द या कड़वक में छः पंक्तियाँ रखी गई हैं कहीं कहीं आठ पंक्तियाँ भी मिल जाती हैं। छन्द मात्रिक हैं। मात्राओं की गिनती ठीक ठीक नहीं है। आरम्भ के दो चरण पद्धरी के जान पड़ते हैं। गीत होने के कारण इसमें कहीं कहीं अतिरिक्त शब्दों का अन्तःपात हो गया है। ऐसे ही मात्रा भी निष्प्रयोजन यथास्थान शेष कर दी गई है। पद्धरी के दो चरणों के अनन्तर कहीं तेरह और कहीं चौदह मात्राओं की टेक और फिर पद्धरी छन्द का एक चरण है जो प्रायः गीत के निर्वाह के कारण अधिक मात्राओं का हो गया है, फिर तेरह या चौदह मात्राओं की टेक और तदनन्तर पद्धरी छन्द का वैसा ही बना हुआ रूप मिलता है।

१—बीसलदेवरास, सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, भूमिका, पृ० ३–१२।
२—हिन्दी साहित्य का इतिहास पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ३४।
३—बीसलदेव रास, डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० ३।
४—वही पृ० ४८।
५—बीसलदेव रास डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद प्रयाग।

कथा—

जसलमेर के भोजराज की राजकुमारी राजमती का विवाह अजमर के बीसलदव से ठीक हुआ। विवाह म बीसनदेव को टोक बूदी, कुडाल मडोवर, सोरठ गुजरात एवम चित्तौर दहेज म दिए गए। एक दिन बीसलदेव ने गवव अपनी प्रशसा की तो राजमती ने कहा कि आप के ऐसे अनेक नरेश हैं। एक तो उडीसा का ही राजा है। आपके देश म साँभर नमक निकलता है और उडीसा मे हीरे की खानें हैं। पूछने पर राजमती ने कहा कि मैं पूव ज म म हरिणी थी और उडीसा के जगलो मे रहती थी। निजला एकादनी-व्रत किया करती थी। एक याघ के बाणो से विद्ध होकर मैं भागी और जगन्नाथ जी के द्वार पर परलोक सिधार गई। जगन्नाथ जी ने प्रसन्न होकर मुझ जसनमेर म ज म धारण करने और पूरव देन म न पदा होने का वरदान दिया।

बीसनदेव ने कहा कि तूने मेरी अश्लाघा की है अत अब मैं प्रयत्न करूगा कि मेरे भी राज्य म हीरे की खान हो जाय। राजा ने राजमती भावज आदि के अननय विनय को तिरस्कत करके ज्योतिषी को बनाया। राजमती के कहने पर ज्योतिषी ने चार महीने बाद की यात्रा का मुहूत निकाला जिसके बदन म राजमती ने उस मुदरी और सोन की सीगोवाली गाय दी। ज्योतिषी के चार महीने की लग्न बताने के बीच म राजमती पति को नाना प्रकार स समझाने का यत्न करती रही कि तु सब व्यथ रहा। राजा ने परदेश की ओर प्रस्थान किया। राजमती उसके विरह म करुणा कातर हो उठी। बारहमासे क द्वारा कवि ने राजमती के विरह का चित्रण किया है। वह विलाप करती है कि हे ईश्वर तूने स्त्री का ज म क्यो दिया। यदि अ य जीव ज तु हुई होती, तो ऐसी स्थिति स तो सुख म ही होती।

एक कुटनी ने उस विचलित करन का प्रयत्न करते हुए कहा—मैं तुम्हार लिए दूसरे प्रिय को खोज देती हू। रोषाविष्ट राजमती ने उसे मार भगाया। राजमती ने पडित को बुलाकर उडीसा की ओर प्रियतम के यहाँ सदेश देकर भेजा और कहा कि जाकर कह देना कि मेरे बाँयें हाथ की मुदरी दाहिनी बाह म आमने लगी है। पडित पत्नी की सूचना लेकर उडीसा की ओर चला। सात महीन के पश्चात वह उडीसा पहुचा। वह अनेक बातें भूल गया था। उसने उडीसा मे कई विचित्र दश्य देखे।

उसने बीसलदव को पत्रिका देकर विरहिणी की दशा स उस अवगत कराने का पूण प्रयत्न किया। उडीसा नरेश की पटटमहादेवी ने उस रोका और कहा कि तुम्हारे चार विवाह करा दू गी। राजा ने एक योगी को राजमती के यहाँ भेजा। योगी ने अजमर म आकर राजमती को राजा की चिटठी दी और कहा कि राजा

आज के तीसरे दिन आ जायेंगे। राजा आया रानी ने थोड़ा मान भी किया और अन्त में वे सुखपूर्वक मिल गए। जसे रानी राजा से मिली, वैसे ही इस संसार में सभी कोई मिलें —

रांणी राया सऊ मिली।
तिम एण ससार मिलिज्यो सहु कोइ॥[1]

ग्रन्थ की रचना तिथि–

बीसलदेव रास की अनेक प्राप्त प्रतिलिपियों में ग्रन्थ की रचना तिथि के सम्बन्ध में अनेक उल्लेख हैं।[2]

(१) संवत सहस सतिहत्तरई जाणि। नल्ह कवी सरि कही अमतबाणि।'
(२) संवत सहस तिहुत्तर जाणि।
(३) संवत तेर सतोत्तरह जाणि। सुक्ल पंचमी न इ श्रावण मास।
(४) बारह स बहोत्तरां मंझारि। जेठ वदी नवमी बुधवारि॥
नाल्ह रसाइण आरम्भइ। सारदा तूठी ब्रह्म कुमारि।
कासमीरा मुख मण्डनी। रास प्रगासी बीसलदे राइ॥

डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि पाठालोचन के सिद्धान्तों के अनुसार इनमें से कोई भी पाठ मान्य नहीं हो सकता। ये रचना तिथि वाले छन्द कई प्रतियों में अलग अलग स्वतन्त्र रूप से प्रक्षेप की भावना से रखे गए ज्ञात होते हैं[3]। गुप्त जी का विचार है कि उपर्युक्त चार पाठों से निम्नलिखित छः तिथियाँ निकली हैं –

(१) सं० १०७७।
(२) सं० १०७३।
(३) सं० १३७७ } तेरसतोतरह से ये दो भिन्न अर्थ लिये जा सकते हैं।
(४) सं० १३०७ }
(५) सं० १२७२ } बारह में बहत्तरां से ये दोनों अर्थ लिए जा सकते हैं।
(६) सं० १२१२ }

डा० गुप्त ने प्रक्षेपों की समस्या के कारण लिखा है कि "इन पाठों के आधार पर ग्रंथ की रचना तिथि निर्धारित करना उचित नहीं जान पड़ता।" महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा[4] ने सं० १२७२ को तिथि को कालिकाद वध

1–बीसलदेवरास सं० डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० १६७।
2–वही पृ० ५१
3–वही पृ० ५१
4–नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४५, (सं० १९९७) पृ० १६३।
5–वही, पृ० ५१

म लेने पर गणना स ठीक बताया था। बीसलदेव रास म तीन ऐतिहासिक नाम आते हैं—बीसलदव राजमती और भोज परमार। बीसलदेव (विग्रहराज) नाम के चार राजा हुए हैं, जिनम से बीसलदेव (ततीय) १२वी शताब्दी विक्रमी म (स० ११५० के लगभग) हुआ है। पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के बीजोल्यां के शिलालेख म दी हुई चौहानो की वशावली म विग्रहराज (ततीय) की रानी का नाम राजदेवी दिया है। हो सकता है कि इसी को कवि ने राजमती कहा हो। किन्तु भोज परमार एक ही हुआ है जिसका समय स० ११११ के आसपास पडता है। इसलिए इस कथा के बीसलदेव से विग्रहराज (ततीय) का ही आशय लेना चाहिए।[1] किन्तु विग्रहराज (ततीय) और भोज के समय न अजमेर ही बसा था, जिसे ११६५ वि के लगभग अजयराज ने बसाया था न आनासागर ही था जिसे अर्णोराज (स० ११९६–१२०७) ने खुदवाया था न जैसलमेर ही था जिसे जैसल ने (ख्यातो के अनुसार) स० १२१२ म बसाया था।[2] इसलिए यह प्रकट है कि यह रचना बारहवी शताब्दी विक्रमी तक की किसी प्रकार नहीं मानी जा सकती।

ओझा जी वार्तिकादि स० १२७२ का गणना स शुद्ध आने के कारण ठीक मानते हुए कहते है कि १२७२ म ग्रन्थ रचना करते समय विग्रहराज (ततीय) का शासन काल १५ वर्ष के लगभग पुराना हो गया। डा० गुप्त का कथन है कि उनका यह विचार ध्यान देने योग्य है और मान्य भी हो सकता है। तथ्य यह ज्ञात होता है कि विग्रहराज (ततीय) की रानी का नाम राजदेवी था। उसी सबध म राजमती नाम स कुछ कहानिया समय पाकर प्रसिद्ध हो गई। फिर भोज परमार आदि से उसे सम्बन्धित कर विग्रहराज (ततीय) ने बहुत दिन बाद किसी नरपति नाल्ह नामक कवि न इस ग्रथ की रचना कर डाली।[3] डा० गुप्त न प्राप्त प्रतियो का पाठ परम्परा के दृष्टिकोण स विचार करते हुए कहा है कि प्राप्त प्राचीनतम प्रतियां स० १६३२ और स० १६६९ की हैं। प्रक्षेपो और प्रतिलिपि परम्पराओ के आधार पर विचार करने के अनन्तर उन्होंने लिखा है कि मेरा अनुमान है कि बीसलदव रास की रचना १४वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक अवश्य हो गई हो होगी।

विशेष–

मूलत बीसलदेव रासा गीत प्रबन्ध रूप म लिखा हुआ विरह काव्य है

१–महामहोपाध्याय गौरीशकर हीराचन्द ओझा नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४५ पृ० १६५–६७।

२–श्री अगरचन्द्र नाहटा राजस्थानी जनवरी १९४० पृ० २२।

३–बीसलदेव रास डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ ५२–५३–५४ स उद्धृत।

इसका मन प्रतिपाद्य विरह ही है। या कवि ने इसे स्त्रीकाव्य और 'अमतकाव्य की भी सज्ञायें दी हैं–(१) वाग वाणी मो वर दिया। अस्त्री रसायण कर्ह वरवाण।[1] (२) अमत रसायण नरपति व्यास।[2]

बीसलदेव रास को हम एक 'प्रणय-कथा' या लोक गाथात्मक काव्य भी कह सकते हैं। यह मूलत लोकगीत है। ग्रामगीतो का साहित्य में जो महत्व स्वीकार किया जाय, वही इसे भी मिल सकता है।[3] इस काव्य म गेय-तत्व पूर्ण मात्रा मे विद्यमान है। गाने की चीज होने के कारण इसकी भाषा म समयानुसार बहुत कुछ फेरफार होता आया है।

इतिहास की दृष्टि से इस काव्य का कोई महत्व नही है, क्योंकि इसम एक कल्पनाशील कवि ने विरह-वणन को प्रतिपाद्य बनाया है। ऐतिहासिक घटनाएँ अनुश्रुतियो के आधार पर दी गई हैं। बीसलदेव का उडीसा जाना और उससे सम्बद्ध समस्त वणन कवि के कल्पना विलास मात्र हैं। बीसलदेव से सौ वर्ष पूर्व भोज परमार का भी देहान्त हो चुका था अत उसकी कन्या के साथ बीसलदेव का विवाह भी पीछे का भट्ट भणत मात्र है। इस काव्य म कवि ने सहज वाणी म विरहिणी की मनोदशा का चित्रण किया है। 'साहित्यिक महत्ता के सब ध म इतना कह सकते हैं कि स्थान स्थान पर कुछ उपमा उत्प्रेक्षाए ऐसी मिल जाती हैं जिसके कारण कभी कभी नाम मात्र को काव्य की झलक आ जाती है अन्यथा इसम उक्ति-भंगिमा का प्राय अभाव है।

यह रचना कालिदास के मेघदूत की लौकिक-परम्परा म दृष्टिगोचर होती है। इसमें बहुत सी बातें यक्ष की स्थिति से मिलती हुई भी पडी हैं।[4] परम्परामुक्त बातें इसम ऐसी रखी गई हैं जो प्रेम की परीक्षा से सम्बद्ध रखने वाली हैं जैसे राजमती के निकट कुटनी का आना और प्रेम के प्रन से विचलित करने का प्रयत्न करना। बीसलदेव के सम्मुख उडीसा की पटटमहादेवी का वैवाहिक प्रस्ताव भी इसी प्रकार का है। इसम कुछ पूरबी भा षा का प्रयोग भी द्रष्टव्य है। जायसी तथा अन्य सूफी कवियो की रचना म प्रयुक्त होने वाला कविलास शब्द स्वर्ग के अर्थ म इसम भी मौजूद है।[5]

१–बीसलदेवरास, ना० प्र० सभा, काशी, प० २–८६।

२–वही प० ३ १०३।

३–हिन्दी साहित्य का अतीत प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ७६।

४–हिंदी साहित्य का अतीत, प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र प० ७६।

५–बीसलदेव रास, डा० माताप्रसाद गुप्त छन्द ६७, (छोडा घर मंदिर कविलास)।

श्री अगर चन्द नाहटा[1] ने इसके भाषा-विषयक दृष्टिकोण को समक्ष रख कर लिखा था इसकी भाषा सोलहवीं-सत्रहवीं शता ी की राजस्थानी भाषा है। जिन विद्वानों ने ग्यारहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक की राजस्थानी भाषा का अध्ययन किया है उनका यह मत हुए बिना नहीं रह सकता कि ग्रन्थ में प्राचीन भाषा का अंश बहुत कम-नहीं के बराबर —है। सोलहवीं शताब्दी में नरपति नाल्ह नाम एक जैन कवि हुए हैं जिनका उल्लेख जैन गुर्जर कविओ भाग १ में हुआ है। असंभव नहीं कि बीसलदेवरास का रचयिता भी वही हो। बीसलदेवरास के डा० माताप्रसाद गुप्त वाले संस्करण के प्रकाशन के साथ विद्वानों ने यह स्वीकार कर लिया है कि इसकी भाषा प्राचीन है और १६वीं शती की राजस्थानी से बहुत पूर्व की है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि बीसलदेवरास एक प्रेम कथा है। यह न तो वीर गाथा है और न सूफी प्रेमगाथा। षड्ऋतु बारहमासा और विरहाभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से इसका महत्व है।

सूफी प्रेमाख्यानक साहित्य

भारतीय सूफी कवियों ने भी अपने प्रेमाख्यानों की सर्जना सोद्देश्यत पहले पहल फारसी भाषा के माध्यम से आरम्भ की थी तथा मसनवी पद्धति को ही अपनाया था। उदाहरण के लिए खुसरो ने ईरान के फारसी कवि निजामी के पंचगंज नामक खम्स (पाँच मसनवियों का संग्रह) के जवाब में एक अपना भी खम्स तैयार किया था जिसकी शीरीं खुसरू एवं मजनूं लैला नामक दो मसनवियों का संबंध प्रसिद्ध प्रेम कहानियों से था। उसने इसी प्रकार एक तीसरी भी मसनवी दुवलरानी खिज्र खाँ के नाम से प्रस्तुत किसी ऐतिहासिक प्रेम-व्यापार का आधार लेकर लिखी थी जिस कदाचित् सूफी प्रेमाख्यान का नाम नहीं दिया जा सकता और न जिसे ऐतिहासिक दृष्टि से भी वैसा महत्व प्रदान किया जा सकता है। उसकी प्रेम कहानी निरी कल्पित और मनगढंत है क्योंकि तथ्य है कि बहुत से इतिहासज्ञों के मत से खुसरो द्वारा निर्दिष्ट समय में कोई देवल रानी जैसी प्रसिद्ध राजपूत बाला ही नहीं थी।[2]

खुसरो की इस काल्पनिक और मनगढंत पद्धति का अनुसरण कई सूफी कवियों ने भी किया। भाषा के लिए कुछ ने अवधी को गृहीत किया और कुछ ने दक्खिनी हिन्दी को फारसी मसनवी काव्यों का रूप उनके समक्ष था ही दोहा चौपाइयों के प्रयोग का आदर्श अपभ्रंश की प्रबंध रचनाओं ने बहुत पहले से ही प्रस्तुत कर

१—राजस्थानी जनवरी १९४० पृ० ९१।
२—प्रो० के० आर० कानूनगो ए क्रिटिकल एनालिसिस आफ दी पदिमनी लीजेंड माडन रिव्यू नवम्बर १९२६ पृ० ३६१–८ और विशेषतया पृ० ३६५ की पाद, टिप्पणियाँ पृ० परशुराम चतुर्वेदी सूफी प्रेमाख्यानक साहित्य, पृ० २४९।

रखा था – और फिर तो लोक प्रचलित कहानियों में अपने प्रेम पीर का पुट देकर सूफी कवियों ने प्रेमाख्यानकों की रचनायें प्रारम्भ कर दी।

सूफी प्रेमाख्यान प्रायः भारतवर्ष की अनेक आधुनिक भाषाओं में लिखे गए हैं। प्रेमाख्यानों की रचना करते समय हम इन भारतीय कवियों को इसी कारण ईस्वी सन की चौदहवीं शताब्दी से दो भिन्न भिन्न मार्गों को अपनाते हैं। इनमें से एक जिसके अनुसार अवधी को प्रधानता दी जाती है और जिसके लिये दोहा चौपाई जैसे छन्दों का प्रयोग होता है, भारतीय भावना एवं भारतीय संस्कृति से अधिक सम्पर्क रखता हुआ चलता है तथा उसकी पद्धति पर निर्मित रचनाओं को पीछे हिन्दी साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग भी समझ लिया जाता है किन्तु दूसरा जो प्रधानतः हिन्दी के तत्कालीन दक्नी उर्दू (दक्खिनी हिन्दी) को अपनाकर आगे बढ़ता है और जिसके लिए फारसी बहरों का भी प्रयोग किया जाने लगा है न अधिकतर ईरानी वा शामी परम्परा की ही ओर उन्मुख रहना पसन्द करता है तथा उसकी शैली में रचित प्रेमाख्यानों का झुकाव परवर्ती उर्दू साहित्य की दिशा में हो जाता है। इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी अथवा दक्नी उर्दू (दक्खिनी हिन्दी) कही जाने वाली भाषा मूलतः उत्तर की खड़ी बोली हिन्दी का ही एक रूप उद्धृत करती है और फारसी एवं अवधी से अधिक प्रभावित होती हुई भी उनकी रचना उतनी विलक्षण नहीं प्रतीत होती किन्तु इसके साथ ही इतना और भी कह दिया जा सकता है कि सूफी कवियों एवं लेखकों ने इन रचनाओं के ही कारण यह पीछे क्रमशः अपना रंग रूप बदलती भी दीख पड़ी, तथा अन्त में उसे उर्दू का वर्तमान वेश मिल गया। जब तक ऐसे साहित्य की रचना का प्रभाव दक्षिण के बीजापुर एवं गोलकुण्डा वाले राज्यों तक सीमित रहा ऐसा अन्तर उतना स्पष्ट न हो सका था, किन्तु पीछे दिल्ली जैसे नगरों के भी साथ सम्बन्ध दृढ़ हो जाने पर उसके आमूल परिवर्तित हो जाने तक का समय आ गया। इस कारण ईस्वी सन की सत्रहवीं शताब्दी तक रचे गए सूफी प्रेमाख्यानों का न्यूनाधिक समावेश यदि हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत भी कर लिया जाय तो उतना अनुचित नहीं कहा जा सकता।[1] इस समय तक दक्षिण में मसनवी रचनाओं का निर्माण प्रचुर मात्रा में हो गया था और दक्नी निज़ामी ने 'कदमराव व पदम' (सन १४८०—९२ ई०), शाह हुसनी ने 'बशीरतुल अनवर' (सन १५९३) गवासी ने सफुलमुलूक व बदीउज्जमाल (सन १६२६ ई०), मुल्लावजही ने सबरस (सन १६३६ ई०) मुकीमी ने चन्दर बदन व माहियार (सन १६४० ई०)

१–प० परशुराम चतुर्वेदी (सूफी प्रेमाख्यानक साहित्य) हिन्दी साहित्य, भाग १ पृ० २८।

नुसरती ने गुलशने इश्क (सन १५५७ ई०), तबई ने किस्सा बहराम वो गुल अन्दाज' (१६६० ई०), गुनामअली ने 'पदुमावत (१६६६ ई०) तथा 'हाशिमी ने यूसुफओ जुलेखा (१६८० ई०) जैसे प्रसिद्ध प्रमाख्याना को उक्त प्रथम शैली में प्रस्तुत कर दिया था। अवधी भाषा और दोहे चौपाई वाली पद्धति को गृहीत करके सवप्रथम किस सूफी कवि ने अवधी रचना प्रस्तुत की यह ज्ञात नहीं है। यह अवश्य है कि अभी तक ज्ञात रचनाओं के आधार पर मौलाना दाऊद दलमई के प्रेमाख्यान 'चन्दायन से ही हिन्दी सूफी प्रमाख्यानक परम्परा का आरम्भ माना जाता है।

अप्राप्त प्रेमगाथाएँ

विद्वानों का विचार है कि चन्दायन के अनन्तर जिन सूफी प्रमगाथाओं की रचना हुई उनकी सख्या बडी जान पडती है किन्तु अभी तक उनमें से बहुत कम उपलब्ध हैं और कई एक का तो आजतक साधारण उल्लेख मात्र मिला है। साधारण उल्लेख या परिचय प्राप्त ऐसी प्रेमगाथाओं में शेखरिजकल्ला मुश्ताकी (स० १५४६ १६३८) की रचना प्रेम जीव निरञ्जन की चर्चा की जाती है और कहा जाता है कि वह सूफी मत का था हिन्दुई में बडी योग्यता रखता था और उसका उपनाम रञ्जन था। इसी प्रकार किसी राधा ग्यानदीप एव रानी दवजानी की प्रेमगाथा का ज्ञानदीप नाम स लिखने वाला दासपुर (जौनपुर) का निवासी शख नबी भी इस ढग का सूफी कवि बतलाया जाता है (देखिए आगे पृ० ५७७)। उसका समय १६७६ अनुमान किया जाता है। बादशाह औरगजेब के शासन काल सं० १७१५–१७६४ के अतगत वतमान किसी पेमी नामक कवि की रचना पेम परकाश को भी इसी श्रणी की कहानी समझा गया है और बतलाया गया है कि वह केवल ६०—६५ पृष्ठों में ही लिखी जान पडती है। मुहम्मद अफजल की रचना बारहमासा उफ विकट कहानी (स १६४८) तथा फाजिल शाह द्वारा लिखी हुई नूरशाह एव माहे मुनीर की प्रमकथा प्रम रतन (स० १६०५) के सम्बन्ध में भी अनुमान किया जाता है कि व सूफी प्रेमगाथाए रही होगी, किन्तु इस बात के लिए कोई प्रमाण नहीं है।[१]

हिन्दी के कतिपय उपलब्ध सूफी प्रेमाख्यानों की सूची

(१) मुल्ला दाऊद[२] चन्दायन ७८१ हि० (१३७९ ई०) अप्रकाशित[३]

१–सूफी काव्य सग्रह प० परशुराम चतुर्वेदी पृ० ६३—६४।
२–यह ग्रन्थ डा० परमेश्वरीलाल गुप्त द्वारा सम्पादित।
३–द्रष्टव्य डा० विश्वनाथ और डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित 'चन्दायन क० म० मुन्शी भाषा विज्ञान विद्यापीठ आगरा।

(२) शेख कुतवन	मगावती	९०९ हि० (१५०३ ई०)	अप्रकाशित
(३) मालिक मुहम्मद जायसी	पदमावत	९४७ हि० (१५४० ई०)	अप्रकाशित
	चित्ररेखा	अज्ञात	
(४) मंझन	मधुमालती	९५२ हि० (१६१३ ई०)	प्रकाशित
(५) शेख उसमान	चित्रावली	१०२२ हि० (१६१३ ई०)	
(६) जान	कनकावती	स० १६७५ (१६१८ ई०)	अप्रकाशित
(७) शेखनबी	ज्ञानदीप	१०२६ हि० (१६१९ ई०)	,
(८) जान	कामलता	१६७८ स० (१६२१ ई०)	,
(९)	मधुकर मालती	स० १६९१ (१६३४ ई०)	,
(१०)	रतनावली	स० १६९१ (१६३४ ई०)	
(११)	छीता	स० १६९३ (१६३६ ई०)	
(१२) हुसेन अली	पुहुपावती	११३८ हि० (१७२५ ई०)	
(१३) कासिम शाह	हंसजवाहर	११४९ हि० (१७३६ ई०)	प्रकाशित
(१४) नूरमुहम्मद	इन्द्रावती	११४७ हि० (१७४४ ई०)	
(१५)	अनुराग बाँसुरी	११७८ हि० (१७४४ ई०)	
(१६) शेख निसार	यूसुफ जुलेखा	१२०५ हि० (१७९० ई०)	अप्रकाशित
(१७) ख्वाजाअहमद	नूरजहाँ	१३१२ हि० (१९०५ ई०)	
(१८) शेख रहीम	भाषा प्रेमरस	१९१५ ई०	प्रकाशित
(१९) कवि नसीर	प्रेम दर्पण	१३३५ हि० (१९१७ ई०)	प्रकाशित
(२०) अली मुराद	कथा कुँवरावत	अज्ञात	अप्रकाशित

चन्दायन (१३७९ ई० या ७८१ हि०)

सूफी प्रेमाख्यानों की शैली में रखी जाने योग्य सर्वप्रथम रचना मुल्ला दाऊद कृत 'चन्दायन' ही है। इस ग्रन्थ की एक खण्डित प्रति बिहार के मनेरशरीफ खान काह से प्रो० हसन अस्करी को प्राप्त हुई है।[1] इस प्रति की प्राप्ति के पहले हिन्दी के शोधियों ने चन्दायन चन्दावत[2] आदि अनेक नामों की कल्पनायें की थीं। चन्दायन के रचना-काल के विषय में भी अनेक अटकलबाजियाँ की गई हैं —

१—जे० बी० आर० एस० प्रो० हसनअस्करी का लेख १९५३ रेयर फ्रेगमेण्ट आफ चन्दायन एण्ड मृगावती पृ० ७—८।

२—डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १३१। डा० विमलकुमार जैन, सूफी मत और हिन्दी साहित्य, पृ० ११२।

(क) मिश्र बन्धुओं के अनुसार स० १ ८६ (१३२८ ई०) ।[1]
(ख) डा पीताम्बरदत्त बडथ्वाल स० १४६७ (१४४० ई०) ।[2]
(ग) डा० रामकुमार वर्मा कदावत[3] चदावत, चन्दावन स० १३७५ ।
(घ) प० परशुराम चतुर्वेदी स० १४३६ (१३७६) ।
(ङ) स १३७५ ।
(च) डा० कमलकुल श्रेष्ठ १३७० ई ।

वस्तुत चन्दायन का रचनाकाल ७८१ हि (१३७९ ई०) है। मुल्ला दाऊद ने स्वयम लिखा है —

वरिस सात से होइ इक्यासी । तिहिं जाह कवि सरसेउ भासी ॥
साहि फिरोज दिल्ली सुल्तानू । जोनासाहि जजीरु बखानू ॥
दलमउ नगर बस नवरगा । ऊपर कोट तरे बहै गगा ॥
धरमी लोग बस भगवन्ता । गुण गाहक नागर जसवन्ता ॥
मलिक बयां पुन उधरन धीरू । मलिक मुबारक तहाँ कम मीरू ॥[4]

इस प्रकार स्पष्ट है कि वे रायबरेली के अन्तर्गत डलमऊ नगर के रहने वाले थे। डलमऊ के प्रसग म अवध गजेटियर म लिखा है कि फिरोजशाह तुगलक ने यहा मुस्लिम धर्म और विद्या के अध्ययन के लिए एक विद्यालय की स्थापना की थी। इसकी महत्ता इसी बात से स्पष्ट है कि डलमऊ के मुल्ला दाऊद नामक कवि ने ७१९ हि (१२५५ ई०) म भाषा मे चन्द्रनी नामक ग्रथ का सम्पादन किया था।[6] इस वर्णन से इतना सूचित है कि डलमऊ के मुल्ला दाऊद ने चन्द्रनी गाथा के आधार पर ग्रथ सम्पादित किया था। चन्दायन के आधार पर आज यह बात प्रमाणित है कि इसका रचना काल १२५५ ई० नही बल्कि १३७९ ई० है। इस सूचना की दूसरी महत्ता यह है कि दाऊद के ग्रन्थ का आधार लोक प्रचलित चननी चन्द्रनी या लोरिक चदा की कथा ही है। मुल्ला दाऊद की ही तरह प्राय सभी सूफी कवियो ने लोक प्रचलित कथाओ को ही अपनी अभिव्यक्ति के लिए माध्यम रूप म गृहीत किया है। विद्वानो का ध्यान इस गजेटियर की सूचना की ओर नही गया था। इसलिए लोग शुक्ल जी के ही अनुकरण पर कुतबुन

१–मिश्रबन्धु विनोद स० १९७०, भाग १ पृ २४१ ।
२–डा० बडथ्वाल दी निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री पृ० १० ।
३–डा रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ ६३ ।
डा० वर्मा ने १३४३ स १३७३ वि के बीच चन्दायन का रचनाकाल माना है ।
४–सूफी काव्यसग्रह पृ० ६३ ई० ।
५–चन्दायन ।
६–गजेटियर आफ प्राविंस आफ अवध भाग १ (१८५८ ई०) पृ० ३५५ ।

से ही सूफी प्रेमाख्यानक परम्परा का प्रारम्भ मानते रहे क्योंकि शुक्ल जी ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'[1] और 'जायसी ग्रन्थावली'[2] में ही सूफी परम्परा का प्रथम प्रेम काव्य स्वीकार किया है।

'चन्दायन' के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि मौलाना दाऊद ने इसके प्रारम्भ में मसनवी परंपरा पर ईश्वर स्तुति, शाहेवक्त की प्रशंसा, रचनाकार का निर्देश आदि किया है। जायसी ने भी ऐसा ही किया है और इन दोनों के मूल में मसनवी पद्धति और अपभ्रंश के चरित काव्यों की शैली का मंगलाचरण ही है। मुल्लादाऊद ने चन्दा के सौंदर्य का उल्लसित वर्णन किया है और जायसी ने भी 'पदमावती' का रूप-वर्णन विलसित भाव से किया है। चन्दा और लोरिक का मिलन शिव मंदिर में होता है और पद्मावती-रत्नसेन का भी। दोनों काव्यों में भारतीय कथानक रूढ़ियों और कथा चमत्कारों की योजना मिलती है। लोरिक' का भाग जाना, लोरिक और चन्दा के मार्ग में अनेक बाधाओं का आना, चन्दा को साँप का डसना, गारुडी का आकर जीवित करना, जुआ में चन्दा तक को हार जाना आदि में 'नल कथा' का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत है। इसकी भाषा ठेठ अवधी है, पर है बड़ी शुद्ध। कहीं कहीं अत्यन्त सुन्दर भाषा के भी चारु प्रयोग हुए हैं जैसे—

धरमी लोग बस भगवन्ता। गुन गाहक नागर जगवन्ता।

चन्दायन की एक सचित्र प्रति रीलैण्ड लाइब्रेरी मनचेस्टर में प्राप्त हुई है। इसमें कुल ३२६ पृष्ठ हैं। यह फारसी अक्षरों में सुरक्षित प्रति है। इसके चित्र बड़े जीवन्त हैं।[3] इसकी एक हस्तलिखित प्रति लाहौर के संग्रहालय में थी। भारत पाकिस्तान विभाजन के बाद पटियाला के संग्रहालय में इसकी दस सचित्र प्लेटें रह गई हैं शेष १४ पृष्ठ लाहौर संग्रहालय को दे दी गई हैं।[4] बीकानेर के श्री पुरुषोत्तम शर्मा के पास लगभग १६२ पृष्ठों की एक खंडित प्रति है।[5] मनेरशरीफ खानकाह की प्रति भी खंडित है।[6] इन सब प्रतियों की माइक्रोफिल्म कापी या फोटोस्टेट प्रतियाँ डा० परमेश्वरी लाल गुप्त ने प्राप्त करली है।

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास का इतिहास पृ० ८१।
२—पं० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली भूमिका पृ० ३।
३—इस प्रति की माइक्रोफिल्म डा० परमेश्वरी गुप्त ने मगाई है।
४—पटियाला संग्रहालय के दस प्लेटस।
५—हिन्दुस्तानी, भाग १५ पृ० १७।
६—रेयर फ्रैगमेंटस आफ चन्दायन एण्ड मृगावती प्रो० अस्करी।

इस ग्रन्थ के विषय म अलबदायूनी ने लिखा है कि मुल्ला दाउद ने चन्दायन नामक एक हिन्दी मसनवी जौनाशाह के सम्मान म लिखी है इसम लोरिक वा नूरक और चन्दा की प्रेम कथा बडी सजीव शली म दी गई है। मखदूम शेख तकीउद्दीन वायज रब्बानी मुल्ला दाऊद की इस पुस्तक की कुछ कविताए पढा करते थे। जनता उनसे बडी प्रभावित थी। इस बार शेख स कुछ लोगो ने पूछा कि आपने इस हिन्दी मसनवी को ही क्यो चुना है इस पर शेख ने उत्तर दिया कि यह सम्पूर्ण आख्यान ईश्वरीय सत्य है। पढने म मनोरजक है प्रमियो को आनन्द भरे चिन्तन की सामग्री देने वाला है कुरान की कुछ आयतो का उपदेश देने वाला है और हिन्दुस्तानी गायको और भाटो के गीत जसा है। जनता म इस गाने से उसके हृदय पर बडा गहरा प्रभाव पडता है।[1]

प० परशुराम चतुर्वेदी का कथन है कि यह रचना अपने वास्तविक रूप मे उपलब्ध नही है किन्तु यदि लोरिक नूरक लोरिक हो तो इसकी कथा प्रसिद्ध लोरिक और चन्दा की भी हो सकती है।[2]

चतुर्वेदी जी का अनुमान सत्य है और इगनड वाली प्रति एवम मनेरशरीफ खानकाह वाली खडित प्रति म बीर लोरिक और चन्दा की ही कहानी वर्णित है।

चन्दायन का कथा-सार

गोवर नगर के महर राजा सहदेव के चौरासी रानिया थी। पट्टमहादेवी फूलारानी के बहुत दिनो क पश्चात एक कन्या हुई और उसका नाम चन्दा रखा गया चार वर्ष की अवस्था होने पर उसका विवाह बावन बीर नामक व्यक्ति स कर दिया गया। बारह वर्ष की युवती होने पर ससुराल गई। वहाँ उस पति की आवश्यकता की कमी ज्ञात हुई। वह असतुष्ट रहने लगी। एक दिन सास से झगडा कर वह मायके लौट आई। वहाँ उसने अपनी सखी सहेलियो से अपना कष्ट कहा—

एक दिन चाँद अपने महल की अटारी पर खडी थी। उधर से भिक्षा मागता हुआ एक बाजिर निकला। उसकी दृष्टि अटारी पर गई और वह चाँद के सौन्दर्य को देखकर मूर्छित हो उठा। प्रेमशर से विद्ध वह बाजिर विरह के गीत गाता राजापुर के रामचन्द के राज्य म पहुचा। राव रूपचन्द उससे चाँद के नखशिख का वर्णन

१—जाज एस ए रकिंग मतखबुत्तवारीख (अल्बदायूनीकृत) १८९७ ई० कलकत्ता प० ३३३।

२—ना प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६४ प० ४२, भारतीय प्रमाख्यानक परपरा प० ८६ से उद्धत।

सुनकर उस पर आसक्त हो गया और गोबर पर आक्रमण कर दिया। गोबर नरेश सहदेव के साथ युद्ध हुआ। युद्ध में अपने प्रमुख वीरों को मारे जाते देख सहदेव ने निकट ही रहने वाले एक वीर लोरिक को सहायता के लिए बुलाया। वीर लोरिक ने आकर राव रूपचन्द के वीरों को तहस-नहस कर डाला।

लोरिक की वीरता देखकर चाँद उस पर मोहित हो गई और उसने अपने मन की बात अपनी सखी बिरसपति से कहा, और लोरिक को देखने की इच्छा प्रकट की। बिरसपति ने इसके लिए एक उपाय बताया। उसके अनुसार चाँद ने अपने पिता से विजय की खुशी में समस्त नागरिकों को भोज देने को कहा। तदनुसार भोज का आयोजन हुआ और उस भोज में लोरिक भी आया। चाँद और लोरिक ने एक दूसरे को देखा। वे एक दूसरे पर मुग्ध हो गए। फलतः बिरसपति के माध्यम से उन दोनों का एक शिव मंदिर में मिलन हुआ और अनुराग प्रगाढ़ होने लगा। फिर गुप्त रूप से लोरिक चाँद के महल में भी आने-जाने लगा।

लोरिक और चाँद के गुप्त प्रेम की बात लोरिक की पत्नी मैना को ज्ञात हुई। वह अत्यन्त क्रुद्ध हुई और बसंत पूजन के अवसर पर जब उसकी भेंट चाँद से हुई तो उसने उसे खूब भरी खोटी सुनाईं। निदान दोनों के बीच विवाद बढ़ गया और हाथापाई होने लगी। उस दिन की घटना के बाद चाँद और लोरिक दोनों को अपने प्रेम-व्यापार के प्रकट हो जाने की आशंका हुई। दोनों ने सलाह कर एक दिन अपना नगर छोड़ दिया।

चाँद और लोरिक के भाग जाने की खबर जब उसके पति बावनवीर को ज्ञात हुई तो उसने उनका पीछा किया लोरिक का उसके साथ युद्ध हुआ और बावन घायल हो गया। उसे घायल छोड़कर लोरी और चन्दा आगे चल पड़े। मार्ग में उनके रास्ते में अनेक बाधाएं आईं। एक दिन जब वे दोनों एक पेड़ के नीचे सो रहे थे चाँद को साँप ने डस लिया। जब लोरिक जगा तो वह अत्यन्त दुखी हुआ और करुण विलाप करने लगा। तब गारुड़ी ने आकर चाँद को जीवित किया। आगे बढ़ने पर एक जुआरी के चक्कर में आकर लोरिक जुआ खेलने लगा और दाव में अपना सब कुछ यहाँ तक कि चाँद को भी हार गया। चाँद अपनी बुद्धि चातुरी से उस जुआरी के पंजे से बच निकली और तब लोरिक उस जुआरी को मार कर आगे बढ़ा। इस तरह अनेक विघ्न बाधाओं को पार करते दोनों हरदी जा पहुँचे और वहां सुखपूर्वक रहने लगे।

इधर लोरिक के चले जाने पर मैना दुखी रहने लगी और एक वर्ष तक प्रतीक्षा करने पर भी जब लोरिक लौट कर गोबर न आया तो उसने व्यापार के लिए जाते हुए सिरजन नामक व्यापारी से अपनी कष्ट कथा लोरिक तक पहुँचाने

का अनुरोध किया। तदनुसार सिरजन ने लोरिक से सब हाल जाकर कहा। मना का हाल सुन कर चाँद के विरोध करने पर भी लोरिक गोवर के लिए चल पड़ा और शीघ्र घर जा पहुँचा।

आरम्भ

पहल गाऊँ सिरजनहारू
जिन सिरज्या यह देवस बयारू ॥
सिरजसि धरती और अकासू
सिरजसि मेहु मदर कविलासू ॥
सिरजसि चाँद सुरुज उजियारा
सिरजा सरग नरक कय मारा ॥
सिरजस छाह सीत औ धूपा
सिरजस किरतन (?) और सरूपा ॥
सिरजसि मघ पवन अधकारा
सिरजसि बीजु करे चमकारा ॥
जाकर सभ पिरिथिमी सिरजन कह्यो एक स गावि।
हिय धवर मन हुलस दूसर चित न समावि ॥

साधनकृत मैनासत (असूफी प्रमाख्यान)

यह ग्रंथ कब रचा गया और साधन कौन थे इस संबंध में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका। किंतु प्रिंस आव वेल्स म्यूजियम तथा नेशनल म्यूजियम में इसके जो सचित्र पृष्ठ हैं उनके चित्रों का समय कलामर्मज्ञ १५४ ई० के आसपास आँकते हैं। इसकी ख्याति के देखते हुए यह अनुमान गलत न होगा कि उसकी रचना पंद्रहवीं शती में अथवा उससे पूर्व ही हुई होगी। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इसकी रचना काल सं० १६२४ (१६६७) विक्रमी के पूर्व माना है।

इसकी कथा एक प्रकार से चन्दायन की उप कथा है। इसमें कहा गया है कि जब लोरिक चंदा को लेकर भाग गया तो उसकी पत्नी मलिन रहने लगी। एक दिन सातन नामक किसी कामुक राजकुमार ने उसे देख लिया और उसे फुसलाने के लिए एक कुटनी मालिन को [illegible] किया। वह अपने को मना की बचपन की धाय बता कर मना के यहाँ [illegible] लगी और उसे फुसलाने की चेष्टा करने [illegible] प्रत्येक मास के [illegible] उपस्थित करती और पुरुष प्रसंग के

[illegible] से प्रा[illegible] कथा दी [illegible]

लिए प्र गित करती। मना उसका प्रतिवार यह करके कहती कि पति के अतिरित उसके लिए अन्य कोई अपेक्षित नही है। इस प्रकार कवि ने बारह महीनो का कुट्टनी मना संवाद के रूप म वणन किया है। वष समाप्त होने पर मना कुटनी को निकाल बाहर किया करती है।

इसका साधन वृत्त जो रूप है उसम सूफी तत्व स्पष्ट परिलक्षित नहीं हैं। लक्षण रूप म उसे ग्रहण किया जा सकता है। जहाँगीर के शासनकाल में एक फारसी कवि हमीदी ने असमत-नामा नाम से इसी कहानी को लिखा है जिसम चाद के मर जाने पर लोरक के मैना के पास वापस आने का उल्लेख करते हुए कथा की तात्विक व्याख्या की गई है। इसमे चाद के प्रम को मायावी और मना के प्रेम को असली बताते हुए कहा गया है कि सारिक की तरह मनुष्य असली प्रेम तत्व को छोड़कर मायावी प्रेम की ओर जाता है पर तत्व ज्ञात होने पर पुन असली प्रेम की ओर लौट आता है। सातन कुवर के सत को डिगाने वाला शतान बताया गया है। इस कृति में कवि ने बार-बार मना के सतीत्व की ही महिमा का गान किया है। 'मनासत पहल लोर कहा के एक प्रसग के रूप मे रचा गया था। जिसका प्राचीनतम रूप उसके लोरकहा पाठ मे मिलता है। उसके बाद किसी समय इस प्रसग को अलग कर स्वतन्त्र रचना के रूप मे प्रकाशित किया गया और कदाचित उसी समय उसम वन्दनादि की पक्तियाँ रख दी गई।'[1]

सभवत इसी फारसी रूप को नुसरती ने अपनी दक्खिनी हिन्दी के मसनवी म अपनाया है।

विशय—

श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने माधनकृत मनासत को प्रकाशित किया है। उनके अनुसार यह ग्रथ १४८० के पश्चात और १५०० ई० के पुव लिखा गया है।[2]

२—मृगावती

कुतबन ने ६०६ हि० (१५०३-४ ई०) म मृगावती की रचना की है। मसनवी पद्धति का अनुसरण करते हुए उन्होने ईश्वर स्तुति मुहम्मद स्तवन आदि के अनन्तर 'शाहे-वक्त' का वणन किया है—

साह हुसन अहै बड राजा। छत्र सिंहासन उन कहँ छाजा॥
पण्डित औ बुधवत सयाना। पढ़ पुरान अरथ सब जाना॥
* * *

१—भारतीय साहित्य, डा० माताप्रसाद गुप्त सन १९५९

२—मनासत, स० हरिहर निवास द्विवेदी पृ० ८९

दान देइ औ गनता आव । बलि औ क्स न सरवरि पावे ।
राज जहाँ नौ मघव रहही । सवा वरहि वार सब चहटो ॥
इट्के राज यह रे हम कहे । नो स नो जा सवत अहे ॥

इस हुसेनशाह के विषय म वडा मतभेद है। शुक्ल जी का कथन है कि य चिश्ती वश के शेख वरहान के शिष्य थे। और जौनपुर के बादशाह हुसेनशाह के आश्रित थे।[1] शुक्ल जी ने जायसी-ग्रथावली म इस मत का सशोधन करते हुए लिखा या कि पूरव म बगाल के शासक हुसनशाह शर्की के अनुरोध स जिसने सत्यपीर की कथा चलाई थी कुतबन मियाँ एक ऐसी कहानी लेकर जनता के समक्ष आए जिसके द्वारा उन्होने मुसलमान होते हुए भी अपने मनुष्य होने का परिचय दिया।[2] हुसेनशाह के नाम से उस समय दो शासक थ। जिनम से एक हुसेनशाह शर्की जौनपुर का शासन करता था। और दूसरा उसी प्रकार बगाल मे राज्य करता था। पहले को बहलोल खा लोदी ने सन १४८८ ई म हटा दिया और फिर वह अपने यहाँ से भाग कर बगाल वाले हुसेनशाह की शरण म रहने लगा। उसकी मत्यु भी हि० सन ९०५ (१४९९ ई) मे ही हो गई जो मृगावती के रचनाकाल सन १५०४ ई० से चार साल पहले पड़ता है।[3] फिरिश्ता और स्मिथ ने[4] भी लिखा है कि ९०१ हि० म सिकन्दर लोदी ने उस परास्त कर दिया और वह भाग कर हुसेनशाह शर्की के यहाँ बगाल म गया और वही उसकी मत्यु ९ ५ हिजरी म हुई। इस घटना का उल्लेख इस्लामी बागला साहित्य म भी हुआ है। कवि कुतबन जौनपुर क अनुचर थे। उन्ही के साथ कवि बगाल म चला आया था और सुल्तान हुसेनशाह शर्की के यहाँ रहा। मृगावती का य ९ ९ हि० म वही गौड देश मे लिखा गया।[5] प्रा० अस्करी के अनुसार हुसेनशाह शर्की ९१ हि तक जीवित रहा। यो उसके ९१० हि तक सिक्के भी चलते रहे हैं। अस्करी साहब का मत शाह शर्की ने ९१० हि तक चलने वाले सिक्को के कारण प्रबल है पर प्राय इतिहासकार यह मानते हैं कि उसकी मत्यु ९ ५ हि म हो चुकी थी अत अधिक सम्भव यही है कि

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास नागरीप्रचारिणी सभा काशी, पृ ९५
२—प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली, भूमिका प० ३
३—हाफिज मुहम्मद शीरानी पजाब म उर्दू प २१२
४—ब्रिग्स ए हिस्ट्री आफ दी राइज आफ मुहम्डन पावर (फिरिश्ता के इतिहास का अगरेजी अनुवाद) वा १ प ५७२।
५—स्मिथ शर्की आर्किटेक्चर आफ जौनपुर प० १३।
६—सुकुमार सेन इस्लामी बाँगला साहित्य प ८।
७—जे बी० आर० एस० प्रो अस्करी कुतुबन्स मृगावत, १९५५।

मृगावती बंगाल के हुसनशाह की छत्रछाया में ही रची गई वह एह एक धर्मपरायण पुरुष था और उसने हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के दृष्टिकोण से सत्यपीर नामक एक सम्प्रदाय भी चलाया था। मृगावती में नायक राजकुमार है। नायिका भी राजकुमारी है। वह उड़ने की विद्या भी जानती है। वह अपने प्रेमी को धोखा देती है। पिता के देहान्त के बाद राज्य भी करने लगती है। इस प्रकार इस काव्य में घटनाओं का बाहुल्य है। मंझन ने कहा है कि वे किसी रहस्यमयी बात को खोलकर स्पष्ट करने जा रहे हैं और एतदर्थ वे गाथा दोहा चौपाई अरिल्ल सोरठा आदि का प्रयोग करके देसी शब्दों के माध्यम से उसे सरल बना रहे हैं। मुल्ला दाऊद जायसी आदि ने भी इसी प्रकार की अभिव्यक्ति की है—

अउर गीन मैं कहँ बीनती सिरनाम कर जोर।
एक एक यान मोति जस पुरवा कहूँ जो हीरा तोर॥
(चंदायन)
यक यक बोल मोति जस पुरवा इकठा भव चित लाय।
(मृगावती)
'कुचन-कचन हीरा मोती। पिरवा हार भई तस जोती। (चित्ररेखा)

कुतबन के गुरु सुहरावर्दिया सम्प्रदाय के बूढ़न (जौनपुर वाले)
नेख बूढन जगसाँचा पीर। नाउ लेत सुध होय सरीर॥
कुतवन नाउ ले रेपा धरे। सुहरावर्दि जिन्ह जगनिरभरे॥

मृगावती' की कथा

'मृगावती की कथा में संक्षेप में इस प्रकार है—चन्द्रगिरि के राजा गणपति देव का पुत्र कंचन नगर के राजा रूपमुरारि की पुत्री मृगावती के रूप पर विमोहित हो जाता है। राजकुमारी संयोगवश उड़ने की विद्या जानती थी। अनेक कष्ट सहते हुए राजकुमार उसके यहाँ पहुँचा। एक दिन राजकुमारी उसे धोखा देकर उड़ जाती है। राजकुमार उसकी खोज में जोगी बन कर निकल पड़ता है। चतुर्दिक समुद्र से घिरी एक पहाड़ी पर पहुँचकर उसने रुक्मिनी नामक सुंदरी को एक राक्षस के हाथ में पड़ने से बचा लेता है इस कार्य से प्रसन्न होकर उस सुंदरी के पिता ने राजकुमार के साथ उसका विवाह कर दिया। अंत में राजकुमार वहाँ पहुँचता है जहाँ पिता की मृत्यु के अनन्तर मृगावती सिंहासनारूढ़ होकर राज्य कर रही है। वहाँ वह बारह वर्षों तक ठहरा रहता है और जब राजकुमार के पिता को पता चला तो उसे बुलाने के लिये दूत

१—नागरीप्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट १९००
डा० रामकुमार वर्मा को इनकी एक पूर्ण प्रति एकडला' गाँव से मिली है।

भजा। पिता का सदेश पाकर के राजकुमार मगावती के साथ चल पडा। मार्ग म उसन रुक्मिनी को भी ले लिया। वह दीघकाल तक उन दोनो के साथ भोग विलास करता रहा पर एक दिन आखेट मे हाथी से गिर कर मर गया। दोनो रानियाँ उसके साथ ही सती हो गई।

रुक्मिनी पुनि वसहि मरि गई। कुलवती सन सो सति भई।
बाहर वह भीतर वह होई। घर बाहर को रहे न जोई॥
विधि कर चरित न जान आनू। जो सिरजा सो जाहि निआनू।
गग तीर सके सर रचा। पूजी अवधि कहो जा बचा।
राजा सग जरि रानी चौरासी। ते सब गए इन्द्र अविनासी॥
मिरगावति और रुक्मिनी (लके) जरा कुवर के साथ।
भसम भई जरि तिल एक मह निह रहा न गात॥

कुतबन ने कथा के प्रारम्भ मे मुहम्मद स्तवन और उनके चार मीतो का भी उल्लेख किया है

उसमा वचन दीन के लिए जेरे मुहम्मद अधरह सिय।
अली सरे बिध आपुन कीन्हा। आगम गड उनसा कर लीन्हा।
चार मीत हैं पण्डित चारो है समतन।
मानसरोदक अमत भर-रहे कवन के फन।

३—पदमावत (१५४०)

जायसी द्वारा प्रेमाख्यानो का उल्लेख

जायसी ने पदमावत म कतिपय प्रेम गाथाओ की ओर सकेत किया है—

बहुतन्ह ऐस जीउ पर खेला। तू जोगी केहि माह अकेला।
विक्रम धसा पेम के बारा। सपनावति कह गएउ पतारा।
सुदवच्छ मुगुधावति लागी। ककनपूरि होइ गा बैरागी।
राजकुवर कचनपुर गएऊ। मिरगावति कह जोगी भएऊ।
साधा कुवर मनोहर जोगू। मधुमालति कह कीन्ह वियोगू।
पमावति कह सरसुर साधा। उरवा लागि अनिरुध वर बाधा।[1]

इन पक्तियो के साक्ष्य पर स्पष्ट है कि पदमावत की रचना के समय तक वे (इन पक्तियो म वर्णित) कहानियाँ किसी न किसी रूप म अवश्य प्रचलित थीं।

१—प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली भूमिका पृ ४

पं० रामचन्द्र शुक्ल[1] सरजीवा वर्मा[2] डा० रामकुमार वर्मा[3] हरिऔध[4] प्रभृति विद्वानो का विचार है कि जायसी द्वारा दी गई यह सूची जायसी के पूर्व लिखे जा चुके प्रेमाख्यानों की है। इन विद्वानो की बात इसलिये मान्य है कि धीरे धीरे शोध म ये ग्रन्थ मिलते जा रहे हैं।

ए०जी० शिरेफ[5] का अनुमान है कि जायसी ने प्रेमाख्यानो की जो नामावली दी है वह प्रेमाख्यानों की न होकर लोक प्रचलित प्रेम कहानियो की है जिनके स्वरूप के विषय म यह नहीं कहा जा सकता कि ये कहानियाँ लिखित हो ही। सम्भव है कि ये मात्र मौखिक परम्परा से चली आती हो।

इस सूची पर विचार करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है कि विक्रमादित्य और 'ऊषा अनिरुद्ध की प्रेम कथाओं को छोड़ देने से चार प्रेम कहानियाँ जायसी के पूर्व लिखी हुई पाई जाती हैं। इनमे से मृगावती की एक खंडित प्रति का पता तो नागरीप्रचारिणी सभा को लग चुका है। मधुमालती की भी फारसी अक्षरो म लिखी हुई एक प्रति मैंने किसी सज्जन के पास देखी थी, पर किसके पास है यह स्मरण नही। चतुर्भुजदास कृत 'मधुमालती री कहा' नागरीप्रचारिणी सभा को मिली है जिसका निर्माणकाल ज्ञात नही और जो अत्यन्त भ्रष्ट गद्य म है। मुग्धावती और प्रेमावती का अभी तक पता नही चला।[6]

डा० कमलकुल श्रेष्ठ का कथन है कि मधुमालती री कहा का फार्म काशी सभा म है और गद्य म नही अपितु पद्य मे है।

मधुमालती की दो प्रतियाँ भारतीय विद्याभवन के श्री हरिवल्लभ भायाणी जी को मिली हैं। इनम सवा सात सौ से ऊपर छन्द हैं।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि विक्रमादित्य और स्वप्नावती सिंहासन बत्तीसी म पाचवी पुतली लीलावती की कथा है कि विक्रम ने सिंहासन की प्राप्ति के लिये बहुत कष्ट भोगा। उसी का पाठ यहाँ स्वप्नावती (पाठान्तर चम्पावती) मिलता है (६८२ आ १९) श्री अगरचन्द नाहटा जी को स्वप्नावती की

१–पं० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली भूमिका पृ० ४

२—नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग ६, पृ० २६४

३–डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ३०७

४–पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० १६१।

५–ए०जी० शिरेफ पदुमावती, पृ० ६

६—पं० रामचन्द्र शुक्ल नागरीप्रचारिणी सभा, जायसी ग्रन्थावली भूमिका प० ४

७–हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य, ना० प्र० सभा खोज रिपोर्ट १९०२, नोटिस ४४।

भजा। पिता का संदेश पाकर के राजकुमार मगावती के साथ चल पडा। मार्ग मे उसने रुक्मिनी को भी ले लिया। वह दीर्घकाल तक उन दोनो के साथ भोग विलास करता रहा पर एक दिन आखेट मे हाथी से गिर कर मर गया। दोनो रानियां उसके साथ ही सती हो गई।

> रुक्मिनी पुनि वसहि मरि गई। कुनवती सन सो सति भई।
> बाहर वह भीतर वह होई। घर बाहर को रहे न जोई॥
> विधि कर चरित न जान आनू। जो सिरजा सो जाहि निआनू।
> गग तीर सके सर रचा। पूजी अवधि कहो जा बचा।
> राजा सग जरि रानी चौरासी। ते सब गए इन्द्र कविनासी॥
> मिरगावति और रुकमिनी (लके) जरी कुवर के साथ।
> भसम भई जरि तिन एक मह तिन्ह रहा न गात॥

कुतबन ने कथा के प्रारम्भ म मुहम्मद स्तवन और उनके चार मीतो का भी उल्लेख किया है

> उसमा वचन दीन के निय जेरे मुहम्मद अधरहु सिप।
> अली सरे विध आपुन की हा। आगम गड उनसो कर लीन्हा।
> चार मीन है पडित चारौ हैं समतन।
> मानसरादक अमन भर-रहे कवल के फन।

३-पदमावत (१५४०)

जायसी द्वारा प्रेमाख्यानो का उल्लेख

जायसी ने पद्मावत म कतिपय प्रम गाथाओ की ओर सकेत किया है—

> बहुतन्ह ऐस जीउ पर खेला। तू जोगी कहि माह अकेला।
> विक्रम धसा पेम क बारा। सपनावति कह गएउ पतारा।
> सुदवच्छ मुगुधावति लागी। ककनपूरि होइ गा बरागी।
> राजकुवर कचनपुर गएऊ। मिरगावति कह जोगी भएऊ।
> साधा कुवर मनोहर जोगू। मधुमालति कह कीन्ह वियोगू।
> पेमावति कह सरसुर साधा। उरवा लागि अनिरुध वर बाधा।[1]

इन पक्तियो के साक्ष्य पर स्पष्ट है कि पदमावत की रचना के समय तक य (इन पक्तियो म कथित) कहानियाँ किसी न किसी रूप म अवश्य प्रचलित थी।

१—प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रथावली भूमिका पृ० ४

तब घर मे बठे रहैं जाँहि न हाट बजार।
मधुमालति मिरगावति, पोथी दोइ उगार।[1]
ते बाँचहि रजनी समै, आवहि नर दास बीसे।
गावहि अरु बात कर्हि नित उठि दहि असीस[2]॥

बनारसी दास इन पोथियो को लगभग १६०५ ई० (स० १६६२) म पढ़ा करते थे पदमावत १५४० ई० (१५९७) मे लिखा गया था। जायसी और बनारसी दास के उल्लेखा से स्पष्ट है कि य मात्र मौखिक कहानियाँ ही नही पुस्तक रूप मे भी थी। मधुमालती की कथा का उल्लेख उसमानकृत 'चित्रावली' म भी मिलता है।

'मधुमालति होइ रूप दिखावा। प्रेम मनोहर होइ तह आवा।[3]
मगावती मुग्ध रूप बसेरा। राजकुवर भयो प्रेम अहेरा॥
सिंहल पदुमावति भो रूपा। प्रम कियो है चितउर भूपा॥

इन साक्ष्यो के आधार पर कहा जा सकता है कि ये प्रेमकाव्य हैं। इनमे से कुछ तो प्राप्त हो गए हैं और सरसुर प्रेमावती की कहानी[4] प्रभति प्रेम गाथायें अभी तक अज्ञात हैं। यह अभी भी ज्ञातव्य है कि ये प्राप्त अप्राप्त कथाए सूफी प्रमाख्यानो की परम्परा म हैं या अपूर्ण भारतीय प्रेमाख्यानो की परम्परा मे।

४—शेख (मियाँ) मझन कृत मधुमालती (रचनाकाल १५४५ ई०)

प० रामचन्द्रशुक्ल[5] का अनुमान था कि मधुमालती की रचना पदमावत के पूव हुई थी किन्तु शुक्लजी ने यह अनुमान एक खण्डित प्रति और मधुपाछ मुगुधावति लागी वाले पदमावत के उल्लेख को दृष्टि म रखकर किया था। इधर मधुमालती की कई प्रतियो[6] का पता चला है 'एकडला' से प्राप्त प्रति के आधार पर

१—अद्धकथान, प० नाथूराम प्रमी, प० ३८ (३३५) १६५७।
२—वही प० २९ (अब सोरह स बासठ कातिक हूजी कार) २५७
३—चित्रावली उसमान, (३०१५ ७)।
४—पदमावत, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प० २२३-२४।
५—हिन्दी साहित्य का इतिहास प० रामचन्द्र शुक्ल, प० ९८।
६—डा० कमलकुल श्रेष्ठ ने (हिन्दी प्रमाख्यानक काव्यो, प० ३८) इन दोनो प्रतियो को नागरीप्रचारणी सभा मे देखा था एक वह वस्तुत भारतकला भवन में सुरक्षित प्रतियाँ हैं।
(क) नागरीप्रचारिणी सभा की दो प्रतिया (ये प्रतिया खण्डित और अपूण हैं)। एक फारसी लिपि मे है और दूसरी देवनागरी मे। फारसी लिपि वाली प्रति मे प्रारम्भ म २७३ और अत मे ८० दोहे नही हैं। इसकी पुष्पिका मे प्रति

—शेषांश अगले पष्ठ पर देखिए

हानी लोक साहित्य मे मिल गई है।[1] सुदेवच्छ-सुगावाती की कहानी अत्यंत लोकप्रिय थी। सन्देशरासक में इसका उल्लेख आया है—

'कह व ठाइ पउवइहि वउपयासियह कह वहुसवि णिवद्धउ।
रासउभासियइ। कहव ठाइ सुव्वच्छ करयवर नल चरिउ॥
करयव विविहवि णोइहि भारतु उच्चरिउ॥

सन्देश रासक[2] की इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि कहीं पर चारों वेदों के ज्ञाता वेदों की व्याख्या करते हैं कहीं विविध रूपों से निबद्ध रासक पढ़े जाते हैं। कहीं सुदयवच्छ, कहीं नलचरिउ और कहीं विविध विनोद पूर्वक महाभारत की कथाएं पढ़ी जाती हैं। यहां पर यह द्रष्टव्य है कि सुदयवच्छ की कथा का उल्लेख वेद' नलचरिउ और 'महाभारत' के साथ किया गया है।

सुदयवच्छ और रानी सावलिंगा की कहानी आज भी बिहार से गुजरात तक गाव गाव में कही जाती है। (सुदयवच्छ सावलिंग की कहानी के लिए देखिए अगर चन्द नाहटा का लेख राजस्थान भारती अप्रैल १९५०)।

मधुमालती' की कथा का उल्लेख—

मधुमालती नाम की कई रचनाओं का पता चलता है। मझनकृत मधुमालती नामक अवधी प्रेम कहानी की अनेक हस्तलिखित प्रतियां मिलती हैं। कई हस्त—लिखित प्रतियो के आधार पर श्री शिवगोपाल मिश्र ने मझन कृत मधुमालती का सम्पादन किया है। कवि बनारसी दास ने लिखा है कि वे मधुमालती और मृगावती की पोथियां रात्रि के समय जौनपुर में बांचा करते थे। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि १६५१ ई० में ये पोथियां विद्यमान थीं।

१—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पदमावत पृ० २२, २४।
२—सन्देशरासक (प० हजारीप्रसाद द्विवेदी और विश्वनाथ त्रिपाठी) प १२। ४३ ४४ वा पद्य।
३—देखिए मधुमालती पर ब्रजरत्न दास का लेख हिंदुस्तानी पत्रिका, अप्रैल १९३८ पृ० २१२।
नागरी प्रचारिणी पत्रिका मझन कृत मधुमालती प० चन्द्रबली पांडेय, १९९५ पृ० २५५—९६।
नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हीरक जयंती अंक डा० माताप्रसाद गुप्त का लेख वर्ष ५८ स० २०१।
४—मझनकृत मधुमालती डा० शिवगोपाल मिश्र (हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, काशी) १९५७।

तब घर मे बठे रहें जाहि न हाट बजार ।
मधुमालति मिरगावति पोथी दोइ उदार ।
ते बाँचहि रजनी सम, आवहि नर दास बीसे ।
गावहि अरु बात करहि निन उठि देहि असीस[1] ।।

बनारसी दस इन पोथियो को लगभग १६०५ ई० (स० १६६२) म पढ़ा[2] करते थे पदमावत १५४० ई० (१९६७) म लिखा गया था। जायसी और बनारसी दास के उल्लेखो से स्पष्ट है कि ये मात्र मौखिक कहानियाँ ही नही पुस्तक रूप में भी थीं। मधुमालती की कथा का उल्लेख उस्मानकृत 'चित्रावली म भी मिलता है।

'मधुमालति होइ रूप दिखावा। प्रेम मनोहर होइ तह आवा।'
मृगावती मुख रूप बसरा। राजकुवर भयो प्रेम अहेरा।।
सिंहल पदुमावति भो रूपा। प्रेम कियो है चितउर भूपा।।

इन साक्ष्यो के आधार पर कहा जा सकता है कि ये प्रेमकाव्य हैं। इनमे से कुछ तो प्राप्त हो गए हैं और सरमुग प्रेमावती की कहानी ' प्रमति प्रेम-गाथायें अभी तक अज्ञात हैं। यह अभी भी ज्ञातव्य है कि ये प्राप्त-अप्राप्त कथाए सूफी प्रेमाख्यानो की परम्परा म हैं या असूफी भारतीय प्रेमाख्यानो की परम्परा मे।

४—शेख (मियां) मझन कृत मधुमालती (रचनाकाल १५४५ ई०)

प० रामचन्द्रशुक्ल[4] का अनुमान था कि मधुमालती की रचना पदमावत के पूर्व हुई थी, किन्तु शुक्लजी ने यह अनुमान एक खण्डित प्रति और मधुपाछ मुगुधा धति लागी' वाले पदमावत के उल्लेख को दृष्टि म रखकर किया था। इधर मधु मालती की कई प्रतियों[6] का पता चला है एकडला से प्राप्त प्रति के आधार पर

१—अद्धकथान, प० नाथूराम प्रेमी, पृ० ३८ (३३५) १६५७।
२—वही, पृ० २६ (अब सोरह स बासठ कातिक हूओ कान) २५७
३— चित्रावली उसमान, (३०।५७)।
४— पदमावत डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पृ० २२३–२४।
५— हिन्दी साहित्य का इतिहास प० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६८।
६— डा० कमलकुल श्रेष्ठ ने (हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य पृ० ३८) इन दोनों प्रतियो को नागरीप्रचारणी सभा म देखा था, एक वह वस्तुत भारतकला भवन मे सुरक्षित प्रतियाँ हैं।
(क) नागरीप्रचारिणी सभा की दो प्रतिया (ये प्रतिया खण्डित और अपूर्ण हैं)। एक फारसी लिपि म है और दूसरी देवनागरी म। फारसी लिपि वाली प्रति के प्रारम्भ म २७३ और अत मे ८० दोहे नही हैं। इसकी पुष्पिका म प्रति

—शेषांश अगले पृष्ठ पर देखिए

डा० शिवगोपाल मिश्र ने मधुमालती[1] का प्रकाशन करके एक बड़े अभाव की पूर्ति

गत पृष्ठ से आगे–

लिपि का समय सं० १६४४ वि० दिया हुआ है।

(ख) जगमोहन वर्मा की प्रति–(गुन्डी बाजार से प्राप्त ?) चित्रावली से संपादक श्री जगमोहन वर्मा को गुदड़ी बाजार (काशी) से एक खंडित प्रति प्राप्त हुई थी। यह ग्रन्थ १७ पन्ने से १३३ पन्ने तक है। पुस्तक उर्दू (फारसी ?) में अत्यन्त शुद्ध अक्षरों में लिखी हुई है। भाषा मधुर है। पांच-पांच पंक्तियों के बाद एक दोहा है। आदि और अन्त में पृष्ठ न होने से ग्रन्थकर्त्ता के ठीक नाम सिवाय मझन के जो उसका उपनाम है और उसके निर्माणकाल आदि का पता नहीं चलता। ग्रन्थ के आदि के ३६ पन्नों तक बायें पृष्ठ पर के किनारे पर दो-दो पंक्तियों फारसी भाषा में कुछ याददाश्त लिखी है, जिनके अन्त में ११ रबि उस्सानी १०६६ हि० की मिती है। यादृदाश्त में उसी समय का वर्णन है। इससे अनुमान होता है कि यह प्रति उस समय सं० १७१६ के पहिले की लिखी हुई है।

देखिए चित्रावली भूमिका (सं० जगमोहन वर्मा)

(ग) श्री चन्द्रबली पांडेय जी को भी गुदड़ी बाजार से एक प्रति मिली थी। उनकी भी प्रति में १७ से १३३ पन्ने हैं। लिपि भी फारसी है। इस प्रति के भी बाए पृष्ठों पर दो दो पंक्तियां यादृदाश्त के रूप में मिलती है। इसके अंत में ११ रबि उस्सानी सन १०६६ हिजरी दिया हुआ है।

देखिये ना० प्र० पत्रिका मझन कृत मधुमालती (पं० चन्द्रबली पांडेय का लेख) सं० १९९३ सं० ४३, पृ० २२५।

(घ) भारतकला भवन, काशी विश्वविद्यालय की प्रति इसमें प्रतिलिपि का काल भी १६४४ दिया हुआ है। (इस समय भारतकला भवन में मधुमालती की तीन प्रतियां हैं)। रामपुरवाली प्रति का हिन्दी रूपान्तर भी इसमें सुरक्षित है।

(ङ) रामपुर स्टेट लाइब्रेरी की प्रति–इसमें कुल २४६ पृष्ठ हैं प्रत्येक पृष्ठ पर १८ पंक्तियां हैं। प्रत्येक पृष्ठ स्वर्णालंकृत है। पुष्पिका के अनुसार इसका प्रतिलिपिकाल मुहम्मदशाह बादशाह गाजी का समय है। इस प्रति का फारसी भाषा में अनुवाद भी हुआ था।

फारसी अनुवाद देखिये *कटलाग आफ दी परशियन मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दी* ब्रिटिश म्यूजियम, पृ० ८०३, (१८८१ ई०)।

रामपुर वाली प्रति के आधार पर ना० प्र० पत्रिका में सत्यजीवन वर्मा का एक लेख छपा था। देखिए ना० प्र० पत्रिका सं० २००२ भाग ६ पृ० २६७।

१– डा० शिवगोपाल मिश्र।

की है। मधुमालती म मझन ने इसके रचनाकाल का स्पष्ट उल्लेख किया है–

'सवत नौ स बावन भएऊ। सती पुरुष कलि परिहर भएऊ॥
तो हम चित उपजी अभिलाखा। कथा एक बाधो रस भाखा॥
सुरस बचन जहाँ लगि सुन। कवि जो सामने ते सब गुने॥
जो सभ कहे सुरस रस भाखी। सुनो कान द पेम अभिलाखी॥

(मधुमालती मझन, पृ० १४)

अत यह निश्चित है कि मझन ने मधुमालती नामक प्रेमकथा की रचना हिजरी सन ६५२ तदनुसार सन १५४५ ई० अथवा स० १६०२ वि० में की।

मधुमालती की कथा—

कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर को एक रात कुछ अप्सरायें सुप्तावस्था में उठाकर रातो रात महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की चित्र सारी में रख आईं। जागने पर दोनों ने एक दूसरे को देखा—दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गए। मनोहर ने उसके पूछने पर कहा कि मेरा अनुराग तुम्हारे ऊपर अनेक जन्मों से है। जिस दिन मैं इस ससार में आया—उसी दिन से तुम्हारा प्रेम मेरे हृदय में उत्पन्न हुआ है। बहुत देर तक वार्तालाप करने के पश्चात वे सो गए। अप्सराओं ने सोये हुये मनोहर को उठाकर उसके महल म पहुचा दिया। जागने पर दोनों के हृदयों म विरह जन्य व्याकुलता छा गई। राजकुमार मनोहर उसके वियोग में योगी होकर निकल पड़ा। समुद्र क माग स जाते समय उसके इष्टमित्र तितर बितर होकर बह गए। मनोहर बहता हुआ किसी जगल के तट पर जा पहुँचा। वहाँ एक सुन्दरी पलग पर लेटी हुई थी। पूछने पर उसने बताया कि वह चितविस रामपुर के राजा चित्रसेन की बेटी प्रेमा थी। उस यहाँ पर कोई राक्षस उठा लाया था। राजकुमार ने राक्षस का बध किया और प्रेमा का उद्धार किया। उसने कहा कि मैं मधुमालती की सखी हूँ और मैं उसे तुमसे मिला दूगी। मनोहर के साथ प्रेमा अपने पिता के घर में आई। मनोहर के उपकार को सुनकर प्रेमा के पिता ने उसको मनोहर स ब्याह देना चाहा। प्रेमा ने इसे यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि मनोहर मेरा भाई है और मैंने उसे अपनी सखी मधुमालती से मिलाने का वचन दिया है।

दूसरे दिन जब मधुमालती अपनी माँ रूपमजरी के साथ प्रेमा के घर आई, तो प्रेमा ने उसे मनोहर स मिला दिया। प्रात रूपमजरी ने चित्रसारी में दोनों को एक साथ देखा, तो बहुत फटकारा। जब उसने देखा कि पुत्री मनोहर का प्रेम छोड़ने को प्रस्तुत नहीं है, तो उसने उसे पक्षी हो जाने का शाप दिया। वह पक्षी होकर उड़ गई। माता अपने शाप की बात सोचकर पछताने लगी। उसने बहुत विलाप किया। वह मधुमालती को खोजने लगी, पर उसका पता न चला।

डा० शिवगोपाल मिश्र ने मधुमालती[1] का प्रकाशन करके एक बड़े अभाव की पूर्ति

गत पृष्ठ से आगे—

लिपि का समय स० १६४४ वि० दिया हुआ है।

(ख) जगमोहन वर्मा की प्रति–(गुदड़ी बाजार से प्राप्त ?) चित्रावली के सपादक श्री जगमोहन वर्मा को गुदड़ी बाजार (काशी) से एक खडित प्रति प्राप्त हुई थी। यह ग्रन्थ १७ पन्ने से १३३ पन्ने तक है। पुस्तक उर्दू (फारसी ?) में अत्यन्त शुद्ध अक्षरों में लिखी हुई है। भाषा मधुर है। पाँच पाँच पंक्तियों के बाद एक दोहा है। आदि और अन्त में पृष्ठ न होने से ग्रन्थकर्त्ता के ठीक नाम सिवाय मझन के जो उसका उपनाम है और उसके निर्माणकाल आदि का पता नहीं चलता। ग्रन्थ के आदि के ३६ पन्नों तक बायें पृष्ठ पर के किनारे पर दो-दो पंक्तियों फारसी भाषा में कुछ, याददाश्त लिखी है जिनके अत में ११ रबि उस्सानी १०६६ हि० की मिती है। याददाश्त में उसी समय का वर्णन है। इससे अनुमान होता है कि यह प्रति उस समय स० १७१६ के पहिले की लिखी हुई है।

देखिए चित्रावली भूमिका (स० जगमोहन वर्मा)

(ग) श्री चन्द्रबली पांडेय जी को भी गुदड़ी बाजार से एक प्रति मिली थी। उनकी भी प्रति में १७ से १३३ पन्ने हैं। लिपि भी फारसी है। इस प्रति के भी बाएं पृष्ठों पर दो दो पंक्तियां याददाश्त के रूप में मिलती है। इसके अंत में ११ रबि उस्सानी सन १०६६ हिजरी दिया हुआ है।

देखिये, ना० प्र० पत्रिका मझन कृत मधुमालती (प० चन्द्रबली पांडेय का लेख) स० १९९३ स० ४३ पृ० २२५।

(घ) भारतकला भवन काशी विश्वविद्यालय की प्रति इसमें प्रतिलिपि का काल स० १६४४ दिया हुआ है। (इस समय भारतकला भवन में मधुमालती की तीन प्रतियां हैं)। रामपुरवाली प्रति का हिन्दी रूपान्तर भी इसमें सुरक्षित है।

(ङ) रामपुर स्टेट लाइब्रेरी की प्रति–इसमें कुल २४६ पृष्ठ हैं प्रत्येक पृष्ठ पर १५ पंक्तियां हैं। प्रत्येक पृष्ठ स्वर्णालकृत है। पुष्पिका के अनुसार इसका प्रतिलिपिकाल 'मुहम्मदशाह बादशाह गाजी' का समय है। इस प्रति का फारसी भाषा में अनुवाद भी हुआ था।

फारसी अनुवाद देखिये कटलाग आफ दी परशियन मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दी ब्रिटिश म्यूजियम, पृ० ८०३, (१८८१ ई०)।

रामपुर वाली प्रति के आधार पर ना० प्र० पत्रिका में सत्यजीवन वर्मा का एक लेख छपा था। देखिए ना० प्र० पत्रिका, स० २००२ भाग ६ पृ० २६७।

१– डा० शिवगोपाल मिश्र।

की है। मधुमालती में मझन ने इसके रचनाकाल का स्पष्ट उल्लेख किया है–

'संवत नौ स बावन भएऊ। सती पुरुष कलि परिहर भएऊ ॥
तौ हृद चित उपजी अभिलासा। कथा एक बांधौ रस भासा ॥
सुरस बचन जहाँ लगि सुन। कवि जा सामने ते सब गुन ॥
जो सभ कहै सुरस रस भाखी। सुनौ कान द पेम अभिलाखी ॥
(मधुमालती, मझन, पृ० १४)

अत यह निश्चित है कि मझन ने मधुमालती नामक प्रेमकथा की रचना हिजरी सन ९५२ तदनुसार सन १५४५ ई० अथवा स० १६०२ वि० मे की।

मधुमालती की कथा—

कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर को एक रात कुछ अप्सरायें सुप्तावस्था में उठाकर रातो रात महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की चित्र सारी में रख आई। जागने पर दोनों ने एक दूसरे को देखा—दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गए। मनोहर ने उसके पूछने पर कहा कि मेरा अनुराग तुम्हारे ऊपर अनेक जन्मों से है। जिस दिन मैं इस ससार में आया—उसी दिन से तुम्हारा प्रेम मेरे हृदय में उत्पन्न हुआ है। बहुत देर तक वार्तालाप करने के पश्चात वे सो गए। अप्सराओं ने सोये हुये मनोहर को उठाकर उसके महल म पहुचा दिया। जागने पर दोनों के हृदयों म विरह जन्य व्याकुलता छा गई। राजकुमार मनोहर उसके वियोग में योगी होकर निकल पडा। समुद्र के मार्ग मे जाते समय उसके इष्टमित्र तितर बितर होकर बह गए। मनोहर बहता हुआ किसी जगल के तट पर जा पहुँचा। वहाँ एक सुन्दरी पलग पर लेटी हुई थी। पूछने पर उसने बताया कि वह चितविस रामपुर के राजा चित्रसेन की बेटी प्रेमा थी। उसे वहाँ पर कोई राक्षस उठा लाया था। राजकुमार ने राक्षस का वध किया और प्रेमा का उद्धार किया। उसने कहा कि मैं मधुमालती की सखी हूँ और मैं उसे तुमसे मिला दूगी। मनोहर के साथ प्रेमा अपने पिता के घर म आई। मनोहर के उपकार को सुनकर प्रेमा के पिता ने उसको मनोहर से ब्याह देना चाहा। प्रेमा ने इसे यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि मनोहर मेरा भाई है और मैंने उसे अपनी सखी मधुमालती से मिलाने का वचन दिया है।

दूसरे दिन जब मधुमालती अपनी माँ रूपमजरी के साथ प्रेमा के घर आई तो प्रेमा ने उसे मनोहर से मिला दिया। प्रात रूपमजरी न चित्रसारी में दोनों को एक साथ देखा तो बहुत फटकारा। जब उसने देखा कि पुत्री मनोहर का प्रेम छोड़ने को प्रस्तुत नहीं है, तो उसने उसे पक्षी हो जाने का शाप दिया। वह पक्षी होकर उड़ गई। माता अपने शाप की बात सोचकर पछताने लगी। उसने बहुत विलाप किया। वह मधुमालती को खोजने लगी, पर उसका पता न चला।

कुंवर ताराचन्द नामक राजकुमार ने उसे पकडना चाहा। मधुमालती ने उसे देखा कि ताराचन्द और मधुमालती के रूपो मे साम्य है— अत वह ठहर गई। राजकुमार ने उस पकड कर सोने के पिंजरे म डाल दिया। एक दिन उस पक्षी ने अपनी सारी प्रेम कहानी ताराचन्द से कह सुनाई उसे सुनकर उसने प्रतिज्ञा की कि मुझे तेरे प्रियतम मनोहर से अवश्य मिला दूगा। उस पिंजरग पक्षी को लेकर वह महारस नगर म पहुचा। उसकी माता रूपमजरी ने प्रसन्न होकर मन्त्र पढकर उसे फिर मधुमालती के रूप मे परिवर्तित कर दिया। मधुमालती के माता पिता ने ताराचन्द के ही साथ उसका ब्याह करना चाहा किंतु ताराचन्द ने कहा कि 'मधुमालती मेरी बहिन है और मैंने उसे वचन दिया है कि जसे भी होगा मैं उसे मनोहर [redacted] अवश्य मिलाऊगा।

मधुमालती की मा ने तब सारा हाल लिखकर प्रेमा के पास भेज दिया। मधुमालती ने भी अपनी व्यथा कथा को लिख भेजा।

प्रेमा जिस क्षण दोनो पत्रों को पढ़ कर दुख के सागर मे डूब रही थी—ठीक उसी समय एक सखी ने योगी वेश मे मनोहर के आगमन का सन्देश दिया। मधुमालती का पिता अपनी रानी और दल बल सहित वहाँ गया। पश्चात मधुमालती और मनोहर का विवाह हो गया। मनोहर मधुमालती और ताराचन्द्र प्रेमा के घर बहुत दिनो तक अतिथि बन रहे। एक दिन शिकार स लौटने पर ताराचन्द प्रेमा और मधुमालती को एक साथ झूला झूलते देखकर प्रेमा पर मोहित होकर मूर्छित हो गया। मधुमालती और उसकी सखियां उपचार म लग जाती हैं।

प्रेमा के सौदर्य पर मोहित होने के पश्चात (कथा ६ खण्ड और है)

मधुमालती ताराचन्द से उसकी मूर्छा का कारण पूछती है। उसने अपने मोह और प्रेमा के रूप सौन्दर्य का वणन किया। मधुमालती ने अपने पिता जी के समक्ष उन दोनों के विवाह का प्रस्ताव रखा। दोनो का ब्याह हो जाता है। राजकुमार मनोहर-मधुमालती और ताराचन्द प्रेमा सखपूवक साथ रहने लगते हैं।

कुंवार महीने के लगते ही दोनो राजकुमारो ने राजा चित्रसेन से विदा की प्रार्थना की। राजा बहुत ही दुखित होता है। अन्त पुर मे भी शोक और करुणा के भाव छा जाते हैं। मधुमालती की माँ ने विदा के क्षणो मे कहा—

साईं सेवा करब चित लाए। जनि डोन चित दाहिन बायें।

सखियों ने भी स्नेहातिरेकवश कहा—

जो बिछुरत दुख जन त्यों एहा। कत करतिउ बालापन नेहा॥

अन्त म माँ ने आशीष दिया—

जौ लगी धरती गगजन और ससि सूर अपार।
तौ लगि राज सोहाग तुअ, राखौ सिरजनहार॥

चारो की एक साथ ही विदाई होती है। कुछ दूर जाने पर दोनो दो मार्गो पर चल पडते हैं। इस समय इन युग्मो के वियोग का कारुणिक दृश्य उपस्थित होता है। ताराचन्द और मनोहर गले मिलते हैं। सभी एक दूसरे से अत्यन्त प्रेम भाव से मिलते हैं पुन 'कोउ पूरब कोउपश्चिम जाई। मनोहर दो वष म कन गिरि पहुचता है। महल म पहुचने पर आनन्दोत्सव मनाया जाता है। राजकुमार को पाकर उसका पिता—राजा अत्यन्त हर्षित होता है।

'कुवर पिता का लागा आई। नैन जोति जनु अन्धरे पाई।।

चारो ओर आनन्द ही आनन्द छा जाता है।

अन्त म कवि ने प्रेम की प्रशस्ति करते हुए 'मधुमालती' का उपसहार किया है।

'पेम अमिअ जे पाइय वासा। समवान तेहि आव न सासा।
जेहि भौ पम अमी भौ, परिच कर क पार।
ओधि सहसदन कत्ती सो, जिअहि पम आधार।।'

मञ्झन (जीवन चरित)

अभी तक मझन जीवन के विषय म निश्चित रूप स कुछ भी ज्ञान नही है। अन्त एवम बहि साक्ष्य के आधार पर इतना कहा जा सकता कि य मुसलमान सूफी सत थ। इनका पूरा नाम है शख (मियाँ) गुफ्नार मझन[1]।

मधुमालती के प्रारम्भिक मगलाचरण के कारण श्री ब्रजरत्नदास[2] जी ने मझन को हिन्दू माना है किन्तु पुस्तक के प्रारम्भ म ईश्वर मुहम्मद, पीर गुरु प्रमपीर प्रभति प्रमगो एव अन्त साक्ष्यो और एकडला एवम रायकृष्णदास जी की प्रतियो के साक्ष्य पर स्पष्ट है कि ये मुसलमान थे।

इनके गुरु शेख गौस मुहम्मद थ। 1

शख मुहम्मद पीर अपारा। सात समद नाव के कठ हारा।

दाता गुन गाहक गौस मुहम्मद पीर।

मझन ने १२ वर्षो तक कठिन तपस्या की और उन्हे आत्मज्ञान प्राप्त हुआ

१– मझन कृत मधुमालती,की एकडला से प्राप्त प्रति की पुष्पिका।
"इति श्री मधुमालती पोथी समाप्त है, जा सवत १७८४ सम नाम जेठ सुदी दुजी को तयार भई बार बुधवार को। पडितजन सों बिनती मोरी। टूटा अक्षर सरवहिं जोरी। गुफनार मियां मझन कित राममूलक सहाय लिपित महिराम। श्री रायकृष्णदासकी प्रति पुष्पिका म भी 'शेख मझन' लिखा है।

२—हिंदुस्तानी, अप्रल, १९३८ पृ० २११।

पिता के स्वर्गवासी होने पर उन्हें दूसरा घर बसाना पड़ा। ज्ञानोदय के पश्चात ही 'स्वान्त सुखाय सन ९५२ हि० में मधुमालती की रचना की। मधुमालती से इनकी कोमल कल्पना और स्निग्ध सहृदयता का पता चलता है। 'बूझि पढ़ मोर आखर सोई' से स्पष्ट है कि मधुमालती की कथा में मझन ने ज्ञान की चर्चा की है। अत समझ बूझकर ही उसको पढ़ना चाहिए। मधमालती में अनेक स्थलों पर (विशेषत पण्डितों से त्रुटियों के लिए क्षमा मांगते समय या पंडित मूख चर्चा के स्थलों पर) मझन की विनयशीलता के दर्शन होते हैं।

बारहमासा

मझन का बारहमासा सावन से प्रारम्भ होता है। सम्पूर्ण बारहमासे में मलिक मुहम्मद जायसी का अनुकरण द्रष्टव्य है। यद्यपि मझन ने मलिक मुहम्मद का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है किन्तु इनके काव्य को पढ़ने से स्पष्ट है कि ये पदमावत से पूर्णत प्रभावित हैं। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जा सकती हैं—

'सखि मघा बरस झकझोरी। प्रेम सलिल बुड़ जोबन बोरी ॥
(मझन)
'बरस मघा झकोरि झकोरी। मोर दुइ नैन चुवहिं जस ओरी ॥
(जायसी)
सरद रैनि तेहि सीतल जेहि पिउ कंठ नेवास।
सबके परब देवारी मोहिं सखी बनवास। (मझन)
सरद रैनि तेहि सोनम भाव। जेहि प्रीतम कंठ लागि बिहाव। (मझन)
'सखि मानहिं त्योहार, सब गाइ देवारी खेलि।
हौं का खेलों कत बिनु रही छार सिर मेलि ॥ (जा० ग्र० ३०१८)

मधुमालती (शिल्प विधि एव अन्य वैशिष्ट्य)

मधुमालती में कथा शिल्प पर कथासरित्सागर और 'हितोपदेश' के कथा शिल्प का प्रभाव है। मूलकथा के विकास के साथ साथ तमाम अन्तकथायें और उपकथायें उससे फूटती रहती हैं और इन कथाओं की चरम परिणति मूलकथा में ही होती है।[1] कथा में आध्यात्मिक प्रेम भाव की व्यंजना के लिए प्रकृति के भी दृश्यों का समावेश मझन ने किया है। मझन की कल्पना कुतबन से विशद है और वर्णन भी अधिक विस्तृत और हृदयग्राही हैं।

कवि ने नायक और नायिका के अतिरिक्त उपनायक और उपनायिका की भी योजना करके कथा को तो विस्तृत किया ही है साथ ही प्रेमा और ताराचन्द के चरित्र द्वारा सच्ची सहानुभूति, अपूर्व संयम, और निःस्वार्थ भाव चित्र भी दिखाया है। जन्म जन्मान्तर और योन्यतर के बीच प्रेम की अखंडता दिखाकर मझन ने

१–हिंदी कहानियों की शिल्प विधि का विकास डा० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ३० (१९५३)।

प्रेमतत्व की व्यापकता और नित्यता का आभास दिया है। सारा जगत एक ऐसे रहस्यमय प्रेम सूत्र में बंधा है जिसका अवलम्बन करके जीवन उस प्रेम मूर्ति तक पहुंचने का मार्ग पा सकता है। समस्त रूपों में जीव परम सत्ता की छिपी ज्योति को देखकर मुग्ध होता है। मंझन कहते हैं—

देखत ही पहिचानेउ तोही। एही रूप जेहि छन्ग्यो मोही।
एही रूप बुत अहै छपाना। एही रूप रव सिष्टि समाना॥
एही रूप प्रगटे बहु भसा। एही रूप जग रंक नरेसा।

ईश्वर का विरह साधक की प्रधान सम्पत्ति है जिसके बिना साधना के मार्ग में कोई प्रवृत्त नहीं हो सकता। किसी की आंखें खुल नहीं सकता।

पेम दीप आने हिय जारा। ते सब आदि अन्त उजियारा।
जगत जन्म धन जीवन ताही। पेम पीर जिय उपजा जाही।
कोटि माहिं बिरला जग कोई। जाहि सरीर विरह दुख होई।
रतन कि सागर सागरहिं गजमोती गज कोइ।
चन्दन कि बन बन उपजै बिरह कि तन तन होइ।

जिसके हृदय में विरह होता है उसके लिए यह संसार स्वच्छ दर्पण हो जाता है और इसमें परमात्मा के आभास अनेक रूपों में पड़ते हैं। तब वह देखता है कि इस सृष्टि के सारे रूप मानो व्यापार उसी का विरह प्रकट कर रहे हैं।[1]

प्रायः जायसी कुतबन आदि सूफी कवियों ने रानियों के सती होने और 'छारि उठाइ लीन्हि एक मूठी।' की बातें कही हैं किन्तु मंझन ने इसका अत्यन्त निराले ढंग से किया है उसका वक्तव्य है कि कवि में सभी प्राणी नाशवान हैं। अतः मधुमालती का बंधा सती होने हुए विचित्र रूप। वह तो स्वयं मर जायगी, किन्तु सत्य और प्रेम में अनादि और अनन्त हैं—

उतपति जग जेती चलि आई। पुरुष मारि उन गनी बराई।
मैं छोड़न एहि मार न पारेउं। रही मरिहि जो कवि औतार।
सती सुनौ संसार सभाऊ। जो मरि जिए सो मरे न काऊ॥

स्पष्ट है कि मंझन ने मधुमालती और मनोहर का मिलन तो करा दिया है, किन्तु मानव प्रेम के नाते उसे सती नहीं होने दिया। सती प्रसंग को उन्होंने जान बूझकर अपने काव्य में नहीं आने दिया।

५—उसमान कृत चित्रावली—रचनाकाल १६१३ ई०

श्री जगमोहन वर्मा ने चित्रावली का सम्पादन करके १९१२ ई० में काशी

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६७—६८।
२—चित्रावली की एक सम्पूर्ण एवं सुन्दर हस्तलिखित प्रति महाराज काशी नरेश के

नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित किया था।

ये जहाँगीर के समय में वर्तमान थे और गाजीपुर[1] के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम शेख हुसेन था। ये पाँच भाई थे। चार भाइयों के नाम हैं–शेख अजीज, शेख मानुल्लाह शेख फजुल्लाह, और शेख हसन–

कवि उसमान बसे तेहि गाऊं। शेख हुसेन तब जग नाऊं।
पाँचो भाइ पाँचो बुधि हिए। एक एक सों पाँचो लिए।
शेख अजीज पढ़ लिखि जाना। सागर सील ऊंच बर दाना।
मानुल्ला विधि मारग गहा। जोग साधि जो मोन होइ रहा।
शेख फजुल्ला पीर अपारा। मन न काहु गहे हथियारा।
शेख हुसन गाए न भल अहा। गुन विद्या वह गुनी सराहा।[2]

ये चिश्ती सम्प्रदाय के निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परम्परा के संत थे। इनके गुरु थे 'हाजी बाबा —

''गहि भुज की'हे पार जे, बिन साहस बिनु दाम।
कपूती सकल जहान के चश्ती शाह निजाम।
बाबा हाजी पीर अपारा। सिद्धि देत जेहि लाग न बारा।[3]

इन्होंने १०२२ हिजरी (१६१३ ई०) में चित्रावली नाम की पुस्तक लिखी–

'सन सहस्र बाइस जब अहे। तब हम बचन चारि एक कहे।

इन्होंने इस प्रमाख्यान के स्तुति खंड में शाहेवक्त जहाँगीर की प्रशस्ति लिखी है

कथा मात्र प्रभु गाएउ नई। गुरु परसाद समापत भई॥

'योगी ढूंढना खण्ड में काबुल, बदख्शां, खुरासान, रूम, साम, मिस्र इस्तंबाल, गुजरात, सिंहलद्वीप करनाटक उड़ीसा मनीपुर एवं बलेन्दीप आदि के उल्लेख मिलते हैं।' सबसे विलक्षण बात यह है जोगियों का अंग्रेजों के द्वीप में पहुंचना बहुत

पुस्तकालय में है। इसका प्रतिलिपिकाल है सं० १८०२ (१७४५ ई०) महाराजा का पुस्तकालय सरस्वती भवन रामनगर जिला ४-३२)।

श्री जगन्मोहन वर्मा ने एक अन्य प्रति का भी उल्लेख किया है–चित्रावली की भूमिका में उन्होंने किसी रमजान मियां की चित्रावली की उर्दू प्रति का उल्लेख मात्र किया है। देखिए चित्रावली, जगमोहन वर्मा (१९१२ ई०) ना० प्र० सभा, काशी भूमिका।

१–चित्रावली, ना० प्र० सभा, पृ० ११–१२ गाजीपुर उत्तम अस्थाना। देवस्थान आदि जग जाना।

२–वही, पृ० १२।

३–वही, पृ० १०।

४–वही, पृ० १४।

सम्भव है कि उस समय अंगरेज भारतवर्ष में आ गए थे—

'वलदीप देखा अंगरेजा। तहाँ जाइ जेहि कठिन करेजा।
ऊँच-नीच धन सम्पति हेरा। मद बराह भोजन जिन्ह केरा।'[1]

जायसी का पूरा अनुकरण कवि ने इस रचना में किया है। जो जो विषय जायसी ने अपनी पुस्तक में रखे हैं उन विषयों पर उसमान ने भी कुछ कहा है। कहीं-कहीं तो शब्द और वाक्य विन्यास भी वही है पर विशेषता यह है कि कहानी बिलकुल कवि की कल्पित है, जैसा कि कवि ने स्वयं कहा है—

'कथा एक मैं हिए उपाई। कहत मीठ और सुनत सोहाई।'[2]

उसमान ने जायसी का पूरा अनुकरण किया है। जायसी के पहले के कवियों ने पांच चौपाइयों (अर्द्धालियों) के पीछे एक दोहा रखा है। पर जायसी ने सात-सात चौपाइयों का क्रम रखा और यही क्रम उसमान ने भी रखा है। कहानी की रचना भी बहुत कुछ आध्यात्मिक दृष्टि से हुई है। कवि ने सुजानकुमार को एक साधक के रूप में चित्रित ही नहीं किया है बल्कि पौराणिक शैली का अवलम्बन करके उसने उसे परम योगी शिव से उत्पन्न तक कहा है। इस काव्य में योगी प्रभावजन्य अद्भुत की छाप सर्वत्र लगी हुई है। महादेव जी ने उससे प्रसन्न होकर राजा धरनीधर को वरदान दिया था—

'दसु देत हौं आपन अंसा। अब तोरे होइहीं निजवंसा।'[3]

कवलावती और चित्रावली अविद्या के रूप में कल्पित जान पड़ती हैं। सुजान का अर्थ ज्ञानवान है। साधनाकाल में अविद्या को बिना दूर रखे विद्या (सत्यज्ञान) की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी से सुजान ने चित्रावली के प्राप्त न होने तक कवलावती के साथ समागम करने की प्रतिज्ञा की थी। जायसी की ही पद्धति पर नगर, सरोवर, यात्रा, दान महिमा के वर्णन चित्रावली में भी हैं।

चित्रावली के आखेट प्रसंग जलक्रीड़ा प्रसंग[4], रूपनगर वर्णन[5], चित्रावली का नखशिख वर्णन[6], लौकिक-बहुज्ञता[7], संबंधी उल्लेख, संयोग[8] वियोग[9] वर्णन, स्त्री

१–चित्रावली, ना० प्र० सभा, पृ० १६० गाजीपुर उत्तम अस्थाना। देवस्थान आदि अग जाना।
२–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १०६।
३–वही, पृ० १६ चित्रावली। ४–वही, पृ० १।
५–चित्रावली, ना० प्र० सभा, पृ० २५–२६ (पद्मावत, ना० प्र० सभा,)
६–वही, पृ० ४७–४८। ७–वही, पृ० ६१–६२।
८–वही पृ० ७१–७२, ७३–७७। ९–वही, पृ० २३, २९, ८५।
१०–वही, पृ० २०४।

भेद वर्णन¹ (मुग्धा वासकसज्जा धीरा) दान² महात्म्य, सत्य महात्म्य³ प्रभृति प्रसंगों में भी मलिक मुहम्मद जायसी कृत पदमावत का प्रभावातिशय्य स्पष्ट दर्शनीय है।

यद्यपि उसमान जायसी से पूर्णतः प्रभावित हैं तथापि कहीं-कहीं उन्होंने अपनी कल्पना शक्ति और सरस वर्णना शक्ति के द्वारा सरस एवं प्रभविष्णु दृश्य भी उपस्थित किए हैं। विरह वर्णन के अन्तर्गत षट्ऋतु से सम्बद्ध एक उद्धरण सौंदर्य दर्शन हेतु पर्याप्त होगा—

ऋतु बसन्त नौतन बन फूला। जहं तहं भौंर कुसुम रंग भूला।
आहि कहां सो भवर हमारा। जेहि बिन बसत बसंत उजारा।
रात बरन पुनि देखि न जाई। मानहु दवा दहूं दिसि लाई।
रति पति दुरद ऋतुपति बली। कानन देइ आइ दलमली।⁴

चित्रावली की कथा

नेपाल के राजा धरनीधर पंवार सन्तानहीन थे। शिव के प्रसाद से उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम सुजान रखा गया। वह बड़ा हुआ। एक दिन शिकार से लौटते समय वह मार्ग भूल गया और एक देव (प्रेत) की मढ़ी में जाकर सो गया। देव ने आकर उसकी रक्षा स्वीकार की। एक दिन वह देव रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली की वर्षगांठ का उत्सव देखने के लिए गया और अपने साथ सुजानकुमार को भी लेता गया। वहां पहुंचकर देवों ने राजकुमार को राजकुमारी की चित्र सारी में ले जाकर लिटा दिया। जागने पर उसने चित्रसारी का देखा—एक से एक सुन्दर चित्रों को देखकर वह आश्चर्य में पड़ गया। उसने वहां पर एक राजकुमारी का चित्र देखा—उस पर आसक्त हो गया। उसने अपना एक चित्र बनाकर उसी की बगल में टांग दिया। देव से उसी अवस्था में उठा कर मढ़ी में ले आए। जागने पर उसे लगा कि स्वप्न देख रहा था किन्तु अपने हाथ और वस्त्रों में लगे रंग को देखकर उसने घटना को सत्य मान लिया। वह व्याकुल हो उठा। इसी समय उसके सेवक वहां आ पहुंचे और उसे राजधानी में ले गए। अपने साथी सुबुद्धि की सलाह से कुमार ने मढ़ी में एक अन्न सत्र खोल दिया।

चित्रावली ने जब राजकुमार के चित्र को देखा तो वह भी प्रेम विह्वल हो गई। उसने अपने भृत्यों को जोगियों के वेश में कुमार का पता लगाने को भेजा। एक कुटीचर की चुगली पर कुमारी की मां ने वह चित्र धुलवा दिया। राजकुमारी

१–वही पृ० ३३, ३८, ५४, १६७, १७२–७३।
२–वही पृ० ३२८–२९ (पद्मावत पृ० २०७–२०८)।
३–वही पृ० १६। ४–वही पृ० १८।

ने शापित होकर उस कुबेर का मुग्न कराके निवास किया। कुमारी के भेजे हुए जोगियों में से एक राजकुमार न अजस्त्र तक पहुँचा। वह राजकुमार को अपने साथ स्वनगर ले आया। एक शिव मन्दिर में उसका कुमारी के साथ साक्षात्कार हुआ। इसी समय कुबेर ने राजकुमार का अन्धा बना दिया और बलात्कार एक गुफा में छोड आया जहा उसे एक अजगर ने निगल लिया उसके विरह की ज्वाला से घबडाकर उसने उसे उगल दिया। एक वनमानुष के जबन से उसकी दृष्टि पुन उषा की त्यों हो गई। वन में उस एक हाथी ने पकड लिया। एक बडा भारी पक्षी उस हाथी को लेकर उड गया। पश्चात् हाथी ने राजकुमार को छोड दिया। राजकुमार एक समुद्र तट पर गिरा। घूमते फिरते वह सागर गढ नामक नगर में पहुँचा। वहाँ उसने राजकुमारी कमलावती के प्रमद्वन में विश्राम किया। राजकुमारी उसके ऊपर मोहित हो गई। राजकुमारी ने उसे अपने यहा भोजन के बहाने बुलवाया। भोजन में अपना हार रखवाकर चोरी के अपराध में उसे कैद करवा लिया।

× × ×

चित्रावली का भेजा हुआ वह जोगीदूत सुजान कुमार को एक स्थान पर बठाकर उसके आगमन की सूचना देने राजकुमारी के यहाँ चला। इस बीच एक दूती ने द्वेषवश यह समाचार रानी से कह दिया। बेचारा जोगीदूत बन्दी बना लिया गया। पर्याप्त विलम्ब जब हो गया और दूत नहीं लौटा तो सुजानकुमार विकल हो उठा। करुणावश उसने चित्रावली का नाम ले-लेकर पुकारना प्रारम्भ कर दिया। अपयश के डर से राजा ने उसे मारने के लिए एक मतवाला हाथी छोडा, किन्तु कुमार ने हाथी को मार डाला। राजा ने सदलबल उस पर आक्रमण करने का प्रयत्न किया। इसी बीच एक चित्रकार सागरगढ से लौटा और उसने उस राजकुमार का चित्र दिखलाया जिसने सोहिलगढ के राजा को मारा था। वह चित्र सुजान कुमार का ही है—यह जानकर राजा ने चित्रावली और सुजान का विवाह कर दिया। कुछ दिनो के पश्चात कमलावती ने विरह से संतप्त होकर हंस मिश्र को दूत बनाकर भेजा। उसने भ्रमर की अन्योक्ति के द्वारा सुजान को कवलावती के प्रेम की सुधि दिलाई। सुजान ने चित्रावली के साथ स्वदेश की ओर प्रस्थान किया। उसने मार्ग में कवलावती को भी साथ में ले लिया। वापस लौटते समय समुद्र में तूफान आने के कारण उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पडा। राजकुमार अपनी दोनों रानियों के साथ नेपाल लौट आया। पिता का हृदय आनन्द से भर गया। माता अन्धी हो गई थी, परन्तु पुत्र के दो रानियों के साथ आगमन जन्य हर्षातिरेक से उसके नेत्र खुल गये। राजा ने पुत्र का राज्याभिषेक करके उसे गद्दी दे दी। सुजान अपनी रानियों के साथ सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

चित्रावली का मूल-स्रोत

'चित्रावली सूफी कवियों की प्रेमगाथाओं की कोटि की है। यद्यपि उसमान ने यह दावा किया है कि—

'कथा एक मैं हिए उपाई। कहत मीठ औ सुनत सुहाई।
कहौं बनाय जस मोहिं सूझा। जेहि जस सूझ सो तेहि बूझा ॥

तथापि इस कहानी के प्रमुख तत्व इधर उधर लोकवार्ताओं में बिखरे मिलते हैं। उन्हीं से लेकर यह चित्रावली उसमान ने 'उपाई' है।'[1] इस कहानी का आधार निश्चय ही लोकवार्ता है।[2] यह जायसी के पदमावत और आलम की माधवानल कामकन्दला की भाँति ही प्रेमगाथा है। इसमें चित्रदर्शन से प्रेम का उदय हुआ है और उसके लिए अनेक कष्ट उठाने पड़े हैं।

इस कहानी के विश्लेषण से इसके कथा विधान में निम्नलिखित तत्वों की संयोजना मिलती है[3]—

१—दैवी तत्व (अ) शिव पार्वती का आना, सिर की भेंट माँगना, वरदान देना।
(आ) देव की मढ़ी, सुजान को उड़ाकर रूपनगर में ले जाना और ले आना।

२—अद्भुत विलक्षण तत्व—
(अ) सुजान को अजगर लीलता है, विरह की अग्नि से व्याकुल हो उगल देता है।
(आ) पुनः उसे हाथी पकड़ता है हाथी को पक्षी लेकर उड़ जाता है, हाथी उसे छोड़ देता है। बनमानुष उसे वनौषधि-अंजन देता है।
(इ) पागल सुजान का हाथी को मारना।
(ई) अंधी माता का पुत्र आगमन से दृष्टि पाना।

३—चित्र-दर्शन-द्वारा प्रेम—सुजान तथा चित्रावली में।

४—प्रत्यक्ष दर्शन से प्रेम—(अ) बनमानुष का। (आ) कवलावती का।

५—मिलन और विवाह में विविध बाधायें—
(अ) कुटीचर द्वारा
(आ) माता द्वारा
(इ) पिता द्वारा—जो सुजान पर युद्ध करने बढ़े।

१—मध्ययुगीन हिन्दी का लोकतात्विक अध्ययन, डा० सत्येन्द्र, पृ० १६२।
२—वही, पृ० २०१। ३—वही, पृ० २०३।

६—चित्र द्वारा विवाह का मार्ग खुलना – युद्ध के लिए आरूढ़ राजा चित्र पाकर सुजान की चित्रावली का विवाह करने को सन्नद्ध ।

७—मुख्य विवाह से पूर्व एक विवाह– कवलावती से ।

८—नायक का अन्धा किया जाना, तथा पुन एक प्रेमी के माध्यम से औषधोपचार से पुन दृष्टि पाना –

(अ) कुटीचर द्वारा अन्धा किया गया ।

(आ) वनमानुष ने भ्रम में पड़कर औषधोपचार से अच्छा किया ।

प्रस्तुत विश्लेषण से स्पष्ट है कि उसमान ने जायसी की ही भांति भारतीय कथानक रूढ़ियों के पर्याप्त प्रयोग किए हैं । अत यह कहा जा सकता है कि लौकिक तत्वों के माध्यम से उसमान ने इस सुन्दर प्रेमकाव्य की कथावस्तु का संघटन किया है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि चित्रावली पर जायसी के पद्मावत का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है ।

शेख नबीकृत ज्ञानदीप

(रचनाकाल १६१४ ई०—१६१९ ई०)

ज्ञानदीप की एक प्रति का उल्लेख नागरीप्रचारिणी सभा, काशी की खोज रिपोर्ट[1] (सन१९०२) में किया गया था । शेख नबी जौनपुर के दोसमऊ के पास 'मऊ' नामक स्थान के रहने वाले थे । स० १६७६ में जहाँगीर के समय में वर्तमान थे । ज्ञानदीप के अन्त साक्ष्य से स्पष्ट है कि यह काव्य १०२६ हिजरी में लिखा गया –

एक हजार सन रहे छबीसा । राज सुनही जहांगीर नरीसा ।
सम्वत सोलह स छिहत्तर । उक्ति भरत कीन्ह अनुसारा ।
अदरेमऊ दोमपुर थाना । जउनपुर सरकार सुजाना ।।
तहवां शेख नबी कवि कही । शब्द अमर गुन पिंगल मही ।
वीर, सिंगार विरह किछु पावा । पूरन पद स जोग सुनावा ।'

इस काव्य की कथा के द्वारा आनन्द की निष्पत्ति ही उनका लक्ष्य है, यदि कवि के श्रम से पाप का विनाश और पुण्य का प्रकाश हुआ तो वह अपना श्रम सार्थक समझेगा —

१—खोज रिपोर्ट १९०२, नोटिस १०२ । इसमें १५०० श्लोक हैं । यह प्रति खोज के समय मौलवी अब्दुल्ला, धुनियां टोला, मिरजापुर के पास प्राप्त हुई थी ।

सवरस पाइ किहेउ सनमाना। जो आनन्द हिय होइ निदाना।
बिनती एक किहेउ विधि पाही। मिट पाप पुन ऊपज ताही।

कवि ने अत्यन्त ईमानदारी के साथ प्रारम्भ में ही कह दिया है कि यह कथा उसने सुनी थी –

पोथी बाच नवी कवि कही। जे कछु सुनी कहू स रही।
आखर चारि कहा म जोरी। मन उपराजा न कीन्हेउ चोरी।

मसनवी-पद्धति के अनुसार कवि ने प्रारम्भ में ईश्वर-स्तुति की है पश्चात मुहम्मद साहब की प्रशस्ति की है। कवि ने सम्राट जहांगीर शाहे तख्त का भी उल्लेख किया है –

सुराजीन दिनपति जहांगार निजनेम।
सहि सनीम छत्रपति छौनी दन के मार कवन दम द्रोनी।

कथा

नमिसार के राजा का नाम राय शिरोमणि था। भगवान शकर की कृपा से उनके एक पुत्र हुआ – उसका नाम उन्होंने ज्ञानदीप रखा। वह प्रतिभा था। एक दिन शिकार में वह भटक गया। वहां सिद्धनाथ योगी ने उसे संसार से विरक्त करने का प्रयत्न किया। उसे ये बातें बड़ी नारस लगीं। अतः योगी ने उसे संगीत द्वारा विरक्त करने का यत्न किया।

विद्यानगर के राजा सुखदेव के देवजानी नामकी एक विदुषी पुत्री थी। ज्ञानदीप जाती के वश में वसुर पण था। देवजानी की सखी सुरजानी ने उसे संगीत के द्वारा जगाया। उसने देवजानी से सारी बात कही। ज्ञानदीप के रूप को देख कर देवजानी विमोहित हो गई। ज्ञानदीप की समाधि और उदासीनता के कारण देवजानी का वशीकरण मंत्र भी विफल हो गया। सुरजानी ने मनवन से कागज का एक अश्व बनाया। पार्वती जी की कृपा से उसे जीवन मिला और प्रतिदिन ज्ञानदीप उस घोड़े पर सवार होकर महल की छत पर उतरता और देवजानी से मिलता। एक दिन छत पर उतरते समय राजा ने उसे मार गिराया। उसे मृत्युदण्ड की आज्ञा दे दी गई। मंत्री की सलाह पर उसे नहीं मारा गया। राजा ने उसे एक काष्ठ-मंजूषा में बन्द करके नदी में प्रवाहित कर दिया। वह मंजूषा बहती मानपुर में पहुंची। उसमें से ज्ञानदीप को निकालकर मानराय के दरबार में उपस्थित किया गया। उसकी बातें सुनकर राजा ने अपने यहां रख लिया।

जब देवजानी को ज्ञानदीप के बहा दिए जाने का समाचार मिला तो वह अग्निकुण्ड में कूद पड़ी पर पार्वती जी की कृपा से बच गई। शकर जी ने राजा सुखदेव को सपने में बताया कि ज्ञानदीप निर्दोष है राजा ने चारों ओर देवजानी के

स्वयवर का समाचार भेज दिया। स्वयवर मे देवजानी ने ज्ञानदीप का वरण किया धूमधाम से दोनों का विवाह हुआ। इसी बीच मानराय का स्वर्गवास हो गया और ज्ञानदीप को मानपुर आना पडा। देवजानी का विरह बढ़ता गया और सुरज्ञानी के श्रम से पुन दोनों का मिलन हुआ। जब देवजानी के साथ ज्ञानदीप अपनी राजधानी की ओर लौट रहा था तो रास्ते में छलपूर्वक सुदर पुर के राजा ने उसे अपनाने का प्रयत्न किया किन्तु ज्ञानदीप ने उसे हरा दिया। देवजानी के साथ ज्ञानदीप स्वदेश लौटा। माता-पिता के हर्ष का पार न रहा।

ज्ञानदीप में कवि ने प्रयाग-दर्शन-जन्य प्रेम और उसके विकास की कथा कही है। इसके मूल मे है गुरु सिद्धिनाथ — जो उसे देवजानी के पास तक पहुँचा आते हैं। देवजानी परम-ज्योति-स्वरूपा है। गुरु सखी का प्रयत्न प्रेम जोगी-रूप युद्ध यात्रा पावनी एवम शंकर की कृपा स्वयम्वर प्रभृति कथानक-रूढ़ियों की योजना से कथावस्तु का सघटन किया गया है।

ज्ञानदीप की कथा सुखान्त है। प्रेमोदय पहले नायिका के हृदय में दिखाया गया है। मूलत इस काव्य मे श्रृगार-रस की प्रधानता है। श्रृगार के क्षेत्र में भी कवि ने केवल विप्रलम्भ तक ही वर्णन किया है। सयोगावस्था के वर्णन का प्राय अभाव है।

देवजानी की विरहावस्था के चित्रण में प्रकृति का उद्दीपक रूप अधिक निखार पा सका है। कोयल की कूक मोर का शोर और पपीहे की पी-पी आदि उसकी अवस्था को करुणातर बना देते हैं—

देखत चन्द चन्द निरारा। पपिहा बोल सबल जिउ मारा।
बोलहि मोर सोर बन माहा। मानी बूझनि कामनन डाहा ॥
कोकिल कूकत करत बोली। विरह पसीजि भीजि तन चोली ॥

विद्यापति की राधा सूर की राधा और जायसी की नागमती की ही भांति ज्ञानदीप की देवजानी को भी बीणावादन के कारण चन्द्रमा सुखद है उसके मृग आगे नहीं बढ़ते और रात नहीं बीतती —

कबहु बीन का डाह बजावे। मधुरा मधुर सुर गाइ सुनावे।
मीग थकित होइ चन्द को रेन घटत बढ जाइ।
मदन सूता तब जागे तहि गुन दिहेसि अन्हाइ ॥

उपचार-स्वरूप वह राह 'सार्जारी पून' भुजग साहिल आदि का आलेखन करती है —

चरनानि सौं निसिसि भुमिहु राह। धानिया कह से पालनि बाहू।
लिखि भुजग औ साहिल लिखा। विरह मयूर जेह सोखे सोखा ॥'

ज्ञानदीप का बारहमासा पद्मावत की ही भाँति 'आषाढ़ से ही आरम्भ होता

है। जायसी का प्रभाव इस बारहमासे म द्रष्ट्य है। परिवतमान ऋतुओ और उनके उपकरणो के विरहिणी पर पडते हुए प्रभावो को कवि ने स्पष्ट किया है। एक ही साथ कवि ने प्रकृति के सुखद एवम दुखद – दोनो आयामो का वणन किया है –

सयोगिनियो के लिए सुखद प्रकृति –

हरिअर पहुमी भइ चहु ओरा। राजहि सखी विराजि हिंडोरा।
झुलहिं औ मलार रस गावहिं। रीझि कत सो रीनि झुलावहिं।
सुख–ममन सब रन विहाई। घन घाउ रस भाउ अधाई।
सारग मोर पपीहा विरह भरे मुख बन।
सुनि–सुनि सुप सजोगिनि, देखि देखि पिय नन।

वियोगियो के लिए दाहक प्रकृति –

एहि सावन बिरहिन तन तावन। बरसत जन दुप बीच जमावन।
मेचक मेघ मनो वज सना। अकुस चडित महाउत मना।
पिक नकीब चात्रिक हरवारे। सोक सबद यानिहिं पडवाह।
बुद बान बरस चहु ओरा। दुख प्रान चनि नास हिंडोरा।
भरा न घाम पठि विश्रामी। नन मूदि सरखि सुपसामी॥
एह दुप बितव नायिका नायक जिनहिं विदेस।
भून सब सिंगार रस भई सो जोगिन बेस॥

हरिपर पहुमी भइ चहु ओरा प्रभति वणनो मे जायसी का स्पष्ट प्रभाव पडा है।

कासिमशाह कृत हँस जवाहिर — रचनाकाल १७६३ वि० (१७३६ ई०)

प्राप्त प्रतिया – हस जवाहिर एक अत्यन्त नोकप्रिय प्रमाख्यानक काव्य है। इस ग्रथ के दो सस्करण फारसी लिपि[1] म प्रकाशित हुए हैं। ये दोनो सस्करण लखनऊ से क्रमश १६ १ ई० और १६१ ई० म प्रकाशित हुए थे। हिन्दी म भी इसके कई सस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। एक नवलकिशोर प्रस लखनऊ म प्रकाशित हुआ था और दूसरा अयोध्या स इसकी एक हस्तलिखित प्रति श्री शेख कादिरबख्श मकडी खोह मिरजापुर[2] के पास सुरक्षित है। इसकी लिपि कथी है और इसम कुल ३६८ प० हैं। उसकी लिखावट अत्यन्त सुन्दर और सपाठय है। इसकी एक दूसरी हस्तलिखित प्रति श्री हबीबुल्ला रखहावाजार डा खास प्रतापगढ़[3] के पास है।

१–नामी प्रस, लखनऊ (से हस जवाहिर का फारसी अक्षरो मे प्रकाशन हुआ था)।
२–ना० प्रचारिणी सभा, खोज रिपोट, १६०२।१। ३–वही १६२६।२८७।

कथा

बलख के सुल्तान की मृत्यु के पश्चात उसके एकमात्र पुत्र हंस को शत्रुओं ने बन्दी बना लिया, किन्तु उसकी मा उसे लेकर रूम देश के शाह यहाँ भाग के गई— वहाँ उसका बड़ा सम्मान हुआ। एक वर्ष पश्चात हंस ने सपने में एक सुंदरी को देखा। वह उसके रूप पर विमुग्ध हो गया।

चीन देश के बादशाह आलमशाह की रानी के गर्भ से जवाहिर नाम की एक पुत्री हुई। बड़ी होने पर एक दिन वह एक तालाब में स्नान करने गई। वहाँ उसकी एक परी से मित्रता हो गई। वह परी शम्स नाम में जवाहिर के ही पंचमहल में रहने लगी। जवाहिर के पिता ने उसका विवाह सुल्तान मोलाशाह के पुत्र दिनौर से ठीक कर दिया। शम्स ने दिनौर की बड़ी निन्दा की। वह पक्षी रूप में जवाहिर के लिए वर ढूंढने चल पड़ी। वह रूम देश में पहुंची। उसने हंस से जवाहिर के सौंदर्यादि की प्रशंसा की। शम्स के नखशिख वर्णन से वह अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसे स्वप्न सपने की सुधि हो आई। वह जोगी रूप में उसकी खोज में निकलना चाहता था, किन्तु शम्स ने उसे सात दिनों तक ऐसा न करने के लिए मना किया। उसने लौटकर जवाहिर से सारी बातें बता दीं। किसी के चुगली करने पर शम्स बन्दिनी बना ली गई और उसका वस्त्र भी छीन लिया गया। अब वह उड़ने में असमर्थ हो गई। दिनौर के विवाह की तैयारियां हुईं। हंस भटकते हुए एक पहाड़ पर पहुंचा और वहां सो गया। वहां से परियां उसे उठा ले गईं और दिनौर को बारात से उठा ले गईं। उसके स्थान पर हंस को बिठा आईं। हंस और जवाहिर का विवाह हो गया। रात में अंगूठियां बदली गईं और रात्रि में आनन्द केलि के अनन्तर वे सो गए। परियां हंस को उठा ले गईं और दिनौर को रख आईं।

रानी जवाहिर ने दिनौर को अस्वीकार कर दिया। इधर हंस बहुत व्याकुल हुआ। जवाहिर की मां ने शम्स परी को मुक्त कर दिया। वह हंस के यहां पक्षी रूप में पहुंची। जवाहिर का वृत्तांत सुनकर हंस जोगी होकर निकल पड़ा। उसके साथ उसके बहुत से साथी भी चले। शम्स पक्षी उनका पथ प्रदर्शक बना। किसी प्रकार अनेक विघ्नों को पार करके वे जवाहिर के नगर में पहुंचे। दोनों प्रेमियों का मिलन हुआ। हंस को अपने देश की सुधि हो आई। वह जवाहिर के साथ रूम की ओर चला, पर मार्ग में बोरनाथ के चेले ने उन्हें वियुक्त कर दिया। हंस योगी होकर भटकता रहा। वह मोनाशाह के यहां पहुँचा। वहां दिनौर की बहिन से उसका विवाह हुआ। शम्स के प्रयत्न से जवाहिर और हंस का पुनर्मिलन हुआ। हंस अपनी दोनों रानियों के साथ रूम लौटा। वह रूम का बादशाह बना और उसने

बलख को जीत लिया। जवाहिर के गर्भ से हुसीन नामक एक पुत्र हुआ। हुस के विरोधी मीरदौला के पुत्र ने अनक सुलतानों के साथ उस पर आक्रमण किया। उसकी छुरी के वार से हुस की मृत्यु हो गई। दोनों रानियों ने प्राणत्याग दिए। बाद में हुसीन राजा हुआ।

हुस जवाहिर की कथावस्तु कल्पनिक है। प्रेमाख्यानक काव्यों की काव्य रूढ़ियों का प्रयोग इसमें द्रष्टव्य है कवि आदि से अन्त तक (प्राय) जायसी और उनकी कृति पदमावत से प्रभावित है। कवि के समक्ष पदमावत और उसकी कथा थी। उसने उसी के साँचे में इस कथा को ढालने का प्रयत्न किया है। स्थान-स्थान पर जायसी की पदावली भी ज्यों की त्यों ले ली गई है। इस काव्य में प्रौढ़ता का प्रायः अभाव है।

पदमावत की ही भाँति यह कृति भी विषादांत है।

पातिहि पाति सोवाय कै देह उपर तें छार।
छानहि करत ओनाय कै अन्त छार के छार॥[1]

छार उठाइ लीन्हि एक मूठी। दीन्हि उड़ाइ पिरिथमी झूठी।[2]

कवि ने कथा के अन्त में कथा की आध्यात्मिकता की ओर स्पष्ट संकेत किया है—

कासिम कथा जो प्रेम बखानी। बूझ सोई जो प्रेम गियानी।
कौन जवाहर रूप सोहाई। कौन शाह जो करत बडाई॥
कौन हुस जो दरसन लोभा। कौन देस जेहि ऊँची शोभा।
कौन पंथ जो कठिन अपारा। कौन शाह जो उतरे पारा।
कौनमीत जिन संग जिव दीन्हा। कौन सो दुरजन अतिछल कीन्हा।
को मानी जिन बानि सुनावा। कौन पुरुष जिवसुन चित लावा।
कौन दुष्ट जेहि दरस न जूझा। कौन भेद जेहि शाहहिं सूझा।[3]

बाच कथा पाथी भुवन परसन तेहि जगदीश।
हमहिं बोन सुमिरे सोइ कासिम दई असीस॥

इन पंक्तियों पर जायसी की निम्नांकित पंक्तियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है—

महम्मद यहि कवि जोरि सुनावा। सुना जो प्रेम पीर गा पावा
जोरी नाइ रकत कै लेई। गाढ़ी प्रीति नैन जल भेई॥
जो मन जानि कवित अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा॥
कहाँ सो रतनसेनि अस राजा। कहा सुना अस बुधि उपराजा।

१—हुस जवाहिर कासिमशाह पृ २७०–७१।
२—पद्मावत डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पृ० ७१२।६५१।४।
३—हुस जवाहिर प्रति कासिमशाह पृ० २७२।

कहाँ अलाउद्दीन सुलतानू । कहँ राघौ जेइ कीन्ह बखानू ।
कहँ सुरूप पदमावति रानी । कोइ न रहा जग रही कहानी ।
धनि सो पुरुष जस कीरति जासू । फल मर पै मर न बासू ॥
केइ न जगत जस बेंचा, केइ न जगत जस मोल ।
जो यह पढ़ कहानी, हम सवरै दुइ बोल ॥[1]

इसी प्रकार हंस जवाहिर का औपसहारिक छन्द (जिसमें कवि ने वृद्धावस्था का वर्णन किया है) पद्मावत के छन्द से प्रभावित है। उदाहरण के लिए एक छन्द पंक्ति पर्याप्त होगी—

'कासिम यौवन हाथ है, चाहे सो काज सवार ।
पुनि हस्तीवर नयनो, कौन उठाए भार ॥'[2]
'मुहमद बिरिध बएस अब भई । जोबन हुत सो अवस्था गई ।
+ + +
तब लगि जीवन जोबन साथा । पुनि सो मीचु पराए हाथा ।
बिरिध जो सीस डोलावै सीस धुनै तेहि रीस ।
बूढ़ आदै होहु तुम्ह केइ यह दीन्ह असीस ॥'[3]

जायसी से प्रभावित होकर कासिमशाह ने अपने काव्य में अनेक मार्मिक स्थलों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। हंस के पिता की मृत्यु के पश्चात परिवार की करुण दशा (जवाहर का सौन्दर्यवर्णन, प्रेममार्ग जवाहर की वियोगदशा, परियों की सहायतायें, आदि प्रसंगों पर जायसी की छाप तो है पर कासिमशाह काव्य सौन्दर्य के आलयन में असफल हैं।

नूरमुहम्मद कृत 'इन्द्रावती'

रचनाकाल ११५७ हि० (सं० १८२१ या १७४४ ई०)

प्रतियाँ—इन्द्रावती की रचना पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में हुई थी। डा० श्यामसुन्दरदास ने इन्द्रावती के पूर्वार्द्ध को संपादित करके नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित किया था। इसका उत्तरार्द्ध अभी तक अप्रकाशित है। सं० १९६० की एक हस्तलिखित प्रति के आधार[4] पर डा० श्यामसुन्दरदास ने उत्तरार्द्ध इन्द्रावती की एक प्रतिलिपि करवा दी है—जो नागरीप्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। खोज

१—पदमावत ६५२।
२—हंस जवाहिर कासिमशाह पृ० २७२-७३।
३—पदमावत ६५३।
४—इन्द्रावती नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० ४ (१९०६)।

रिपोर्ट[1] में इसकी एक हस्तलिखित प्रति का विवरण दिया हुआ है। इसमे कुल ६०० पन्ने हैं। यह कथी लिपि म है और मौलवी अब्दुल्ला, पुलियाजा टोला, मिरजापुर के पास सुरक्षित है। इन्द्रावती के सौन्दर्य वर्णन, शिव मंदिर म, मिलन-वर्णन, विरह वर्णन और युद्ध-वर्णन के प्रसंगो में पदमावत का स्पष्ट प्रभाव है। अब इन्द्रावती के दोनों भाग प्रकाशित हो चुके हैं।

कथा (पूर्वार्द्ध)

कालिंजर के राजा 'राजकुवर' ने एक रात स्वप्न म दर्पणगत किसी सुन्दरी का प्रतिबिम्ब देखा। दूसरी रात पुन उसने उस रूपवती की मुख पर बिखरी लट छवि वान रूप को स्वप्न म देखा। राजकुवर के राजकाज से विपत्ति-सी ले ली। उसकी चिंता से सभी लोग द खित हुए। एक तपस्वी न उसे बताया कि वह सुन्दरी सागर के उसपार स्थित आगमपुर नगर के जगपति राजा की रतनसेन इन्द्रावती नामक पुत्री है। वह रूप-गुण की खान है।

'राजकुवर' ने तपस्वी गुरुनाथ को अपना पथप्रदर्शक बनाया और अपने आठ साथियों के साथ जोगी होकर आगमपुर की ओर चल पड़ा। अनेक विघ्नों और अन्त रायों को पार करके वह आगमपुर पहुच गया। वहा शिव मंदिर म आकाशवाणी हुई और वह राजकुमारी की मन फुलवारी मे गया। वहा होली की धूम थी। इन्द्रावती ने अपना शृंगार किया-दर्पण मे अपनी छवि देखकर वह स्वय पर रीझ गई। राजकुवर की सहायता चेता नामक एक मालिन ने की। वाटिका म दोनों का मिलन हुआ, किन्तु राजकुमारी के रूप को देखते ही राजकुवर[2] मूर्छित हो गया। राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए समुद्र से एक मोती निकालना आवश्यक था-इस काय म उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा युद्ध करना पड़ा वह बन्दी हुआ। उसके मत्री बुद्धसेन और 'कपा' राजा की सहायता से वह मुक्त हुआ।

जब इन्द्रावती ने सुना कि उसका प्रियतम बन्दी हुआ है तो उसकी वेदना बढ़ गई। सखियों ने अनेक प्रकार के उपचार से और रात म मधुकर मालती 'हीरामा निक' प्रभृति प्र मगाथाओं को सुना करके उसके द ख को कम करने का प्रयत्न किया। तपस्वी गुरुनाथ की सहायता स सच्चा प्र म जान लेने के बाद सागरपुत्री कमला देवी ने प्रसन्न होकर उसे वह मोती दिया। राजकुवर से वह मोती पाकर जगपति ने इन्द्रावती और राजकुवर का विवाह कर दिया।

१—खोज रिपोर्ट, १९०२, नोटिस इन्द्रावती, पृ० ३०४।

२—द्रष्टव्य—पदमावती के रूप-वर्णन को सुनकर और शिव मन्दिर में उसे देखकर रत्न सेन का मूर्च्छित हो जाना। पदमावत

दक्खिनी हिन्दी के प्रेमाख्यान

दक्खिनी हिन्दी मे भी सूफी प्रेमाख्यानो की रचना हुई है। हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों के रचयिताओं के समक्ष सम्भवत ऐसा कोई उपयुक्त आदर्श उपस्थित रहा होगा जिसका अनुसरण करना उन्हें स्वाभाविक जान पडता होगा। यह विशेष कर उनके समय तक प्रचलित उन विशिष्ट अपभ्रंश या प्राकृत आख्यानो के रूप मे रहा होगा जिनमे से कुछ की रचना का उद्देश्य धार्मिक प्रचार भी हो सकता था। सूफी कवियो ने अपनी रचनाओ का ढाँचा अधिकतर इन्ही के अनुरूप खडा किया होगा जिस कारण उनकी रचनाओ के अंतर्गत वे सारी बातें आप से आप आ गई होंगी जो इसके लिए सामान्य समझी जा सकती थीं। परन्तु ऐसा करते समय उनका ध्यान सम्भवत उन फारसी सूफी प्रेमाख्यानों की ओर भी अवश्य आकृष्ट हुआ होगा जिनका निर्माण अधिकतर निजामी (म० १२०३ ई०) के समय से होने लगा था और जिनकी कुछ बातों को अपने यहाँ समाविष्ट कर लेना उनके लिए स्वाभाविक भी था। प० परशुराम चतुर्वेदी[1] का कथन है कि उत्तरी भारत के हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानो के लिए कोई पूर्व प्रचलित भारतीय रचनादर्श वर्तमान रहने के कारण इधर फारसी साहित्य का प्रभाव उतना नही पड सका जितना दक्खिनी हिन्दी की ऐसी रचनाओ पर पडा।

परन्तु इसका परिणाम भी केवल इसी रूप मे लक्षित होता है कि दक्खिनी हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों का बाह्य रंगढंग उत्तरी भारत की ऐसी रचनाओ से बहुत कुछ भिन्न जान पडता है और भाषा शैली, काव्यरूप एवं छन्द प्रयोग जैसी बातो मे वे एक दूसरे के समान नही है। वर्ण्य विषय एवं मूल उद्देश्य के सम्बन्ध मे दोनो के कवियो मे बहुत अधिक अंतर नहीं है। दक्खिन वाले शामी संस्कृति और शामी आदर्शों द्वारा अवश्य अधिक प्रभावित हैं और उनमे कभी कभी इस्लामी कट्टरता तक दीख पडने लगती है। किन्तु अपनी रचनाओ के अंतर्गत लोक तत्व की प्रतिभा करते समय ये उत्तर वालो से किसी प्रकार भिन्न नहीं जान पडते। इनके काव्यो मे कहीं-कहीं प्राचीन बेदुइन अरबो के प्रेम की स्वच्छन्दता है तो कभी-कभी ईरानी प्रेम की आध्यात्मिकता भी मिलती है।

निजामीकृत 'कदम राव व पदम'

(रचना काल १४५७ ई० के बाद)

निजामी सुलतान अहमदशाह सालिस बहमनी (हिजरी ८६५) के जमाने मे मौजूद था। वह सुलतान का दरबारी शायर था। कहा जाता है कि इसकी एक प्रति

१–हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान पृ० १५।

अंजुमन तरक्किए उर्दू (पाकिस्तान) में सुरक्षित है। इस प्रेमाख्यान के कतिपय पृष्ठों के चित्र इस संस्था के मुखपत्र — कौमी जबान में प्रकाशित हो चुके हैं।[1]

हाशमी साहब के विवरण से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ की रचना शैली साधारणत वही है जो बहुत सी अन्य सूफी मसनवियों में देखी जा सकती है। यहाँ पर भी उसी प्रकार से गुसाईं परमेश्वर की स्तुति की गई है उसी प्रकार बड़े लोगों का गुणगान किया गया है। अभी तक इसकी कथा का पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं हो सका है। इसलिए यहाँ नहीं जा सकता कि इसका कथानक निरा काल्पनिक है अथवा किसी प्रचलित आधार पर आश्रित है। इस रचना का छन्द अवश्य फारसी का कोई बहर जान पड़ता है और इसकी भाषा में बहुत से हिन्दी व संस्कृत के शब्दों का समावेश दीख पड़ता है। स्वयं हाशमी साहब का कथन है कि हसन शाह शौकी का... इसमें और अरबी फारसी के बजाय हिन्दी अल्फाज ज्यादा हैं। इसकी जबान इस कदर मुश्किल है कि इसका समझना निहायत दुश्वार है।[2] बड़े दुख की बात है कि इतनी महत्वपूर्ण पुस्तक की प्रति पाकिस्तान में है और हमें प्रयत्न करने पर भी कोई विवरण नहीं मिल सका। हाशमी साहब ने जो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं। उनसे यह स्पष्ट नहीं होता कि इस कथानक का नायक कौन है और नायिका कौन है-

कित सोच मेरा गुसाईं कदम। पदम राव तुम पाँव मेरा पदम ॥

जहाँ तू धरे पाय हो सर धरूँ। आयम मार कीन कराई करूँ ॥[3]

मुल्ला वजहीकृत 'कुतुबमुश्तरी'

(रचनाकाल सं० १६६६ ई)

मुल्ला वजही गोलकुण्डा के इब्राहीम कुतुबशाह के दरबार का कवि था। कुतुब मुश्तरी का रचनाकाल के विषय में उसने लिखा है—

तमाम इसकिया दीस बारा मने। सन एक हजार ठोर अठारा मने ॥[4]

इस प्रकार स्पष्ट है कि इसका रचना काल १०१८ हि० अर्थात् १६१० ई है।

उसने इसके कथानक स्वयं अपने समय के शाहजादे मुहम्मद कुली के जीवन

१—नसीरुद्दीन हाशमी, दकन में उर्दू (१९८२ ई) मकतबा मुईउन अन्य उर्दू बाजार लाहौर पृ० ३३।

२—वही पृ० ३५।

३—वही पृ० ३७ (दक्खिनी हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान पृ० १२४ से उद्धृत।

४—श्रीराम शर्मा द्वारा सम्पादित सबरस प्र० पृ० १।

५—कुतुब मुश्तरी दक्खिनी प्रकाशन समिति हैदराबाद पृ० ५।

म तयार किया है। उसी के आधार पर उसने वा पशाल से लेकर ग्रंसर किसी मुन्दरी नाम की मुदरी के साथ प्रेम सम्बन्ध तक की कहानी प्रस्तुत कर दी है। कदमराव व पदम तया कुतुब मुश्तरी के बीच के १८० वर्षों के मध्य लिखी हुई किसी मसनवी का पता नहीं चलता। कुतुबमुश्तरी म ऐसे प्रसग या स्थल बहुत ही कम हैं जिनमे ईश्वरीय प्रेम की ओर इगित हो या जिनकी व्याख्या सूफी विचार धारा के अनुसार की जाय।

'गवासी' कृत 'सैफुलमुलूक व बदीउल जमाल' और तूतीनामा'—

गोलकुडा का गवासी मुल्ला वजही का समकालीन कवि था। इसकी उपयुक्त दो मसनवियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। सफुल मुलूक व बदीउल जमाल का रचना काल १०२७ हिजरी अर्थात १६१७ अथवा १६१६ ई० है। कि इसकी कहानी किसी फारसी की गद्य पुस्तक से ली गई है। इसम मिस्र के बादशाह आसिमनवन के फरज" सफुलमुलूक और गुलिस्तान ऐरम की शाहजादी बदीउल जमाल के 'इश्क की कथा वर्णित है। कथा का प्रारम्भ मिस्र देश के बादशाह से होता है। इसम यवन देश, चीन, लका सिंहलद्वीप, इसकन्दद्वीप आदि अनेक स्थानो की चर्चा आती है। इसकी कथा वस्तु का सगठन उत्तरीभारत के प्रेमाख्यानो स बहुत कुछ मिलता जुलता है। मृगावती म रुक्मिनी की सहायता म नायक को नायिका की प्राप्ति होती है प्रेमा की सहायता से मधुमालती और मनोहर का मिलन होता है। इसी प्रकार इस कथा म भी एक राजकुमारी की ही सहायता से नायक को नायिका की प्राप्ति होती है। जादुई अगूठी तस्वीर देखकर प्रेम-विभोर होना, सागर-यात्रा तूफान और जलयान ध्वस राक्षस राक्षस का वध करके राजकुमारी की रक्षा प्रभति भयानक रूढियो के दर्शन हम इस कथा म होते हैं।

मिस्र के बादशाह आसिमनवन की यवनदेशीय पत्नी से एक लडका पदा हुआ, उसका नाम सफुलमुलूक रखा गया। उसी दिन वजीर को भी एक लडका पदा हुआ उसका नाम साऊद रखा गया। बादशाह न अपने बेटे को एक जरीदार कपडा और एक सुलेमानी अगूठी दी। कपडे पर गुलिस्तान ऐरम की शाहजादी की तस्वीर बनी थी। सफुलमुलूक साऊद के साथ उसकी खोज म चल पडा। समुद्र को पार कर वे चीन पहुँचे। वहाँ से वे कुस्तुनुनियाँ के लिए चले। सागर म तूफान आया। वे यह गए। उसने इस्कन्द द्वीप म एक राक्षस की कद से एक राजकुमारी का उद्धार किया। उसी की सहायता से उसे बदीउल जमाल की प्राप्ति हुई। दोनो का विवाह हुआ और वह अपने देश लौट आया।

गवासी कृत तूतीनामा का मूलस्रोत शुकसप्तति है शुकसप्तति की सत्तर कहानियो म से ५२ से लेकर मौलाना जियाउद्दीन नख्शबी ने उसका फारसी अनुवाद

(७३० हि० अर्थात स० १३२९) में किया था।

उनमे से ३५ से लेकर मुल्ला सयद मुहम्मद कान्री ने हि० १०६३ अर्थात १६८१ म उसका एक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया था इन दिनो की भाषा फारसी रही। कहा जाता है कि गवासी ने मौलाना नख्शवी के तूतीनामा से ४५ कहानिया को चुनकर अपनी कृति का निर्माण किया है।[1] इसका रचनाकाल स० १६६५ बत लाया गया है। इसकी कथा का आरम्भ हिदुस्तान के एक धनी सौदागार की वाणिज्य यात्रा से होता है। इसकी मूलकथा के एक रहते हुए भी प्रसगवश ऐसी अनेक अन्य कहानियां का समावेश हो जाता है। जिनमे उसका कोई भी प्रत्यक्ष सम्ब ध नही प्रत्युत जिनकी सख्या केवल दृष्टात प्रदान के व्याज से उत्तरोत्तर बढती ही चली जाती है। उत्तर भारत के हिन्दी सूफी कवियो ने ऐसी रचना-शली को इस रूप म कदाचित कभी न अपनाया था यद्यपि उनके लिए यहाँ वसे आदर्शों की कमी भी नही कही जा सकती।[2]

गवासी की चदा और लोरक नामकी एक और मसनवी मिली है। यह भी फारसी से तजुमा की गई है। इसकी तसनीफ सन १०३८ हि० के पहले हुई होगी।[3] दक्न मे उदू के अतगत इसकी केवल कुछ ही पक्तियाँ उदधत का गई हैं जिनसे कहानी की मूल कथा का ठीक पता नही चलता। फिर भी अन्यत्र दिए गए इसके कतिपय पद्यो को इनको मिलाकर देखने से यह स्पष्ट होते देर नही लगती कि इस मसनवी का सबध प्रसिद्ध लोरिक व चन्दा की ही कहानी से है।

गवासी की कुछ पत्तियो को मिलाकर पढ़ने से प्रतीत होता है कि इसकी कहानी कुछ भिन्न है। यहाँ पर चन्दा किसी नगर के बादशाह की पुत्री है। जिसका नाम सभवत बाना या मानाकुवर है। इसके सिवाय जब चन्दा को चोरी से लेकर लोरिक भाग निकलता है और बादशाह को इस बात की सूचना दी जाती है तो वह वहाँ पर कहता है अच्छा हुआ मेरी बाधा टल गई। लोरिक के घर उसकी एक परम सुन्दरी नारी है जिस मैं प्यार करता हूँ और उसे अब किसी कुटनी द्वारा पालन म मुझे सुविधा हो सकेगी।[4]

इस कहानी म न तो कहीं चन्दा के किसी पुव पति बावन की चर्चा है न

१–ततीनामा स० मीर सआदत अली रिजवी (हैदराबाद हि १३५७) मुकदम पृ० ३१

२–हिन्दी के सूफी प्रमाख्यान पृ० परशुराम चतुर्वेदी पृ० १२९

३–दक्न म उदू, पृ० ७८

४–दक्खिनी का पद्य और गद्य स० श्रीराम शर्मा पृ० २८६ ८६ (१६५४ ई०)

५–वही पृ० २८८ ८६

न उसके भागने समय के विघ्नों का ही वर्णन है। लोरिक की पत्नी मैना के पतिव्रता होने की ओर सकेत कुछ अवश्य मिलते हैं। चदा से लोरिक स्वय कहता है—

"यों सुनकर कहा मेरे घर नार है। ओ सतवतनार वा ईमान औतार है।
के साहब मुझे चन्दा होर मूर का। मेरे घर म सोना है कोहनूर का।
हम्म पाक कहू मैं टुक एक। पतिव्रत मनासा है नाँव नेक॥"[1]

दोनों कहानियों म लोरिक जाति का ग्वाला ही है और गोरू चराने का काम भी करता है। इसके रचनाकाल के विषय में दिए गए हाशमी साहब के अनुमान 'इसकी तसनीफ हि० स० १०३५ के पहले हुई होगी।' से केवल यही जान पड़ता है कि यह समय चन्दायन स लगभग २५० वर्ष पीछे का होगा।[2] स्वय मुल्ला दाऊद की कतिपय पक्तियों स ध्वनित होता है कि लोरिक एव चन्दा की कथा उनके समय से भी प्रसिद्ध रही होगी। 'किस्सा मना सतवती' के रचयिता के सम्बन्ध में अनुमान किया गया है कि वह सभवत गवासी ही रहा होगा और इसके लिए उसके अन्त की दो पक्तियाँ भी उद्धृत की गई हैं—

'गवासी यो करना करम की नजर दुआ हक सा मगना मेरे हक उपर॥'[3]

ये प क्तियाँ हाशमी साहब द्वारा चदा और लोरक मसनवी से ली गई प क्तियों में भी दीख पड़ती हैं। इन बातों की विवेचना करते हुए प० परशुराम चतुर्वेदी ने निष्कर्ष निकाला है कि उपलब्ध सामग्री के आधार पर हम इतना और अनुमान कर लेने के लिए कोई साधन नहीं कि इस रचना का रूप किसी सूफी प्रेमगाथा का था अथवा यह केवल किसी शुद्ध प्रेमगाथा की परम्परा के ही अनुसार निर्मित की गई थी। यदि इसका रचना काल स० १६८२ के पूर्व का भी मान लिया जाय उस दशा म भी यह मसनवी की कृति होने के नाते उसके जीवन-काल से पहले की रची नहीं कही जा सकती और इसी कारण यह साधन कवि की 'मनासत' के पीछे की ठहरती है। अतएव हो सकता है कि मना व मीना के सतीत्व पालन की कहानी इन दोनों कवियों के बहुत पहले से सम्भवत चन्दायन के रचयिता मुल्ला दाऊद के समय से भी पूर्व स किसी न किसी रूप म चली आती रही होगी और यह भी असम्भव नहीं कि यह किसी समय लोरिक व चन्दा की कथा से स्वतन्त्र भी रही होगी॥[4]

१—दक्खिनी का गद्य और पद्य स० श्रीराम शर्मा, २८७–८६
२—दकन म उर्दू प० ७८, हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान, प० १३१।
३—दकन म उर्दू पृ ८७, दक्खिनी का गद्य और पद्य, प० ४८६।
४—हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान प० १३५–३६।

मुकीमी कृत 'चन्दर बदन व महियार'

मुकीमी बीजापुर की आदिलशाही सल्तनत की छत्रछाया में रहने वाला एक प्रख्यात कवि हुआ है। चन्दरबदन व महियार की रचना के समय बीजापुर का सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (सं० १६२६–८८) था अथवा अभी कुछ ही समय पहले मर चुका था। इस काव्य की रचना सन १६२७ ई० में हुई बताई जाती है।[1] मुकीमी ने इस काव्य की प्रस्तावना में गवासी का स्मरण एक उस्ताद की तरह किया है और उसने मसनवी को उसके तुतव में रचा है।[2] चन्दर बदन व महियार की रचना का मकसद मजहबे इस्लाम की अजमत जाहिर करना भी बतलाया गया है।[3]

महियार नामक एक युवक चन्दर बदन के राजा की कन्या के रूप गुण की बात सुनकर उस पर आसक्त हो जाता है। उसे खोजता हुआ वह चन्दर पटन पहुँचता है और उसे देख भी लेता है। वह उसके चरणों पर गिर पड़ता है पर वह उसे ठुकरा देती है। महियार विक्षिप्त हो जाता है। वह उसके प्रेम में पागल होकर प्राण दे देता है। उसका जनाजा चन्दर बदन के महल की ओर से जाने लगा तो एक नौकरानी ने उसे समाचार दिया। उसे बड़ा दुख हुआ। नहा धोकर वह एक कोने में जाकर सो रही। महियार के गम से उसकी भी मृत्यु हो जाती है। दोनों एक ही स्थान पर एक साथ दफना दिए गए।

'इस कथा के आधार पर बीजापुर के ही किसी आतिशी नामक कवि ने एक फारसी मसनवी लिखी। पीछे रचना का दक्खिनी हिन्दी अनुवाद बुनदुन नामक कवि द्वारा किया गया जो पहली मसनवी से कहीं विस्तृत तथा विशाल है परन्तु इनमें से किसी की भी कोई प्रति उपलब्ध नहीं जिसके आधार पर उनके ऊपर पड़े किसी सूफी विचारधारा के प्रभाव का समुचित निर्णय किया जा सके।[4]

मुसरती कृत 'गुलशने इश्क'

इस मसनवी का रचना काल सं० १७१४ अर्थात १६५८ ई० है।[5] इसमें

१–दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा राहुल सांकृत्यायन पृ० २२३।
२–हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान पृ० ११६।
  उर्दू मसनवी का इरतका अब्दुल कादिर सरवरी पृ० ४८—५०।
३–चन्दरबदन व महियार कथा सं० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी भूमिका।
४–हि० के सू० प्र०, पृ० १३६–३७।
५–दक्खिनी का गद्य व पद्य पृ० ४६०।

मनोहर और मधुमालती के प्रेम की कथा वर्णित है। डा० एहतिशाम हुसेन[1] का कथन है कि यह मसनवी ईरान की कतिपय मसनवियों के आधार पर लिखी गई है। कुछ फारसी मसनवियों की तरह 'गुलशने इश्क' के प्रत्येक 'बाब' के पहले एक ऐसा शेर लिखा मिलता है जिससे उनके प्रसंग का स्पष्ट निर्देश हो जाता है। सम्भवतः मंझन की मधुमालती और गुलशने इश्क का कथानक एक ही है।

इब्नेनिशाती कृत फूलबन भी एक प्रसिद्ध प्रेम कथा है। इसकी रचना-काल १६६५ ई० कहा जाता है।[2] इस काव्य की मूल कथा पृष्ठ भूमि भी भारतीय है। बीजापुर के हाशमी की यूसुफजुलेखा (स० १७४४ ई०) तथा गोलकुण्डा के तबई की मसनवी 'किस्से बहराम व गुलबदन भी दक्खिनी हिन्दी की मसनवियाँ हैं।

अरबी फारसी शामी परम्परा का अनुवर्तन—

दक्खिनी हिन्दी के अधिकांश प्रमाख्यान या तो किसी न किसी फारसी मसनवी के अनुवाद हैं अथवा किसी अन्य प्रसिद्ध एवं प्रचलित प्रेमगाथा के आधार पर लिखी गई मसनवी के रूप में उपलब्ध होते हैं। स्वतन्त्र रूप से रचित मसनवियों की संख्या अधिक नहीं।" कहा जाता है कि इब्ननिशाती की रचना 'फूलबन कुछ अंशों में मौलिक है पर वह भी अलिफ-लैला के आदर्शों पर लिखी गई है। दक्खिनी हिन्दी के अधिकांश मसनवी लिखने वालों ने भारतीय प्रेमगाथा परम्परा को न अपनाकर फारसी मसनवियों को ही अपना आदर्श बनाया था। इस प्रकार उन्होंने अपने पीछे आने वालों के लिए मार्ग प्रदर्शन करके ऐसी भावी उर्दू रचनाओं की बुनियाद भी कायम कर दी। फलतः ऐसी मसनवियों में न केवल शामी परम्परा की रक्षा एवं प्रचार का प्रयत्न किया गया, अपितु कभी इनमें हिन्दू समाज एवं संस्कृति का सफल चित्रण भी नहीं किया जा सका, न उन्हें कोई महत्व ही मिला। जिन परी शाही दरबार, देव दरवेश एवं तिलस्मी विषयक प्रसंगों को कभी कभी अनावश्यक होने पर भी स्थान दिया जाने लगा और विदेशी पशु पक्षी तक आने लगे। इन मसनवियों के रचयिता प्रायः मुस्लिम सुल्तानों की छत्रछाया में रहा करते थे जिस कारण उनके उपयुक्त वर्णनों की प्रचुरता दीख पड़ने लगी और फारसी एवं अरबी की वहाँ विशेष प्रतिष्ठा होने के कारण इन दोनों भाषाओं के शब्दावली को भी अधिक महत्व दिया जाने लगा और उसका ही आदर्श प्रायः उन सभी प्रेमगाथाओं के लिए भी उपयुक्त समझा जाने लगा जिनका उद्देश्य केवल विशुद्ध प्रेम का प्रचार मात्र ही रहा करता था। इन मसनवियों के अन्तर्गत फारसी तथा कभी-कभी अरबी बह्रों (छन्दों) को भी अपनाया गया। एसी छोटी से छोटी रच

१–उर्दू साहित्य का इतिहास, डा० एहतिशाम हुसेन पृ० ४३।
२–उर्दू साहित्य का इतिहास, डा० ऐजाज हुसेन, पृ १९।

धन और विजय की लिप्साए ही प्रधान थीं। बारहवीं शताब्दी में साम्राज्य–स्थापना की लालसा इन आक्रमणों के मूल में आ गई लक्षित होती है। धीरे धीरे मुस्लिम शासन की स्थापना होती गई और हिन्दू राज्यों का सूर्य अस्त होता गया।[1]

अभी तक भारतवर्ष में जितने धर्म और आक्रमणकारी आए थे वे सब यहां के हो गए थे पर इस्लाम इन सबसे निराला था। इसने हिन्दू संस्कृति के प्रत्येक आयाम पर गहरा प्रभाव डाला हैं। अनेक मुसलमान वंश शताब्दियों तक भारत में राज्य करते रहे। इनमें से बहुत से राजा इस्लाम की कट्टरता और विदेशी भावनाओं से आपूरित थे। वे हिन्दुओं से विद्वेष रखते थे। समय समय पर हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के अत्याचार भी होते रहे। हिन्दुओं के धर्म रीति–रिवाज मन्दिर आदि विध्वंस होते रहे। उनका हृदय भी भग्न होता रहा। सचमुच भारत में ऐसा विषम समय कभी नहीं आया था। शक हूण आदि अनेक विदेशी जातियां इनसे पूर्व यहां आई थी और उन्होंने शासन भी किया था परन्तु वे राजनैतिक धार्मिक और सामाजिक दृष्टियों से शीघ्र ही भारतीयता में निमग्न हो गई थी। इसलिए कभी धर्म–प्रचार की आवश्यकता न पड़ी थी। मुसलमान इसके विपरीत ही सिद्ध हुए। वे भारत में आकर भी भारतीय न बन सके और सदैव यहां के निवासियों को घृणा की दृष्टि से देखते रहे। जिसके परिणामस्वरूप समय–समय पर अनेक अत्याचार भी करते रहे।[2] जब उद्धत और मदान्ध मुसलमान आक्रान्ताओं ने यहां की प्रशान्त जनता को रौंदना प्रारम्भ किया तो उनके साथ दयावान भी साथ ही आए। वे सूफी दरवेश थे। मुहम्मद गोरी की शासन–स्थापना के साथ ही साथ हम सूफियों को प्रेम का मनोरम बीज बोते हुए देखते हैं। मुसलमान शासक अपने उद्धत स्वभाव के कारण तलवार की धार से अपने इस्लाम को देखना चाहते थे और किसी भी हिन्दू को इस्लाम या मृत्यु – दो में से एक चुनने के लिए बाध्य कर सकते थे। पर दूसरी ओर एक शासक वर्ग ऐसा भी था जो हिन्दुओं को अपने पथ पर चलने में आनन्द प्रदान करने में सुख का अनुभव करता था। ऐसे शासक वर्ग में शेरशाह का उदाहरण दिया जा सकता है। जिसने उल्माओं की शिक्षा की अवहेलना कर हिन्दू धर्म के प्रति उदारता का भाव प्रदर्शित किया। शासकों में ऐसे मुसलमान भी थे जो हिन्दू धर्म के प्रति उदार ही नहीं वरन उस पर आस्था भी रखते थे। जहां वे एक ओर इस्लाम के अन्तर्गत सूफी धर्म के प्रचार की भावना में विश्वास मानते थे वहां दूसरी ओर वे हिन्दुओं के धार्मिक आदर्शों को भी सौजन्य

१—डा० विमलकुमार जैन सूफीमत और हिन्दी साहित्य पृ० २१९।

२—ईश्वरीप्रसाद ए शार्ट हिस्ट्री आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया।

की दृष्टि से देखते थे। प्रेम-काव्य की रचना में इसी भावना का आधार है[1]। सूफियों ने भारतीय वातावरण के अनुकूल केवल प्रचार ही नहीं किया था वरन सुंदर काव्य भी लिखे थे, जिनमें प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में सूफी मत के सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ था। इनका उद्देश्य ईश्वरीय प्रेम के अतिरिक्त जन समाज को प्रेम पाश में आबद्ध करना भी था। इन लोगों ने मुख और लेखनी से जो कुछ भी व्यक्त किया वह जनता के आश्वासनार्थ सुधा सिंधु ही सिद्ध हुआ और भारतीय साहित्य के लिये एक अनूठी निधि भी बन गया। उसने तपित मानव हृदय को शांति प्रदान की। अतः भारतीयों ने इन संतों में अपने परम हितैषी और शुभ चिंतक ही पाये। प्यासे को पानी देनेवाला और भूखे को भोजन प्रदाता सदैव सम्मान्य होता है। इसी प्रकार ये संत भी लोगों के शीघ्र ही सम्माननीय हो गये। यही कारण था कि हिंदू और मुस्लिम जनता पर इनका गहरा प्रभाव पड़ा। हिंदुओं ने तो अपने परम हितैषी सहायक ही पा लिये।[2]

जायसी, मंझन, उसमान आदि सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों की रचना द्वारा जिस एक महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर हमारा ध्यान दिलाया है वह मानव जीवन के सर्वांगपूर्ण विकास के साथ संबंध रखता है और जो प्रायः उनके एकांतदृष्टि और एकांतनिष्ठ हो जाने पर ही संभव है। इनका कहना है कि यदि हमारी दृष्टि विशुद्ध प्रेम द्वारा प्रभावित हो सके और हम उसके आधार पर अपना संबंध परमात्मा से जोड़ लें तो हमारी संकीर्णता सदा के लिए दूर हो जा सकती है। ऐसी दशा में हम न केवल सर्वत्र एक व्यापक विश्व-बंधुत्व की स्थापना कर सकते हैं प्रत्युत अपने भीतर की अपूर्व शांति एवम् परम आनंद का अनुभव भी कर सकते हैं। इन प्रेमाख्यानों का मुख्य संदेश मानव हृदय को विशालता प्रदान करना, उसे सर्वथा परिष्कृत करना तथा अपने भीतर दृढ़ता और एकांतनिष्ठा की शक्ति-भक्ति लाना है। सूफियों के इस प्रेमाधारित जीवनादर्श के मूल में उनका यह सिद्धांत भी काम करता है कि वास्तव में ईश्वरीय प्रेम तथा लौकिक प्रेम में कोई अंतर नहीं है। इश्कमिजाजी तभी तक सदोष है जब तक उसमें स्वार्थ परायणता की संकीर्णता जान पड़े और आत्मत्याग की उदारता न लक्षित हो। जबतक वह अपने विशुद्ध रूप में नहीं रहा करता तभी तक उसमें वासना के संयोग की आशंका भी की जा सकती है। व्यक्तिगत सुख-दुख अथवा लाभ-हानि के स्तर से ऊपर उठते ही वह एक अपूर्व रंग पकड़ लेता है और फिर क्रमशः उस रूप में ही आ जाता है जिसे इश्क

१-डॉ० रामकुमार वर्मा हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २६६।
२-डॉ० विमलकुमार जैन सूफीमत और हिंदी साहित्य, पृ० २१८-१६।

हवीबी के नाम से अभिहित किया जाता है। सूफियो ने उसे यह रग प्रदान करने के ही उद्देश्य से प्रत्येक प्रेमी को विभिन्न सकटो और बाधाओ की आग मे तपाने की चेष्टा भी की है।

सूफियो की इस व्यापक नियम और उसकी जटिलता मे बहुत बडी आस्था है और इसके कारण उनमे हम कभी कभी एक विचित्र अध विश्वास अथवा साम्प्रदायिकता की कथाचित गध पाकर उनपर धार्मिक कट्टरता का आरोप करने लग जाते है। कभी कभी तो इसमे हमे उनके इस्लाम धर्म के प्रचार के उद्देश्य से दिए गए किसी एक प्रलोभन का भी सदेह होने लगता है जो मनोहर कहानियो के प्रति आकर्षण उत्पन्न कराकर प्रतिफलित किया जाय परन्तु सूफियो के प्रेमाख्यानो द्वारा ही इसी प्रकार की शकाए निर्मूल होती जान पडती हैं। इन कवियो ने अपनी ऐसी रचनाओ मे इसकी ओर कभी कोई सकेत नही किया और न इनके कथानको से लेकर उनके अन्त मे विश्राम अथवा अन्त तक भी कोई ऐसा प्रसग छेडा जिससे उन का कोई साम्प्रदायिक अर्थ लगाया जा सके। यह आवश्यक है कि जहा तक घटनाओ की क्रम योजना का प्रश्न है उसे इस प्रकार निभाया गया है जिससे सूफी प्रेम-साधना का भी मेल बैठ जाय। परन्तु ऐसी बाते अधिक से अधिक केवल दृष्टान्तो के ही रूप मे पाई जाती है जिस कारण उनके साम्प्रदायिक आग्रह का भी रहना अनिवार्य नही है।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ का कथन है कि ये कवि इस्लाम का प्रचार करने वाली सस्था मे सबधित अवश्य थे। इस कारण इनकी नियत पर उसका प्रभाव सभव है। मध्ययुग के ये सूफी इस्लाम का प्रचार बडे जोर से कर रहे थे। इन प्रेमाख्यानो के द्वारा इस्लाम—प्रचार की पृष्ठभूमि तयार की गई है। जायसी कासिमशाह नूर-मुहम्मद आदि कवियो मे सामजस्य या सहानुभूति की भावना नही थी। हिन्दू धर्म को ये न तो इस्लाम के समकक्ष रखने को तयार थे और न उसे कोई महत्वपूर्ण धर्म ही मानते थे। इन्हे सूफी प्रेममार्गी कहना गलत है।[1]

इस प्रकार के अनेक आरोपो द्वारा कमलकुल श्रेष्ठ ने जायसी मझन आदि को इस्लाम का प्रच्छन्न प्रकट प्रचारक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। डा० श्रेष्ठ ने इस विषय मे सबद्ध कोई प्रौढ तर्क भी नही दिया है। उनका कथन है कि

"इस मौलिक दृष्टिकोण का उद्घाटन करते हुए भी इसके पक्ष मे अति प्रबल प्रमाण देने मे समर्थ है और इस कारण इसे पूर्णरूप से सही नही कहा जा सकता।"[2]

१—हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य पृ० १५७—१७८

२ वही पृ० १६३।

ऊपर स्पष्ट कहा जा चुका है कि इन सूफी कवियों की रचनाओं और कथाओं में आदि से अंत तक कोई ऐसा प्रसंग नहीं आया है जिसके आधार पर उन्हें इस्लाम का प्रचारक या मतप्रचारक कहा जा सके। मिश्र जी ने ठीक ही कहा है—

हिंदी के सूफी मुसलमान कवियों का हिन्दी के क्षेत्र में कवित्व द्वारा तसव्वुफ का उपदेशष्टत्व नहीं है। वह यदि शुद्ध साहित्य की सर्जना नहीं है तो निष्केवल तसव्वुफ की उपासना भी नहीं। उनके समस्त प्रयासों में साहित्य की संवेदना भी कहीं अपने प्रमुख रूप में है। इस दृश्य-दर्शन की ओर से आँख मूँद लेना न्याय न होगा। जायसी ने साहित्य का प्रमुख रूप से दृष्टिपथ में रखकर भी प्रेमगाथा लिखी है।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी या किसी अन्य सूफी कवि पर इस्लाम के प्रचारक होने का डा० श्रेष्ठ का आरोप उचित नहीं है। वस्तुतः जायसी अत्यंत उदार और महान संत थे। वे इस्लाम के अनुयायी थे, पर सूफी संत होने के कारण इस्लाम और हिन्दू की भावना से वे ऊँचे उठे हुए थे—

निंद संतनि उपराजा भाँतिहि भाँति कुलीन।
हिंदू तुरक दुवौ भय अपने अपने दीन ॥[2]
'मातु के रकत पिता के बिंदू। अपन दुवौ तुरक और हिंदू ॥[3]

जायसी ने सर्वत्र इसी प्रकार के विचार प्रकट किए हैं। इसके अतिरिक्त पद्मावत आदि प्रेमाख्यानों के नायक-नायिका, उनके दैनिक व्यापार वातावरण, तथा उनके सिद्धांत या संस्कृति में भी कोई परिवर्तन नहीं लाया जाता है और न कहीं पर यही चेष्टा की जाती है कि कथाप्रवाह के किसी भी अंश में किसी सम्प्रदाय या धर्म के महापुरुषों द्वारा कोई मोड़ ला दिया जाय। इसमें प्रसंगतः यदि कोई हिंदू योगी या तपस्वी आ जाता है तो ख्वाजा खिज्र भी आ जाते हैं और दोनों लगभग एक ही उद्देश्य से काम करते पाए जाते हैं। हम जैनियों द्वारा लिखे गए प्रेमाख्यानों में भी महापुरुषों का समावेश कर दिया गया पाते हैं जो अत्यंत गंभीर प्रेम वाले भी व्यक्तियों के जीवन में एक नया मोड़ उपस्थित कर देते हैं और इस प्रकार उन्हें उस आस्था की ओर आकृष्ट कर देते हैं जो जैन धर्म पर आश्रित है।

१—चित्ररेखा एक बोल' आचार्य प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ० ९-१०।
२—जायसी ग्रंथावली, ना० प्र० सभा काशी पृ० २१३।
३—वही पृ० ३०८।
४—पं० परशुराम चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य, सूफी प्रेमाख्यानक साहित्य पृ० २६१-६२।

तुलसीदास को जायसी की देन

अनेक कवियों की अभिव्यक्तियों मे पारस्परिक साम्य ढूंढ निकालना विद्वानों के लिये दुष्कर कार्य नहीं है। भिन्न देशों की विभिन्न भाषाओं में अनेक कालों मे विरचित कवियों की रचनाओं मे ऐसी समानतायें देखी गई हैं। इस प्रकार के साम्यों के मूल में विचारों की अनुकूलता और कुछ विशिष्ट परम्परायें आती हैं। अभिप्रायों, संस्कारों, रूढ़ियों और परम्पराओं का भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रायः ज्ञात या अज्ञात रूप से कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों की महार्घ विचार धाराओं एवं भावनाओं को गृहीत करते चले आए हैं और यही कारण है कि जब हम किसी कवि के अध्ययन में प्रवृत्त होते हैं तो उस विषय से सबद्ध प्राचीन साहित्य से अनेक साम्यमूलक अभिव्यक्तियां मिलने लगती हैं। जायसी ने 'पदमावत' की प्रस्तावना के सिलसिले मे इसीलिये कहा था कि आदि अन्त गाथा का जैसा स्वरूप है वैसा ही मैं भाषा चौपाई में लिख रहा हूं।[1] तुलसीदास ने भी कहा था–

नानापुराण निगमागम सम्मत यद्रामायण निगदितं क्वचिदन्यतोपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषा निबंधमति मंजुलमातनोति॥[2]

यदि परवर्ती साहित्य का भी अनुशीलन किया जाय तो उसमे भी इसी प्रकार के भाव साम्य मिल जायेंगे। किन्तु इस प्रकार प्राप्त हुई सामग्री के आधार पर हम किसी कवि के ऊपर चौर वृत्ति का आरोप नहीं कर सकते। यद्यपि साहित्य के क्षेत्र में ऐसी दुष्प्रवृत्तियों का बोलबाला रहा है। मंझन के काव्य मधुमालती में भी अनेक भाव ऐसे हैं जो उनके पूर्ववर्ती कवियों कुतबन और जायसी से मिलते हैं। यही नहीं अनेक दोहे तो संस्कृत श्लोकों के अनुवाद मात्र दिखेंगे किन्तु ऐसे तत्व मंझन की अध्ययनशीलता एवं संस्कृत आदि से घनिष्ठता की ओर ही संकेत करने वाले हैं।[3] इस प्रकार के विचारों के मूल में भारतीय समाज, साहित्य और संस्कृति की अविच्छिन्न परम्परा को भी गृहीत किया जा सकता है। प्रायः कवि उससे समान रूप से परिचित प्रभावित हुए हैं। पैतृकसम्पत्ति के रूप में परम्परायें अभिप्राय, रूढ़ियां सूक्तियाँ आदि भी कवि के लिए संबल-स्वरूप हैं जिनके बल पर कवि अपने कर्म-पथ पर गतिशील रहते हैं। काव्य की अलंकृति से सम्बद्ध उपमा, रूपक प्रतीक, छंद आदि के लिये भी कवि प्रायः परम्परा का आश्रय लेते रहे हैं। लीक छोड़कर चलने वाले कवि भी होते रहे हैं।

१—आदि अंत जस गाथा अहै। लिखि भाखा चौपाई कहै। जा० ग्र० ना० प्र०सभा
२—रामचरितमानस, बालकांड, पृ० १।
३—डा० शिवगोपाल मिश्र, मंझनकृत मधुमालती भूमिका पृ० ५५।

प्रेमाख्यानक परम्परा

जहाँ तक सूफियों का प्रश्न है उनमें परम्परा का सीमोल्लंघन कम ही मिलता
है। प्राय सभी सूफी कवियों के काव्यों म प्रेमानुभूति की प्रवणता, प्रेम-पीर की उदात्तता
कथा की लौकिकता म अलौकिकता का समावेश प्रभृति तत्व मिलते हैं। हिन्दी के
इन सूफी कवियों ने अवधी भाषा को प्राञ्जल बनाने और भारतीय लोक-प्रचलित
कथाओं को अमरता प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

मुल्ला दाऊद कृत चन्दायन (७८१ हि०) १३७९ ई० से हिन्दी प्रेमाख्या
नक परम्परा का प्रारम्भ माना जाता है किन्तु इस परम्परा के बीज खुसरो के
खम्स (पाँच मसनवियों का समूह) म मिल जाते हैं।

जायसी के काव्य पर चन्दायन और मृगावती (१५०३ ई०) का पर्याप्त
प्रभाव है। लोक गाथात्मक पद्धति पर काव्य का जो स्वरूप-निर्माण इन काव्यों म
मिलता है, वही जायसी के काव्य मे भी द्रष्टव्य है।

यह सर्वसम्मति से स्वीकृत है कि जायसी हिन्दी सूफी कवियों म सर्वश्रेष्ठ हैं।
परवर्ती सम्पूर्ण सूफी काव्य पर उनका प्रभाव पड़ा है। साथ ही निर्गुण-सगुण
भक्ति काव्यों पर भी उनका प्रभाव पर्याप्त मात्रा म पाया गया है।

यद्यपि दोहा चौपाई वाली शैली जायसी से बहुत पहले की है। सरहपाद,
मुल्लादाऊद और कुतबन की कृतियों म यह शैली प्रयुक्त है और जायसी ने भी इसी
शैली का प्रयोग किया है तथापि कुछ लोगों का अनुमान है कि तुलसीदास ने
जायसी की ही शैली पर रामचरितमानस का प्रणयन किया है।

पदमावत की रचना १५४० ई० म हुई थी। इसके पहले प्राकृत और अप
भ्रंश में चरित और आख्यान काव्य लिखे गये थे। मसनवी-पद्धति के साथ ही
पदमावत में इस भारतीय काव्य पद्धति का भी सुन्दर उत्कर्ष हुआ है। इसके ३४
वर्ष के पश्चात संवत १६३१ म तुलसीदास ने अपने रामचरित मानस की सृजना
की है। उनम दोहा चौपाई के अतिरिक्त और भी छन्दों के प्रयोग हुए हैं तथापि
उसकी मुख्य शैली दोहा-चौपाई वाली ही है। जायसी की महानता इस बात में भी
है कि उन्होंने तुलसीदास से पूर्व दोहा चौपाई म इतने विशाल और प्रौढ़ काव्य की
सृजना की थी। आश्चर्य नहीं कि उन्हें (तुलसीदास को) जैसे विविध छन्दों म
अपने विभिन्न काव्यों की रचना करने की प्रेरणा अपने पूर्ववर्ती अन्य कवियों से
मिली हो वैसे ही पदमावत से मानस की शैली का सुझाव भी मिला हो 'साखी
सबदी दोहरा कहि किहनी उपखान के द्वारा गोस्वामी जी किहनी उपाख्यान,
रचयिता सूफी कवियों की ओर संकेत तो करते ही हैं आश्चर्य नहीं कि इससे उनका
अभिप्राय जायसी से ही हो जैसे साखी सबदी दोहरा के द्वारा स्पष्ट ही कबीर का
निर्देश है और यह अनुमान भी सम्भव है सच निकले कि तुलसीदास ने पदमावत

का अध्ययन किया था।[1] श्री इन्द्रचन्द्र नारंग जी ने तुलसीदास द्वारा वर्णित कतिपय घटनाओं का उल्लेख करते हुए उनका मूल पदमावत में बताने का प्रयत्न किया है।

वसन्त पंचमी आने पर पदमावती महादेव की पूजा के लिए महादेव के मंडप में जाती है। वहां उसने पूजा की। बरदान मांगा, आकाशवाणी हुई, वह राजा रत्नसेन से मिली, पर वह मूर्च्छित हो गया। इन समस्त बातों का विवरण पदमावत में सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है—

दव दव कहते कहते श्रीपंचमी आ पहुंची। पदमावती ने सब सखियों को बुलाया। सभी सुरूपा और पद्मिनी जाति की थीं। पान फूल सिन्दूर आदि से सब अनुराग राग में पगी थीं—

चली पउमि सब गोहने, फूल डार लेइ हाथ।
बिस्वनाथ के पूजा, पदमावति के साथ॥
बाजहिं ढोल दुंदुभी भेरी। मांदर तूर झांझ चहुं फेरी।
पदमावति गै देव दुवारा। भीतर मंडप कीन्ह पसारा॥
फर फूलन्ह सब मंडप भरावा। चंदन अगर देव नहवावा॥
लइ सेंदुर आगम मैं लागी। परसि देव पुनि पायन्ह परी॥
और सहेली सबै बियाही। मो कहं देव कतहुं बर नाहीं।
हौं निरगुन जो कीन्ह न सेवा। गुनि निरगुनि दाता तुम देवा॥
बर संयोग मोहि मेरवहु कलस जाति हौं मानि।
जेहि दिन हीछा पूजै बेगि चढ़ावहु आनि॥
हीछा हीछि बिनवा जस रानी। पुनि करजोरि ठाढ़ भइ रानी।
उतर को देइ देव मरि गएऊ। सबद अकूट मण्डप मह भएऊ।

और इसके पश्चात्—

ततखन एक सखी बिहसानी। कौतुक आइ न देखहु रानी।
पुरुबद्वार मढ़ जोगी छाए। न जनौं कौन देस तें आए॥
उन्ह मह एक गुरू जो कहावा। जनु गुर दै काहू बौरावा॥
कुंवर बतीसौ लच्छन राता। दसएं लछन कहै एक बाता॥
सुनि सो बात रानी रथ चढ़ी। कहं अस जोगी देखौं मढ़ी॥
लेइ संग सखी कीन्ह तहं फेरा।

जब उसे राजा ने देखा तो वह अचेत हो गया। पदमावती ने उसे जगाने के अनेक विध, उपचार किये, पर वह नहीं जगा। अन्ततः उसने रत्नसेन की छाती पर अपना संदेश लिख दिया—

१—इन्द्रचन्द्र नारंग, पदमावत-सार पृ० १७६–७७

'भीख लेइ तुम जाग न सिखे।

तुलसीदास ने भी रामचरितमानस के बालकांड म इसी प्रकार के एक प्रसग की योजना की है। (रत्नसेन पदमावती के लिय शिव मन्दिर म डेरा डाले पड़ा था) और राम अपन भाई लक्ष्मण के साथ मालिया से पूछ कर वाटिका म फूल चुन रहे थे)।

तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई।
सग सखी सब सुभग सयानी। गावहि गीत मनोहर बानी।

'पदमावती के साथ रूपवती सहेलियाँ थी और बाजे बज रहे थे तो जानकी के साथ सुभग सखियाँ गीत गाती जा रही थी, और कंकण किंकिणि नूपुरध्वनि मुखर हो रही थी वहाँ पदमावती स्वत महादेव का पूजन करनी थी तो यहा सीता गिरिजा को पूजने जा रही थी। पदमावती न महादेव की पूजा के अनन्तर अपने लिये सुन्दर वरदान मांगते हुए कहा था कि मेरा वर-सयोग मिला दोगे तो तुम्हे कलश चढ़ाऊँगी। जानकी मर्यादा की देवी थी। उन्होने पूजा के पश्चात इतना ही कहा कि मोर मनोरथ जानहु नीके। उन्हें भी पति की कामना थी। उन्हें आशीस भी मिला था कि 'पूजहि मन कामना तिहारी। इस प्रसग म तुलसीदास ने जायसी की ही भाँति एक विशिष्ट सखी को उपस्थित किया है—

एक सखी सिय सग विहाई। गई रही देखन फुलवाई।
तेहि दोउ बन्धु बिलोके आई। प्रेम विवस सीता पहि आई॥

उसने आकर सीता स राम के रूप का बखान किया। सीता उन्हे देखने के लिए उत्सुक हुई। अन्य सखियो न भी समथन किया—अवसि देखियहि देखन जागू और व उस प्रिय सखी को आगे करके उन्हें देखन चला—

एक सखी सिय सग विहाई। गई रही देखन फुलवाई।
एक सखी सिय सग विहाई। कौतुक आइ न देखहु रानी।

और 'ततपर एक सखी विहसानी। कौतुक आइ न देखहु रानी। सम्भव है यह योजना जायसी के उपयुक्त सखी वाले प्रसग म अद्भुत साम्य हैं। सम्भव है यह योजना जायसी के उपयुक्त सखी के द्वारा पदमावती के योगी के पास पहुँचने के सुझाव स ही तुलसी ने अपनाई हो और महादेव के मण्डप का अटूट शब्द हो तो वही उस मन्दिर माह भई नभवाणी का प्रेरक नही है जो रामचरितमानस म कागभुशुडि का अपने पूर्वजन्म म उज्जैन के महाकाल (शिव) मन्दिर म गुरु का अपमान करने पर सुनाई पड़ी थी।[1]

इसी प्रकार का एक और प्रसग द्रष्टव्य है। अलाउद्दीन चित्तौड पर घेरा डाले पड़ा है और रत्नसेन नाच-रग म मस्त है—

तबहू राना हिय न हारा। राजपौरि पर रचा अखारा।
सोह साह क बैठक जहाँ। समुहें नाच करावै तहाँ॥

1—पदमावत सार, पृ० १७६-८०।

जहवाँ सौंह साह क दीठी। पातुरि फिरत दीन्हि तह पीठी।

इस पर गढ़ के ऊपर बाण चलने लगे। कन्नौज के राजा जहाँगीर का बाण उस वेश्या की जाँघ में लगा। वह गिर पड़ी और उड़सा नाच मजनिया मारा। रहसे तुरुक बजाइ क तारा। इसी मिलता जुलता दृश्य रामचरितमानस में अंकित है। सुवेल पर्वत पर समस्त रामचन्द्र शिविर बनाकर आसीन हैं। वे दक्षिण दिशा में बादल के घुमड़ने और बिजली के चमकने की बात विभीषण से कर रहे हैं—

कहत विभीषण सुनहु कृपाला। होइ न तड़ित न बारिदमाला।
लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा।
छत्र मेघडंबर सिर धारी। सोइ जनु जलद घटा अतिकारी।

और उस समय—

छत्र मुकुट ताटंक तब हते एक ही बान।
सबके देखत महि परे मरमु न कोऊ जान॥[1]

इन दोनों अखाड़ों में विचित्र साम्य है। श्री इन्द्रचन्द्र नारंग ने इन सब वर्णनों के अनन्तर लिखा है क्या जायसी ने तुलसी को इस प्रसंग की उद्भावना करने की सूझ नहीं दी? हमारे देखने में तो संस्कृत रामायणों में ये प्रसंग इस रूप में नहीं आए और हम इन्हें तुलसी की मौलिक सूझ ही मानते थे। परन्तु क्या यह सम्भव नहीं कि जायसी की उपर्युक्त प्रसंगों की उद्भावना उस कवि के लिए पथ प्रदर्शक रही हो जिसकी अमर रचना रामचरितमानस के सामने जायसी की पद्मावत को लोग भूल ही गये।

इसी प्रकार (पदमावत में) पद्मावती के विवाह के समय निर्मित रंग महल के वर्णन और रामचरितमानस में सीता स्वयंवर के समय निर्मित वितान के वर्णनों में भी अद्भुत साम्य है।

पुतरी गाढ़ि गढ़ि खम्भ ह काढ़ी। जनु सजीव सेवा सब ठाढ़ी।
—जायसी

सुर प्रतिमा खम्भन्ह गढ़ि काढ़ी। मंगल द्रव्य लिए सब ठाढ़ी।
—तुलसीदास

इस प्रकार साम्यमूलक प्रसंगों के विषय में यह कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने पद्मावत से प्रेरणा ग्रहण की थी। एक बात यह भी है कि इस प्रकार के प्रसंग (जैसे–शिव-मन्दिर गढ़-वर्णन आदि) मध्यकालीन कविता में कथानक रूढ़ि बन गये थे। अतः बहुत सम्भव है कि इन कवियों के इन प्रसंगों का मूल स्रोत लोक जीवन की ये काव्यगत रूढ़ियाँ ही हों।

१–रामचरितमानस पृ० ८७४, दोहा १३ (क)

यह सभावना भी जा सकती है कि तुलसीदास ने पदमावत को पढ़ा था और वे उसकी छन्द-योजना से प्रभावित हुए हों।

जायसी और कबीरदास (तथा अन्य सन्त कवि)

भक्तिकालीन कवियों में कबीर को सतमत का प्रवर्तक कहा जाता है। यद्यपि कबीर ने कभी किसी सम्प्रदाय या पथ विशेष के प्रवर्तन का आग्रह नहीं किया था, तथापि कालान्तर मे उन्हें एक पथ विशेष से सबद्ध कर दिया गया। वे एक क्रान्तदर्शी सत हुए हैं। उनका पथ निराला था। उन्होंने जायसी की भाँति समन्वय का पल्ला नहीं पकडा, वे एक क्रान्तिकारी भक्त थे। भारतीय अद्वैतवाद, मुस्लिम एकेश्वरवाद और सूफीमत के प्रेमपथ को स्वीकार करते हुए भी वे सबसे अलग थे। उन्होंने हिन्दू मुसलमान पीर, पैगम्बर, पडित आदि के बाह्याडबरों का प्रबल खण्डन किया। कविता को तो विद्वान कबीर की 'बानियों' म 'बाई प्राडक्ट' मानते हैं—वे मूलत भक्त थे। इस स्वतन्त्र विचारक के रूप मे कबीरदास हिन्दी भक्ति साहित्य म सहज और प्रतिभा के धनी सत कवि के रूप मे समादृत हैं। सत कवियों मे कबीरदास को छोडकर और कोई भी ऐसा विचारक या कवि नही है जो जायसी की समकक्षता म आ सके। कवि रूप में कबीरदास से जायसी की श्रेष्ठता स्वत सिद्ध है। कबीरदास की बहुत सी रचनाओं को काव्य कोटि म रखने से विद्वान हिचकिचाते हैं। उनका कथन है कि उन्होंने अधिकतर नीची श्रेणी के अपढ लोगों को प्रभावित करने का प्रयत्न किया था। पढे लिखे लोगों पर इनका तथा इसी प्रकार के अन्य निर्गुणपथी सतो का वैसा प्रभाव नही दिखाई देता। अपढ जनता को आकृष्ट करने के लिए योग साधना और ज्ञान मार्ग की फुटकल बातों को अपनी उलटबाँसियो तथा चमत्कारपूर्ण रूप से लक्षित कराने का इन्होंने प्रयास किया था। कबीर ने ज्ञान को तो ग्रहण किया था पर कर्म की वैसी व्यवस्था उनके पथ मे न हो सकी। कबीर की सब रचनायें शुद्ध काव्य के अन्तर्गत आ सकती हैं, इसम सन्देह है। योग-साधना का उल्लेख करने वाली नाडी, चक्र, सुरत निरत ब्रह्मरध्र आदि का विवरण देनेवाली रचनायें काव्य के अन्तर्गत नही मानी जा सकतीं। जिनमें प्रेमतत्व का निरूपण है या जिसम पति-पत्नी सैन्य-सेवक, पिता पुत्र, आदि अनेक लौकिक सकेतों से रहस्य-सकेत किए गए हैं वे ही काव्य के भीतर ली जा सकती हैं।'[1] इस प्रकार उनकी बहुत सी रचनायें काव्य कोटि में नहीं आतीं। कहाँ उनकी स्फुट नीरस पद रचना और कहाँ साहित्य की अमूल्य निधि पदमावत। कहाँ कबीर की असाहित्यिक 'सधुक्कडी भाषा' और पदमावत की शास्त्रसम्मत सरल

१—आचार्य प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, वाङ्मय विमर्श पृ० २५५-५६।

और अलङ्कृत काव्यभाषा।[1] इतना तो स्पष्ट है कि जायसी की भाषा कबीर से अधिक सरल अलङ्कृत और काव्यमय है। इसका कारण है कि जायसी का लक्ष्य काव्य था और कबीर का भक्ति-ज्ञान।

कबीर का रहस्यवाद हिन्दी में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। ऐसे पदों में उनका कवि रूप भी मुखर हो उठा है। कबीर के पहले ही हिन्दी सूफी कवियों की रहस्यवादी रचनायें प्रकाश में आ गई थी। मुल्ला दाऊद का चन्दायन कबीर के बहुत पहले ही प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। कबीर के रहस्यवाद में जो प्रेममूलक सौन्दर्य है। वह सूफियों से ली हुई वस्तु है। इसलिए कबीर के रहस्यवाद का अस्थिपंजर यदि अद्वैतवाद और हठयोग है तो उसका प्राण सूफीमत का प्रेम ही है यदि सूफीमत के प्रेम पीर की अभिव्यंजना उसमें से निकाल ली जाय तो उसमें रहस्यवाद रह ही नहीं जाता। कबीर के पीव साईं करतार, भरतार, में सूफियों की प्रेम पद्धति का ही एक रूप दृष्टव्य है। कबीर के रहस्यवाद में भी अव्यक्त-अशरीरी प्रियतम के प्रति दाम्पत्य भाव का प्रणय है। उसमें भी प्रेम की पीर और विरह की भावना सूफियों की है। भारतीय भक्ति और ज्ञानमार्ग सर्वथा भिन्न वस्तु है। भक्ति में सगुण और ज्ञान में निर्गुण का स्पष्ट आधार है। केवल सूफी पद्धति में ही निर्गुण के प्रति भी दाम्पत्य प्रणय का योग होता है। निर्गुण के प्रति दाम्पत्य प्रेम ही उस रहस्य की सत्ता भी देता है। इस प्रकार कबीर का रहस्यवाद निश्चय ही सूफीमत पर अवलम्बित है। फिर कबीर का रहस्यवाद मूलतः साधनात्मक है। उसमें ब्रह्म माया तथा हठयोग के षडदल कमल कुण्डलिनी इड़ा पिंगला सुषुम्ना आदि का योग है। कहीं कहीं तो उलटबासियों का भी इन सबके साथ योग हो गया है और अस्पष्टपन आ गया है। दार्शनिकता और हठयोग के समन्वय के कारण कबीर का रहस्यवाद जटिल हो गया है। जायसी का रहस्यवाद सहज सबोध और सरस है। सैद्धान्तिक दृष्टि से निर्गुण का सूफीमत भले ही साहाय्य हो किन्तु प्रबन्ध शृंखला में उसके प्रियतम और प्रियतमा सुस्पष्ट हैं उनके माध्यम से उपस्थित होने पर कवि सरलता से प्रियतम के प्रति प्रणय तथा प्रेम की पीर की सहज अभिव्यक्ति कर देता है। जायसी के यहाँ साधनात्मक और भावनात्मक दोनों प्रकार के रहस्यवादों का सुन्दर उत्कर्ष देखा जा सकता है। शुक्ल जी ने ठीक ही कहा था कि जायसी सच्चे रहस्यवादी हैं। कबीर में जो कुछ रहस्यवाद है वह सर्वत्र एक भावुक या कवि का रहस्यवाद नहीं है। हिन्दी के कवियों में यदि कहीं सरस सुन्दर और रमणीय अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में जिनकी भावुकता उच्चकोटि की है। वे सूफियों की भक्ति भावना के अनुसार कहीं परमात्मा को प्रियतम के रूप

१—डा० मनमोहन गौतम जायसी ग्रन्थावली भूमिका, पृ० १४२।

में देखकर जगत के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूप माधुर्य की छाया देखते हैं। और वहीं सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों को पुरुष के समागमन के हेतु प्रकृति के शृंगार, उत्कण्ठा या विरह विकलता के रूप में अनुभव करते हैं।[1] इस प्रकार क्या कवि कर्म और क्या सिद्धान्त निरूपण, क्या रहस्यवाद की सम्पन्न काव्य-पद्धति और क्या प्रबन्धत्व—सभी दृष्टिकोणों में जायसी कबीरदास जी की अपेक्षा हिन्दी साहित्य धारा में सम्मानपूर्ण पद के अधिकारी हैं।

सूफी मत ज्ञान और भक्ति का मध्यम मार्ग है जिसमें निर्गुणोपासना का प्राधान्य है। ध्यानपूर्वक देखने पर स्पष्ट हो जाता है इस निर्गुणोपासना में सगुणोपासना भी अनुस्यूत है। भारतीय भक्ति साधना पद्धति ने उस पर अपना भी गहरा रंग चढ़ा लिया है। योगिया सिद्धों ने भी इस सूफी मत पर अपनी गहरी छाप लगा दी है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि सूफियों ने भी भारतीय समाज धर्म साहित्य और साधना पद्धति पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला है। साहित्य के क्षेत्र में सूफियों की मजना प्रणाली अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस प्रणाली ने समकालीन और परवर्ती साहित्य पर अपना प्रभाव अमर कर दिया है।

भारतीय साधना पद्धति में योग मार्ग का भी बड़ा महत्व है। योग वाले तो अपनी प्राचीनता वेदों में भी प्रमाणित करते जाते हैं। जो भी हो प्राचीन योगमार्ग का ग्रहण बौद्ध धर्म के भीतर उस समय विकृत रूप में किया गया जब उसमें हीनयान और महायान की शाखाएँ फूटीं। महायान में भी हीनयान और सहजयान नाम के मार्ग निकले। सहजयान की उपासना तान्त्रिक रूप में भारत में बहुत दिनों तक चलती रही। यही सम्प्रदाय बौद्धों के विध्वस्त हो जाने पर सहजिया नाम से बना रहा, जिसमें से आगे चलकर नाथपंथ फूटा। नाथमत में मत्स्येन्द्रनाथ गोरखनाथ आदि प्रसिद्ध सिद्ध हो गए हैं। कबीरदास के विषय में कहा जाता है कि शेख तकी ऐसे सूफी फकीर से इनका सत्संग हुआ था। सूफियों के संसर्ग के कारण इनमें प्रेमतत्वपरक वचन भी पाए जाते हैं। शाक्तमार्गी अद्वैतवाद, प्रेममार्गी सूफीमत अहिंसा प्रधान प्रपत्तिवादी वैष्णव मत मुसलमानी एकेश्वरवाद और नाथपंथियों का योगमार्ग ये उनकी रचनाओं में स्थान स्थान पर दिखाई देते हैं।[2] कबीरदास जैसे ज्ञानमार्गी संतों की साधना पद्धति में जो माधुर्यभाव प्रणय भाव दृष्टिगोचर होता है उसे सूफियों की देन कहा जा सकता है। भागवत में भी गोपी कृष्ण प्रसंग में इसी प्रकार के प्रणय की बात मिलती है, पर वह साकार वर्णन का नर्तक है। सूफियों का प्रणय निराकार के प्रति है। इस प्रकार सूफियों की यहाँ प्रणय भावना कबीर दरिया आदि संतों से प्रणय में अभिव्यक्त हुई है। उदाहरणार्थ सूफी

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल जा० ग्र० भूमिका पृ० १६४।
२—वही, पृ० २५४-५५।

प्रणय भावना से प्रभावित ज्ञानमार्गी सतो की कुछ वाणियाँ ली जा सकती हैं—

'वालम आओ हमारे गेह रे।
तुम बिन दुखिया देह रे॥[1]
पीतम साहब आए मेरे पहुना घर आँगन लग सुहौना।[2]
बहुरि नहिं आवना यहि देस। जो रे गये बहुरि।
नहिं आये पठवत नाहिं सदेस॥[3]
तोको पीव मिलेंगे घूंघट के पट खोल रे।
साईं बिन दरद करेजे होय।[4]
तलफ बिन वालम मोर जिया।
मन थकित भए पथ न सूझे साईं बेदरदी सुधि न लिया।[5]
समुझ सोच मन मीत पियरवा आसिक होकर सोना क्या रे?
कहे कबीर प्रेम का मारग सिर देना तो रोना क्या रे।
दास दिवाना बावरा अलमस्त फकीरा।
एक अकेला ह्वै रहा असमत का धीरा।
हिरदे मे महबूब है हरदम का प्याला।[6]
एक प्रेम ब्रह्माड छाप रह्यो समझ विरला पूरा।
भ्रमभेदी कहाँ समायेंगे ज्ञान के घर है दूरा।[7]

कबीर की ही भाँति अन्य निर्गुणोपासक ज्ञानमार्गी सन्त भी सूफियो की प्रेम भावना से प्रभावित हैं। उदाहरण के लिए कुछ ज्ञानमार्गी सतो की बानियो मे से एक एक पंक्तियाँ दी जा रही हैं—

मोरा पिया बस कौने देस हो।[8] (धमदास)
प्रभु मेरे प्रीतम प्रान पियारे।[11] (नानक)
अजहू न निकस प्रान कठोर।
दरसन बिना बहुत दिन बीते, सुन्दर प्रीतम मोर॥[12] (दादूदयाल)
तेरा मैं दीदार दीवाना।

१—कबीर, पृ० २५८ (पद ३५)। २—वही पृ० २८३ (पद ८८)।
३—वही पृ० ३१२ (पद १३७)। ४—वही पृ० ३५० (पद २२४)।
५—वही पृ० २६६ (पद ५२)। ६—वही, पृ० ३२९ (पद १७३)।
७—वही, पृ० २८६ (पद ९६)। ८—वही, पृ० ३४५ (पद ३१०)।
९—वही पृ० २८७ (पद ९७)।
१०—सतबानी सग्रह पृ० ४४ (भाग २)
११—वही पृ० ४९। १२—वही, पृ० ६३।

		२१८
पाताल में गिरना	बोलु न राजा आपु जनाई	२२४
अपने को जनाना	जो लगि जीउ पाया म" ।	२३४
जब तक दम म दम	पुनि म सरग गुरग गिद दीन्हा	२६४
आसरा देना	हियरा जान मरा	२५२
हृदय अपनाना	नोन दिए होइ लान बिनाई	२६४
नमक की तरह गलना	पिय बिनु म" कोढी बसारी	२४६
कोढ़ी हो जाना	थाह छुव न पाए, गए मरारल हाथ	
हाथ ममन कर रह जाना	दारिउ सरि जो न क सका,	२४४
बराबरी न कर सकना	फाटेउ हिया दरसि ।	३०६
	जो सिर सँती खेल	३०८
सिर देना	आपन दोप आन सिर दीन्हा	३०८
अपना दोष दूसरे के सिर देना	रोइ रोइ आंसू नदी बहाइ	३१२
रो रोकर आंसू की नदी बहाना	बूड जगत न पाव थाहा	३१३
थाह न पाना	गा सो प्रान पेसा, क पींजर तन छूछ	३१४
पिंजर से पछी का उडना	काँट ह माह फूल जनु फूल	
काँटों म फसना	चलब झारि दोउ हाथ मुहम्मद वह	३१७
हाथ झाडकर चलना	छोडि क	३१७
	मूद नन जगत मह अबना	३१६
आंख मूद नेना	रा रोइ मीज हाथ	
हाथ मीजना	दीठि न दस फेरि मुहम्मद राना प्रेम	३१८
निगाह फेरकर न देखना	जो	३१८
	जो एहि रस के बाए भएऊ	३१८
रस का विष होना	तेहिं मह रस विष भर होइ गएऊ	३२०
बाए होना	तनी बल निसि दिन फिरई	३२१
तेनी का बल	ना नमाज है दीन क थनी	३२२
दीन का सहारा	कर गहि तीर मह गह आवा	३२६
हाथ पकडना	रा राजहु अब तनि क रगा	
रग में रगना	चौंकि पडु का आगि,	
खोया को पाया	मुहम्मद गा न थाहा ।	३२८

	इच्छा पूज आस तु लाव।	३४२
झगडा लगाना	भाइ बघु मह लाई लाव	
	बाप पूत मह कहै कहाव	३४३
वारपार न सूझना	वार पार किछु सूझत नाही।	
	दूसर नाहि को टेक बाटी ॥	३४६
बाल से भी पतला और तलवार से	बारहु ते पतरा अस झीना।	
भी पैना	खडग धार से अधिकौ पैना ॥	३४६
मर मर कर पांव उठाना	बहु तक मरि मरि पाव उठहै	३४६
दूध का दूध और पानी का पानी	नीर खीर हुत काढत छानी।	
	करव निवार दूध और पानी ॥	३४६
पथ न सूझना	निरखि नयन मैं देखौं कतहु पथ नहिं सूझि	
	रहौं लजाय मुहम्मद बात करौं का बूझि ॥	३५२
अपने सिर लेना	सो सब मैं अपने सिर लीन्हा	३५२
छार करना	तहिं वह छार करौं धरि जारी	३५२
अपना अपना ध्यान रखना	आपहिं आप आइक परी।	
	कोउ न कोउ क धर हरि करी ॥	३५४
आंखो देखी काना सुनी	नैन क देखा सवन क सुना	३५५
और भाना	तोहि छाडि मोहिं और न भावा	३५७

कहरानामा

टोइ टोइ पांव उठाना	टोइ टोइ भुइ पाव उतरहु विहारवली प्रतिपद १	
खाले पडना	नाही तो परिहहु खाले रे	
हाथ झार कर पछताना	काइ टकटोरि छूछि होइ बहुरा	
	हाथ, झारि पछतानेउ रे	"
जाल में पडना	काहीं फाद नरक नहिं देखा	
	परा जाल उरझानेउ रे	"
गांठ पूर कर आना	जो अस सूझि बूझि मारग चे	
	गांठि पूरि करि आवे रे	" २
अकेले झूरना	दरव हुत मन झुर अकेला,	
	कोई नहि निरवाह रे	
मझधार में डूबना	सोइ चाहु पारजहि उतरहु	

मत बूड़हु मझधारा रे

मुहावरे

प्रचलित रूप	पदमावत में प्रयुक्त रूप	पृष्ठ
श्री गणेश	पहिल तासर नाव ल कथा करौं अवगाहि	
देर न लगना	निमिष न लाग करत ओहि	२
एक पल म करना	राज कीन्ह पल एक	२
राज भोगना	कीन्हसि राजा भूजहि राजू	२
धूल मे मिलाना	पुनि कीन्हसि सब छार	३
बराबरी न कर सकना	दूसर नाहि जो सरवरि पावा	३
चींटी का हाथी के समान बनना	चाँटहि करइ हस्ति सरि जोगू	
राई ते पर्वत या तिनके से वज्र बनना	वज्रहि तिनकहि मारि उड़ाइ ।	३
	तिनहि वज्र करि देहि बड़ाई ।।	४
मर्म न जानना	ताकर मरम न जान भाना	
प्रचलित रूप	चित्ररेखा में प्रयुक्त रूप	६५
राज भोगना	सहस अठारह भूजइ राजू	६६
कठपुतली जैसा नाचना	नाच टार काठ जो नाचा	६६
छूछँ हाथ लौटना	चलि गो छूछे हाथ	७०
माया पसारना	कोउ भा परगट माया पसारें	,,
भूमि पर सिर मारना	कोउ भा भगति भूमि सिर मारें	,,
भभूत चढ़ाना	कोउ भा जटा भभूत चढ़ाए	
भेष बदलना	कोउ भा गरु का परि लाए ।।	
	कोउ भा भए दिगम्बर छाँट	,,
पाले पर उलटना	कोउ भा आपु उलटि गए काँट	,,
मौनी होना	जो मनहि तजि मौन तू गहा ।	,,
बगुला भगत बनना	तो बग रहैं जलु भगत बखाना ।	
बांहों का सहारा देना	लीन्ह बाँह निज समुद गँभारू ।।	७३
छार होना	गुए जो छार होइ यह देहा ।	७४
पाप धोना	धोवा पाप पानि सिर मेला ।	७४
पानी का बुलबुला होना	पानी जइस बुलबुला होई ।	७६
सयानापन दिखाना	तहाँ सयानप कौन करीज	७६
बोल स जी लना	सासु ननद बोलत जिव लई	८४

मुह अगोरना मुह जोहना	सासु ननद के मुहँहि अगोरे	८४
हाथ जोड रहना	रहब सुखी दोऊ कर जोरे ॥	८४
पछियो म डेल पडना	आपु आपु कह हाइहैं, ज्यो पाखिन मह डल।	८४
सूर्यास्त हाना	अथएउ सुरुज होई अब साझा	९२
भोर पनुहाना	कहा धनतरि पावही जो पनुहाव भोर।	९२
तन म सास रहना	जब लगि हुई सास तन मोरे।	९३
हाथ जोड कर सवा करना	सवा करौं ठाढ कर जोरे।	९३
श्रवणकुमार होना	तुम स उब सवन औ तरे।	९४
मुख का रग उड जाना या मुख श्वेत होना	राता वदन गएउ होइ सता	९५
पलक ओट होना और सपना सा बीतना	पलक ओट फुन होतए। गा सपना सा बीति।	९६
स्वगवासी होना या शिवलोक मे जाना	जबहि कुवर भा चाह बटाऊ।	१००
छार होना	बतन पू छइ चोदहा छार होउ जरि अग।	१०७
सुधि आना	नारि चित्ररेखा चित आई	११०
पीछ पछताना	रहहि जो करत सेवारी त पाछें पछताहि	११२
एक अगर पन्कर पण्डित होना	एक अक्षर प्रम का पन्ढ सो पण्डित होइ ॥	११३

(ग) अलाउद्दीन संबंधी प्रबंध और फुटकल काव्यों की सूची

जायसी	१	पदमावत रचनाकाल सं० १५९७ ।
नारायणदास और रतनरंग	२	छिताई वार्ता र०का० अज्ञात प्रति० का० सं० १६४७ और १६८२ ।
जान कवि	३	कथा छीता की र० का० सं० १६९३ प्र० का० सं० १७८४
जान कवि	४	कथा खिरसा साहजादे व देवलदे की
लालचंद लब्धोदय	५	पद्मिनी–चरित र० का० सं० १७०२ प्र० नि० काल सं० १७५१ ।
		गोरा बादल पद्मिनी चौपाई सं० १७६० ।
हेमरतन	६	गोरा बादल की बात
जटमल	७	हम्मीर रासो र०का० सं० १७८५ ।
जोधराज	७	हम्मीर हठ
ग्वाल कवि	९	हम्मीर हठ
चंद्रशेखर	१०	पद्मिनी र०का०सं० १९९०
वीरेंद्र	११	प्रणय की छाया
प्रसादजी	१२	बात मायणी चारिणी री
राजस्थानी गद्य में	१३	
श्यामनारायण पांडेय	१४	जौहर

अलाउद्दीन जैसे क्रूर और निरंकुश नरेश के संबंध में इतनी अधिक रचनाएं मुख्यतः चार उद्देश्यों से लिखी गई हैं–

१–अलाउद्दीन की प्रतिभा क्रूरता और निरंकुशता का चित्रण,

२–क्षत्राणियों की सतीत्व निष्ठा का प्रदर्शन

३–राजपूती वीरता का दिग्दर्शन और

४–राजस्थानी नरेशों द्वारा मुगल सम्राटों का कन्यादान की प्रथा के समर्थनार्थ पुरानी नजीर का प्रस्तुतीकरण[1] ।

१–छिताई वार्ता भूमिका, डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २२–२३

(घ) सहायक ग्रथ सूची

हिंदी ग्रथ

अद्ध कथानक स० प० नाथूराम प्रेमी, १६८७।
अनुराग बासुरी नूर मुहम्मद १६०६।
अपभ्र श साहित्य-डा हरिवश कोछड।
आधुनिक साहित्य-आचाय नन्ददुलारे वाजपयी २००७।
आधुनिक हिंदी काव्य की प्रवत्तिया (रहस्यवाद-श्री प्रभाकर माचवे।
इद्रावती-नूर मुहम्मद।
इतिहास-प्रवेश-श्री जयचन्द्र विद्यालकार १९३८।
ईरान के सूफी कवि-बाकेबिहारी तथा कन्हैयालाल।
उदयपुर राज्य का इतिहास-- गौरीशकर हीराचद ओझा।
एकोत्तरशती-रवीन्द्रनाथ ठाकुर।
कवितावली-तुलसीदास (स० डा० माताप्रसाद गुप्त)।
कविवर जायसी-डा सुधीन्द्र।
कबीर-डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
कबीर और जायसी के रहस्यवाद का तुलनात्मक विवेचन डा० गोविंद त्रिगुणायत।
कबीर का रहस्यवाद-डा० रामकुमार वर्मा १९४४।
कबीर ग्रथावली-स डा श्यामसुदरदास प० स० ना० प्र० सभा काशी।
कबीर साहित्य की परख-प० परशुराम चतुर्वेदी।
काव्यकला तथा अय निबन्ध-जयशकर प्रसाद।
कीर्तिलता-स० डा० बाबूराम सक्सेना।
कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा-स० श्री शिवप्रसाद सिंह।

गीतावली–तुलसीदास।
गोरखबानी, १९३० वि०।
चदबरदायी और उनका काव्य–डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी।
चदायन–डा० परमेश्वरीलाल गुप्त हि० ग्र० रत्नाकर, बम्बई–४।
चिंतामणि, भाग २, प० रामचन्द्र शुक्ल १९४५।
चित्ररेखा–स० शिवसहाय पाठक।
चित्रावली–उसमान (प्र० स० १९१२ ई०)।
छिताईवार्ता–स० डा० माताप्रसाद गुप्त।
जातक कथा (द्विवेदी) हि० सा० स० प्रयाग
जायसी–डा० रामरतन भटनागर।
जायसी और उनका पदमावत–प्रो० शिवबहादुर पाठक और
प्रो० जीवनप्रकाश जोशी
जायसी की काव्य साधना–प्रो० शिवबहादुर पाठक।
जायसी के परवर्ती सूफी कवि और काव्य–डा० सरला शुक्ल स० २०१३।
जायसी ग्रंथावली–स० डा० मनमोहन गौतम।
जायसी ग्रंथावली–स० डा० माताप्रसाद गुप्त १९५१ (प्र०सं०)
जायसी ग्रंथावली–स० प० रामचन्द्र शुक्ल (प्र० स०, द्वि०स०, प०स०)
जायसी साहित्य सिद्धांत और अध्ययन–श्री यज्ञदत्त शर्मा।
जिन रत्नकोश–वेलणकर (१९४४)।
जैन साहित्य और इतिहास–प० नाथूराम प्रेमी।
ढोलामारू रा दूहा–स० पारीक आदि ना० प्र० सभा काशी प्रथमावृत्ति।
तुगलककालीन भारत (भाग २)
तसव्वुफ अथवा सूफीमत–प० चन्द्रबली पांडेय (प्र०स)।
द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ (डा० बड़थ्वाल का लेख)।
पदमिनी का पद्य और गद्य–स० श्रीराम शर्मा।
नल दमन–सूरदास लखनवी।
नाथ-सम्प्रदाय–डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
पदमाकर पद्यामृत–स० प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र।
पद्मावत–स० भगवतीप्रसाद
पदमावत–लाला भगवानदीन, १९२५।
पदमावत (सटीक) मुंशीराम शर्मा।
पदमावत (मूल और संजीवनी व्याख्या) डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
१९५६।

पदुमावति–श्री ग्रियसन–सुधाकर द्विवेदी १९११ १२।
पदुमावती–श्री सूर्यकान्तशास्त्री १६३४।
पदमावत का काव्य–सौम्य शिव सहाय पाठक।
पदमावत का ऐतिहासिक आधार–इन्द्रचन्द्र नारंग।
पद्मावत-सार–इन्द्रचन्द्र नारंग।
पद्मावती–दुखहरनदास।
पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थ (व्रज साहित्य मण्डल)।
पुरातत्व निबन्धावली–महापण्डित राहुल सांकृत्यायन।
पूर्व मध्यकालीन भारत–डा० रघुवीर।
प्रकृति और हिन्दी काव्य–डा० रघुवंश प्र०स०।
प्राकृत साहित्य का इतिहास–डा० ज० चन्द्र जैन।
प्रिया-प्रकाश केशवदास।
पृथ्वीराज चरित–बाबू रामनारायण स० १८८६।
पृथ्वीराज रासो (संक्षिप्त) स० प० हजारीप्रसाद द्विवेदी और डा० नामवर सिंह
पृथ्वीराज रासो (पदमावती-समय) स० हरिहरनाथ टंडन।
भक्ति का विकास–डा० मुंशीराम शर्मा।
भारतीय प्रेमाख्यानक परम्परा–प० परशुराम चतुर्वेदी १९५६।
भारतीय प्रेमाख्यान काव्य (स०–१००० १९१२) १९५५।
मध्यकालीन धर्म-साधना–डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
मध्यकालीन भारतीय संस्कृति–म०म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
१९२७–२८।
मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन डा० सत्येन्द्र १९६६।
मध्ययुगीन प्रेमाख्यान–श्याममनोहर पांडेय।
मधुमालती-मंझन–स० डा० शिवगोपाल मिश्र।
मलिक मुहम्मद जायसी–भा० १–डा० कमलकुल श्रेष्ठ १९४७।
महायान–भदन्त शान्ति मिश्र।
मिश्रबन्धु विनोद–भाग १ (खंडवा प्रयाग)।
मीराबाई की पदावली–(स० प० परशुराम चतुर्वेदी)।
मेघनाद-वध (हिन्दी अनुवाद की भूमिका)।
मृगावत (कुतुबन कृत) स० हरिहरनिवास द्विवेदी १९५९।
मौलाना रूमी–जगदीशचन्द्र वाचस्पति।
रहस्यवाद और हिन्दी कविता–श्री गुलाब राय और श्री शम्भूनाथ पांडेय
स० २०१३।

रहिमन विलास ।
राजपूताने का इतिहास (पू० खं०) म०म० गौरीशकर हीराचंद्र ओझा ।
रामचरितमानस-तुलसीदास-स० श्यामसुंदरदास ।
राम और रामायणी काव्य-डा० दशरथ ओझा डा० दशरथ शर्मा ।
रीतिकालीन कवियों की ■ मव्यजना डा० बच्चनसिंह (ना० प्र० सभा)
रूपक रहस्य-डा० श्यामसुन्दरदास ।
वाङ्मय विमर्श-पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र सं० १९९९ ।
विस्मोवशोय (हिन्दी अनुवाद) अनु० शिवसहाय पाठक १९६० ई०
विद्यापति-पदावली स० श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ।
वीसलदेव रास-स० डा० मानाप्रसाद गुप्त-श्री जिन विजयमुनि ।
वीसलदेव रासो-ना० प्र० सभा काशी ।
वलिकिसन रुकमिणी ।
संत बानी भाग १ ।
संत बानी संग्रह भाग २ ।
संदेश रासक (अद्दहमाण कृत) स० डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी और श्री विश्वनाथ त्रिपाठी ।
सभरस-स० श्रीराम शर्मा ।
संक्षिप्त पद्मावत-श्री श्यामसुंदरदास-सत्यजीवन वर्मा १९२६ ई० ।
सुकवि-समीक्षा-रामकृष्ण शिलीमुख ।
सूफी काव्य संग्रह-पं० परशुराम चतुर्वेदी १९५० ई०
सूफी मत और हिन्दी साहित्य-डा० विमलकुमार जैन १९५५ ई० ।
सूफी मत साधना और साहित्य-श्री रामपूजन तिवारी ।
सूफी महाकवि जायसी-डा० जयदेव १९४७ ।
सूरसुधा ।
सूरसागर-स० नन्ददुलारे वाजपेयी (प्र०सं०) ना० प्र० सभा, काशी ।
शकुंतला नाटक-अनु० राजा लक्ष्मण सिंह ।
शिवसिंह सरोज-शिवसिंह सेंगर सं० १९४० ।
हंस जवाहिर-कासिम शाह ।
हकायके हिंदी-डा० अतहर अब्बास रिजवी ।
हमारा राजस्थान-श्री पृथ्वीसिंह महता १९५०, प्र० सं० ।
हिंदी कवि चर्चा-पं० चन्द्रवली पाडेय ।
हिंदी के आधुनिक महाकाव्य-डा० गोविंदराम शर्मा ।
हिंदी काव्य में प्रकृति चित्रण-डा० किरणकुमारी गुप्ता प्र०सं० ।

हिंदी के कवि और काव्य—प० गणशप्रसाद द्विवेदी प्र० स० ।
हिंदी के विकास म अपभ्रश का योग—श्री नामवर सिंह प्र० एव द्वि० सस्करण ।
हिंदी पर फारसी का प्रभाव—श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ।
हिन्दी प्रमाख्यानक काय—डा० कमलकुल श्रष्ठ, १९५३ ई० प्र० स० ।
हिंदी प्रेम गाथा—सग्रह प० गणेशप्रसाद द्विवेदी ।
हिंदी भाषा और लिपि—डा० धीरेन्द्र वर्मा ।
हिंदी भाषा और साहित्य का विकास—प० अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध
हिन्दी भाषा का इतिहास डा० धीरेन्द्र वर्मा ।
हिंदी भाषा और साहित्य—डा० श्यामसुन्दरदास १९३० ई ।
हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—डा० शम्भूनाथसिंह, प्र० स० ।
हिंदी साहित्य (द्वि ख०) भारतीय हिंदी परिषद प्रयाग १९५९ ई०
हिंदी साहित्य—डा० श्यामसुन्दरदास ।
हिंदी साहित्य—प हजारीप्रसाद द्विवेदी प्र० स० स २००९ ।
हिंदी साहित्य का अतीत (आदिकाल—भक्तिकाल)—प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र स २०१५, प्र स० ।
हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी प्र० स० ।
हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा द्वितीय एव ततीय सस्करण ।
हिंदी साहित्य का इतिहास—प० रामचन्द्र शुक्ल (स० २००८) ।
हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास (ग्रियसन कृत) —डा० किशोरीलाल गुप्त, १९५७ प्र० स० ।
हिंदी साहित्य की भूमिका—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
हिंदुई साहित्य का इतिहास—(तासीकृत)—डा लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय १९५३, ई० प्र० स० ।
हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—श्री बेनीप्रसाद ।
हिंदुस्तानी इग्लिश—डिक्शनरी ।

सस्कृत प्राकृत अपभ्रश

अद्ध कथा – स० नाथूराम प्रमी ।
अमरु शतक—अमरुक—श्री ऋपीश्वरनाथ भट्ट स० १९७१ ई० ।
अग्निपुराण (बी० आ—ई एडीशन) ।
आत्मानन्द जन ग्रथमाला—१९७८ निणय सागर प्रेस बम्बई

उक्ति व्यक्ति प्रकरण—दामोदर पडित
करवडु चरिउ (कनकामर कृत) स० प्रो० हीरालाल जन, १६३४।
कपू र मजरी (राजशेखर कृत)।
काम सूत्र—अनु०—माधवाचाय।
काव्यानुशासन—हेमचन्द्र।
काव्यानुशासन—वाग्भट।
काव्यालकार—भामह।
काव्यादश—दण्डी,
काव्यालकार—रुद्रट।
काव्यालकार—कुमार
सूत्र—स० डा० नगेन्द्र
काव्यादश—दडिन (शास्त्री रगाचाय रेड्डी तथा बेलवन, कर पूना)।
काव्यप्रकाश—मम्मट—स० डा० सत्यव्रत १६५५।
कालिदास ग्रथावली—स० प० सीताराम चतुर्वेदी प्र० स०।
कुमार सभवम कालिदास।
ध्वन्यालोक—आनन्दवद्ध न —स डा० नगेन्द्र।
गीतगोविन्द—विनयमोहन शर्मा।
चौर पचाशिका विल्हण ओरियटल बुक एजेंसी, पूना।
परमात्म प्रकाश—डा ए० एन० उपाध्ये।
भविसयत्त कहा—दलाल गुणे बडौदा।
मूल माध्यमिक कारिका—नागाजु न पचम सस्करण।
लीलावइ कहा (की अंग्रेजी भूमिका) कौतूहल कृत—स० डा० ए० एन० उपाध्ये।

ब्रह्मपुराण
ब्रह्मणोपनिषद् (गीता प्रेस गोरखपुर)।
माधवानल काम कदला आख्यान—गायकवाड ओरियटल सीरीज, बडौदा।
वर्ण रत्नाकर।
वाल्मीकीय रामायणम।
विक्रमोवशीयम (कालिदास ग्रन्थावली) विक्रम परिषद काशी।
स० एस० पी० पडित (भूमिका भाग)।
विष्णुपुराण और विष्णुधर्मोत्तर पुराण
संदेश रासक—मयाणी जिन विजय मुनि। (आ० ह० प्र० द्विवेदी वि० त्रिपाठी)।

साहित्य दर्पण (विश्वनाथ कृत) म०म० काणे द्वारा संपादित ।
, सं० डॉ० सत्यव्रत ।
श्री मदभगवदगीता स बालगंगाधर तिलक ।
श्री मदभागवत

उर्दू-फारसी

कश्फुल महजूब-हुज्वेरी (उर्दू अनुवाद) पंजाब म ३८
आइने अकबरी ।
उर्दू मसनवी का इतका-अ ुन वनदिर साबरी ।
कशफुल महजूब (उर्दू) लाहौर ।
उर्दू साहित्य का इतिहास--एजाजहुसेन ।
खजीनतुल असीफिया-गुलाब सरर ।
खुसरो शोरी-निजामी नवल किशोर प्रेस लखनऊ ।
तारीख ए फिरिश्ता (लखनऊ से प्रकाशित) ।
नलदमन फजी-नवलकिशोर प्रेस लखनऊ ।
नूरुललुगात, भाग ४ ।
मलिक मुहम्मद जायसी-सयद कल्व मुस्तफा (१९४१ ई) ।
मिसबाहुल जनवार-(अरबी) ।
रिमुजुल आरिज मीर हसन देहलवी (१७७८) हैदराबाद कुतुबखाना ।
शीरी-खुसरो (खसरो) मु युनीवर्सिटी अलीगढ़ ।
लैला मजनू-निजामी (न कि० प्रेस लखनऊ) ।

तूतीनामा

मीर सआदत अलीरिजवी कि० १९५७ ।
कुरान शरीफ
चन्दरबदन व माहयार-मुकीमी अब्दुलहक साहिबी ।
पजाब म म उर्दू-हाफिज मुहम्मद शीरानी ।
दकन म उर्दू-नसीरुद्दीन हाशिमी ।
कहे तसव्वुफ-मेहनी ।
मकदमा शेरो शायरी ख्वाजा अलताफ हुसन अली ।
फारसी साहित्य का इतिहास-असगर हिकमत ।

अंग्रेजी

ए हिस्ट्री आफ ओटोमन-पोइटी—वा० १
अलबरूनीज इंडिया—भाग १ सचाऊ १९१०

ए हिस्ट्री आफ बंगाली लैंग्वेज—निलीचन्द्र सेन १९११ ई० ।
ए हिस्ट्री आफ परशियन लिटरेचर इन माडर्न टाइम्स ।
ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर—ए० बी० कीथ १९२८ ।
ए हिस्ट्री आफ राइज आफ मुहम्मडन पावर—[illegible]
ए शार्ट हिस्ट्री आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया—डा० ईश्वरीप्रसाद ।
एनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज आफ राजस्थान, वा० १ कर्नल जेम्स टाड ।
ऐन एम्पायर बिल्डर आफ सिक्स्टीन्थ सेंचुरी—विलियम [illegible] ।
एन एक्जामिनेशन आफ दी मिस्टिक टेंडेंसीज इन हिन्दी, १९२२ ई०
बाबर नामा—[illegible] । जहाँगीर नामा ।
इन्ट्रोडक्शन टु दी हिस्ट्री आफ सूफीज्म—आर्बरी ए० आरबरी ।
असरारखानी—ऐ [illegible] ।
ओरियण्टल पोइट्री—[illegible] ।
आइने अकबरी—ब्लाकमैन
आउर ला०
म्यानोग्राफी आफ एशिया—टल ।
क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर—A B Keith
डिक्शनरी आफ इस्लाम (१८८५ ई०)—टी० पी० ह्यूज
डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर—शिप्ले ।
इ [illegible] एण्ड [illegible] पोइट्री—एम० [illegible] ।
इन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम वा० ३ ८ ।
इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स, जेम्स हेस्टिंग्स वा०
१२ १९२१ ई० ।
इन्फ्लुएन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर ताराचन्द
इवल्यूशन आफ अवधी—डा० बाबूराम सक्सेना ।
एलिमेंट्स आफ हिन्दू एण्ड मोहम्मडन [illegible]
इस्त्वार दी ला लितरेत्यूर ऐन्दूई ऐ ऐन्दूस्तानी तासी, (फ्रेंच)
१८३०ई० परिवर्द्धित संस्करण ३ वाल्यूम में १८७०—७१ ई० ।
इण्डियन कल्चर—वाल्यूम १ ।
इन ऐन ईस्टर्न रोज गार्डेन ।
जलालुद्दीन रूमी—निकल्सन ।
ग्लौसरी आफ पंजाब ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स १९१९ ई० ।
गजेटियर आफ प्राविंस आफ अवध वा० १ २, १८५८ ।
हिस्ट्री आफ इण्डिया वा० ३,—[illegible] ।

पदमावत की अनेक प्रतियाँ विशेष रूप में —
- ना० हि० वि० वि० की प्रति।
- भारत कला भवन की कथी प्रति।
- रामपुर स्टेट वाली प्रति की माइक्रोफिल्म।
- मनेर शरीफ वाली प्रति की कापी।

मधुमालती—(निगम सम्पादित) दो प्रतियां भारतीय विद्याभवन बम्बई।
मसला या मसलानामा—ना०प्र० सभा की प्रति।
मनासत-मनेर शरीफ।
मृगावती-(हस्तलिखित प्रति)।

शिलालेख—राउलवेल

राउलवेल (Prince of Wells Museum Bombay)
बंगला-इस्लामी बांगला साहित्य—सुकुमार सेन

पत्र-पत्रिकाएं—खोजविवरण

अमृत बाजार पत्रिका पूजा अंक-१९५७।
करेंट स्टडीज पटना कालेज पटना १९५३ १९५५ ई०
जर्नल आफ दी अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी वा ३ ४ ४१।
जर्नल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल।
जर्नल आफ बिहार रिसर्च सोसाइटी वर्ष ३८ अंक १ २ १९५३।
ना० प्र० पत्रिका भाग १२ सं० १९८८
१३ सं १९८९
१४ सं १९९०
, अंक १ वर्ष ४५ सं १९९७ (पृ० १६५—१६७)।
अंक ४ वर्ष ५-७ सं २० ६।
अंक ४ वर्ष ५८ सं २०१ ।
ना० प्र० प (हीरक जयन्ती अंक) ३ वर्ष ५८ सं० २ १०।
अंक ३-४ वर्ष ६४ सं २०१२।
अंक १ वर्ष ६५ २ १७।
ना प्र० सभा खोज रिपोर्ट १९ -१९०२ (नोटिस १ २)।
ना० प्र सभा खोज रिपोर्ट सं० १९५७—८८। १९४७ ई ।
ना० प्र सभा जयोत्सव त्रवार्षिक विवरण १९२६-२८ ई ।
पुण्यधाम जून १९४२ ई०।

प्रसाद जुलाई, १६५६।
माडर्न-रिव्यू-नव० १८५६।
राजस्थानी, जनवरी १६४० पृ० २२।
विश्वभारती, ख० ८, अंक २, १६४६ ई०।
सम्मेलन पत्रिका १८६४ पौष-माघ। १८८१ शक भाग ४६ संख्या १।
सरस्वती प्रयाग १६३० ई०।
साहित्य-सन्देश भाग १३ अंक ६ (आदि पदमावती)।
सुल्तानपुर गजेटियर भाग ३६, १६०३ ई०।
हिन्दी अनुशीलन वर्ष ११ अंक ३ १६५८ ई०। वर्ष १३ अंक १२
१६६० ई०।

हिन्दुस्तानी भाग ४ अंक ३ जुलाई १६३४ अप्रेल १६५८ ई०।
भारतीय विद्या (भा० वि० भवन, बम्बई-७) वा० १८।
ज्ञानशिखा लखनऊ अक्टूबर १६५१।
